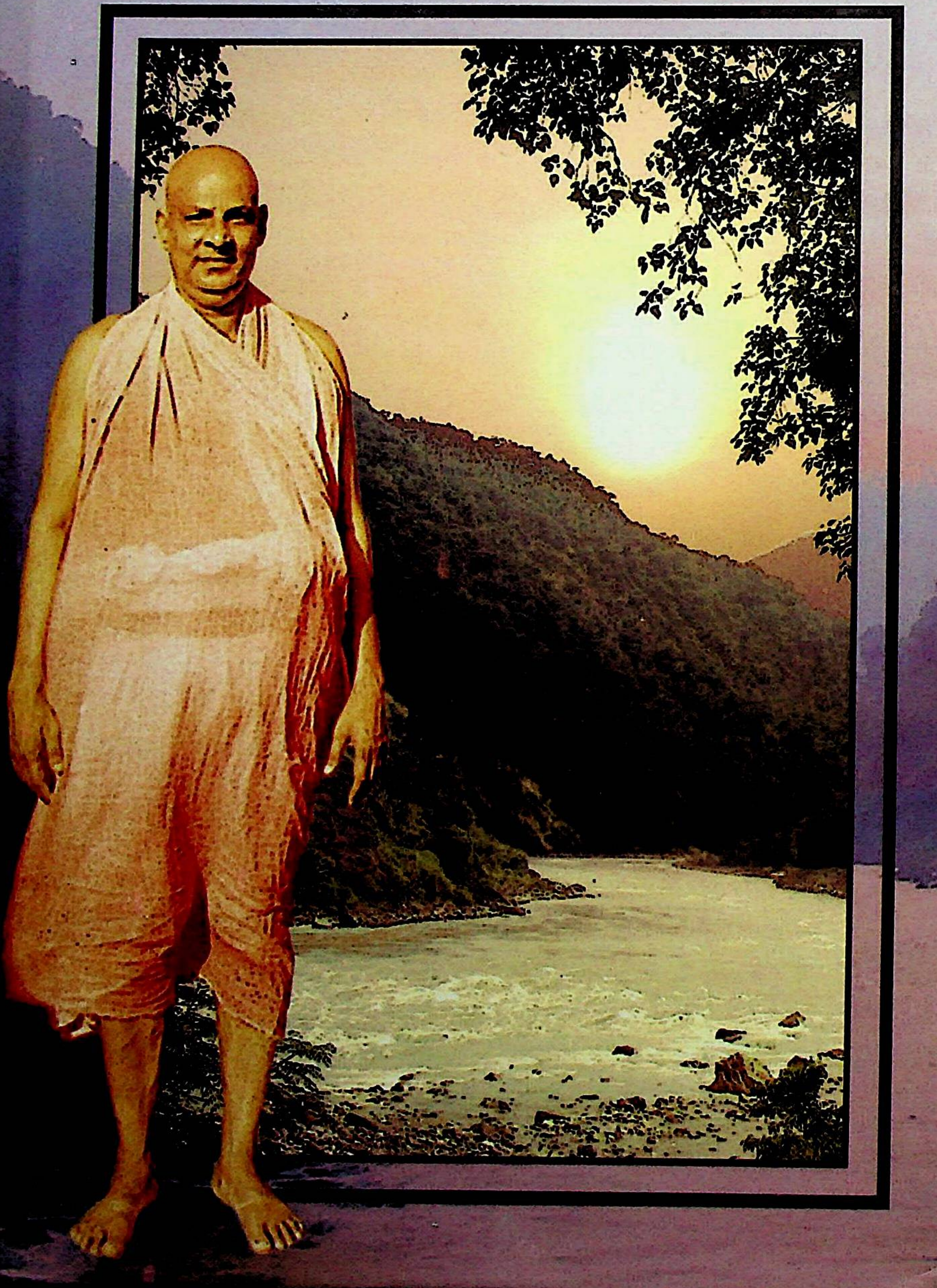
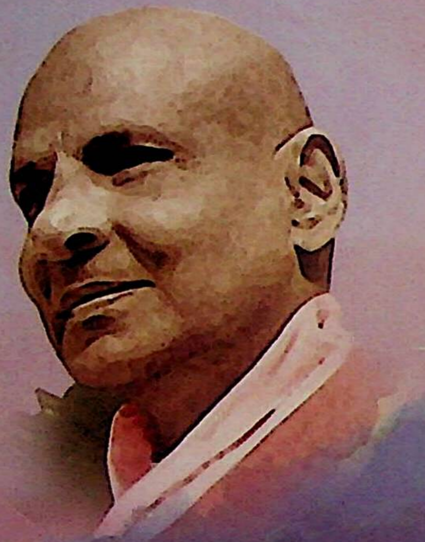
आधुनिक संत स्वामी शिवानन्द एक जीवनी





सभी धर्म एक हैं। प्रेम का धर्म अथवा हृदय का धर्म ही एकमात्र सच्चा धर्म है। जैसा आप अपने स्वयं के लिए अनुभव करते हैं वैसा ही अन्यों के लिए अनुभव करें। यही विश्व धर्म विश्व शान्ति और आनन्द लेकर आयेगा।

—स्वामी शिवानन्द

आधुनिक संत स्वामी शिवानन्द
एक जीवनी

प्रथम हिन्दी संस्करण—२००५ ई.
(१५०० प्रतियाँ)

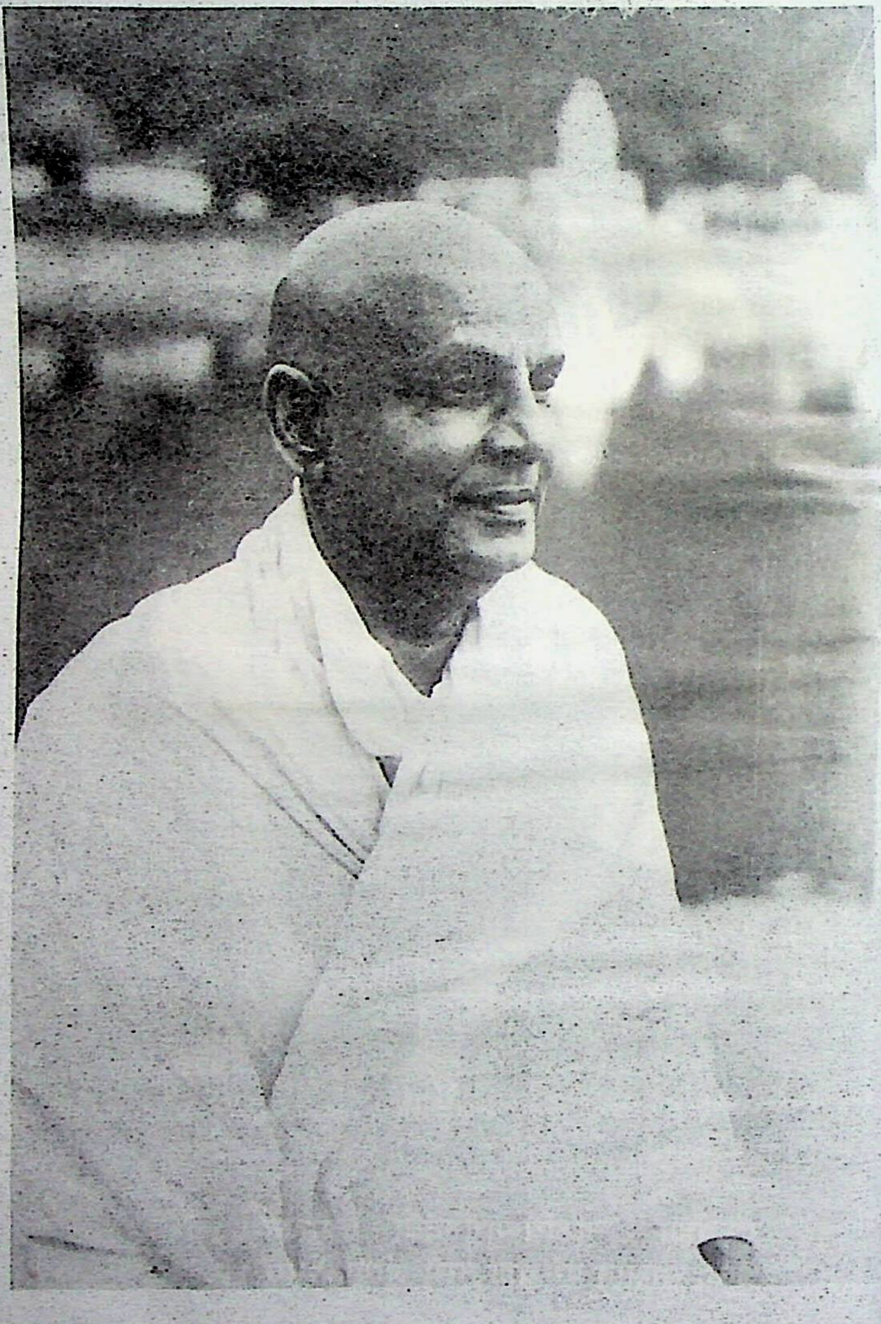
© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

HO 44

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी विमलानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जिला टिहरी-गढ़वाल,
पिन २४९ १९२, उत्तरांचल, हिमालय, भारत' में मुद्रित।



गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।



समर्पण

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के पावन चरण कमलों में जो मेरे आराध्य देव हैं और सदा मेरे हृदय में रहकर मेरा पथ-प्रदर्शन करते हैं।

शिवानन्द योगीन्द्र स्तुति

१. सदापावनं जाह्नवी तीर वासं सदा स्वस्वरूपानुसंधानशीलं।
सदा सुप्रसन्नं दयालुं भजेऽहं शिवानन्दयोगीन्द्रमानन्दमूर्तिम्॥

२. हरेर्दिव्यनाम स्वयं कीर्तयन्तं हरेः पादभक्तिं सदा बोधयन्तम्।
हरे पादपद्मस्थ भृङ्गं भजेऽहं शिवानन्दयोगीन्द्रमानन्दमूर्तिम्॥

३. जराव्याधिदौर्बल्य संपीड़ितानां सदाऽऽरोग्यदं यस्य कारुण्यनेत्रम्।
भजेऽहं समस्तार्तसेवाधुरीणं शिवानन्दयोगीन्द्रमानन्दमूर्तिम्॥

४. सदा निर्विकल्पे स्थिरं यस्यचित्तं सदा कुम्भितः प्राणवायुर्निकामम्।
सदा योगनिष्ठं निरीहं भजेऽहं शिवानन्दयोगीन्द्रमानन्दमूर्तिम्॥

५. महामुद्रबन्धादियोगांगदक्षं सुषुम्नान्तरे चित्स्वरूपे निमग्नम्।
महायोगनिद्राविलीनं भजेऽहं शिवानन्दयोगीन्द्रमानन्दमूर्तिम्॥

६. दयासागरं सर्वकल्याणराशिं सदा सच्चिदानंदरूपे निलीनम्।
सदाचारशीलं भजेऽहं भजेऽहं शिवानन्दयोगीन्द्रमानन्दमूर्तिम्॥

७. भवाम्भौधिनौकानिभं यस्य नेत्रं महामोहघोरान्धकारं हरन्तम्।
भजेऽहं सदा तं महान्तं नितान्तं शिवानन्दयोगीन्द्रमानन्दमूर्तिम्॥

८. भजेऽहं जगत्कारणं सत्स्वरूपं भजेऽहं जगद्व्यापकं चित्स्वरूपं।
भजेऽहं निजानंदमानंदरूपं शिवानंदयोगीन्द्रमानन्दमूर्तिम्॥

९. पठेद्य सदा स्तोत्रमेतत् प्रभाते शिवानन्दयोगीन्द्रनाम्नि प्रणीतम्।
भवेत्तस्य संसार दुःखं विनष्टं तथा मोक्षसाम्राज्यकैवल्य लाभः॥

विषय सूची

परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज को विनम्र श्रद्धांजलि

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थ

गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं गुरु ही भगवान् शिव हैं। गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं ऐसे सद्गुरु को मेरा प्रणाम है। प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में मेरा शत्-शत् नमन!

परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी के बारे में कुछ लिखना सूर्य के सामने दीपक दिखाना है। गुरुदेव ऐसे सूर्य थे जिन्होंने ज्ञान के प्रकाश से समस्त संसार के जनों को आलोकित कर दिया था। गुरुदेव का भारत और सारे संसार के आध्यात्मिक गुरुजनों के मध्य गौरवपूर्ण स्थान है। उन्होंने बारह वर्षों तक कठोर तपस्या की। ध्यान साधना के कारण उनके मुख पर अपूर्व तेज और आँखों में शक्ति थी तथा उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और प्रभावशाली था। उनका आभामण्डल ऐसा था कि उनके पास सैकड़ों शिकायतें लेकर आने वाला स्वयं ही शान्त हो जाता था। स्वामी जी का दर्शन मात्र आत्मोत्थानकारी और रूपान्तरण कर देने वाला था तथा अपने सामने आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उत्कृष्ट बना देता था। स्वामी जी के चारों ओर देवत्व का अनुभव होता था। जिस पर स्वामी जी की कृपादृष्टि होती थी उसके हृदय से नास्तिकता, सांसारिकता तथा दुष्टता नष्ट हो जाती थी। गुरुदेव असाधारण बौद्धिक क्षमता था आध्यात्मिक विशिष्टता के धनी थे। इसी कारण उन्होंने अपने जीवनकाल में संसार के कोने-कोने के असंख्य लोगों को प्रभावित कर लिया था। उनके प्रभाव ने मनुष्य की बनाई धर्म, जाति, पंथ, रंग, लिंग आदि सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर लिया था। बीसवीं सदी में गुरुदेव के जितने अनुयायी थे उतने किसी भी अन्य संत के नहीं थे।

उस समय के सभी लोग गुरुदेव से भली भाँति परिचित थे परन्तु आज जबकि चारों ओर अस्त-व्यस्तता है, पश्चिमीकरण की ऐसी आंधी चली है कि इसके बहाव में हमारे बच्चे और युवा, जो देश के भावी कर्णधार हैं, वे अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं, आधुनिक संस्कृति में उनका नैतिक और मानसिक पतन हो रहा है। आज इस युग में गुरुदेव के बारे में जानने तथा उनसे प्रेरणा लेने की युवा पीढ़ी को महान् आवश्यकता है। आज तक राष्ट्रभाषा हिन्दी में जो कि हमारे देश में सर्वाधिक बोली, पढ़ी और समझी जाती है, स्वामी जी की ऐसी जीवनी उपलब्ध नहीं थी जो उनके समग्र जीवन का परिचय देती हो। इसलिए यह प्रश्न मेरे मन में बार-बार उठता था कि स्वामी जी की जीवनी हिन्दी में अवश्य ही होनी चाहिए ताकि हिन्दीभाषी जन जो देश मे सर्वाधिक हैं, उनके जीवन से प्रेरणा ले सकें। इस पुस्तक के लिए मैं तथा सभी हिन्दीभाषी जन परम पूज्य स्वामी श्री निर्लिप्तानन्द जी तथा आदरणीय श्री स्वामी देवभक्तानन्द जी के सदैव ऋणी रहेंगे।

स्वामी जी के जीवन पर पुस्तकें ही पुस्तकें लिखी जायें तो भी शायद उसे पूरी तरह लिखना असम्भव है। जिस प्रकार रामचरितमानस की प्रत्येक चौपाई में एक शिक्षा है, जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक श्लोक में एक उपदेश है, उसी प्रकार गुरुदेव के जीवन का एक-एक क्षण प्रेरणाप्रद है। इसके साथ ही आश्चर्य की बात यह हुई कि गुरुदेव की जीवन के साथ ही मुझे गुरुदेव द्वारा लिखित गीता की व्याख्या (द भगवद्गीता) भी आश्रम से ही ज्ञान-प्रसाद के रूप में प्राप्त हुई और संयोगवश मैंने इन दोनों पुस्तकों को साथ-साथ ही पढ़ा और पाया कि इन दोनों में अद्भुत साम्य है। गुरुदेव का कहना था कि गीता उनकी नित्य संगिनी रही है, और मैंने पाया कि उन्होंने गीता को पूरी तरह अपने जीवन में उतार लिया था। वे गीता की साकार प्रतिमा थे। गीता में स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लिए बताये गये सभी लक्षण उनमें विद्यमान थे। जैसे—

गीता के १३वें अध्याय के २७वें श्लोक में लिखा है कि वह जो जड़ तथा चेतन सभी में अपने अन्तर्ज्ञान चक्षु से उस परमपिता परमेश्वर के दर्शन करता है

उसे भगवद्-साक्षातकार प्राप्त संत कहते हैं। गुरुदेव भी भगवद्-साक्षात्कार प्राप्त संत थे। वे प्रत्येक वस्तु और प्राणी में ईश्वर के दर्शन करते थे। यह उनके प्रत्येक कार्यकलाप से स्पष्ट ही परिलक्षित होता था। वे एक विशाल देह के स्वामी थे किन्तु जब वे चलते थे तो इतने धीरे से भूमि पर चरण रखते थे कि चींटी को भी चोट न लगे। कोई सूखी पत्ती भी चूर-चूर न हो जाये। वे अपने चश्मे के घर को भी इतनी धीरे से बन्द करते थे कि जैसे यदि वे इसे जोर से करेंगे तो इसमें स्थित भगवान् को आहत कर देंगे। उन्होंने अपने जीवन में एक भी वस्तु नहीं तोड़ी। उन दिनों फल दुर्लभ थे और वे मात्र फल पर ही निर्भर थे। लेकिन स्वामी जी का कहना था कि यदि यह दुर्लभ वस्तु है तो यह प्रत्येक को प्राप्त होनी चाहिए। इसलिए वे चाहे वस्तु थोड़ी सी क्यों न हो उसमें से गंगा जी की मछलियों और बन्दरों को भी खिलाते थे। उनके नाश्ते और भोजन में से पहले वहाँ उपस्थित प्रत्येक प्राणी, अतिथि और आश्रमवासियों को हिस्सा मिलता था। इसके बाद ही वे स्वयं ग्रहण करते थे।

गीता के बारहवें अध्याय के १३वे श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने संत के लक्षण बाते हुए कहा है कि 'वह जो किसी से घृणा नहीं करता, जो सबके साथ मित्रवत् रहता है, सब पर दया करता है, जो अहंकार और आसक्ति से मुक्त है, सुख और दुःख में सन्तुलित होता है और क्षमाशील होता है वह संत कहलाता है और मुझे वह सर्वाधिक प्रिय है।

आप यदि गुरुदेव की यह जीवनी पढ़ेंगें तो पायेंगे कि ये समस्त सद्गुण उनमें विद्यमान् थे। स्वामी जी में बचपन से ही सभी की सेवा की भावना अत्यधिक थी। इसी कारण उन्होंने चिकित्सा का क्षेत्र चुना और महान् डाक्टर बने। उनके भीतर ऐसी क्षमता थी कि उनके स्पर्श मात्र से ही गम्भीर रोगी भी स्वस्थ हो जाते थे। गुरुदेव को किसी से भी घृणा नहीं थी। वे तो प्रत्येक प्राणी में ईश्वर के दर्शन करते थे। सभी के कष्ट दूर करना ही उनका धर्म था। जब वे स्वर्गाश्रम में रहते थे तो लोग बताते हैं कि वे वहाँ आसपास रहने वाले बीमार महात्माओं की सेवा करते थे, वे उनकी गंदगी साफ करते, उनके कुटीर की

सफाई करते, उनके वस्त्र धोते, सुखाते और तह करके कुछ कहे बिना उनके पास रख आते थे। ठीक ऐसा ही व्यवहार उनका अपने शिष्यों के साथ था। वे अपने शिष्यों की बीमारी में किसी भी प्रकार की सेवा में हिचकिचाते नहीं थे। वे कहते थे कि यदि मैं विष्ठा में भी किसी कीड़े को जीवन हेतु संघर्ष करते देखता हूँ तो बिना किसी घृणा के भाव के उसे उसमें से अलग कर देता हूँ।

स्वामी जी महान् दयालु थे। वे रास्ते में मृत पड़ी छिपकली के लिए भी पहले महामृत्युंजय मन्त्र का जप करते थे , उसके बाद ही आगे बढ़ते थे। यदि वे गंगा जी के जल में भी किसी प्राणी को जीवन के लिए तड़पते देखते तो पहले उसे हाथ मे लेकर किनारे पर रख कर आते थे, फिर स्नान करते थे। एक बार की घटना है आश्रम में अलमारी में रखी नयी बहुमूल्य चादर को एक चुहिया ने चिंदी-चिंदी कर दिया और उसमें बच्चे दे दिये। जब यह फटी चादर और बच्चे लाकर स्वामी जी को दिखाये गये तो स्वामी जी को बड़ा दुःख हुआ। बोले—"अरे, इसे तुरन्त वहीं रखकर आओ अन्यथा इनकी माँ बच्चों के बिना परेशान होगी।"

स्वामी जी एक महान् योगी थे। उनका अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण था। वे एक ब्रह्मज्ञानी थे। ब्रह्मज्ञानी उसे कहते हैं जो अहिंसा में पूर्ण स्थित होता है तथा वह मन, वचन और कर्म से किसी को आहत नहीं करता। गुरुदेव स्वयं तो किसी को चोट पहुँचाते ही नहीं थे, वे किसी अन्य को भी किसी जीव को कष्ट नहीं देने देते थे। एक बार की घटना है—आश्रम में पहले बिच्छू बहुत निकलते थे। स्वामी जी उन्हें मारने नहीं देते थे। आश्रम में चिमटे रखे रहते थे। उनसे उन्हें पकड़कर दूर कर दिया जाता था। एक दिन रात्रि सत्संग में एक अतिथि ने एक बिच्छू को टार्च से मसल कर मार डाला। स्वामी जी सारी घटना देख रहे थे। सत्संग की समाप्ति पर स्वामी जी ने उसे बुलाया और कहा—"क्या आप इसे जीवन दे सकते हैं। जब आप किसी को जीवन दे नहीं सकते तो आपको उसे मारने का कोई अधिकार नहीं है।" (स्वामी जी सभी को आप कहकर संबोधित करते थे)

स्वामी जी सागर के समान गहरे थे। उन्हें कभी क्रोध नहीं आता था। वे पृथ्वी के समान क्षमाशील थे। वे तो उन्हें जान से मारने का प्रयास करने वाले को भी क्षमा कर देते थे। 'एक बार एक व्यक्ति गोविंदन ने जिसे उन्होंने कुछ दिन पूर्व ही आश्रम में प्रवेश दिया था, उन पर दो बार कुल्हाड़ी से मारने का प्रयत्न किया। किन्तु स्वामी जी ने उसे क्षमा ही नहीं किया वरन् उससे पूछा कि 'मुझसे क्या गलती हुई? आप मुझसे क्यों नाराज हो गये। मेरे प्रभु! यदि आप चाहें तो मुझे और मार सकते हैं। मैं आपके सामने प्रस्तुत हूँ और बाद में उन्होंने कुछ पैसे और रेल का टिकट देकर उसे उसके घर भिजवा दिया। यहाँ तक कि उसके जाने के समय उसे टीका लगाया और प्रणाम किया, वस्त्र प्रदान किये और साथ ले जाने के लिए विशेष व्यंजन भी बनवा के दिये। ऐसी थी स्वामी जी की महानता।

वे ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित थे। इसलिए सदा सन्तुष्ट रहते थे। उन्हें जो कुछ भी प्राप्त होता था उसे वे ईश्वर की कृपा मानते थे और यदि कोई दुःख प्राप्त होता तो उसे वे अपने प्रारब्ध कर्मों का फल मानते थे। यदि आश्रम में कोई चोरी हो जाती तो उसे वे गुप्त दान (वह दान जिसमें लेने वाला देने वाले को देने के ऋण से मुक्त कर देता है) कहते थे और इसके लिए वे चोर को धन्यवाद देते थे।

गुरुदेव के मन में धर्म, जाति आदि का कोई भेद-भाव न था। वे तो सभी में ईश्वर के दर्शन करते थे। वे अपने साथ रहने वाले शिष्यों तथा सहयोगियों को अपने बृहत स्तर पर आध्यात्मिक जन जागरण के लक्ष्य हेतु ईश्वर द्वारा प्रदत्त वरदान मानते थे और उनके साथ तदनुरूप व्यवहार करते थे। गुरुदेव का अनुकरण करने वालों में संसार भर के सभी धर्मों के लोग थे। उनके शिष्यों की सूची इतनी लम्बी है कि उसका यहाँ उल्लेख करना सम्भव नहीं है परन्तु गुरुदेव के कई शिष्यों ने भारतवर्ष और समस्त विश्व में बड़ा नाम कमाया। उनमें से हमारे देश के वर्तमान राष्ट्रपति डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जी भी हैं। उन्होंने गुरुदेव के बारे में अपनी आत्मकथा अग्नि की उड़ान (Wings of Fire) में लिखा है उनके संस्मरण मैं शब्दशः यहाँ उद्धृत कर रही हूँ क्योंकि यह पढ़कर

हमारे देश की युवा पीढ़ी को प्रेरणा प्राप्त होगी, और वे उस महान् संत के बारे में जानने हेतु उत्सुक होंगे जिसने महामहिम राष्ट्रपति जी जैसे असंख्य युवकों को जीवन बदला और उनको नवजीवन, नवस्फूर्ति तथा सही दिशा प्रदान की।

यह घटना सन् १९५८ की है। महामहिम राष्ट्रपति महोदय वायु सेना में जाना चाहते थे। उन्होंने कमीशन अधिकारी के लिए साक्षात्कार दिया। लेकिन उसमें उनका नौवाँ नम्बर रहा और आठवें नम्बर पर चुनाव समाप्त हो गया। इसलिए वे बड़े निराश हो गये और ऋषिकेश आ गये। इसके बाद की घटना स्वयं उनके ही शब्दों में—

''उहापोह में उलझा मैं ऋषिकेश आ गया। मैंने गंगा जी में स्नान किया और इसकी शुद्धता का आनन्द लिया। इसके बाद मैं छोटी सी पहाड़ी पर बने शिवानन्द आश्रम में गया। जब मैंने आश्रम में प्रवेश किया तो मुझे तीव्र कम्पन महसूस हुए। मैंने पढ़ा था कि साधु आत्मिक व्यक्ति होते हैं। वे व्यक्ति जो अपने अन्तर्ज्ञान से ही सब कुछ जान लेते हैं। अपनी उदासी के क्षणों में ही मैं उन सवालों का जवाब खोजने चला जो मुझे परेशान किये हुए थे।

मैं स्वामी शिवानन्द जी से मिला। बिल्कुल बुद्ध की तरह दिखने वाले। वे एक श्वेत धवल धोती और पैरों में खड़ाऊँ पहने हुए थे। मैं उनकी अत्यन्त सम्मोहक और बच्चे जैसी मुस्कान और कृपालु भाव देखकर दंग रह गया। मैंने स्वामी जी को अपना परिचय दिया। मेरे मुस्लिम नाम की उनमें जरा भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। मैं आगे कुछ बोल पाता इससे पूर्व ही उन्होंने मेरी उदासी का कारण पूछ लिया। उन्होंने कहा—''यह मत पूछना कि मैंने यह कैसे जाना कि तुम उदास हो।'' और फिर मैंने उनसे यह नहीं पूछा।

मैंने उन्हें भारतीय वायुसेना में अपने नहीं चुने जा पाने की असफलताओं के बारे में बताया। उन्होंने मुस्कराते हुए मेरी सारी चिन्तायें दूर कर दीं और फिर धीमें तथा गम्भीर स्वर में कहा—''इच्छा जो तुम्हारे हृदय और अन्तरात्मा से उत्पन्न होती हो, जो शुद्ध और मन से की गई हो, एक विस्मित कर देने वाली विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा लिये होती है। यही ऊर्जा हर रात को, जब मस्तिष्क

सुषुप्त अवस्था में होता है, आकाश में चली जाती है। हर सुबह यह ऊर्जा ब्रह्मांडीय चेतना लिये वापस शरीर में प्रवेश करती है। जिसकी परिकल्पना की गई है, वह निश्चित रूप से प्रकट होता नजर आयेगा। नौजवान तुम इस तथ्य पर ठीक उसी तरह अनन्त काल तक भरोसा कर सकते हो जैसे तुम हमेशा सूर्योदय के अकाट्य सत्य पर भरोसा करते हो।''

जब शिष्य चाहेगा गुरु हाजिर होगा—कितना सच है यह! यहाँ गुरु अपने शिष्य को रास्ता दिखाता है जो अपने रास्ते से थोड़ा भटक गया है—''अपनी नियति को स्वीकार करो और जाकर अपना जीवन अच्छा बनाओ। नियति को मंजूर नहीं था कि तुम वायुसेना के पायलट बनो। नियति तुम्हें जो बनाना चाहती है, उसके बारे में अभी कोई नही बता सकता, लेकिन नियति यह पहले ही तय कर चुकी है। अपनी इस असफलता को भूल जाओ जैसे कि नियति को तुम्हें यहाँ लाना ही था। असमंजस से निकल अपने अस्तित्व के लिए सही उद्देश्य की तलाश करो। अपने को ईश्वर की इच्छा पर छोड़ दो।'' स्वामी जी ने कहा।

इसके बाद वे दिल्ली लौट गये और उनकी उस समय डी.टी.टी. एण्ड पी. (एयर) में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर नियुक्ति हो गई। अब उन्हें मानसिक शान्ति थी और उनका वायुसेना में न जा पाने का दुःख स्वामी जी के वचनों से दूर हो गया था। आगे उनकी नियति उन्हें कहाँ ले .गई यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

स्वामी जी सभी धर्मों का बड़ा आदर करते थे। उनके दृष्टिकोण से ये सभी ईश्वर प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। एक बार की घटना देखिये। एक बार एक करोड़पति व्यवसायी स्वामी जी के पास मिलने आया। उसके सचिव ने स्वामी जी को पूर्व में ही बता दिया था कि वह आपके मिशन में बड़ी सहायता कर सकता है और उसे केवल एक ही बात सुनना पसन्द है और वह है सनातन हिनदू धर्म ही एक मात्र सच्चा धर्म है। वह कट्टर हिन्दू था। जब स्वामी जी उससे मिले उसने स्वामी जी से प्रश्न किया—''स्वामी जी, आप इस्लाम धर्म के बारे में क्या सोचते हैं? क्या यह भी एक धर्म है?'' स्वामी जी का उत्तर था—''हाँ, हाँ,

इस्लाम भी एक धर्म है।'' उसने पुनः पूछा—''क्या कुरान भी ईश्वर के शब्द हैं?'' स्वामी जी का उत्तर था—''हाँ।'' और वह उठकर चला गया। हालाँकि वह स्वामी जी के मिशन में बड़ा सहायक सिद्ध हो सकता था परन्तु स्वामी जी बिकाऊ नहीं थे।

स्वामी जी की वाणी और सम्पूर्ण व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। जब वे सम्पूर्ण भारत यात्रा पर गये तो प्रत्येक सभा स्थल पर उन्हें सुनने के लिए हजारों लोग एकत्रित होते थे। इस यात्रा में उन्हें भारत ही नहीं श्रीलंका के भी लोगों ने अपने हृदय सिंहासन पर विराजमान किया। उनका आभामण्डल ऐसा था कि लोग उन्हें सुनने के लिए खिंचे चले आते थे। एक स्थान पर भारी वर्षा की चेतावनी के बाद भी लोग हजारों की संख्या में उपस्थित थे और जैसे ही स्वामी जी ने बोलना प्रारम्भ किया तेज वर्षा प्रारम्भ हो गई, पर लोग उन्हें मन्त्र मुग्ध होकर सुनते रहे। उनमें से कोई भी अपने स्थान से इंच भर भी नहीं हिला। इससे भी बड़ी बात तो यह थी कि वे अंगरेजी में बोलते थे और सभी श्रोता मात्र हिन्दी ही समझते थे।

स्वामी जी का कोई अपमान करे अथवा अपशब्द कहे, उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता था। वे कहते थे—''अपमान सहो, आघात सहो। यही सर्वोच्च साधना है।'' स्वामी जी ने शिवानन्द आश्रम मे विश्व धर्म संसद का आयोजन किया जिससे कि विश्व के सभी धर्मों के प्रतिनिधि एक साथ एकत्र हों उनमें मैत्री भाव का विकास हो तथा इन सभी के संयुक्त नैतिक बल से संसार में आध्यात्मिक जागरण हो।

गुरुदेव समन्वय योग के महान् संत थे। वे कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग तथा राजयोग—सभी को साथ लेकर चलने को कहते थे। वे कहते थे कि जिस प्रकार एक ही कोट सभी के अनुकूल नहीं होता, उसी तरह एक ही मार्ग सब के अनुकूल नहीं होता है। भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले मनुष्यों के लिए चार योग हैं। ये सभी एक ही लक्ष्य की प्राप्ति कराते हैं। कर्मशील के लिए कर्मयोग है, भक्तिपरायण के लिए भक्तियोग, रहस्यवादी के लिए राजयोग तथा दार्शनिक के

लिए ज्ञानयोग है। ये चारों मार्ग एक दूसरे के पूरक हैं। ये यही बताते हैं कि हिन्दू धर्म के विभिन्न साधन एक दूसरे से समरसता रखते हैं। धर्म के द्वारा मनुष्य का सर्वांगीण विकास होना चाहिए। हृदय, बुद्धि और हाथ—इन सभी का विकास होगा तभी मनुष्य पूर्णता को प्राप्त करेगा। एकांगी विकास प्रशंसनीय नहीं है। कर्मयोग मन के मल को दूर कर उसे शुद्ध बनाता है तथा हाथों का विकास करता है। भक्तियोग मन के विक्षेपों को दूर कर हृदय का विकास करता है। राजयोग मन को स्थिर बनाकर उसे एकाग्र करता है। ज्ञानयोग अज्ञानता के आवरण को हटाकर, संकल्प तथा विचार शक्ति को विकसित करके आत्मज्ञान प्रदान करता है। अतः मनुष्य को चारों योगों का समन्वित अभ्यास करना चाहिए।'' और यही स्वामी शिवानन्द जी का समन्वय योग है।

गुरुदेव कहते थे—''समाधि तथा कुण्डलिनी जागरण की बातें न कीजिए। आप बड़ी-बड़ी बातें न करके छोटी-छोटी वस्तु तो कीजिए। पहले यम, नियम का अभ्यास तो कीजिए। भला बनिये, भले कर्म कीजिये। सर्वप्रथम नैतिकपूर्णता प्राप्त कीजिए। दुर्गुणों का उन्मूलन करके दिव्य गुणों का विकास कीजिए। इन्द्रियों का दमन कर हृदय को शुद्ध बनाइये। यदि आपने प्रथम सोपान का ही सही अभ्यास नहीं किया तो समाधि आदि उच्च बातों से क्या लाभ है?''

गुरुदेव योगासन, प्राणायाम, जप, संध्या, ध्यान, व्यायाम—सब पर समान बल देते थे। वे प्रार्थना पर भी बल देते थे और कहते थे कि प्रार्थना का प्रभाव महान् है। मुझे इसके बहुत से अनुभव हैं। यह मन को उन्नत बनाती है और उसे शुद्ध कर देती है। यह मन को ईश्वर से जोड़ती है। प्रार्थना सदैव आदर, श्रद्धा और भक्ति तथा निष्काम भाव से की जानी चाहिए। यह चमत्कार कर सकती है। प्रार्थना योग का प्रथम महत्वपूर्ण अंग है। यह प्रारम्भिक आध्यात्मिक साधना है।

स्वामी जी ने संकीर्तन भक्ति पर बहुत बल दिया। उन्होंने अपने प्रेरणाप्रद आत्मोत्थानकारी गीतों द्वारा अनेक चमत्कार किये। उन दिनों पढ़े-लिखे लोग

भगवान् का नाम लेने में लज्जा का अनुभव करते थे। यहाँ तक कि कुछ लोग ऐसे थे जो भगवान् राम तथा कृष्ण का नाम लेने के भी विरोधी थे। परन्तु इनका इलाज स्वामी जी को कुछ देर सुनने से ही हो जाता था और इससे भी महान् आश्चर्य की बात कि ऐसे लोग तथा यहाँ तक कि कट्टर वेदान्तियों ने भी स्वामी जी के साथ संकीर्तन किया और उनके साथ मंच पर नृत्य भी किया। गुरुदेव का कहना था कि संकीर्तन मधुरता के कारण हृदय को शीघ्र परिवर्तित कर देता है तथा गृहस्थों के लिए सर्वोत्तम साधन है। वे हिन्दी बहुत कम जानते थे पर उन्हें कीर्तन सम्राट के नाम से जाना जाता था। वे ईश्वर भक्ति के साकार स्वरूप थे।

गुरुदेव दानवीर कर्ण के समान दानी थे। वे सभी को दान देने के लिए प्रेरित करते थे। वे कहते थे प्रत्येक को अपनी आय का दसवाँ हिस्सा दान करना चाहिए, यह अंश हमारा नहीं है और कि दान का बड़ा ही महत्व है। प्रार्थना हमें प्रभु के मार्ग के आधे भाग तक लेकर जाती है। उपवास द्वार तक ले जाता है किन्तु दान तो हमें प्रभु के सम्मुख ही खड़ा कर देता है। इसलिए दो, दो और देते ही जाओ।

गुरुदेव ने बारह वर्ष की कठोर तपस्या द्वारा भगवान् का कृष्ण रूप में साक्षात्कार किया। लेकिन इसके बाद वे समाधि का आनन्द अकेले उठाने के लिए एकान्तवास में नहीं गये। उनकी मानव मात्र की सेवा की तथा इस परमानन्द में अन्यों को भी भागीदार बनाने की इतनी प्रबल आकांक्षा थी कि वे इसी संसार में सभी के बीच रहे तथा अपने अनुभवों तथा ज्ञान को पुस्तकों के रूप में लिखकर उन्होंने विश्व में जन-जन के भीतर आध्यात्मिक ज्ञान की ज्योति जलायी। उन्होंने धर्म और ईश्वर के बारे में फैले पुराने अन्धविश्वासों को तोड़ा, योग सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओं को तोड़ कर स्वयं अपने उदाहरण द्वारा शिक्षा दी। उन्होंने बताया कि 'दिव्य चेतना की अनुभूति कोई संयोग अथवा दैवयोग नहीं है। यह वह शिखर है जहाँ तक पहुँचने का मार्ग काँटों से भरा है। यह अत्यन्त ढालू और फिसलन भरा है। ईश्वर की प्राप्ति सेवा से, प्रेम से, ध्यान और एकाग्रता से, विवेक और वैराग्य से होती है।''

गुरुदेव ने मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु सन् १९३६ में दिव्य जीवन संघ की स्थापना की। उन्होंने जिस प्रकार बिना किसी बजट, बिना किसी सुरक्षित निधि, बैंक में कोई धन नहीं, कोई नियमित आय स्रोत न होते हुए भी दिव्य जीवन संघ संस्था का इतने बृहत रूप में संचालन किया, वह भी एक चमत्कार ही था। स्वामी जी अत्यल्प योग्यता व रुचि वाले व्यक्तियों यहाँ तक कि जो अपराधी थे, उन्हें भी आश्रम में प्रवेश दे देते थे। किसी के आक्षेप करने पर वे कहते थे "वास्तव में मुझे ऐसे ही लोगों की आवश्यकता है और मैं ऐसे लोगों को शिक्षा देना चाहता हूँ।"

गुरुदेव ने मानव मात्र के बृहत रूप से आध्यात्मिक जागरण हेतु लेखन प्रारम्भ किया जिससे कि जो उनके पास नहीं पहुँच सकते, वे भी उनके अनुभवों से, उनके ज्ञान से लाभान्वित हो सकें। हालाँकि उन्होंने सर्वाधिक विपरीत परिस्थितियों में लिखना प्रारम्भ किया क्योंकि इस समय वे भोजन हेतु अन्न क्षेत्र पर निर्भर थे और अकेले थे। उनके पास कागज की व्यवस्था नहीं थी। इसलिए वे रद्दी कागजों के ढेर में से कोरे कागज ढूँढते थे, बेकार लिफाफों के भीतर को कोरा हिस्सा रख लेते थे। इस प्रकार उन्होंने एक पुस्तिका तैयार कर ली थी पर समस्या का अन्त यहीं नहीं हुआ। कभी कागज रहता तो उनके पास स्याही नहीं होती थी और जब ये दोनों भी होते तो उनके पास दीपक तथा दियासलाई नहीं होती थी। इस कारण उन्हें गोधूलि बेला के बाद लिखना बन्द कर देना पड़ता था। परन्तु फिर भी अपनी महान् संकल्पशक्ति से इन सभी समस्याओं को दूर करते हुए वे एक पुस्तक लिखने में सफल हो ही गये। इसके बाद भी समस्यायें समाप्त नहीं हुईं परन्तु भगवान् का आशीर्वाद इस श्रेष्ठतम लक्ष्य में उनके साथ था। इसलिए उन्होंने अपने जीवनकाल में लगभग ३०० से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। गुरुदेव कहते थे कि 'मेरा मानव मात्र की सेवा के प्रति इतना अधिक उत्साह है कि यदि मेरी आँखें भी खराब हो जायें तो भी मैं योग्य सहयोगियों की सहायता से लेखन कार्य करता रहूँगा। दैवी कार्य का विकास होगा और यह संसार में सभी के लिए शान्ति और परमानन्द लायेगा।"

गुरुदेव ने जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित पुस्तकें लिखीं। उन्हें यह बात भली भाँति ज्ञात थी कि मनुष्य को सांसारिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में सफलता हेतु उत्तम स्वास्थ्य पहली अनिवार्यता है इसलिए उन्होंने स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें भी लिखीं। उनकी ब्रह्मचर्य साधना, हठयोग तथा यौगिक होम एक्सरसाइजेज पुस्तकों ने जनमानस और विशेष रूप से विद्यार्थियों में स्वास्थ्य के प्रति जाग्रति लायी। हम सभी को गुरुदेव के प्रति सदा कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि आज योग, प्राणायाम आदि को बालक, युवा, वृद्ध आदि के लिए सबसे सुरक्षित साधन माना जाने लगा है। यह परम पूज्य गुरुदेव की पुस्तकों का ही प्रभाव है। इसके पहले तक इन्हें पतंजलि महर्षि के अष्टांग योग का एक अंग तथा योगियों के लिए ही उपयुक्त माना जाता था। गुरुदेव की पुस्तकों ने ही सर्वप्रथम विश्व भर में योग के प्रति जाग्रति लायी।

गुरुदेव ने अपनी पुस्तकों में मानसिक शक्ति के संरक्षण तथा नैतिक संस्कृति के विकास पर सर्वाधिक बल दिया है और इसके लिए उनकी **जीवन में सफलता के रहस्य, मानसिक शक्ति तथा मन—रहस्य और निग्रह** सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें हैं। गुरुदेव की **मन—रहस्य और निग्रह** मन के दर्शन पर विश्वभर में उपलब्ध सभी पुस्तकों में सर्वश्रेष्ठ है।

स्वामी जी की पुस्तकों का विश्व की समस्त प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हुआ। स्वामी जी को विश्व में सभी जगहों से विश्व यात्रा हेतु आमन्त्रण आये परन्तु उन्होंने कहा कि मुझे यहीं रह कर लेखन द्वारा मानव मात्र की सेवा करने दें। इसलिए गुरुदेव तो कहीं नहीं गये लेकिन उनकी शिक्षायें पुस्तकों के रूप में सारे संसार में गयीं।

स्वामी जी का ज्ञानयज्ञ के प्रति पूर्ण समर्पण था और उनका यह कार्य सुचारु रूप से चलता रहे, इसलिए उन्होंने स्वयं **योग वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस** की स्थापना की। **उनका कहना था कि चाहे आश्रम के सभी संन्यासियों और उन्हें स्वयं भी भोजन के लिए क्षेत्र जाना पड़े, चाहे आश्रम की अन्य कोई गतिविधि हो न हो, चाहे लंगर बन्द हो जाये परन्तु**

प्रेस सदा चलती रहनी चाहिए। उनकी पुस्तकें सदा प्रकाशित होती रहनी चाहियें। वे कहते थे—"यदि लोग पुस्तकें खरीदने में सक्षम नहीं होंगे तो मैं आलमारियाँ खुली रखूँगा ताकि जिन्हें जो पुस्तक चाहिए हों वे स्वयं ही ले जायें। उनकी आत्मा तो पुस्तकों में ही बसती है और वे उन्हीं से आज भी जन जागरण कर रहे हैं। उनके लेखन की प्रसिद्धि उनके न रहने पर भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

श्री स्वामी शिवानन्द जी ने अपनी यह नश्वर देह सन् १९६३ में १४ जुलाई को त्याग दी। उनकी समाधि शिवानन्द आश्रम में है और समाधि मन्दिर में उनके स्पन्दन आज भी हैं। जब आप समाधि मन्दिर में जाते हैं तो आपको ऐसा लगेगा जैसे गुरुदेव आपका स्वागत कर रहे हों। आपका मन प्रफुल्लित हो उठेगा है और वहाँ से वापस आने का मन ही नहीं करेगा।

स्वामी जी ने लोगों के सामने कभी चमत्कार नहीं किया किन्तु सारे संसार में लोगों ने बार-बार स्वीकार किया कि स्वामी जी ने उनके जीवन में चमत्कार किया। आज वे सशरीर तो नहीं हैं लेकिन फिर भी वे लोगों के जीवन में इन्हीं पुस्तकों द्वारा चमत्कार कर रहे हैं और इसका प्रत्यक्ष उदाहरण मैं स्वयं हूँ। मेरे जीवन में आध्यात्मिकता का बीज तो बचपन में ही पड़ गया था। इसका अंकुरण योगाभ्यास करने के बाद हुआ और गुरुदेव की पुस्तकों के पढ़ने से ही मैं उनके सम्पर्क में आयी। उन्होंने मुझे कई बार दर्शन दिये और मेरी इस आकांक्षा कि "मैं अपने देश तथा मानव मात्र की भलाई के लिए कुछ अच्छा कार्य कर सकूँ' की पूर्ति हेतु उन्होंने अपनी पुस्तकों के अनुवाद की प्रेरणा दी'। इस अनुवाद के कार्य में यह कार्य मेरे लिए जीवन भर की समस्त पुस्तकों में सर्वश्रेष्ठ है और इसे करके मैं स्वयं को धन्य अनुभव कर रही हूँ। इस कार्य में गुरुदेव की प्रेरणा और आशीर्वाद तो रहा ही परन्तु इस कार्य हेतु आश्रम में सभी का सहयोग प्राप्त हुआ। इस पुस्तक को आप तक पहुँचाने के लिए मैं श्री स्वामी विमलानन्द जी की सदा हृदय से कृतज्ञ हूँ।

उपसंहार

"आधुनिक संत स्वामी शिवानन्द एक जीवनी" को एक ग्रन्थ कहना अधिक उचित होगा क्योंकि यह महान् संत श्री स्वामी शिवानन्द जी की जीवनी है जिन्होंने अनगिनत लोगों के जीवन को रूपान्तरित किया। इसका प्रत्येक प्रसंग प्रेरणाप्रद है। गुरुदेव का जन्म भरणी नक्षत्र में हुआ था और तमिल में एक कहावत है कि 'जो भरणी नक्षत्र में जन्म लेता है वह सारे संसार पर शासन करता है और गुरुदेव ने सारे संसार के लोगों के हृदय पर शासन किया। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ परम पूज्य गुरुदेव के लेख 'ईश्वर मेरे जीवन में कैसे आये?' से होता है। इसे सभी को ध्यान से पढ़ना चाहिए क्योंकि यही इस पुस्तक का सार है और इससे हमें मालूम होता है कि गुरुदेव डा. कुप्पुस्वामी से श्री स्वामी शिवानन्द कैसे बने तथा इसके अन्त में गुरुदेव के बीस आध्यात्मिक सूत्र दिये गये हैं जिनके बारे में गुरुदेव ने कहा था कि ये सारी योग साधना का सार हैं और जो इनका लगनपूर्वक पालन करेगा वह कर्म, भक्ति, ज्ञान और योग को सहज ही प्राप्त कर लेगा।'

यह कहानी परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी की है जिसे पढ़ने और याद करने के लिए नहीं इस जैसा जीवन जिया जाये इसलिए लिखा गया है, और मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इसे पढ़ने के बाद अवश्य ही अनेक लोगों के जीवन में परिवर्तन आयेगा और आज की युवा पीढ़ी अवश्य ही इससे प्रेरणा लेगी।

हरि ॐ तत् सत्!

सदा गुरुदेव की सेवा में
शिवानन्द राधिका अशोक

सामान्य परिचय

—श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज द्वारा—

समस्या क्या है?

जिस संसार में हम रहते हैं वह पदार्थ का ठोस पुंज प्रतीत होता है। यहाँ तक कि हमारा शरीर भी जो कि सभी को वास्तविक प्रतीत होता है वह भी उसी भौतिक प्रकृति का अंश दिखाई देता है जो यान्त्रिक सिद्धान्तों द्वारा शासित है। आधुनिक विज्ञान के जगत् में यह एक सामान्य विचार बन गया है कि जीवन इस कारण के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होता है जो जगत् की सभी योजनाओं पर शासन करता है। हमें ऐसा बताया गया है कि प्राणी के समक्ष पदार्थ, जीवन तथा मन के रूप में जो भी कुछ स्थाई दिखाई देता है, वह आभास मात्र है और यही पदार्थ के कणों के रूप में विस्तार तथा प्रकटीकरण के लिए उत्तरदायी है। यहाँ तक कि इस मानव शरीर रूपी यन्त्र के अंग भी जो विश्व यन्त्र के सिद्धान्तों को अस्वीकार करते हैं, उनकी भी इस प्रकार व्याख्या की ज़ाती है कि ये सभी पदार्थ कि शक्तियों के ही विभिन्न रूप हैं। यदि यह सिद्धान्त कोरी कल्पना मात्र न हो तो इसका स्वाभाविक रूप से परिणाम यह होगा कि मानव जीवन सभी अन्य पदार्थों की भाँति अन्धे कारण के सिद्धान्तों के द्वारा निर्धारित होगा और ऐसा कहा जायेगा कि मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति भी उसके ही अधीन है। इसकी व्याख्या कुछ इस प्रकार होगी कि मन स्वयं कुछ नहीं है बल्कि यह सूक्ष्म तथा पदार्थ की शक्तियों द्वारा प्रकट होता है तथा मनुष्य ब्रह्मांड के उस विशालतम यन्त्र की एक नगण्य वस्तु के रूप में सिमटा हुआ है जो कि अपने ही सिद्धान्तों द्वारा मनुष्य के सुखों और दुःखों से असम्बद्ध रहकर निरन्तर कार्य करता रहता है।

वर्तमान वैज्ञानिक आणविक युग में जीवन की ऐसी अवस्था एक सामान्य मनुष्य का सच्चा दर्शन और विश्वास है। आज प्रबुद्ध जनों के पास मानव के अनुभवों की गहराई में जाने का न तो धैर्य है और न ही उनके पास इतना समय ही है कि इन्हें समझ सकें (न ही इसे समझने का कोई साधन उनके पास है)। आज मनुष्य कम से कम काम करके, कम से कम प्रयत्न द्वारा, अधिक से अधिक सुख-सुविधा पाना चाहता है तथा वह भौतिक प्रगति को सर्वश्रेष्ठ समझता है और इसे ही मानव जीवन का लक्ष्य मानता है। इसी सिद्धान्त के प्रभाव में इस संसार का मनुष्य आज अपने नैतिक मूल्यों को भूल गया है। समृद्धि तथा भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति होने पर भी जीवन से मानसिक स्तर का अवमूल्यन होने और वर्तमान शिक्षा के गिरते हुए स्तर के कारण आज उसे अकेलेपन और मन की बेचैनी का अनुभव हो रहा है।

वास्तव में मनुष्य इस विश्व के निर्दयी सैद्धान्तिक यन्त्र के भीतर कोई दीन-हीन दाँतेदार चक्र नहीं है। भौतिकतावादियों के इस असन्तोषजनक भ्रामक प्रचार के फलस्वरूप कई लोगों को ऐसा अनुभव हुआ कि मनुष्य ईश्वर के साथ सदा एक और समकालीन है और यही उसका मूल आधार है। और अब तुला का काँटा अति भौतिकतावाद (जहाँ मनुष्य इस संसार में लिप्त रहता है) से अति आदर्शवाद (जो यह प्रतिपादित करता है कि मनुष्य परम आत्मा की शक्ति द्वारा बलपूर्वक खींचा जाता है) की ओर झुक गया। भौतिकतावाद तथा आदर्शवाद में अन्तर यह है कि इनमें से एक यह कहता है कि यह पदार्थ गति तथा बल है और अन्य इसे शुद्ध मन और आत्मा कहता है लेकिन दोनों ही इस बात पर सहमत हैं कि मनुष्य की कोई स्वतन्त्र इच्छा अथवा विचार नहीं है। इस प्रकार मनुष्य विश्व की इस भ्रामक यथार्थता चाहे यह भौतिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक हो, के बीच उलझा हुआ है। अभागे मनुष्य ने अन्त में यह अनुभव किया कि ऐसी परिस्थितियों में उसके लिए नैतिक, धार्मिक तथा सदाचारपूर्ण जीवन जीना अत्यन्त कठिन है तथा जीवन में समृद्धि ही सब कुछ नहीं होती। इस अस्त-व्यस्त जगत् तथा दुःख, कष्ट और मृत्यु के इस दृश्यमान

जगत् में जीवन के उतार-चढ़ाव के बीच कुछ भयभीत कर देने वाले सत्य भी उसके सामने आ रहे थे जिनके कारण उसके भीतर नैतिकता और सदाचारपूर्ण जीवन बिताने की प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हुई। इस समय संसार में मानव को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता थी जो अत्यन्त स्नेहपूर्वक, सहानुभूतिपूर्वक दी जाये, जो उसे सही मार्ग दिखाये तथा जिसके द्वारा वह सन्तोष प्राप्त करे और यह शिक्षा ऐसी हो जो प्रकृति के आवरणों को उसके सामने अनावृत करे और जिसका वह अपने दैनिक जीवन में उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए पालन कर सके।

पश्चिमी शिक्षा के कारण तथा आधुनिक विचारों और जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण लोग अपने मार्ग से भटक गये थे और अपने पूर्वजों के ज्ञान के वैभव को भूल गये थे। अनेक ऐसे भी लोग थे जो आध्यात्मिक नियमों पर सन्देह करने में, अतिभौतिक शक्तियों के अस्तित्व को नकारने में तथा यहाँ तक कि ईश्वर के तथा आत्मा के अस्तित्व को न मानने में आनन्द का अनुभव करते थे। वे प्रायोगिक विज्ञान की चकाचौंध तथा औद्योगिक क्रान्ति से भ्रमित हो गये थे। ऐसी स्थिति में सभी ओर से मानवीय मूल्यों के जागरण तथा मंनुष्य को भीतर से एक दृढ़ आधार प्रदान करने के लिए पुकार हो रही थी। जीवन के सभी क्षेत्रों से गलत राह पर भटक गये मस्तिष्क को सही राह पर लाने तथा सत्य और नैतिकता की स्थापना के लिए पुकार उठी और इस महान् कार्य हेतु महानायक के रूप में श्री स्वामी शिवानन्द जी प्रकट हुए जिन्होंने आधुनिक भारत और विश्व में जन-जागरण किया तथा महान् आध्यात्मिक मूल्यों को दृढ़ आधार प्रदान किया।

महान् दार्शनिक संत श्री स्वामी शिवानन्द जी का लक्ष्य

श्री स्वामी शिवानन्द जी ने जीवन की इस कमी को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा। उन्होंने इस जगत् के समक्ष दार्शनिक सिद्धान्तों को इस प्रकार प्रस्तुत करने के बारे में विचार किया जिससे सभी इन्हें सरलतापूर्वक समझ सकें।

उन्होंने दुराग्रहपूर्ण अनुभववाद और महान् आदर्शवाद के मध्य सामंजस्य करने और उन्हें संयुक्त करके पूर्णता प्राप्ति हेतु कुछ विधियों को अत्यन्त बुद्धिमानी से विकसित करना अपना लक्ष्य बनाया। जबकि वे स्वयं अद्वैत के सिद्धान्त कि 'एकमात्र ईश्वर ही सत्य है' से पूर्ण सहमत थे और उन्होंने इसका अनुभव भी किया था। स्वामी शिवानन्द जी ने मनुष्य जिस भी स्थिति में है, उसकी अविवेकी धारणाओं को आहत किये बिना मानव जीवन के प्रत्येक पहलू का ध्यान रखते हुए स्थिति को अत्यन्त बुद्धिमानीपूर्वक समझने की आवश्यकता का अनुभव किया, क्योंकि इस स्थिति में उसे यह शिक्षा नहीं दी जा सकती कि जीवन मात्र संवेदनाओं का घेरा है तथा यह भौतिक जगत् ही एकमात्र सत्य है। जो विचारक प्रकृति के हैं वे यह कहते हैं कि मन की तुलना पदार्थ से नहीं की जा सकती तथा प्रेम और आनन्द को इलेक्ट्रान अथवा प्रोटान की गति में नहीं बाँधा जा सकता। प्राचीन समय से ही ज्ञानी, योगी और महात्माजन उस अज्ञात लोक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के अस्तित्व तथा अमरता की स्पष्ट सम्भाव्यता के बारे में दावा कर रहे हैं। उनकी आवाजों को विकृत आत्माओं की पुकार जो कि सत्य से परे है यह कह कर झुठलाया नहीं जा सकता। इसके साथ ही साथ मिथ्यामिभमानी पुरुष इस बात से भी सन्तुष्ट नहीं हो सकता कि 'यह जगत् ही सब कुछ नहीं है तथा जिस सुख और दुःख का वह अनुभव करता है वह भ्रम मात्र है, यह जीवन चेतना का प्रलाप मात्र है और जिन महान् मूल्यों को उसने सावधानीपूर्वक और ईर्ष्याभाव से सहेजकर रखा है, वे भ्रमित मस्तिष्क की गतिविधियाँ मात्र हैं। हमारी निरन्तर खोज कर रही इन्द्रियों के अनुभव तथा बुद्धि यह कहती है कि संसार को उन्होंने अन्य किसी वस्तु की ही तरह दृढ़, ठोस और सत्य देखा है, और जीवन में कर्तव्य, उत्तरदायित्व, दुःख तथा आश्चर्य है और इनका भी ठोस अर्थ है और इन सभी को किसी भी सिद्धान्त द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है। ये अनुभव एकदम सत्य हैं और इन्हें किसी भी कल्पना द्वारा महत्वहीन कह कर समाप्त नहीं किया जा सकता है, और यह जो दृश्यमान जगत् है वह सत्य और मूल्यवान है और इन सभी का दैनिक जीवन के अनुभवों

द्वारा परीक्षण किया जा चुका है। इन सभी का यह भी कहना है कि हम नहीं मानते कि संसार भगवान् का खेल है क्योंकि भगवान् तो पूर्ण है, उन्हें खेलने की क्या आवश्यकता है। परन्तु इस संसार का कोई आधार नहीं है, ऐसा नहीं है क्योंकि इस सांसारिक प्रकृति के बदलते रूपों में अन्तरात्मा में सच्ची उत्कण्ठा उत्पन्न होती है जो यह सिद्ध करती है कि भगवान् है।

जीवन एक साधना है

स्वामी शिवानन्द जी ने इस अत्यन्त कठिन किन्तु महत्वपूर्ण कार्य में मानव को दार्शनिक तथा भौतिक प्रकृति के विकास कर रहे अंग की भाँति लिया जो न तो इस भौतिक जगत् के पूर्ण बन्धन में है और न ही यह पूर्ण आध्यात्मिकता में डूबा हुआ है। सामान्य जन के लिए यह समझना अत्यन्त कठिन है कि मनुष्य मात्र शरीर, मन अथवा आत्मा न होकर इनका मिश्रण है। कठोपनिषद् में लिखा है सच्चा आनन्द उठाने वाली आत्मा, मन तथा इन्द्रियों की संयुक्त रचना है। जीवन पदार्थ में गतिमान कणों के समूह, अणुओं का संयोजन तथा विद्युत बलों की भंवर मात्र नहीं है। न ही यह मनोविज्ञान अथवा तत्त्व मीमांसा के अध्ययन का क्षेत्र है। मनुष्य एक साथ भौतिक मूर्ति भी है, मानसिक रूप से श्रेष्ठ भी है तथा आध्यात्मिक तत्त्व भी है। उसे अपने शरीर की भूख को ही तुष्ट नहीं करना पड़ता वरन् उसे अपनी आध्यात्मिक प्रकृति, नैतिक भावनाओं तथा आध्यात्मिक आकांक्षाओं पर अधिक नहीं तो समान रूप से ध्यान देना पड़ता है। प्रकृति के विकासशील सृजन के मापक में विभिन्न क्रमों में प्रकट होने वाले बलों का एकीकरण जीवन कहलाता है। इस अर्थ में जीवन व्यक्ति का पूर्णता प्राप्त हेतु किया जाने वाला समग्र प्रयास है और यही साधना कहलाती है। जो ईश्वर से मिलन अथवा आत्म-साक्षात्कार के लिए उत्सुक है और ध्यान का अभ्यास करता है वह इसके द्वारा निम्न पदार्थ से परमात्मा की ओर विकास कर लेता है। मानव शरीर होने के नाते यह प्राकृतिक बलों का प्राणी है। इसलिए इसे अन्य सांसारिक प्राणियों के समान दुःख और कष्टों को भोगना पड़ता है। जब इसे पूर्णतः भौतिक रचना के समान माना जाता है तो यह

निर्जीव पदार्थों की भाँति हो जाता है। लेकिन मानव की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। वह एक पौधे की तरह विकसित होता है और एक पशु की भाँति अनुभव और प्रतिक्रिया करता है जिसमें आहार, भय, मैथुन आदि सम्मिलित हैं और इस विषय मे वह मूक् जगत् के प्राणियों से अविभेद्य है। लेकिन उसके भीतर इस पशुता से ऊपर बढ़ने के लिए संघर्ष की भावना, नैतिक चेतना के लिए प्रयास—ये बातें जन्तुओं में पूर्णतया अनुपस्थित रहती हैं और उसमें सत्य और असत्य, सही और गलत, अच्छे तथा बुरे और सुन्दर तथा कुरूप में भेद करने की अद्भुत सामर्थ्य है। यह पूर्व में ही स्पष्ट हो चुका है कि सभी प्राणियों, पौधों तथा मनुष्यों में पदार्थ, जीवन तथा प्रकृति का अनुभव किया जाता है लेकिन मनुष्य इन सबमें सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य जीवन वास्तव में एक साधना है और यह इस बृहत ब्रह्मांड में स्वयं को पहचानने तथा सबके साथ सामंजस्य करने की एक निरन्तर चलने वाली यात्रा है। लेकिन इसके लिए हमें तस्वीर के एक तरफ देखना ही पर्याप्त नहीं होगा। हमें मानव के ईश्वर के प्रति जाग्रति के सभी पहलुओं को देखना होगा। स्वामी शिवानन्द जी जिनका सम्पूर्ण जीवन ही योग था तथा जिन्होंने व्यक्तित्व के समग्र विकास हेतु पुस्तकें लिखीं, उनका यही लक्ष्य था।

मनुष्य जीवन ज्ञान प्राप्त करने हेतु एक विद्यालय

मानव आत्मा चेतनता से पूर्ण है तथा यह मात्र अस्तित्व न होकर निरन्तर चलने वाली गतिविधि है। जिन परिस्थितियों में हम इस संसार में रहते हैं जैसे सामाजिक तत्त्व, राजनैतिक बाधाओं, नैतिक अनुशासनों, शारीरिक आवश्यकताओं, कामनाओं आदि से ये गतिविधियाँ जुड़ी हुई हैं। यदि इसे अन्य शब्दों में कहा जाये तो वह इस प्रकार होगा कि नित्य प्रति की गतिविधियों तथा समस्याओं जिनसे उसका सामना होता है, उनसे ऐसा अनुभव होता है कि उसका जीवन अन्य लोगों के जीवन से सम्बन्धित है और चूँकि यह जगत् परिवर्तनशील है इसलिए उसमें भी परिवर्तन आता रहता है। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि चूँकि मनुष्य का जीवन समय चक्र से जुड़ा है इसलिए यह

अल्पकालिक नियमों से बंधा हुआ है। मानव की आत्मा संसार में है परन्तु यह संसार की नहीं है। इस प्रकार मानव का अध्ययन और कुछ नहीं बल्कि मानव ज्ञान की सीमा में परिस्थितियों पर पूर्ण ध्यान देना है। तभी हम उसे समझ सकेंगे। चाहे यह नित्य प्रति के अनुभवों तथा भौतिक और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के रूप में प्रकट हो। इस अध्ययन में सम्पूर्ण जीवन की समस्यायें तथा उनका मानव की आत्मा पर प्रभाव तथा आकांक्षी जीवात्मा सभी सम्मिलित हैं। मनुष्य मात्र प्रकट ही नहीं करता वरन् इनके बारे में सोचता, अनुभव करता तथा इच्छा करता है। इस सारी प्रक्रिया में उसके अनुभवों से वह भगवान् का महत्व समझने लगता है, उसे नैतिकता का बोध होता है और वह सत्य का सैद्धान्तिक महत्व समझने लगता है।

स्वामी शिवानन्द जी मानव जीवन को अज्ञानता, कामनाओं तथा कार्य में उलझे जीव के लिए ज्ञान प्राप्ति का विद्यालय मानते थे। उनका कहना था कि यह शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि यह शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा क्रियात्मक एक साथ हो और इसे जिन परिस्थितियों में वह रह रहा है, उसके साथ सुन्दर ढंग से समायोजित किया जाना चाहिए। इस शिक्षा की वास्तविक क्रिया विधि जीव की आत्मा का ध्यान संसार की गतिविधियों में उलझाने वाली सभी परिस्थितियों जैसे आयु, स्वास्थ्य, जाग्रति, विकास का स्तर तथा सामाजिक स्तर आदि के अनुसार भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की होनी चाहिये। शिक्षा की किसी भी योजना में व्यक्तित्व का विकास, संसार का ज्ञान, व्यक्ति का समाज के साथ समायोजन, संस्कारों का ज्ञान, इन सभी पर प्रभाव डालने वाली विधियाँ होना अनिवार्य है। व्यक्तित्व के विकास का अर्थ है व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास, उसकी आन्तरिक अवस्था, मन तथ चेतना मात्र नहीं वरन् इसमें बाह्य समाज भी सम्मिलित है। इस प्रकार सच्ची शिक्षा वह है जो मनुष्य को भीतर से दिव्य बनाती है और बाहरी समाज में फैलाती है। संसार का ज्ञान मात्र तथ्यों का संकलन तथा भौतिक जगत् से सम्बन्धित सूचनाओं का संग्रह नहीं है। इससे मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य

जीवन जुड़े हुए हैं। इन सबसे जब मनुष्य को स्वयं का ज्ञान हो जाता है और इनके साथ अध्ययन, ध्यान तथा गुरु के चरणों में रहकर कठोर प्रशिक्षण भी सम्मिलित हो जाता है तो उसे समाज के साथ सामंजस्य करने की कला का ज्ञान सरल हो जाता है और सच कहा जाये तो यह सामंजस्य उसी के लिए सम्भव है जिसे मानव मात्र की आध्यात्मिक प्रकृति का गहन ज्ञान हो।

व्यक्ति और समाज दोनों का ही लक्ष्य व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक तथा यहाँ तक कि वैश्विक मूल्यों का साक्षात्कार है। ये सभी एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं और ये सभी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जिस एक लक्ष्य की ओर निर्देश करते हैं उसी के द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। अज्ञानी मनुष्य हालाँकि इसके प्रति जाग्रत नहीं रहते। किन्तु जीवन का स्थायी मूल्य सभी को समझ में आ सकने वाले शब्दों ईश्वर, मुक्ति तथा अमरता में ही सार गर्भित है और अपने नित्य जीवन के संघर्ष में वह देख, सुन और समझ कर वह मनुष्य अज्ञानता के अन्धकार में अपने मन को केन्द्रित करता है। इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर मानव आत्मा को जाग्रत करना ही स्वामी शिवानन्द जी का प्रथम लक्ष्य था और उनकी पुस्तकों से ज्ञान की खोज में यत्नशील आत्माओं को तृप्ति मिली।

स्वामी शिवानन्द जी के कार्यों की विशेषतायें

स्वामी शिवानन्द जी मनुष्य के प्रत्येक पक्ष तक पहुँचना चाहते थे। इसलिए उनके लेखन में बहुत से विषय सम्मिलित थे—जैसे शरीर रचना तथा स्वास्थ्य, स्वच्छता, आरोग्यता, शारीरिक व्यायाम, रोगों का उपचार, हठयौगिक क्रियायें जैसे योगासन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध क्रिया आदि जिससे शरीर प्राकृतिक प्रकोप जैसे सरदी, गरमी, भूख, प्यास आदि को सहन करने हेतु स्वस्थ रहे। उनकी पुस्तकें मनुष्य के आन्तरिक संगठन, कार्य एवं व्यवहार, मानसिक, संकल्पनात्मक, नैतिक, विवेकी तथा प्रभावशाली प्रकृति के अनुसार व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक संश्लेषण करती थीं क्योंकि ये जीवन के सभी

मूल्यों पर मानव के कर्तव्यों, उसके परिवार, समाज तथा देश के साथ सम्बन्धों, उसकी संसार और विश्व में स्थिति तथा उसकी सामाजिक, नैतिक तथा राजनैतिक संरचना तथा उसके धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों का निर्धारण भी करती है और ये मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य हेतु समझ सकने तथा हृदय में प्रवेश करने वाले उपदेश देती है और इस हेतु पथ-प्रदर्शन भी करती है।

उपरोक्त विषयों की व्याख्या करते समय स्वामी शिवानन्द जी ने विवेकी और वैज्ञानिक अथवा समाज के प्रबुद्ध जनों से ही नहीं वरन् आस्थावान तथा उच्च सिद्धान्तों से अनभिज्ञ सामान्यजनों, आध्यात्मिक जिज्ञासु, वैरागी, संन्यासियों, गृहस्थों, व्यापरियों, स्त्रियों तथा बच्चों सभी से सच्ची प्रार्थना की है। उनकी पुस्तकों को ध्यान से पढ़ने से यह अनुभव होगा कि उनकी प्रार्थना सम्पूर्ण हृदय और भावना से की गई है और उनकी शिक्षायें अत्यन्त व्यवहारिक हैं जो समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति अपने नित्य प्रति के जीवन में सरलता से प्रयोग कर सकते हैं।

उनकी पुस्तकें विभिन्न योगों जैसे ज्ञानयोग, राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, हठयोग, कुण्डलिनी योग, मन्त्र, यन्त्र तथा तन्त्र योग, जपयोग तथा लययोग पर अत्यन्त सरल तथा समझने योग्य भाषा में है। स्वामी शिवानन्द जी इन सभी योगों को संयुक्त करने में महान् कुशल थे और वे जिज्ञासुओं को यह विश्वास भी दिलाते थे कि यदि अभ्यास पूरी लगन और दृढ़ता से धैर्यपूर्वक किया जाये तो सफलता आने के लिए बाध्य हो जाती है।

जन-जन तक पहुँचने की स्वामी जी की विधि

ऐसा कहा जाता है कि आत्म-साक्षात्कार प्राप्त संत स्फटिक की भाँति शुद्ध होता है। जिस प्रकार स्फटिक का स्वयं को कोई रंग नहीं होता बल्कि उसके सामने जो वस्तु लाई जाती है वह उसी का रंग ग्रहण कर लेता है। इसी तरह वह संत बच्चों के साथ बच्चे की तरह, बड़ों के साथ बड़ों की तरह, वृद्धजनों के साथ वृद्ध की भाँति, विद्वानों के साथ विद्वान् की भाँति तथा अज्ञानी

के साथ महा अज्ञानी जैसा व्यवहार करता है। इस सहज अभिव्यक्ति के पीछे यह भावना रहती है कि व्यक्ति के भीतर स्थित ईश्वर के पास जाना क्योंकि वह सभी प्राणियों में विद्यमान है। वह संत न तो पक्षपात करता है, न ही पूर्वाग्रह रखता है, न किसी को अधिक महत्व देता है और न किसी के प्रति दुर्भावना रखता है।

स्वामी शिवानन्द जी के व्यक्तिगत जीवन, कार्य तथा व्यवहार उनके लेखन तथा भाषणों में भी ऐसी ही सरलता की अभिव्यक्ति थी। वे किसी के भी पथ-प्रदर्शन के लिए सिद्धान्तों का अधिक प्रतिपादन न करते हुए ऐसे व्यवहारिक निर्देश देते थे कि वे जिज्ञासुओं के हृदय में सीधे उतर जाते थे।

उनके लेखन में कोई बात घुमा फिराकर नहीं की जाती थी और न ही वे कोई उथली और अनावश्यक बातें कहते थे। ये सभी बातें एकदम स्पष्ट तथा अच्छी तरह समझाई जाती थीं। इनको स्वामी जी ने इस प्रकार लिखा था कि वे मात्र सूचना ही न दें वरन् लोगों को जाग्रत करें तथा उन्हें साधना के प्रत्येक चरण पर पथ-प्रदर्शन करें। उनका तरीका अत्यन्त सरल था और ये शिक्षायें उनके हृदय से निकली थीं और ये उनकी भावाभिव्यक्ति थी क्योंकि उन्होंने भगवान् के दर्शन ही नहीं किये वरन् परमानन्द का भी अनुभव किया था। वे मनुष्य के दुःखों, उसकी अज्ञानता तथा उसकी भौतिक, मानसिक तथा नैतिक ही नहीं आध्यात्मिक आवश्यकताओं की भी गहन अन्तर्दृष्टि रखते थे। स्वामी जी की शिक्षायें समाज में जीवन के सभी व्यक्तिगत अथवा सामाजिक रूपों में प्रेरणा प्रदान करती थीं।

संसार को इस अज्ञानता और कष्ट से मुक्ति दिलाने की ज्वलंत आकांक्षा के कारण स्वामी शिवानन्द जी ने सभी परिस्थितियों का सामना अत्यन्त साहस के साथ किया और इस दिव्य लक्ष्य के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। उनका साहित्य मानव मात्र के जीवन के प्रत्येक पक्ष से तत्त्वमीमांसा, शिक्षा, धर्म, रहस्यवाद, कहानियाँ, प्रश्नोत्तर के माध्यम से, योग-प्रार्थना आदि के द्वारा संपर्क करता था।

विद्यार्थी, आध्यात्मिक रूप से पूर्ण अनभिज्ञ तथा आध्यात्मिक जीवन में शिखर पर पहुँचे लोग, वे जिज्ञासु जो नैतिक तथा सदाचार के नियमों, यम, नियम, साधन चतुष्ट्य (विवेक, वैराग्य, षड्सम्पत तथा मुक्ति की कामना) में स्थित थे तथा वे लोग जिन्हें मन की शुद्धता प्राप्त होने के कारण ऐसा अनुभव हुआ कि उन्हें अपना शेष जीवन मानव जीवन के परम लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार में लगाना चाहिए और इसके लिए वे योग्य पथ-प्रदर्शन चाहते थे, सभी स्वामी जी के साहित्य से लाभान्वित हुए।

उनकी अधिकांश पुस्तकों का प्रारम्भ संसार के कष्टों की प्रकृति के स्पष्ट तथा सजीव चित्रण से तथा आध्यात्मिक मार्ग में विकास हेतु अनिवार्य पूर्वापेक्षाओं (योग्यताओं) से होता है। महान् दार्शनिक शंकराचार्य जी की तरह स्वामी शिवानन्द जी ने दृढ़तापूर्वक कहा कि परमात्मा के अस्तित्व के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। भगवान् बुद्ध की तरह उन्होंने जीवन में दुःख के चरित्र का सुन्दर चित्रण किया तथा इसके कारणों का निदान भी बताया और यह भी बताया कि मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है, और इस हेतु मार्ग भी प्रशस्त किया।

दार्शनिक जीवन

स्वामी शिवानन्द जी ने कहा कि दर्शन को समझना ही जीवन कहलाता है, और हमारे इस अस्तित्व के पीछे जो रहस्य है उसका अनावरण करना ही दर्शन कहलाता है। दर्शन सिद्धान्तों का हवा में महल खड़ा करना नहीं वरन् अपने चारों ओर के वातावरण में जो अनुभव होते हैं उनकी गहराई में उतरकर अपने अस्तित्व के कारण को समझना है। स्वामी शिवानन्द जी ने इस बात को स्वीकार किया कि कोई भी दर्शन जो मानव जीवन से असम्बद्ध और अव्यवहारिक है वह असफल रहता है क्योंकि वह कभी भी बेचैन मनुष्य और उसकी जिज्ञासु आत्मा को अनुकूल नहीं आता। दर्शन, धर्म तथा जीवन उनके लिए एक ही थे। वे कहते थे कि सांसारिक अथवा अन्य किसी धारणा के स्थान

पर मनुष्य की आवश्यकताओं; आहार और प्रेम, प्रसिद्धि तथा प्रभुत्व, जीवन के मूल्यों, अन्य लोगों के साथ उसके सम्बन्ध तथा अमरता के लिए ब्रह्म से एकत्व की आकांक्षा से जुड़ना चाहिए।

स्वामी शिवानन्द जी का जीवन और शिक्षा यह है कि दिव्य जीवन वह है जो उचित सामंजस्य, ऐसा प्रेम जो मनुष्य और मनुष्य के बीच की दीवार को तोड़ दे और जिसमें व्यक्ति संसार के अन्य लोगों के साथ आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सके तथा इस सुखी जीवन का मार्ग खोज सके तथा इन सबके होने पर ही भगवान् के विश्वव्यापी नियम के साथ व्यक्ति की स्वयं की आकांक्षा का संयोग होगा और यही मानव के सारे उद्यमों का एकमात्र आधार है और अनन्त आशा है। यह प्रेम और यही आशा और आकांक्षा ही विश्व बंधुत्व तथा विश्व के शासन (जो कि विश्व की सहानुभूति तथा निःस्वार्थ भाव पर आधारित हो) को सुनिश्चित कर सकती है तथा यही परोपकारिता है। इसी प्रेम और आशा तथा ईश्वर की उपस्थिति के प्रति मानव जाति का जागरण करना स्वामी शिवानन्द जी के जीवन और शिक्षाओं का लक्ष्य था।

विश्व शान्ति का रहस्य

स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षायें मुक्ति का एक लम्बा गीत हैं जिसमें व्यक्ति, जाति, समाज, देश तथा संसार की शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मुक्ति सन्निहित है। सभी की मुक्ति के इस गीत में मुख्य बात है शान्ति जिसका अर्थ है कि जीवन सभी में एक ही है। इस बात को समझने के द्वारा सभी के लिए और सर्वत्र शान्ति। व्यक्ति के शरीर से निकलने वाली प्रत्येक श्वाँस, उसकी प्रत्येक गतिविधि, उसका प्रत्येक व्यवहार, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसका पुनर्निर्माण है और यह जीवन में सरलता और सुखदायक स्थिति लाने के लिए है और इसका प्रमाण है सुख और शान्ति। इस विशाल ब्रह्मांड में बृहत स्तर पर जो कुछ भी होता है मनुष्य उसका छोटा-सा नमूना है। मनुष्य स्वयं के जीवन, समाज, राष्ट्र सभी में नियमितता चाहता

है और वह चाहता है कि अव्यवस्था और भ्रम की स्थिति समाप्त हो जाये। इसलिए वह संघर्षरत रहता है। नियमित व्यवस्था की दृढ़ स्थापना की प्रबल लालसा सभी प्राणियों में स्वभाविक रूप से विद्यमान रहती है और उनमें तो यह अत्यधिक होती है जो आत्म चेतना युक्त हैं। जिनमें बुद्धि का विकास इस स्तर तक हो गया है कि वे सत्य और असत्य, सही और गलत के अन्तर को समझ सकते हैं। यह ब्रह्मांड भी ठीक यही काम थोड़ी भिन्नता के साथ करता है जैसे यदि मनुष्य अपर्याप्त ज्ञान के बाद भी प्रयत्न करता है तो यह विश्व भी उच्च सत्य, अच्छाई तथा मुक्ति को अपने अन्तःकरण में जानने हेतु असीम इच्छा के साथ प्रयत्नशील हो जाता है।

किसी भी हिस्से में जो परिवर्तन होते हैं वे सारे संघटन को प्रभावित करते हैं। जैसे कि मानव शरीर की प्रत्येक कोशिका उस नियम के साथ समायोजन करती है जो सारे शरीर का नियमन करता है तथा जैसे कोशिका के किसी भाग मे कुछ भी गड़बड़ होने पर सारे शरीर में गड़बड़ी होती है जिससे कि शरीर में जिस भी गलत चीज़ का प्रवेश हुआ है या गलत हुआ है उसी ठीक किया जा सके। इसी प्रकार व्यक्ति जिनसे यह ब्रह्मांड निर्मित है उनके द्वारा की गई गलतियों को ब्रह्मांडीय नियम ठीक करता है। छोटी-छोटी गलतियों से थोड़ी प्रतिक्रिया होती है और बड़ी गलतियों से अचानक ही कोई बड़ा परिवर्तन होता है। ऐसा कहा जाता है कि जिन कार्यों का अनुभव नहीं किया जाता वे भी सूक्ष्म लोकों में महान् तरंगे उत्पन्न करते हैं।

स्वामी शिवानन्द जी की सम्पूर्ण शिक्षा, व्यक्ति तथा संसार में शान्ति की सम्भावना पर जोर देने के ऊपर केन्द्रित थी जो कि इस पृथ्वी पर पुरुष, स्त्री, बच्चों को एकता के सिद्धान्त के ज्ञान और उसके दैनिक जीवन में व्यवहार पर आधारित थी। उन्होंने मानव मात्र को निरन्तर चेतावनी दी कि शान्ति कभी भी युद्ध, शोषण, नियन्त्रण, प्रभुत्व, प्रतिस्पर्धा आदि से नहीं लाई जा सकती क्योंकि ये सभी कामनाओं और लालच.की अधिकता से उत्पन्न होते हैं तथा जब तक ये हिंसात्मक भावनायें आपसी समझदारी और एक दूसरे को सहयोग

करंने के द्वारा शान्त नहीं हो जाती, मनुष्य को विश्राम नहीं मिल सकता। मानव की सुख की धारणा और कुछ नहीं बल्कि वर्तमान अच्छाई का त्रुटिपूर्ण अनुमान है। यह भविष्य में अच्छा होने के गलत विचार का परिणाम है। मनुष्य का दर्द और वर्तमान कष्ट गलत विचारों का परिणाम है तथा भय भविष्य के बारे में गलत अनुमान का परिणाम है। इन सभी का उन्मूलन किया जाना चाहिए क्योंकि ये अविवेक और अज्ञानता से उत्पन्न हैं।

श्रेष्ठता के अर्थ में सत्य और भलाई की दिशा में मनुष्य की योग्यताओं का उसे ज्ञान कराने के लिए सही शिक्षा की आवश्यकता है। स्वामी शिवानन्द जी के अनुसार जीवन की प्रत्येक गतिविधि दिव्यता में रूपान्तरित की जानी चाहिए और यह ज्ञान अध्ययन, ध्यान तथा सेवा द्वारा प्राप्त होता है।

महात्मा गाँधी जी ने 'सत्य ही ईश्वर है' पर बल देकर राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं वरन् धर्म-दर्शन और ज्ञान के क्षेत्र मे भी प्रेरणाप्रद सेवा की है। यह सामान्य रूप से कहा जाता है कि भगवान् ही सत्य है। लेकिन जो भगवान् के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते वे भी सत्य ही भगवान् है, इसे स्वीकार कर सकते हैं और इस प्रकार सत्य को उसी प्रकार पहचाना जा सकता है जैसे हम भगवान् को मानते हैं। सत्य विश्व का नियम है। यह नियम अन्धा नहीं है बल्कि बुद्धिजीवी स्वयं ही इसका सर्वत्र प्रयोग करते हैं। सिद्धान्त तथा सिद्धान्त देने वाले इस स्थिति में एक ही हैं, और इसी प्रकार स्वामी शिवानन्द जी के लिए सत्य का अर्थ सत्य बोलना मात्र नहीं था बल्कि 'वास्तव मे जो है' वह था तथा यह अपरिवर्तनीय अनन्त और सनातन था। यह उसी समय एक नियम भी है और प्रेम भी है जो मनुष्य; समाज, राष्ट्र तथा संसार का नियन्त्रण और पथ-प्रदर्शन करता है।

इस सत्य और इस प्रेम का सच्चा महत्व सामान्य मनुष्य के जीवन में सही ढंग से आत्मसात नहीं किया गया है लेकिन उस महामानव के जीवन में इसका पूर्ण रूप से साक्षात्कार किया गया था जो इस संसार का ही नहीं स्वयं अपना भी शासक था। वे एक आत्म-साक्षात्कार प्राप्त संत थे जो देवत्व की प्रतिमूर्ति थे।

यही उन महामानव का आदर्श था जो एक मनुष्य और ईश्वर के प्रतिनिधि एक साथ थे। जब धर्म का समर्थन किया जाता है और इसकी रक्षा की जाती है तो यह सबकी रक्षा करता है। **धर्मो रक्षति रक्षितः।** धर्म हमारी आन्तरिक प्रकृति है और यही मनुष्य और विश्व का सत्य है। इसी के लिए यह दिव्य शरीर है। यही सच्चा धर्म है। यही विश्व शान्ति का रहस्य है।

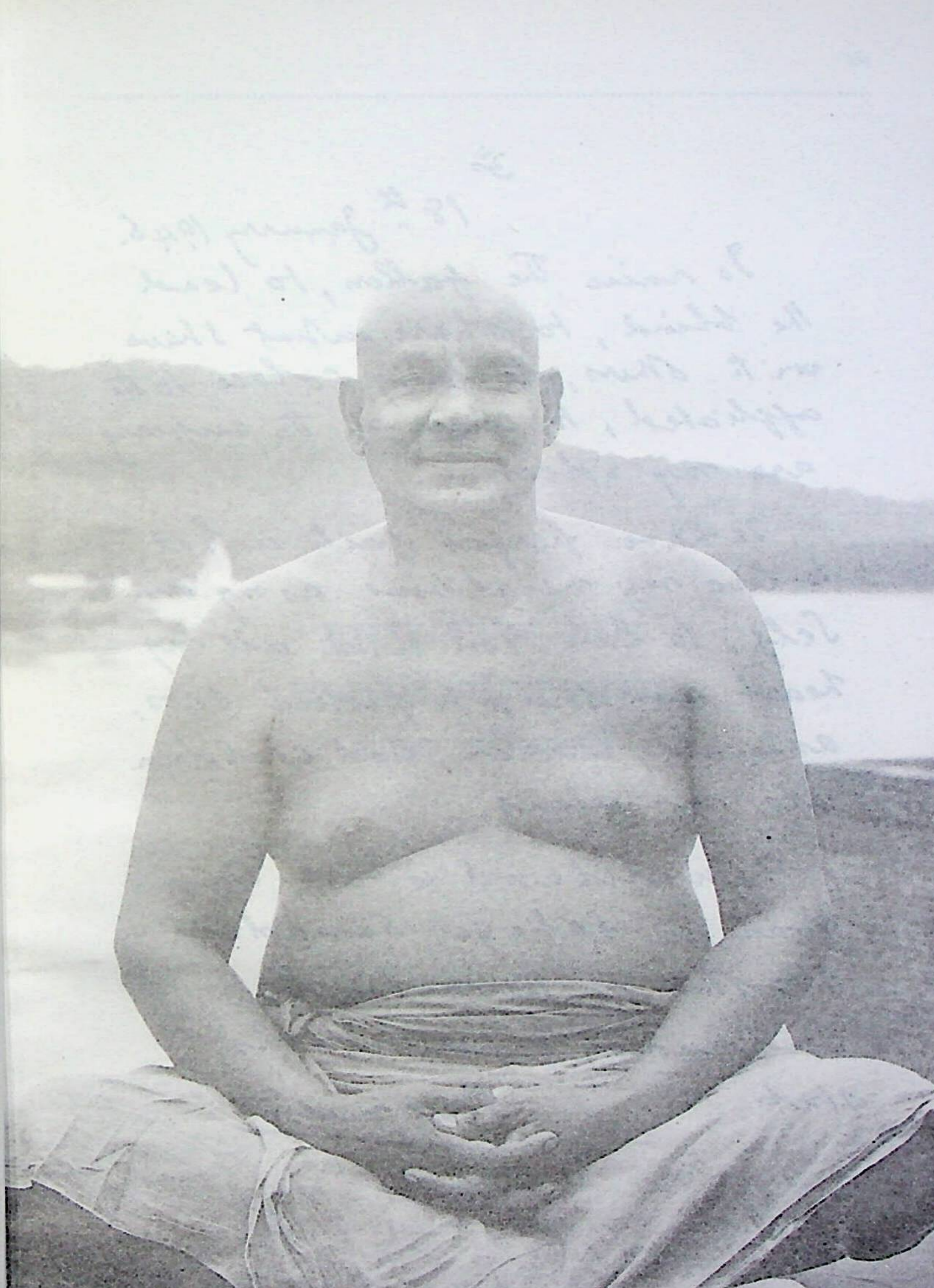
स्वामी शिवानन्द जी ने संसार की एकता और इसी सत्य, इसी नियम और प्रकृति के आदेश की मानव मात्र को प्रेरणा देने तथा अनुकरण करने की शिक्षा देने के लिए जीवन जिया। जब इस ज्ञान की एक किरण भी मनुष्य की अज्ञानता के अन्धेरे में प्रकाश करने में सफल होगी तभी उनका यह दिव्य लक्ष्य पूर्ण होगा।

एकता ही शान्ति का निवास है

यहाँ उस प्रेम और सिद्धान्त का सार दिया जा रहा है जो सारे संसार को एकजुट कर सकता है। यही विश्वप्रेम तथ विश्वबन्धुत्व के सिद्धान्तों तथा विश्व शान्ति की शिक्षाओं का सार है। भारत का प्राचीन ज्ञान जिसने मनुष्य के वातावरण के साथ सम्बन्धों का अनावरण किया उसका प्रसारण करते हुए स्वामी शिवानन्द जी ने विश्व में सच्ची शान्ति लाने के लिए शक्ति के एकीकरण हेतु मानव मात्र से बार-बार प्रार्थना की। उनकी सभी शिक्षायें और सन्देश ईश्वर की चेतना में व्यक्तित्व के एकीकरण द्वारा एकता की प्राप्ति हेतु थे। जीवन का लक्ष्य आन्तरिक आध्यात्मिक सार का व्यवहारिक रूप में साक्षात्कार है और यह मानव में अत्यन्त सीमित और सूक्ष्म रूप में है।

प्रत्येक व्यक्ति कामना, आकांक्षा, प्रबल इच्छा द्वारा स्वयं से ऊपर बढ़ना चाहता है। किसी भी प्रकार की कामना व्यक्ति की चेतनावस्था का प्रकटीकरण है। वह यह बताती है कि कुछ चाहिए है, किसी चीज की कमी है, कुछ अपर्याप्त है। मनुष्य को सारा संसार दे देंगे तो भी वह सन्तुष्ट नहीं होगा। क्यों? इसलिए कि इस संसार से परे ऐसी कुछ चीज है जो इस पृथ्वी के किसी भी जीव के

क्षेत्राधिकार से बाहर है। उसे यदि सारा स्वर्ग भी दे दिया जाये वह तब भी असन्तुष्ट रहेगा क्योंकि अभी भी एक इच्छा अधूरी है। मनुष्य की सृष्टि के साथ एकता के प्रति मनुष्य के अज्ञान का यही दुःखदायक प्रत्यक्ष परिणाम है। जो उदारमना हैं उनके लिए यह सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है ऐसा धर्म ग्रन्थों में लिखा हैं। जब तक मनुष्य इस संसार में रहते हुए इस बात को नहीं पहचानता कि उसके चारों ओर जो भी है वह उसकी अपनी ही आत्मा है तथा वह इसे अपने दैनिक जीवन में अपने व्यवहार में इसे आदर्श बनाकर मानव मात्र की सेवा नहीं करता मनुष्य के लिए तब तक शान्ति नहीं होगी। शान्ति एकमात्र ईश्वर में है और हम जिस शान्ति का आनन्द उठाना चाहते हैं वह अपने सामाजिक, राष्ट्रीय तथा सांसारिक सम्बन्धों में हम जो आत्मा की व्यापकता देखते हैं उसी पर निर्भर करती है अर्थात् सभी में अपनी ही आत्मा को देखने से सभी में उस ईश्वर के दर्शन करने से ही हम शान्ति का अनुभव कर सकेंगे। यह मनुष्य में सत्य और ज्ञान के अनुभव का परिणाम मात्र नहीं है वरन् यह जीवन में पूर्णता हेतु जो अनन्त संघर्ष चल रहा है उसमें सफलता हेतु अनिवार्य है। यही इस पृथ्वी के प्रत्येक पुत्र और पुत्री के लिए स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षा थी, यही प्रत्येक का धर्म है, यही दर्शन है, यही उपदेश है और यही मानवता की आशा है।



ॐ

18th January 1946.

To raise the fallen, to lead the blind, to share what I have with others, to bring solace to the afflicted, to cheer up the suffering are my ideals.

To have perfect faith in God, to love my neighbours as my own Self, to love God with all my heart and soul, to protect cows, animals, women, and children are my aims.

My watchword is Love. My goal is Sahaja Samadhi Avastha or the natural, Continuous, Superconscious state.

Sivananda

आधुनिक संत
स्वामी शिवानन्द
एक जीवनी

ईश्वर मेरे जीवन में कैसे आये?

इस प्रश्न को यह कह कर समाप्त करना अत्यन्त सरल है कि 'जब मैं स्वर्गाश्रम में रहता था तब मैंने कई वर्षों तक तपस्या और ध्यान किया, मुझे बहुत से महर्षियों के दर्शन तथा उनके आशीर्वाद प्राप्त हुए तथा भगवान् के कृष्ण-रूप में दर्शन प्राप्त हुए।'

लेकिन न तो यह ही सम्पूर्ण सत्य है और न ही यह उस ईश्वर से सम्बन्धित प्रश्न का (जो मन और वाणी से परे, अनन्त और असीम है) सन्तोषजनक उत्तर है।

दिव्य चेतना की अनुभूति कोई संयोग अथवा दैवयोग नहीं है। यह वह शिखर है जहाँ तक पहुँचने का रास्ता कंटकाकीर्ण (काँटों से भरा) है। यह अत्यन्त ढालू और फिसलन-भरा है। मैं इस रास्ते पर एक-एक कदम आगे बढ़ाता चला गया और प्रत्येक कदम पर मैंने ईश्वर को मेरे जीवन में आते और मुझे उठाते देखा।

मेरे पिता भगवान् की पूजा अत्यन्त प्रेमपूर्वक और पारम्परिक रीति से किया करते थे। और वे इसमें पूर्ण नियमित थे। मेरे बाल-मन के लिए जिस मूर्ति की पूजा मेरे पिता करते थे, वे प्रत्यक्ष भगवान् थे और पूजा के लिए पुष्प तथा अन्य वस्तुएँ लाने में मैं अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करता था। पूजा के द्वारा मैं और मेरे पिता दोनों ही सन्तुष्टि का अनुभव करते थे। इस पूजा के मेरे मन में यह विश्वास दृढ़ कर दिया था कि इन मूर्तियों में जो भगवान् हैं, भक्त उन्हीं की भक्तिपूर्वक पूजा किया करते हैं। इस प्रकार ईश्वर मेरे जीवन में आये और उन्होंने मेरा पैर सीढ़ी के पहले पायदान पर रखा।

किशोरावस्था में मुझे कसरत और कठोर व्यायाम में अत्यधिक रुचि थी, अतः मैं एक शिक्षक से तलवारबाजी सीखने लगा। वे हरिजन थे। बाद में मुझे ऐसा ज्ञान कराया गया कि एक उच्च ब्राह्मण-वंश में जन्मे व्यक्ति के लिए निम्न जाति के गुरु का शिष्य बनना अशोभनीय है, और मैंने वहाँ जाना बन्द कर दिया। मैंने इस विषय पर

---

* यह लेख श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने प्रसिद्ध दार्शनिक, जमींदार और लेखक श्री के. एम. मुंशी (जो उत्तर प्रदेश के कार्यवाहक राज्यपाल भी थे) के निवेदन पर 'भवन्स जरनल' पत्रिका के लिए विशेष रूप से दिया था।

गम्भीर चिन्तन किया। एक क्षण के लिए मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि जिस भगवान् की पूजा मैं और मेरे पिता पूजा के कमरे में करते हैं, वे इस अस्पृश्य व्यक्ति के हृदय में उछल कर चले गये हैं। वे मेरे गुरु थे इसलिये मैं तुरन्त पुष्प, मिठाई, कपड़े और माला ले कर उनके पास गया और उनके चरणों में पुष्प अर्पित किये। इस प्रकार भगवान् मेरे जीवन में जाति-भेद दूर करने के लिए आये।

यह पद मेरे जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण था, यह मुझे अति-शीघ्र ज्ञात हो गया। इसके बाद मैंने सभी की सेवा के लिए चिकित्सा का क्षेत्र अपनाया और यदि यह जाति-भेद मेरे भीतर होता तो यह सेवा मात्र दिखावटी और हास्यास्पद बन कर रह जाती। भगवान् द्वारा इस कोहरे को हटा देने से सबकी सेवा करना मेरे लिए अत्यन्त सरल और स्वाभाविक हो गया। मुझे मानव मात्र की सेवा में अत्यन्त आनन्द मिलता था। यदि मुझे मलेरिया की कोई अच्छी औषधि मिलती तो मुझे ऐसा लगता कि यह अगले ही क्षण समस्त संसार के वासियों को ज्ञात हो जानी चाहिये। रोग से बचाव, स्वास्थ्य में वृद्धि तथा रोग-निवारण के लिए किसी भी प्रकार ज्ञान प्राप्त करना और उससे सभी को लाभान्वित करना, यही मेरी इच्छा थी।

इसके बाद भगवान् मेरे जीवन में मलाया (मलेशिया) के पीड़ितों के रूप में आये। मेरे लिए वहाँ के किसी एक दृष्टान्त को बताना अत्यन्त कठिन होगा और शायद यह अनावश्यक भी होगा। समय और स्थान मन की कल्पनायें हैं और इनका भगवान् के लिए कोई अर्थ नहीं है। मैं मलाया में बिताये अपने सम्पूर्ण जीवन को एक ही घटना के रूप में लेता हूँ जबकि भगवान् मेरे सामने रोगियों और पीड़ितों के रूप में आये। ये लोग शारीरिक और मानसिक रूप से रुग्ण थे। कुछ के लिए यह जीवन लम्बे समय तक खिंचने वाली मृत्यु थी और कुछ के लिए मृत्यु जीवन से अधिक स्वागत के योग्य थी। कुछ मृत्यु का सामना नहीं कर सकते थे इसलिये दयनीय जीवन जी रहे थे और कुछ जीवन का सामना नहीं कर सकते थे, इस कारण आत्महत्या द्वारा मृत्यु को आमन्त्रित करते थे। मेरे मन में यह अभीप्सा उठी कि भगवान् ने इस संसार को मात्र नरक ही नहीं बनाया है जहाँ ये पापीजनों कष्ट भोगने के लिए फेंका जाता है और यदि यहाँ ऐसी कोई वस्तु है जो इन कष्टों और इस असहाय अस्तित्व से पृथक् है

(जैसा कि मैं अपने अन्तर्ज्ञान से अनुभव करता हूँ कि ऐसा होगा) तो इसे जानना चाहिये और इसका अनुभव किया जाना चाहिये।

मेरे जीवन के इसी निर्णायक मोड़ पर भगवान् मेरे पास एक साधु के रूप में आये, जिन्होंने मुझे वेदान्त के प्रथम पाठ की शिक्षा दी और मेरे लिए इस पृथ्वी पर जीवन के सकारात्मक पहलु और मानव-जीवन के वास्तविक लक्ष्य और अन्त स्पष्ट हो गये। यही मुझे मलेशिया (मलाया) से हिमालय लेकर आया। अब ईश्वर मेरे पास सभी के भीतर स्थित आत्मा के रूप में, उन्हें साक्षात्कार करने की अभीप्सा के रूप में आये।

इसके बाद मैं अत्यन्त शीघ्रता से ध्यान और सेवा में लग गया जिससे मुझे विभिन्न आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुए तथा इस दृश्यमान् जगत् का बोध कराने वाले साधन मन तथा बुद्धि नष्ट हो गये और यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर की ज्योति में प्रकाशित हुआ।

अब भगवान् इस ज्योति के रूप में आये, वह ज्योति जिसमें प्रत्येक वस्तु ने दिव्य रूप धारण कर लिया और दर्द तथा कष्ट जिनसे सभी पीड़ित रहते हैं, वे मात्र मरीचिका, वह भ्रम जो कि मनुष्य के भीतर छिपी निम्न इन्द्रिय वासनाओं के कारण अज्ञान उत्पन्न करता है, की भाँति दिखने लगे।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय तथ्य बताना उचित होगा कि इस विकास के क्रम में कोई भी पूर्व से प्राप्त वस्तु बाद में पूर्ण रूप से त्यागी नहीं जा सकती। प्रत्येक घटना परवर्ती घटना में समाहित होती है और इसी प्रतिफल है समन्वय योग। मूर्तिपूजा, रूग्णों की निष्काम सेवा, ध्यान, दिव्य चेतना प्राप्ति के चरम लक्ष्य के साथ समस्त जातियों, पंथ और धर्म के बन्धनों का अतिक्रमण करने वाले विश्व प्रेम का विकास इन सभी का प्रभावशाली और बुद्धिशाली समन्वय प्रकट हुआ। इस ज्ञान को तत्काल सभी में बाँटना आवश्यक था। ये सब मेरे अस्तित्व का अखण्ड बन गये।

इस मिशन का बल बढ़ रहा था और इसका विस्तार हो रहा था। सन् १९५० में मैंने सम्पूर्ण भारत भ्रमण किया। इस समय भगवान् अपने विराट स्वरूप में दिव्य जीवन के सिद्धांतों को सुनने के लिए असंख्य उत्सुक भक्तगणों के रूप में आये। सभा के प्रत्येक केन्द्र पर मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे भगवान् मेरे मुँह से कह रहे हैं और वे

ही उसे सुनने के लिए असंख्य लोगों के रूप में अपने विराट स्वरूप में फैले हुए हैं। उन्होंने स्वयं ही मेरे साथ गाया, उन्होंने स्वयं ही मेरे साथ प्रार्थना की, उन्होंने ही कहा और उन्हीं ने सुना। ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म।''

वंश-परम्परा और बाल्यकाल

स्वामी शिवानन्द जी का जन्म ८ सितम्बर १८८७ को सूर्योदय के समय भरणी नक्षत्र में पत्तमडै नामक स्थान में हुआ था। यह स्थान तमिल नाडु प्रदेश में है। तमिल भाषा में एक कहावत है कि "जो भरणी नक्षत्र में जन्म लेता है, वह सारे संसार पर शासन करता है"। माता-पिता ने उनका नाम कुप्पुस्वामी रखा।

स्वामी जी के पिता का नाम श्री पी.एस. वेंगु अय्यर था। वे अत्यधिक गुणवान्, महान् विद्वान् तथा शिवजी के बड़े भक्त थे। वे इट्टियापुरम् में रेवेन्यु अधिकारी थे और सन्तोषी थे। वे पत्तमडै में रहते थे।

स्वामी जी की माता का नाम पार्वती अम्माल था। वे बड़ी धार्मिक थीं तथा भगवान् के नाम का गायन बड़ी ही आस्था और भक्तिपूर्वक किया करती थीं तथा अवकाश के समय में धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करती थीं।

स्वामी जी का लालन-पालन ऐसे धार्मिक और पवित्र वातावरण में हुआ। वे अपने परिवार के तीसरे पुत्र थे। उनके दो बड़े भाई और थे। स्वामी जी अत्यन्त सुन्दर थे और उनके मुख-मण्डल पर सदा मुस्कान खेलती रहती थी। वे माता-पिता को अत्यन्त प्रिय थे तथा उनके कार्यकलाप माता-पिता को सदा प्रिय लगते थे।

स्वामी जी में बाल्यावस्था से ही कुछ विशेष धार्मिक और आध्यात्मिक लक्षण विद्यमान थे। उनके भीतर एक दुर्लभ आत्म-शान्ति, स्थाई प्रसन्नता तथा विलक्षण बौद्धिक क्षमता थी, जो उनके माता-पिता को भी विस्मित कर देती थी। वे किसी नयी बात को भी खेल-खेल में अत्यन्त शीघ्रता से बिना किसी प्रयत्न के सीख लेते थे। वे अपने नटखट-पन से गाँव के लोगों के हृदय की कड़वाहट तथा उनके मध्य के द्वेष की अग्नि को शान्त कर देते थे। सारा गाँव उनका आदर करता था।

यह नटखट बालक जिन गाँव वालों में आपसी वैमनस्यता होती, उन्हें एक-दूसरे से मिलने हेतु विवश कर उनका पुनर्मिलन करा देता था। वह शान्ति का महान् दूत था और अपने आस-पास रहने वालों को मोहित कर लेता था।

पत्तमडै जो कि श्री स्वामी शिवानन्द जी की जन्म-स्थली है, एक अत्यन्त सुन्दर गाँव है। यहाँ हरी घास के मैदान तथा चारों ओर आम के बगीचे हैं। यह तिरुनेलवेली जंक्शन से दस मील दूर है। ताम्रपर्णी नदी से निकलने वाली एक सुन्दर शाखा कनाडिएक्कल पूरे गाँव के चारों ओर सुन्दर माला की भाँति बहती है। इस नदी का पानी अत्यन्त मीठा और स्वास्थ्यवर्धक है। पत्तमडै घास की सुन्दर रेशमी चटाइयाँ बनाने के लिए भी प्रसिद्ध है। पत्तमडै के सभी बालक संगीत सुनना पसन्द करते हैं और अच्छी तरह गा भी सकते हैं। पत्तमडै में बहुत से प्रसिद्ध गायकों ने जन्म लिया है।

कुप्पुस्वामी को भी संगीत से प्रेम था। उनके पिता श्री शंकराचार्य द्वारा रचित 'आनन्द लहरी' अक्सर गाया करते थे और कुप्पुस्वामी भी इसे सुनना पसन्द करते थे। यदि पिता गाते-गाते बीच में रुक जाते, तो वे 'हूँ हूँ ' करके उन्हें पुन: गाने हेतु प्रेरित करते थे। सामान्यतया कुप्पुस्वामी रोते नहीं थे; लेकिन यदि वे कभी रोते, तो उनकी माता उन्हें 'चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहिमाम्' (भगवान् शिव मेरी रक्षा करें) गा कर सुनाती, तो वे चुप हो जाते और उनकी गोद में जा कर बैठ जाते।

'शिव' शब्द के प्रति उन्हें विशेष आकर्षण था और वे इसे बोलने का प्रयत्न करते थे। उस समय वे इसका अर्थ नहीं समझते थे; लेकिन जब माँ प्रार्थना करतीं, तो वे भी तुतला कर बोलने का प्रयत्न करते थे।

जिस दिन से उन्होंने चलना प्रारम्भ किया, वे अपनी माता के साथ-साथ गाँव के मन्दिर में खुशी-खुशी जाया करते थे तथा मन्दिर की घण्टियों की ध्वनि उन्हें बड़ी प्रिय लगती थी। अत्यन्त छोटी आयु से ही वे पूजा करने में अपने पिता की सहायता किया करते थे। जब उनके पिता सन्ध्या-वन्दन करते, तो वे भी उन क्रियाओं को दोहराने का प्रयत्न करते थे। जब उनके पिता भगवान् शिव की पूजा करते, तो वे भी बेल-पत्र और पुष्प ले कर आते और सामने एक छोटा-सा पत्थर रख कर अपने पिता के द्वारा की जाने वाली पूजा का अनुकरण करते थे। मन्त्र बोलना तथा प्रार्थना वे पूरे ध्यान से करते थे। वे अपने माता-पिता के साथ प्रार्थना और कीर्तन भी करते थे तथा रामायण और भागवत सुनना उन्हें पसन्द था।

श्री कल्याण राम अय्यर जी की एक नाटक मंडली थी जो रामायण, महाभारत और भागवत-जैसे धार्मिक नाटकों का मंचन करती थी। एक बार इस नाटक मंडली ने दक्षिण भारत भ्रमण करके वहाँ नाटक-मंचन का कार्यक्रम बनाया। कुप्पुस्वामी को भी उनके पिता नाटक दिखाने ले कर गये। घर आ कर कुप्पुस्वामी नाटक के देखे गये अंशों को दोहराते थे।

बालक का मन बहलाने के लिए उनके माता-पिता आध्यात्मिक कहानियाँ सुनाया करते थे। जब वे रोते और सोना नहीं चाहते, तो उनके माता-पिता सामान्य घरों में बच्चे को भयभीत करने वाली विधियों का प्रयोग न करके भगवान् के अवतारों की कहानियाँ सुनाया करते थे।

स्वामी जी एक नटखट बालक थे और वे अपने नटखट-पन से कई अवसरों पर अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करके सबका मनोरंजन भी करते और कभी-कभी सभी को आश्चर्यचकित कर देते थे।

घर पर जब मिठाइयाँ बनतीं, तो माँ तीनों भाइयों में बराबर-बराबर बाँट देती थीं और बाकी भण्डार-गृह में भविष्य में देने हेतु रख देती थीं। कुप्पुस्वामी उस समय शक्तिशाली पुष्टदेह, फुर्तीले और ऊर्जावान् थे। वे अति-शीघ्र अपना हिस्सा खत्म कर देते तथा यदि उनके भाई अपना अंश न समाप्त कर पाते, तो उनका अंश भी ले लेते। फिर भण्डार-गृह में से भी सारी मिठाइयाँ ला कर अपने मित्रों में बाँट देते। उनके इस व्यवहार से उनकी भविष्य की आदत की झलक मिलती थी—"इसे अभी करो।"

आयु के पाँचवें वर्ष में कुप्पुस्वामी पत्तमडै से इट्टियापुरम् चले गये जो कि उनके पिता का कार्य-स्थल था। इट्टियापुरम् उन दिनों छोटी-सी जागीर थी जो अँगरेजी शासन के पक्षधर राजा द्वारा संचालित थी और इसी कारण यहाँ जीवन अत्यन्त सरल था और यहाँ ललित कला का अच्छा विकास हुआ। इट्टियापुरम् उन दिनों ललित कला का केन्द्र भी था। यहाँ पर अनेक विद्वानों, संतों और संगीतज्ञों ने प्रगति की।

इट्टियापुरम् में कुप्पुस्वामी प्रसिद्ध गायक तथा शिवभक्त श्री सुब्बाराम दीक्षितार के सम्पर्क में आये, वे समीप ही रहा करते थे। श्री सुब्बाराम दीक्षितार सारी रात और कई दिनों का अखण्ड कीर्तन करते थे और इसमें कुप्पुस्वामी और उनके

माता-पिता भी सम्मिलित होते थे। वे दीपक के चारों ओर किये जाने वाले नृत्य में भी हिस्सा लेते थे। श्री सुब्बाराम जी ने कुप्पुस्वामी को भी संगीत की शिक्षा दी और उन्होंने सभी भजनों और कीर्तनों को कण्ठस्थ कर लिया।

श्री अप्पय्या दीक्षितार का नाम भारत के आध्यात्मिक इतिहास में बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। वे श्री सुब्बाराम और कुप्पुस्वामी—दोनों के पितृपुरुष थे। उनका जन्म दक्षिण भारत के उत्तरी आरकोट जिले के अरनी के पास अदइपालम में हुआ था। श्री अप्पय्या दीक्षितार ने संस्कृत में १०४ ग्रन्थों की रचना की। उनके द्वारा वेदान्त पर रचित ग्रन्थ उनकी विलक्षण बौद्धिक क्षमता के परिचायक हैं। उनके अनूठे लेखन से वेदान्त के सभी विद्यालय प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

श्री अप्पय्या दीक्षितार अपने पूर्व और बाद के कई दशकों के विद्वानों के मध्य संस्कृत साहित्य की सभी शाखाओं, कविताओं, अलंकारिक लेखन तथा दर्शन में अनुपम थे। उनके द्वारा रचित 'कुवलयानन्दा' अलंकारिक ग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। उनके द्वारा शिवजी के लिए लिखी गई स्तुतियाँ शिव-भक्तों को अत्यन्त प्रिय हैं।

श्री अप्पय्या दीक्षितार को भगवान् शिव का अवतार भी माना जाता है। पुराने ग्रन्थों में ऐसा वर्णन है कि जब भी श्री अप्पय्या दीक्षितार दक्षिण भारत स्थित प्रसिद्ध तिरुपति मन्दिर में दर्शन के लिए गये, तो उनके शैव-भक्त होने के कारण मन्दिर के प्रमुख पुजारी ने उन्हें मन्दिर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी। प्रात:काल उन्होंने देखा कि विष्णु भगवान् की मूर्ति शिवजी की मूर्ति में बदल गई है और वे आश्चर्यचकित रह गये तथा श्री अप्पय्या दीक्षितार से क्षमा माँगने लगे तथा उनसे प्रार्थना की कि 'वे मूर्ति को पुन: विष्णु भगवान् की मूर्ति में बदल दें।' और, ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने पुन: उसे विष्णु भगवान् की मूर्ति में बदल दिया।

श्री अप्पय्या दीक्षितार के वंश में श्री स्वामी शिवानन्द जी के जन्म के पचास वर्ष पूर्व एक और अपूर्व बुद्धि-सम्पन्न महान् पुरुष ने जन्म लिया था। उनका नाम था श्री सुन्दरेसा शिवम्। उनका जन्म ३ दिसम्बर १८३१ को हुआ था। उनके माता-पिता समृद्ध थे; लेकिन दुर्भाग्यवश वे अनाथ हो गये और उनके मामा जी उन्हें अपने साथ ले गये। उनके मामा जी भी महान् शिव-भक्त और विद्वान् थे।

सुन्दरेसा को भी बाल्यावस्था से भगवान् की पूजा करना अच्छा लगता था और वे अपने मामा द्वारा की जाने वाली स्तुतियों को सुन कर उन्हें याद कर लेते थे। धीरे-धीरे वे संस्कृत भाषा में प्रवीण हो गये। सुन्दरेसा जी की अनिच्छा के बाद भी उनका विवाह कर दिया गया और शीघ्र ही उनकी पत्नी की मृत्यु भी हो गई। इसके बाद उन्होंने घर छोड़ दिया और वे साधु की भाँति भ्रमण करने लगे। उन्होंने दक्षिण भारत के बहुत से मन्दिरों को सहयोग दिया और बहुत से न्यासों की स्थापना भी की। उनके पास अदृश्य सिद्धियाँ थीं। सन् १८७८ में उन्होंने इस नश्वर देह को त्याग दिया। उनकी समाधि आज भी पुदुकोटाई के पास एरीमालम में स्थिति है जो कि दक्षिण भारत में है। सन् १९५० में अपनी भारत भ्रमण यात्रा के समय श्री स्वामी शिवानन्द जी इन पूर्वज संत को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने गये थे। ऐसी धारणा है कि स्वामी शिवानन्द जी सुन्दरेसा शिवम् जी (जिनका संन्यास के बाद का नाम सुन्दरा स्वामिगल था) के अवतार थे।

श्री कुप्पुस्वामी तथा श्री सुब्बाराम दीक्षितार जब साथ-साथ रहते थे, तो अपने प्रसिद्ध पूर्वजों के बारे में एक-दूसरे को कहानियाँ सुनाया करते थे।

इट्टियापुरम् में स्वामी जी जहाँ रहते थे, उनके सामने ही श्री शुद्धानन्द भर्तियार रहते थे। वे प्रसिद्ध कवि और देश-भक्त थे। इस प्रकार किशोरावस्था में स्वामी जी चारों ओर से महान् कवियों, ग्रन्थकारों, गायकों और देशभक्तों तथा विद्वानों से घिरे हुए थे।

एक व्यक्ति गणपति शास्त्री जो कुप्पुस्वामी को भली-भाँति जानते थे तथा उन्होंने उनको बचपन से देखा था, उन्होंने बताया—"कुप्पुस्वामी अपनी आयु के अनुरूप लम्बे, सुन्दर और गौर वर्ण के थे। वे न तो पतले थे, न मोटे थे। उनका पेट थोड़ा मोटा था। उनके मुख पर सदा मुस्कराहट खेला करती थी और वे अत्यन्त आकर्षक थे। वे अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे अपने यज्ञोपवीत में चाँदी से मढ़ा एक रुद्राक्ष बाँध कर रखते थे। वे मेरे-जैसे युवा लड़कों के साथ खुलकर से मिलते थे और अँगरेजी भाषा के छोटे-छोटे वाक्यों में वार्तालाप करते थे। उनकी वाणी में अत्यन्त मधुरता थी। उनमें जो सन्तोष था, वह हमारे आकर्षण का कारण था।"

जब वे बालक ही थे, तब भी उनका ध्यान घुमक्कड़ साधुओं की तरफ विशेष रूप से रहता था। उनका मनोरंजन करके वे बड़े ही आनन्दित होते थे। वे अपने हाथों से उनका आतिथ्य करते थे। घर पर आने वाले हर भिक्षुक के पास वे अवश्य ही जाते थे और उन्हें भीतर बुला कर भोजन कराते और धन भी देते थे। इस काम में वे सभी रीतियों और बन्धनों को भी तोड़ देते थे।

एक बार की बात है कि कुप्पुस्वामी कुछ बच्चों के साथ गाँव की सड़क पर खेल रहे थे। उसी समय एक वृद्धा स्त्री ठोकर लगने से नीचे गिर पड़ी। बच्चे वृद्धा की हँसी उड़ाने लगे। सदा नटखट और हँसते रहने वाले कुप्पुस्वामी अचानक अपनी आयु से बड़े व्यक्ति की तरह अहसास कराते हुए बोले—"हँसो मत, तुम सब अब बड़े हो गये हो। क्या तुम्हें भान है, इनकी आयु कितनी है ? जब कोई कष्ट में हो, तो उसकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिये; बल्कि उसकी सहायता करनी चाहिये।"

कुप्पुस्वामी एक और गुण के कारण बड़े प्रसिद्ध थे। वह था उनका साहसिक यात्रा से प्रेम। वे बिना किसी को बताये कई बार घर से दूर चले जाते थे और बिना भोजन-पानी के घूमते रहते थे। इसी प्रकार एक बार वे कुजुगमलाई चले गये और उनकी जेब में एक पैसा भी न था। यहाँ पर भगवान् सुब्रह्मण्यम् का मन्दिर है। उन्होंने मन्दिर में पूजा की और तीन दिनों तक कुछ भी नहीं खाया। लेकिन इन तीन दिनों में आन्तरिक रूप से उन्हें जो प्राप्त हुआ, उससे वे बड़ी उमंग में थे। चौथे दिन जब वे वापस आ रहे थे, तो उनके मित्र ने उन्हें थोड़ा भोजन प्रदान किया; लेकिन यह उनकी भूख को शान्त करने के लिए अपर्याप्त था। अन्त में वे घर आ गये और पहली बार उन्होंने स्वीकार किया कि इस यात्रा में वे बहुत थक गये थे।

अक्सर वे इसी प्रकार घर से चले जाते थे। यदि रात में वे घर वापस नहीं आते, तो उनकी माँ समझ जाती थीं कि वे आस-पास के किसी मन्दिर या पवित्र स्थान में गये होंगे या नीम के वृक्ष के नीचे बैठे होंगे, जो उनका प्रिय स्थान था।

कुप्पुस्वामी को किसी भी चीज से कोई भय न था। हम यह तो अनुमान नहीं लगा सकते कि उन दिनों उनकी मानसिक स्थिति कैसी रही होगी; किन्तु उनके लिए मृत्यु का कोई अर्थ न था। वे खेल-खेल में कुएँ में कूद जाते और बिना डरे

प्रसन्नतापूर्वक बाहर आ जाते थे। यह उनका प्रिय शक्ति-प्रदर्शन था जो उनके मित्रों को विस्मित कर देता था।

जब कुप्पुस्वामी विद्यालय जाने योग्य हो गये, तो उनके पिता ने इट्टियापुरम के राजा हाई स्कूल में उन्हें प्रवेश दिला दिया। अन्य बालकों के विपरीत विद्यालय जाना उन्हें प्रिय था तथा वर्णमाला और गिनती उचित क्रमानुसार उन्होंने पहले ही सीख ली थी। वे सदा जागरूक रहते थे। कुप्पुस्वामी ने प्रारम्भिक ज्ञान तभी स्वत: सीख लिया था, जब उनके बड़े भाई पाठों को समझने में उलझे रहते थे। कुप्पुस्वामी को समय व्यर्थ गँवाना पसन्द नहीं था।

बाल्यावस्था से ही उनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी और बिना किसी कष्ट के प्रत्येक बात को वे सरलतापूर्वक ग्रहण कर लेते थे। उन्होंने पाठशाला में पढ़ाये जाने वाले पाठों को भी अत्यन्त शीघ्र सरलता से अध्ययन कर लिया था। वे एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाते थे। इस कारण उनके पास घर में भी बहुत समय रहता था। वे अपने समय का आलस्य और समय बिताने के अनुपयोगी साधनों द्वारा अपव्यय नहीं करते थे। अपने भीतर की जिज्ञासा और स्वाभाविक इच्छा के कारण वे कक्षा में सदा आगे रहते थे। विशेष रूप से महाविद्यालय में वे उन प्रश्नों का भी उत्तर दे देते थे जो उनसे अगली कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थी भी नहीं दे पाते थे। वे अपनी कक्षा की पढ़ाई में तो सबसे आगे थे ही और अपने से चार वर्ष आगे पढ़ने वाले विद्यार्थियों को भी प्रतियोगिता में हरा देते थे।

सन् १९०१ में मद्रास के गवर्नर लार्ड अम्पटील के कुरुमलई हिल्स आगमन पर उनकी सभा को सम्बोधित करने के लिए कुप्पुस्वामी का चयन हुआ और उन्होंने कुमारापुरम् रेलवे स्टेशन पर एक सुन्दर 'स्वागत गीत' भी गाया। इस समय उनकी आयु मात्र १४ वर्ष थी। जिस आयु में अन्य बच्चे यूरोपियन गवर्नर को देखने मात्र से पसीने-पसीने हो जाते थे, सभा को सम्बोधित करना तो दूर की बात है, उसी आयु में कुप्पुस्वामी ने अपना नाम भी सबके मध्य ऊँचा किया।

कुप्पुस्वामी अत्यन्त शीघ्र ही यह जान गये थे कि रोगी शरीर एक बोझ है। इसलिये वे अपने विद्यालय के व्यायाम-प्रशिक्षक श्री साम्ब सदाशिव अय्यर के पास व्यायाम सीखने जाने लगे थे। सन् १९५० में भारत यात्रा के समय श्री साम्ब सदाशिव

अय्यर स्वामी जी से मिलने तिरुनेलवेली आये थे। उन्होंने बताया कि स्वामी जी बहुत अच्छे व्यायामी थे तथा पैरेलल और हॉरिजोन्टल दोनों प्रकार के बार पर मेरे समान ही कुशलता रखते थे। स्वामी जी की निपुणता के कारण ही उनके गुरु के हृदय में उन्हें ऐसा स्थान प्राप्त हुआ था। साम्ब सदाशिव अय्यर अपनी अनुपस्थिति में कुप्पुस्वामी को कक्षा लेने हेतु अत्यन्त विश्वासपूर्वक भेज देते थे। बाद में इन वृद्ध किन्तु श्रेष्ठ गुरु ने अपने इस शिष्य के साथ सम्बन्धों को पुनर्जीवित किया और ध्यान देने योग्य बात यह है कि देवत्व-प्राप्ति हेतु वे स्वामी जी के शिष्य बन गये। स्वामी जी ने उन्हें पवित्र संन्यास-दीक्षा दी और उन्हें 'सदाशिवानन्द' नाम दिया।

एक श्रेष्ठ व्यायामी होने के साथ-साथ स्वामी जी आश्चर्यजनक व्यक्तित्व के धनी थे। उनका सीना चौड़ा और भुजायें बलिष्ठ थीं। रूढ़िवादी होने के कारण माता-पिता व्यायाम को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे; लेकिन स्वामी जी प्रातः ३ या ३.३० बजे उठते और घर के लोगों के जागने से पहले व्यायाम करके पुनः सो जाते। वे कहा करते थे—"मैं कई बार बिस्तर पर तकिये रख कर उसे इस प्रकार ढाँक देता था जैसे वहाँ मैं सो रहा हूँ। और खुद व्यायामशाला में व्यायाम करने चला जाता था। घर वाले सोचते, मैं गहरी नींद में सो रहा हूँ।"

इट्टियापुरम राजा हाई स्कूल से उत्तीर्ण हो जाने के बाद सन् १९०३ में उन्होंने त्रिचनापल्ली के एस.पी.जी. कालेज में प्रवेश लिया। वे जितने बुद्धिमान् और पढ़ाई में लगनशील थे, उतने ही विनम्र और आज्ञाकारी भी थे; इसलिये उनके प्रधानाध्यापक श्री एच.पाकेहम वाल्श का ध्यान भी शीघ्र ही उनकी तरफ आकृष्ट हुआ। शिक्षक तथा प्रधानाध्यापक—सभी उन्हें प्यार करते थे। वे अत्यधिक परिश्रमी थे और सभी परीक्षाओं में प्रथम आते थे तथा तमिल साहित्य में विशेष रूप से प्रवीण थे। सन् १९०५ में तमिल संघम् द्वारा आयोजित एफ.ए. (फर्स्ट इन आर्ट्स) की तमिल की परीक्षा उन्होंने सराहनीय ढंग से उत्तीर्ण की।

महाविद्यालय में जब उन्होंने शेक्सपीयर द्वारा लिखित नाटक 'मिडसमर नाइट ड्रीम' में हेलेना की भूमिका अदा की, तो उनके संगीत-प्रेम, आचरण और गम्भीर स्वभाव की सभी ने सराहना और प्रशंसा की।

कुप्पुस्वामी सदा कक्षा में प्रथम आते थे। उन्हें बहुत से पुरस्कार और पदक भी प्राप्त हुए। ये पुरस्कार उन्हें पुस्तकों के रूप में प्राप्त होते थे और इनसे उनके पास एक छोटा-सा पुस्तकालय बन गया था। अभी तक स्वयं के लिए तथा अन्यों के लिए पुस्तकें प्राप्त करना कुप्पुस्वामी की आदत बन गई थी।

चिकित्सा के क्षेत्र में

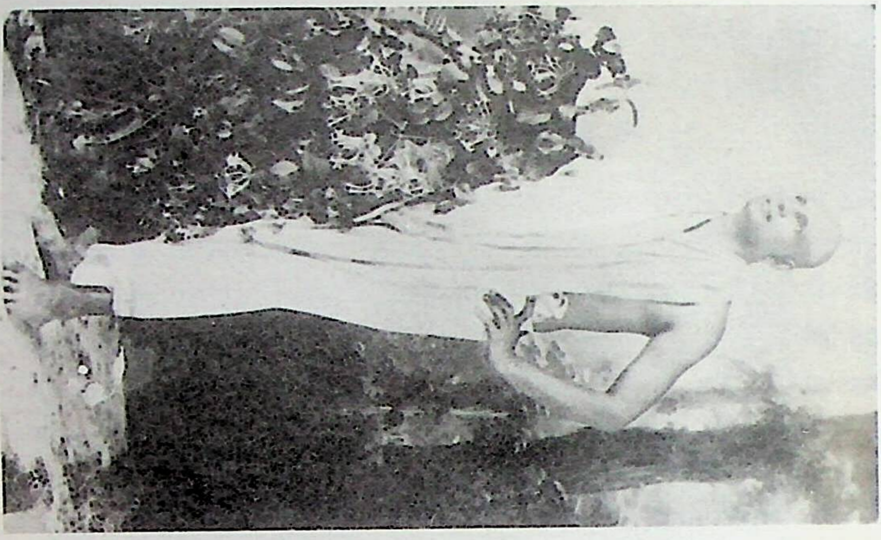
स्कूली शिक्षा समाप्त होने के बाद कुप्पुस्वामी के पास जीवन के लिए तीन विकल्प थे—कला, विज्ञान और चिकित्सा। इनमें से उन्होंने चिकित्सा का क्षेत्र चुना। उन्होंने अपना पूरा ध्यान और शक्ति अपनी पढ़ाई पर लगा दी और अपने साथ पढ़ने वाले सहपाठियों को ही नहीं, वरन् अपने से आगे पढ़ने वाले विद्यार्थियों को भी पराजित कर दिया। अतिशीघ्र उन्होंने सभी विषयों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया, जिससे उनके व्याख्याता गण भी विस्मित रह गये। चिकित्सा महाविद्यालय में अपने अध्ययन के प्रथम वर्ष में ही उन्हें शल्य-चिकित्सकों के सहायक के रूप में आपरेशन थियेटर में जाने की अनुमति थी, जिससे उन्हें और अधिक ज्ञान प्राप्त करने का सुअसवर मिला।

कुप्पुस्वामी के भीतर अत्यधिक उत्साह और स्फूर्ति थी तथा वे जो भी काम करते, पूर्ण अधिकारी की तरह करते थे। वे सदा अपने साथ एक स्मरण पुस्तिका रखते थे और जब भी कोई बात महत्त्वपूर्ण दिखाई देती, उसे तुरन्त लिख लेते थे। कभी-कभी वे सामान्य जीवन में होने वाली घटनाओं से भी शिक्षा ग्रहण करते तथा यह उनके भविष्य में काम आती या प्रभाव डालती।

विद्यार्थी-जीवन से ही कुप्पुस्वामी में भविष्य में प्रकट होने वाली महानता के दर्शन होते थे। दो वर्षों में पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम को वे एक वर्ष में स्वयं ही सीख लेते थे। परीक्षा के दिनों में वे पुस्तकें बन्द करके शान्तिपूर्वक बैठ जाते थे और परीक्षा में सर्वाधिक नम्बर लाते थे। वे किसी भी पुस्तक से पढ़ी गई किसी भी बात को शब्दश: दोहरा सकते थे। इसी कारण वे अपने सहपाठियों और व्याख्याताओं की ईर्ष्या और प्रशंसा के पात्र थे। उनका प्रेम, सत्य और ईमानदारी उनके सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति को प्रभावित करती थी।

अपनी आत्मकथा में स्वामी जी ने लिखा है—"यह मेरे प्रारम्भिक जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम था। मैं विद्यालय में सर्वाधिक परिश्रमी बालक था। तंजोर चिकित्सा महाविद्यालय में पढ़ाई के बीच की छुट्टियों में मैं घर नहीं जाता था।







इस सारे समय का उपयोग मैं अस्पताल में काम करने और नया सीखने में करता था। मैं आपरेशन थियेटर में स्वतन्त्रतापूर्वक जा सकता था। मैं सर्जरी का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इधर से उधर तक भागा करता था (यह ज्ञान मात्र उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों को ही सिखाया जाता था)। एक वृद्ध सहायक सर्जन को एक विभागीय परीक्षा देनी थी, उन्होंने इसके लिए मुझे अपनी पाठ्य-पुस्तकें पढ़ने को कहा। मैंने उन्हें भली-भाँति हृदयंगम कर लिया और मैं सभी विषयों में प्रथम आया। इसका एक लाभ मुझे यह मिला कि मैं अपने से उच्च कक्षा के विद्यार्थियों को सैद्धान्तिक ज्ञान में भी पराजित करने में सक्षम हो गया।

''मैंने मन्नारगुडी के अस्पताल में एक साहसी सहायक चिकित्सक के बारे में सुना था और मैं भी वैसा ही बनना चाहता था। मैं अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि मेरे पास बड़ी-बड़ी उपाधियाँ-प्राप्त चिकित्सकों से अधिक ज्ञान था। घर पर मेरी माता जी और मेरे बड़े भाइयों ने अन्य कोई काम करने हेतु मुझे प्रेरित किया; किन्तु मैं अपने चिकित्सा के कार्य करने के निर्णय पर दृढ़ रहा, साथ ही मुझे यह कार्य अत्यन्त प्रिय भी था। मेरा सारा समय सभी प्रकार की चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने में व्यतीत हो जाता था।

''चिकित्सा महाविद्यालय में अध्ययन के प्रथम वर्ष में ही मैं उन प्रश्नों को भी हल कर सकता था, जिनको अन्तिम वर्ष के विद्यार्थी भी हल नहीं कर पाते थे। मैं कक्षा में सभी विषयों में प्रथम स्थान प्राप्त करता था।''

इसी बीच उनके पिता की मृत्यु हो जाने के कारण घर का सारा आर्थिक भार उनके बड़े भाइयों के कन्धों पर आ गया था। इसलिये मेडिकल की पढ़ाई पूरी करने के पश्चात् वे किसी ऐसी जगह काम ढूँढ़ने हेतु प्रयत्नशील हो गये, जिससे प्रथम तो वे अपने भाइयों के भार को कम कर पाते और द्वितीय अपने उच्च शल्यक्रिया-सम्बन्धी ज्ञान द्वारा बृहत् रूप में मानव-मात्र की सेवा भी कर पाते। इस कारण उन्होंने त्रिचनापल्ली में एक चिकित्सक के सहायक के रूप में काम करना प्रारम्भ कर दिया।

डाक्टर कुप्पुस्वामी सदा कर्मठ और कार्यशील थे। उनको अधिक धन एकत्र करने की कोई अभिलाषा नहीं थी। लेकिन सेवा करने से वे कभी सन्तुष्ट नहीं होते थे।

यदि समर्पणपूर्वक की जा रही सेवा में उनसे कोई कमी रह जाती, तो वे उसे गम्भीर असफलता का दिन मानते थे।

डा. कुप्पुस्वामी में युवक होते हुए भी स्वभाव में बच्चों-सी निश्छलता अपने-आपमें बड़ी शक्तिशाली थी जो अन्यों को आकृष्ट करती थी। जब कोई रोगी उनके पास आता, तो उनके सरल स्वभाव से प्रभावित हो कर उनके सामने अपना दिल खोल कर रख देता था, जिससे उनका काम और आसान हो जाता था; क्योंकि इस स्वतन्त्रता के कारण लोग उनके सामने रोग का सम्पूर्ण इतिहास स्पष्ट कह देते थे।

स्वामी जी सोचते थे कि जो अपने पास हो, उसकी समर्पित भाव से सेवा करना सराहनीय है, इसमें कोई सन्देह नहीं है; लेकिन अन्य रोगियों को भी सहायता की आवश्यकता है तथा लोगों को यह बताया जाना और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि वे रोगों से किस प्रकार बच सकते हैं।

स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

''मैंने एक योजना बनायी है कि मैं चिकित्सा-सम्बन्धी मासिक पत्रिका निकालूँगा। मैंने इस योजना के ऊपर विस्तार से काम भी करना प्रारम्भ कर दिया। इसके लिए प्रारम्भ में मेरी माता जी ने मुझे १०० रुपये प्रदान किये। मैंने भारत की प्राचीन चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद से सम्बन्धित लेखों के लिए आयुर्वेदिक वैद्यों से सम्पर्क किया। स्वयं मैंने छद्म नामों से लेख लिखे। सन् १९०९ में यह पत्रिका **'एम्ब्रोसिया'** प्रारम्भ हुई और शीघ्र ही बहुत प्रसिद्ध हो गई। कई प्रसिद्ध लोग भी इसमें सहयोग करने लगे।

''एक बार मेरी माता जी को किसी आयोजन के लिए १५० रुपयों की आवश्यकता पड़ी और मैं उन्हें सरलतापूर्वक दे सका।

''यह पत्रिका मेरे मलेशिया जाने तक सफलतापूर्वक प्रकाशित होती रही। यह पत्रिका डेमी क्वार्टो आकार में थी तथा इसमें ३२ पन्ने थे और इसका मुखपृष्ठ अत्यन्त आकर्षक था। इसमें पाठकों के लिए अत्यन्त आकर्षक सामग्री दी जाती थी तथा इसकी पाठ्य-सामग्री चिकित्सकों के लिए अत्यधिक उपयोगी थी। साथ-ही-साथ **'एम्ब्रोसिया'** के पृष्ठों में एक महान् आध्यात्मिक अनुभूति भी थी। अन्य

चिकित्सा-सम्बन्धी पत्रिकाओं के विपरीत इसमें अन्तर्निहित विचार प्राचीन ऋषियों के उपदेशों पर आधारित थे। आध्यात्मिकता मेरे भीतर युवावस्था से ही थी।''

डाक्टर कुप्पुस्वामी पत्रिका चलाने में असाधारण रूप से व्यावहारिक थे। वे व्यापारिक विज्ञापनों को आमन्त्रित तथा स्वीकार करते थे और एक पृष्ठ का शुल्क ३ रुपये लेते थे। इस समय पत्रिका ने अत्यधिक प्रसिद्धि अर्जित की तथा इसकी आय भी बढ़ी; लेकिन इसके खर्चे आय से अधिक थे। पत्रिका चलाने की विधि व्यावहारिक थी; लेकिन आर्थिक प्रबन्धन ठीक नहीं था, क्योंकि पत्रिका का मुख्य विषय था—ज्ञान का प्रसार, और स्वामी जी के लिए यदि यह धन नहीं पैदा करती, तो कोई बात नहीं थी। लेकिन यह धन के जो अपर्याप्त साधन थे, उन्हें भी खत्म कर रही थी, यह एक विचारणीय प्रश्न था। डाक्टर कुप्पुस्वामी अपने रोगियों के मध्य तो अत्यधिक सफल थे; लेकिन वे पैसा कमाने में भयंकर रूप से असफल रहे। वे बिल भेजने में उपेक्षा करते थे और दवाइयाँ निःशुल्क बाँट देते थे।

'एम्ब्रोसिया' के सम्पादन के साथ-साथ डा. कुप्पुस्वामी ने अपने बचे हुए समय का सदुपयोग एक अन्य काम द्वारा करना प्रारम्भ किया। वे डाक द्वारा चिकित्सकीय सलाह भेजने लगे। इससे नये उभरते हुए डाक्टरों को रोगियों के इलाज में सहायता मिलती थी और चूँकि डा. कुप्पुस्वामी इसमें लोगों को स्वास्थ्य, शक्ति तथा जीवनी-शक्ति संचित रखने के लिए सफाई और स्वास्थ्य के नियमों को बताते थे, इस कारण लोग स्वयं रोगों से बचने में सफल होते थे और रोगों से दूर रहते थे।

डा. कुप्पुस्वामी स्वयं अपने लिए तथा पत्रिका को चलाने के लिए काम की खोज में थे। वे मद्रास चले गये और डा. हेलर की फार्मेसी में काम करने लगे। एक बार आश्रम में काम करने वाले व्यक्ति ने यह कह कर कोई काम करने से मना कर दिया कि यह उसके काम में सम्मिलित नही है, तब स्वामी जी ने अपने फार्मेसी के काम का उदाहरण दिया। उन्होंने बताया—''वहाँ मेरा काम था एकाउन्ट्स देखना, दवाइयाँ वितरित करना और रोगियों को देखना। ये काम स्वयं ही अत्यन्त श्रम-साध्य थे; लेकिन फिर भी मैं सारे काम करके भी अपनी पत्रिका के लिए निरन्तर कार्यरत रहता था। मैं वहाँ से यह पत्रिका लोगों को निःशुल्क भेजा करता था, इससे वे लाभान्वित होते थे।''

डा. कुप्पुस्वामी को अपनी सेवा के क्षेत्र का अधिक विस्तार करने की आवश्यकता तथा जरूरतमन्दों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। जब डा. हेलर तथा डा. डामरी ने अपनी भागीदारी को समाप्त करना चाहा, तो उन्हें अपने जीवन में मौलिक परिवर्तन का अवसर दिखाई दिया। वे मलेशिया जाना चाहते थे, जहाँ उनकी अधिक आवश्यकता थी; इसलिये उन्होंने डाक्टर आयंगार को सिंगापुर पत्र लिखा।

घर पर जब उन्होंने अपने मलेशिया जाने के निर्णय से अवगत कराया, तो घर वालों पर इसका बड़ा ही गम्भीर प्रभाव हुआ, उनकी आँखों में आँसू आ गये। कुप्पुस्वामी इस आयु में भी ऐसी नाजुक परिस्थिति को सँभालने में बड़े चतुर थे। उन्होंने स्थिति को शान्त हो जाने दिया। एक चिकित्सक होने के कारण वे अपने पक्ष को बड़ी सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर सकते थे। उनके माधुर्य से अनुरोध प्रभावशाली बन जाता था। उनकी माता जी और बड़े भाइयों ने तर्क दिया—"शास्त्रों में समुद्र पार करना निषिद्ध है।" लेकिन कुप्पुस्वामी तो सभी बातों से परे थे। उन्होंने कहा कि यें नियम वर्तमान में लागू नहीं किये जा सकते और सेवा के लिए यदि आवश्यकता पड़े, तो सभी पुराने रीति-रिवाजों को तोड़ देना चाहिये। मेरे लिए पीड़ितों और रोगियों की पुकार भगवान् का आमन्त्रण है। क्या वे परम्पराओं की आड़ ले कर सेवा जैसा काम भी नहीं करेंगे? यह विचार उनके लिए असंगत था। माँ ने देखा, इस मुस्कराते चेहरे के पीछे दृढ़ संकल्प छिपा है; अत: माता तथा दोनों भाइयों का आशीर्वाद और स्वीकृति भी उन्हें प्राप्त हो गई।

भारत से मलेशिया जाने से पूर्व डा. कुप्पुस्वामी के लिए (जिन्हें उनके मित्र प्यार से 'डा. एम्ब्रोसिया' भी कहते थे) उनके मित्रों ने एक विदाई-समारोह आयोजित किया। प्रसिद्ध महर्षि शुद्धानन्द भर्तियार सन् १९१३ में मदुरै में आयोजित इस समारोह में उपस्थिति थे और उन्हें अच्छी तरह स्मरण है कि इस युवा चिकित्सक के भीतर रोगी और पीड़ितों के लिए निष्काम सेवा का कितना गहरा भाव था।

मलेशिया जाते समय अत्यन्त प्रसन्नता और सन्तुष्टि से देदीप्यमान मुख-मण्डल के साथ डा. कुप्पुस्वामी ने अपने मित्रों और सम्बन्धियों को (जो कि अपने अश्रुओं को रोकने का असफल प्रयास कर रहे थे) अलविदा कहा। इन सभी ने

कुप्पुस्वामी को आशीर्वाद दिया और भगवान् से उनके इस महान् लक्ष्य में सफलता हेतु मूक प्रार्थना की।

मलाया (मलेशिया)

डा. कुप्पुस्वामी मद्रास से सन् १९१३ में एस.एस. तारा जहाज से मलेशिया के लिए रवाना हुए। समुद्री यात्रा में भी वे सेवा के प्रत्येक अवसर के प्रति सदा जागरूक रहते थे। वे अपने साथ हमेशा स्टेथस्कोप और दवाइयों का बक्स रखते थे। वे किसी औपचारिकता में नहीं पड़ते थे। यदि वे किसी को छींकते, खाँसते या दर्द से कराहते देखते, तो तुरन्त उसके पास दौड़ कर जाते, उससे बीमारी के बारे में पूछते और उसका इलाज करते। उनकी सहृदयता, स्पष्टवादिता और निष्कपटता एक अल्पभाषी व्यक्ति के संकोच को भी तोड़ देती और वह भी स्वामी जी का दास बन जाता।

यात्रा में बाकी समय कुप्पुस्वामी डेक पर बैठे दिखाई देते। वे गहन चिन्तन में डूबे रहते थे। वे अक्सर मूर्तिवत् बैठे आकाश को या पानी के विस्तार को और उस पर खेलती लहरों को एकटक देखते रहते थे। सूर्य की तीक्ष्णता, पानी पर उठती भाप, घुमड़ते हुए बादल अक्सर उन्हें ध्यान की स्थिति में पहुँचा देते थे। यह वास्तव में एक बड़ी साहसिक यात्रा थी; क्योंकि यदि परिस्थितियाँ मलेशिया में विपरीत होतीं, तो उनके पास वापसी के लिए पैसा नहीं था। लेकिन उनके भीतर दृढ़ संकल्पशक्ति और अपने निर्णय के प्रति अत्यधिक उत्साह था तथा वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पूर्ण आशावान् थे।

ऐसा नहीं था कि इस दूरवर्ती देश मलेशिया में कोई सुविधाजनक काम उनके लिए पूर्व-निर्धारित था; वरन् वे तो इस देश में बिलकुल अनजान थे, वहाँ उनका कोई मित्र भी नहीं था। उन्हें यहाँ पर अत्यन्त कठिन, निराशाजनक बाधाओं का सामना करते हुए अपना कार्य आरम्भ करना था। परन्तु बाद में ये सभी परिस्थितियाँ अनुकूल हो गईं और वे अपनी स्थिति को सुरक्षित अनुभव करने लगे।

स्वामी जी एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे; इसलिये उनमें कुछ परम्परागत रूढ़िवादी धारणाएँ उस समय विद्यमान थीं और होटल या रेस्टोरेन्ट में भोजन न करना भी उनमें से एक था। इसलिये समुद्री यात्रा के समय वे अपने साथ घर

के बने कुछ लड्डू ले कर आये थे। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण यात्रा इन्हीं लड्डुओं और पानी के सहारे काट दी। यदि अभी साठ वर्ष की आयु में उनकी भूख को देख कर अनुमान लगाया जाये, तो उस समय उनके लिए मात्र थोड़े लड्डू और पानी अत्यल्प भोजन था। इस कारण यात्रा की समाप्ति तक वे बड़े अशक्त हो गये थे और मलेशिया में (वे शायद पेनांग में उतरे होंगे) उतर कर वहाँ से वे सीधे सेरम्बन गये और यहाँ पर जब तक उन्होंने रबर रियासत के मेडिकल अधिकारी श्री आयंगार को नहीं ढूँढ़ लिया तब तक वे भोजन ढूँढ़ने या खाना खाने के लिए भी कहीं नहीं रुके। सेबरमन नेग्री सेम्बलिन की राजधानी है। डाक्टर आयंगार ने डा. कुप्पुस्वामी को सेबरमन के डा. हेराल्ड पारसन से मिलने के लिए भेजा और उनके परिचय के लिए एक पत्र दिया। डा. हेराल्ड पारसन वहाँ लोगों का इलाज किया करते थे।

डा. कुप्पुस्वामी यहाँ से सीधे डा. पारसन के कार्यालय गये। उनके छोटे भाई ने बताया कि वे रियासत गये हैं, इसलिये कुप्पुस्वामी ने निर्णय लिया कि वे डाक्टर साहब से मिलने के लिए रियासत जायेंगे; लेकिन अब तक उनकी ऊर्जा खत्म हो चली थी। इसलिये उन्हें भोजन का विचार आया। लेकिन यहाँ उन्हें उचित भोजन कहाँ मिलता? उन्हें भारत के मालाबार का एक व्यक्ति मिला जो बड़ा दयालु था। उसने उन्हें एक मन्दिर बताया जहाँ दही और चावल का प्रसाद मिलता था।

स्वामी जी ने मुस्कराते हुए बताया कि मन्दिर के पुजारी का व्यवहार अच्छा नहीं था; लेकिन मैंने उसे थोड़ा दही-चावल देने के लिए मना लिया और मुझे इस अल्प आहार से बहुत ताजगी मिली। इस घटना से उनके भीतर यह भावना जागी कि 'किसी को भी भोजन के लिए कभी मना मत करो', और, इस नियम का उन्होंने आजीवन पालन किया।

सेनावांग रियासत

डा. कुप्पुस्वामी सेनावांग रियासत पहुँचे, तो उन्हें मालूम हुआ कि डा. पारसन को किसी सहायक की आवश्यकता नहीं थी; लेकिन वे बड़े ही भद्र व्यक्ति थे तथा कुप्पुस्वामी से बड़े प्रभावित हुए और उन्हें सेनावांग रियासत के प्रबन्धक श्री ए.जी. रोबिन्सन के पास ले कर गये जिनका स्वयं का एक अस्पताल था।

सौभाग्य से श्री राबिन्सन को अस्पताल को चलाने के लिए एक सहायक की आवश्यकता थी। उनका पहले वाला सहायक अयोग्य था और अभी-अभी नौकरी छोड़ कर चला गया था। श्री रोबिन्सन बलिष्ठ और विशाल देह के धनी तथा उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने डा. कुप्पुस्वामी से प्रश्न किया—"क्या तुम इस अस्पताल को सँभाल सकते हो?" उनका उत्तर था—"जी हाँ, मैं ऐसे तीन अस्पताल सँभाल सकता हूँ।" तत्काल ही उन्हें नियुक्ति मिल गई। वहाँ रहने वाले एक भारतीय ने बताया कि आपको १०० डालर प्रतिमाह से कम में काम स्वीकार नहीं करना है। श्री रोबिन्सन उन्हें १५० डालर प्रतिमाह देने को तैयार हो गये।

वहाँ पर उन दिनों मलेरिया का बड़ा प्रकोप था यहाँ तक कि रियासत के प्रबन्धक की तिल्ली बढ़ी होने के कारण वे भी रियासत तक रिक्शे से आया-जाया करते थे। डा. पारसन और गेलेनी द्वारा रियासत में चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं और उनका कार्यालय सेरेम्बन में था। प्रत्येक रियासत में एक छोटा-सा अस्पताल था जिसका प्रमुख, सहायक-चिकित्सक था। डा. ई. गेलेनी सप्ताह में एक बार इन अस्पतालों में मरीजों की जानकारी लेने आया करते थे।

डा. कुप्पुस्वामी की सेवांग के अस्पताल में नियुक्ति हो गई। उन्होंने शीघ्र ही अस्पताल के उपकरणों और दवाइयों की जानकारी प्राप्त कर ली और अपने काम में लग गये। यहाँ भी कड़ा परिश्रम उनकी राह देख रहा था। वे दवाइयाँ वितरित करते, एकाउन्ट्स का काम देखते और व्यक्तिगत रूप से रोगियों को भी देखते थे, उसी प्रकार जैसे वे मद्रास में डा. हेलर की फार्मेसी में किया करते थे। वे अत्यन्त ऊर्जावान् और कर्मठ थे। वे लोगों को निःशुल्क शिक्षा देते और उन्हें शीघ्र ही चिकित्सा सहायक हेतु प्रशिक्षित कर देते थे।

रबर रियासत अपने-आपमें एक छोटा-सा संसार था। इसका स्वयं का डाकघर, रेलवे स्टेशन, चिकित्सालय, दुकान, मन्दिर आदि था। यहाँ पर एक एकड़ भूमि में लगभग १०० रबड़ के वृक्ष थे। हर पेड़ के तने में उसका रस एकत्र करने के लिए छोटा-सा कप बँधा हुआ था। रियासत के पास कम-से-कम तीन हजार एकड़ तक जमीन थी और कम-से-कम चार-पाँच हजार श्रमिक थे और लगभग सारे

कामगार दक्षिण भारत के तमिल लोग थे। यह स्थान अगले सात वर्षों तक डा. कुप्पुस्वामी का छोटा-सा संसार था। यह उनके पारमार्थिक और आध्यात्मिक प्रयोगों हेतु प्रयोगशाला थी। यह उनका विश्व था और यह वह विश्वविद्यालय था जहाँ वे आत्म-साक्षात्कार विषय के स्नातक बने।

सन् १९६७ में स्वामी के प्रिय शिष्य स्वामी वेंकटेशानन्द जी इस रियासत में यात्रा हेतु गये और वहाँ उन्होंने अपने अनुभव एकत्रित किये, उनमें से कुछ निम्नांकित हैं :

''सेबरमन से ६ मील दूर सेनावांग रियासत है। सड़क के किनारे हमने दो इमारतें देखीं, जिनके मालिक के पूर्वजों ने भारत से आये युवा चिकित्सक डा. कुप्पुस्वामी को अपने घर में रखा तथा ये उनके संत में रूपान्तरण के साक्षी थे। यहाँ पर ही डा. कुप्पुस्वामी का सुख और दुःख की चरम सीमा से प्रत्यक्ष सामना हुआ तथा उन्होंने जीवन के अनन्त सत्य का साक्षात्कार किया। डा. पद्म शिवम् ने बताया कि डा. कुप्पुस्वामी जिस घर में रहते थे, वह लकड़ी के पटियों से बना हुआ था (जैसे मलेशिया में पहले घर बना करते थे)। वह घर अब गिर गया है और वहाँ पर अब नया घर बन गया है। उस घर के पास में पहले भी एक बड़ी इमारत थी जो अभी भी है। इसके बाद अस्पताल था जो अब विद्यालय बन गया है। उस अस्पताल में दो वार्ड थे—एक स्त्रियों और दूसरा पुरुषों के लिए। इनमें कुछ बिस्तर थे तथा जो गम्भीर रूप से पीड़ित होते थे, वे रोगी डाक्टर के घर पर रखे जाते थे।

प्रारम्भ से ही डा. कुप्पुस्वामी का व्यवहार अन्य डाक्टरों की अपेक्षा भिन्न था। डाक्टर कुप्पुस्वामी का व्यवहार अपने साथी चिकित्सकों के साथ भी अच्छा था। उनके भीतर चालाकी का नामोनिशान भी न था। वे सभी के साथ निष्कपट और सरल व्यवहार किया करते थे। अस्पताल के उच्च अधिकारी तथा अन्य सभी लोग उन्हें अपने से श्रेष्ठ मानते थे और उनमें अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त करते थे।

डा. कुप्पुस्वामी द्वारा गरीब श्रमिकों के लिए की गई सेवाओं को उनके बाद भी याद रखा जायेगा। पड़ोस की रियासत में काम करने वाले डा. पद्म शिवम् एक

असाधारण घटना को याद करके कहते हैं—"जब वे अपने रोगियों का इलाज करते थे, तो वे रोगियों का पूरा परीक्षण करने और दवाइयाँ देने के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ करते थे। वे हर रोगी को तुलसी की पत्ती और पवित्र जल की कुछ बूँदें भी देते थे। उन्होंने अपने घर के आँगन में तुलसी का पौधा भी लगा रखा था। अपनी नित्यप्रिय की पूजा में वे बड़े ही नियमित थे। पूजा करते समय वे जल और तुलसी की पत्तियाँ भी भगवान् के सम्मुख रखते थे और इन्हें अपने रोगियों को देते थे और इससे उन्हें प्रशंसनीय सफलता प्राप्त होती थी।"

रियासत के एक वृद्ध श्रमिक श्री अरमुगम् ने उनकी सेवाओं का स्मरण करते हुए कहा—"मुझे उनकी बहुत अच्छी तरह याद है। उनमें कुछ विशेष बात थी जो उन्हें दूसरों से अलग पहचान देती थी। वे कभी भी किसी से असम्मान-जनक तरीके से बात नहीं करते थे; बल्कि वे सदा आदरपूर्ण शब्दों द्वारा सम्बोधित किया करते थे। मैंने कभी भी उन्हें नाराज होते या अपशब्दों का प्रयोग करते नहीं देखा। वे दया की मूर्ति थे। वे निर्धन श्रमिकों की विशेष देखभाल करते थे। वे रोगियों का उपचार करते समय सदा प्रार्थना करते थे और तुलसी-दल और पवित्र जल दिया करते थे। प्रत्येक शुक्रवार को अस्पताल में एक प्रार्थना सभा का आयोजन किया जाता था और समापन पर प्रसाद-वितरण किया जाता था। फिर वे अस्पताल के हर वार्ड में जा कर, बिस्तर से उठने में असमर्थ थे, स्वयं अपने हाथों से उनके मुख में प्रसाद खिलाते थे। डा. कुप्पुस्वामी कद में लम्बे तथा आकर्षक और मोहक व्यक्तित्व के स्वामी थे। उन्हें भुला पाना कठिन था।

इन वृद्ध सज्जन का विशेष रूप से यह कहना था कि युवा डाक्टर कुप्पुस्वामी स्वयं उच्च जाति तथा उच्च सामाजिक स्थिति से सम्बद्ध होने के बाद भी उन श्रमिकों के साथ (जो कि निम्न जाति तथा निम्नतम सामाजिक स्थिति से सम्बद्ध थे) अत्यन्त आदरपूर्वक और नम्र व्यवहार करते थे। उन दिनों हमारे लिए सामाजिक समानता के बारे में सोचना अत्यन्त कठिन था; लेकिन उन वृद्ध व्यक्ति के लिए डाक्टर का व्यवहार परस्पर समानता और आदर भाव के नये युग का प्रभात था।

जोहोर

डा. कुप्पुस्वामी ने सेरेम्बन अस्पताल में लगभग सात वर्षों तक काम किया। इसके बाद वे डा. पारसन जो सैन्य सेवा से वापस आये थे, के अनुरोध पर जोहोर मेडिकल लिमिटेड में चले गये।

यहाँ पर उनके सहायक उनकी दयालुता और उदारता का आवश्यकता से अधिक लाभ उठाने लगे और अपने कर्तव्यों में आलस्य करने लगे। डा. कुप्पुस्वामी उनका भी काम कर देते थे। लेकिन कभी भी अपने सहायकों की न तो उन्होंने शिकायत की, न ही उन्हें कभी अपशब्द कहे। मलेशिया में बेगार काम कराने की समस्या कभी भी उनके जीवन-काल में हल नहीं हो सकी।

इस समयावधि के बारे में उन्होंने कहा—"मलेशिया में मैं लगभग सैकड़ों निर्धन लोगों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आया। ये सभी बँधुआ मजदूर या स्थानीय निवासी थे। मैंने मलाया की भाषा सीखी और उनसे उनकी भाषा में बात की। मैंने रियासत के श्रमिकों की अत्यन्त लगन और प्रेम भाव से सेवा की और उन सबका प्रिय बन गया। मैं सदा सेवा का अवसर ढूँढ़ता था। मैं एक क्षण अस्पताल में होता, तो दूसरे क्षण किसी निर्धन रोगी के घर पर उसके परिवार की देखभाल कर रहा होता। डा. पारसन जो अस्पताल के अतिथि चिकित्सक थे, वे मुझसे बड़ा स्नेह करते थे। मैं उनका व्यक्तिगत काम भी कर कर देता था। मैं अपनी सम्पूर्ण आय अपने मित्रों और रोगियों को दे देता था, यहाँ तक कि इस कार्य हेतु मैं अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ भी गिरवी रख देता था।"

डा. कुप्पुस्वामी प्रबन्धकों और श्रमिकों—दोनों के मित्र थे। एक बार अस्पताल में सफाई कर्मियों ने हड़ताल कर दी। अस्पताल के अधीक्षक तथा अन्य अधिकारी क्रोधित और अधीर हो रहे थे। डा. कुप्पुस्वामी ने शान्तिपूर्वक हड़ताली कर्मचारियों को बुलाया और उनकी समस्याओं को हल करने का आश्वासन दिया और उन्हें पुनः काम पर आने हेतु प्रेरित किया। इसके बाद उन्होंने उनकी माँगों की जानकारी प्राप्त की और उच्च अधिकारियों से मिल कर सफाई कर्मचारियों की माँगों को अत्यन्त विनम्रतापूर्वक और उचित तरीके से प्रस्तुत किया, जिससे वे उन्हें

स्वीकार कर लें। अधिकारी स्वयं ही नहीं समझ पाये कि डा. कुप्पुस्वामी ने उन्हें कैसे राजी किया! डा. कुप्पुस्वामी सही पक्ष के समर्थन हेतु अत्यन्त गम्भीर, स्पष्ट और सहानुभूतिपूर्ण थे तथा साथ-ही-साथ वे अपने सहयोगियों को प्रशिक्षित करते थे, उनकी सहायता करते थे और उन्हें सिफारिशी पत्र दे कर तथा साथ में रेल का किराया और जेब खर्च दे कर किसी अन्य अस्पताल में भेज देते थे। जोहोर और सेबरमन में सभी उन्हें अच्छी तरह जानने लगे थे। बैंक के मैनेजर उन्हें प्रसन्न करने के लिए किसी भी समय यहाँ तक कि छुट्टी के दिन भी उनके चेक लेने उनके घर आ जाते थे। वे अपनी मिलनसारिता और सेवा के द्वारा सभी के मित्र बन गये। उन्हें शीघ्र ही श्रेष्ठ पदोन्नति मिल गई और उनकी व्यक्तिगत प्रेक्टिस में भी शीघ्र ही सीमा से अधिक वृद्धि हो गई। लेकिन यह सब एक दिन में नहीं प्राप्त हुआ। इसके लिए कठोर परिश्रम, स्थिर दृढ़ता, उत्साहपूर्ण प्रयास, श्रेष्ठता और सद्गुण का वास्तविक जीवन में व्यवहार और अटल आस्था की आवश्यकता होती है।

डा. कुप्पुस्वामी अपने रोगियों की देखभाल अत्यन्त सावधानीपूर्वक करते थे और उनसे कभी फीस नहीं माँगते थे। जब रोगी कष्ट-मुक्त हो जाते, तो उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता की अनुभूति होती थी। लोगों की सेवा करना तथा जो अपने पास है, उसे बाँट देना—यह उनका जन्मजात स्वभाव था। वे अपनी चतुराई और विनोदशीलता से सभी को प्रसन्न रखते थे और स्नेहपूर्ण तथा उत्साहवर्धक शब्दों से रुग्णों को प्रसन्न करते थे। रोगी उनके साथ तत्क्षण नवीन स्वास्थ्य, आशा, स्फूर्ति, शक्ति और जीवन का अनुभव करते थे। सभी लोग कहते थे कि 'डा. कुप्पुस्वामी को ईश्वर से रोगहरण शक्ति का अनुपम उपहार प्राप्त है।' लोग उन्हें अत्यन्त दयालु और सहानुभूतिपूर्ण चिकित्सक कहते थे जो कि आकर्षक और चुम्बकीय व्यक्तित्व के धनी हैं। किसी भी रोगी की हालत गम्भीर होने पर वे उसके बिस्तर के पास सारी रात जागा करते थे। वे रोगी के साथ रह कर उसकी भावनाओं को समझते और उसके कष्ट को दूर करने का प्रयास करते थे।

डा. कुप्पुस्वामी अपने सहयोगियों और वरिष्ठ चिकित्सकों से अनुमान से अधिक आगे बढ़ गये तथा वे सभी इनके दयालु स्वभाव, भद्र और शिष्ट आचरण तथा निष्काम सेवा के कारण इनकी प्रशंसा और आदर करते थे। उनके सहयोगियों

और वरिष्ठ चिकित्सकों के वे दाँया हाथ थे और शीघ्र ही वे लोग डा. कुप्पुस्वामी पर पूर्ण विश्वास करने लगे और धीरे-धीरे अस्पताल का पूर्ण प्रबन्धन उनके हाथों में चला गया। डा. कुप्पुस्वामी को अब अस्पताल के पास ही बँगला दे दिया गया, जिससे वे जितना चाहे अधिक से अधिक समय अस्पताल में देने लगे। वे अपने लिए अनिवार्य सुविधाओं के लिए भी समय नहीं रखते थे। उनके लिए 'ड्यूटी पर नहीं हूँ', ऐसा कोई समय न था। वे निरन्तर काम पर रहते थे। वे मात्र भोजन तथा रात्रि में शयन हेतु कुछ समय लेते थे। इससे वे बड़े प्रसिद्ध हो गये और उनकी प्रसिद्धि सारे मलेशिया में जंगल की आग की भाँति फैल गई। उनके भीतर स्थित निष्कपटता, ईमानदारी, शुद्ध हृदयता, सम्पूर्ण एकाग्रता, पूजा की भाँति सेवा की भावना और उमंग तथा और भी बहुत-कुछ था जो अन्य डाक्टरों द्वारा असाध्य घोषित रोगियों को भी स्वस्थ कर देता था। यह बात समाज के अत्यन्त निर्धन वर्ग के ऐसे रोगियों को भी जो भयंकर रोगों के शिकार थे, अस्पताल खींच लायी। यह सब डा. कुप्पुस्वामी के लिए उनकी स्वयं की आकांक्षा—सेवा, सेवा और सेवा तब तक, जब तक यह शरीर सेवा में ही न खत्म हो जाये—की पूर्ति का साधन था। उनके पास प्रत्येक के लिए और विशेष रूप से निर्धन व्यक्ति के लिए मुस्कान थी।

डा. कुप्पुस्वामी को इस धरती पर ईश्वर का मूर्तिमान् स्वरूप (गरीबों का मसीहा) समझा जाता था। एक धार्मिक मनुष्य मोक्ष के लिए प्रसन्नतापूर्वक निर्धनता का आलिंगन करता है और इसके विपरीत सांसारिक मनुष्य निर्धनता से मुक्ति पाने के लिए तथा धन को भगवान् की तरह पूजने में अपनी सारी बुद्धिमानी और ऊर्जा लगा देते हैं। लेकिन डा. कुप्पुस्वामी के लिए गरीबी ने उनके हृदय के विकास हेतु एक महान् सुअवसर प्रदान किया। उनकी सेवा की आवश्यकता गरीबों को अमीरों से अधिक थी; क्योंकि अमीर लोग उनके बिना भी स्वस्थ हो सकते थे। परन्तु, यदि एक निर्धन व्यक्ति जो गन्दी बस्ती में रहता है और रोग का शिकार हो जाता है और यह रोग उन परिस्थितियों का ही परिणाम है जहाँ वह रहता है, तो डा. कुप्पुस्वामी स्वयं उसे अपने साथ ले आते और यदि आवश्यकता होती, तो उसे अपने घर पर रखते और उसे बिस्तर आदि सुविधाएँ देते और अपने परिजन के समान उसके साथ व्यवहार करते और उसकी देखभाल के लिए एक परिचारिका नियुक्त कर देते थे तथा

जैसे ही अस्पताल के काम से अवकाश मिलता, उसे देखने के लिए दौड़ कर आते। जब वह व्यक्ति स्वस्थ हो जाता, तो उसे कुछ रुपये दे कर वापस भेज देते।

जब डा. कुप्पुस्वामी मलेशिया में चिकित्सा सेवा में थे, तो वे पूर्णत: बाइबिल में वर्णित दयालु परोपकारी के रूप में परिवर्तित हो गये थे। उन्होंने इस कार्य में अपना तन-मन-धन—सब लगा दिया था। उनकी ऊर्जा, शरीर और योग्यता उनके साथ न हो कर हर उस प्राणी के साथ थी जो कष्ट में था और जिसे उसकी आवश्यकता थी और इस भावना से उन्होंने कभी स्वयं को मुक्त नहीं होने दिया। एक घटना है—एक बार एक दीन और अस्पृश्य जाति की स्त्री बच्चे को जन्म देने वाली थी, और कोई नहीं था जो उसकी सहायता करता। इस युवा डाक्टर ने (जो कुलीन ब्राह्मण परिवार में जन्मा था) तुरन्त ही उसका अपनी बहन की भाँति अत्यन्त सहानुभूति तथा सहृदयता पूर्वक ध्यान रखा और उसके दरवाजे के बाहर भूमि पर लेट कर सारी रात जागरण किया। जब हाथ में लिया सारा काम समाप्त हो गया, तभी वे अपने घर आये और अपने बारे में सोचा। सभी की सहायता करना, उनके कष्ट को दूर करना, दु:ख को कम करना, सान्त्वना और आराम प्रदान करना—यह उनकी आन्तरिक तृष्णा थी, जो उन्हें जीवन प्रदान करती थी।

एक बार एक गम्भीर रूप से पीड़ित गले का रोगी उनके पास आया, परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि इस रोगी की शल्य क्रिया हेतु स्थानीय अस्पताल में पर्याप्त साधन नहीं हैं। उन्होंने तत्काल सिंगापुर अस्पताल में कार्यरत अपने एक मित्र को पत्र लिखा और उसे रोगी के हाथ में दे कर और साथ में पर्याप्त धन दे कर अपने मित्र के पास सिंगापुर भेज दिया। सिंगापुर का अस्पताल बड़ा भी था, और वहाँ अधिक साधन भी थे, तथा वहाँ के चिकित्सक डा. कुप्पुस्वामी का सम्मान भी किया करते थे, और उनके द्वारा भेजे गये रोगियों पर विशेष ध्यान भी देते थे। वहाँ जाने पर उस रोगी की गले की शल्य क्रिया की गई और वह पूर्ण स्वस्थ हो कर वापस आया।

डा. कुप्पुस्वामी को यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि रोगी स्वस्थ हो गया। वे गले की शल्यक्रिया के बारे में सुनकर और भी अधिक प्रसन्न हुए उन्हें ऐसा लगा कि यह इतनी महत्त्वपूर्ण बात है इसके बारे में अत्यधिक प्रचार किया जाना चाहिये

इसलिये उन्होंने इसका पूरा विवरण एक सूचनाप्रद लेख के रूप में लिखा और समाचार पत्रों में प्रकाशित कराया।

वे मलाया ट्रिब्यून में विभिन्न विषयों पर भी लेख भेजा करते थे। हालाँकि उनकी संसार की दैनिक खबरों में कोई रुचि नहीं थी। फुटबाल, क्रिकेट और ऐसे अन्य खेलों से वे एक दम अनजान थे। वे मात्र कभी-कभी सम्पादकीय पढ़ा करते थे, अँगरेजी पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए। लेकिन समाचार पत्र वे नित्य खरीदते थे ताकि उन्हें देख कर अन्य लोग भी समाचार पत्र खरीदने के लिए प्रेरित हों, और एक संघर्षशील समाचारपत्र पर विक्रेता की आजीविका चल सके।

डा. कुप्पुस्वामी लन्दन के रॉयल इन्सटीट्यूट ऑफ पब्लिक हेल्थ ऐसोसिएट ऑफ रॉयल सेनेटरी इन्सटीट्यूट के सदस्य बन गये। अपने मलेशिया प्रयास की अवधि में उन्होंने कुछ चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकें जैसे हाउस होल्ड रेमेडीज़, फ्रूट्स ऐण्ड हेल्थ, डिसीज ऐंड देयर तमिल टर्मस, ओब्सटेट्रिक रेडी रेकोनर और फोर्टीन लेसन्स ऑन पब्लिक हेल्थ का प्रकाशन भी किया।

डाक्टर के साथ जीवन

जोहोर में डा. कुप्पुस्वामी के जीवन के साक्षी थे नरसिम्हा अय्यर जिन्होंने मलेशिया में रसोइये के रूप में तथा बाद में हिमालय में भी उनकी सेवा की।

प्रथम दिन नरसिम्हा अय्यर डाक्टर साहब के यहाँ काम पर आये तो डाक्टर साहब ने स्वयं अपना बिस्तर तो भूमि पर बिछा लिया और खटिया की ओर इशारा करते हुए कहा आप वहाँ सोयेंगे। यह वास्तव में एक रसोइये के लिए अति थी लेकिन आपत्ति प्रकट करने करने का कोई लाभ न था। वे बोले—"यहाँ पर भूमि पर सोना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। मुझे इसका अभ्यास है लेकिन आपको ऐसा खतरा नहीं मोल लेना चाहिये।" और डा. साहब ने नरसिम्हा अय्यर को कभी अपनी आज्ञा की अवहेलना नहीं करने दी।

अगले दिन प्रथम भोजन के समय नरसिम्हा अय्यर ने अत्यन्त आदर और कर्तव्य भाव से भूमि पर लकड़ी की चौकी बिछाई उस पर चाँदी की थाली रखी और भोजन परोसने वाले ही थे कि डा. साहब बोले आप भी मेरे साथ बैठिये। नरसिम्हा

अय्यर को मालिक के साथ बैठ कर खाना खाने में संकोच हो रहा था। किन्तु डाक्टर साहब ने पुनः कहा आप मेरी बायीं और बैठिये। खाने की सभी चीजें बीच में रख लें हम स्वयं ही परोसेंगे और एक साथ भोजन करेंगे। इस प्रकार उन्होंने भोजन प्रारम्भ किया। सब चीजों के बाद घी की बारी आयी तो उन्होंने घी की कटोरी में से थोड़ा घी स्वयं लिया और बाकी बायीं ओर रख दिया, फिर आश्चर्यजनक शीघ्रता से पूरा घी मेरी थाली में उडेल दिया। यही विधि दही के साथ भी अपनायी गई। नरसिम्हा अय्यर को अब समझ में आया कि डाकटर साहब ने उन्हें बायीं ओर बैठने को क्यों कहा। वह इसलिये कि बायीं ओर उन्हें नरसिम्हा अय्यर को भोजन परोसने में सुविधा होगी।

''आपमें और मुझमें क्या अन्तर है। आप थोड़ा कम कमाते हो और मैं थोड़ा अधिक यही ना। हम दोनों एक ही भोजन ग्रहण करते हैं, हम दोनों ही सोते हैं और जीवन के हर पहलू में हम दोनों के समान लक्ष्ण हैं। फिर आप मेरे भोजन करने की प्रतीक्षा क्यों करते हैं। क्या आपको भी उसी समय भूख नहीं लगती ? आप मेरे सामने खड़े क्यों रहते हैं? आपके पैरों में भी मेरी तरह ही दर्द होता होगा। आप गन्दे कपड़े क्यों पहनते हैं? आपके भीतर भी उतना ही स्वाभिमान होगा जितना मेरे पास है। हम दोनों पर ही स्वास्थ्य और आरोग्य के समान नियम लागू होते है। उच्चता और निम्नता के विचार कुछ अभिमानी धनी लोगों द्वारा प्रेरित किये जाते हैं। मैं उनकी आदतों को भली प्रकार जानता हूँ। वे हमेशा अपने नौकरों के लिए सड़ा हुआ भोजन और सड़े केले संग्रहित करके रखते हैं। मैं तो ऐसे विचारों से भी घृणा करता हूँ। आप मेरे परिवार के सदस्य हैं और भविष्य में मुझसे कोई संकोच न रखिये। '' यह डाक्टर साहब द्वारा उनके रसोइये को दिया गया प्रथम उपदेश था।

इससे नरसिम्हा अय्यर के हृदय में अपने मालिक को समीपस्थ से देखने की इच्छा जगी और उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि उनके मालिक अन्य की तुलना में अधिक श्रेष्ठ है तथा इसी कारण वे हमें स्वामी जी के मलेशिया में बिताये जीवन के बारे में २४ वर्षों बाद भी बता सके।

श्री नरसिम्हा अय्यर की सेवा को एक माह पूरा हो गया। प्रारम्भ में ही उनका पारिश्रमिक २५ डालर प्रतिमाह पक्का हो गया था। अगले माह की पहली तारीख को

डा. साहब रसोई घर में दौड़ते हुए आये और उनको एक लिफाफा दिया जिसमें ३५ डालर थे। नरसिम्हा अय्यर को १० डालर अधिक होने का कारण समझ में आया इसलिये उन्होंने डाक्टर साहब की तरफ देखा उन्होंने स्पष्ट किया यह तुम्हारा पुरस्कार है क्या इतना तुम्हारे लिए पर्याप्त होगा? श्री नरसिम्हा अय्यर ने बताया कि जब डाक्टर साहब अपने अधीनस्थ काम करने वालों को रुपयों का भगुतान करते थे तो वेतन पारिश्रमिक तनख्वाह आदि शब्द मैंने कभी उनके मुँह से नहीं सुने। यहाँ तक कि वे अपने नौकरों में भी ईश्वर को ही देखते थे और उन्हें कुछ भी देते समय उनका भावना यह रहती जैसे वे ईश्वर को अर्पण कर रहें हों।

नरसिम्हा अय्यर अपने काम से अवकाश मिलने पर धार्मिक पुस्तकें पढ़ा करते थे। वे कई तमिल संतों के कार्यों के बारे में मनन भी किया करते थे। डाक्टर साहब आड़ में छिपकर रसोई घर में देखते फिर पूछते वह क्या है? पट्टिनाथर का जीवन? क्या आपने इसे पढ़ा। फिर वे अत्यन्त मधुर लय में एक या दो श्लोक इस प्रकार बोलते जैसे कोई बच्चा अपने पिता को उस कविता के अंश गर्व से सुनाता है, जो उसने आज ही पाठशाला में सीखी है। यदि उन्हें ऐसा लगता कि नरसिम्हा अय्यर उनकी उपस्थिति में कुछ असहज हो गये हैं तो वे यह कहते हुए पीछे हट जाते 'पढ़िये पढ़िये यह बहुत ही अच्छी पुस्तक है'।

डाक्टर साहब के साथ अपनी सेवा की अवधि समाप्त होने पर नरसिम्हा अय्यर ने स्मृति स्वरूप अपने मालिक के साथ एक फोटो खिचवाने की इच्छा व्यक्त की। डाक्टर साहब तुरन्त दरवाजा बन्द कर कहीं चले गये और थोडी देर में वापस आ कर उन्होंने कहा फोटो ग्राफर तैयार है और उन्हें अपना सूट पहनने के लिए दिया स्वयं उन्हें स्टूडियो ले कर गये। वहाँ पर भी डाक्टर साहब ने स्वयं ही कुरसी आदि की व्यवस्था की। इस तरह नरसिम्हा अय्यर एक बार पुन: अपने मालिक के प्रसन्न हृदय और अन्यों से भिन्न व्यवहार से परिचित हुए।

जब फोटो खिंच गया तो डाक्टर साहब ने मुस्कराते हुए कहा कि आप उन वस्त्रों में एक वकील जैसे दिख रहे थे।'' फिर वे एक स्नेहपूर्ण हँसी हसे। वे दोनों घर वापस आ गये। नरसिम्हा अय्यर पुन: कमर में तौलिया लपेटे अपने काम पर नियुक्त हो गये चावल का घोल और अन्य व्यंजन बनाने में व्यस्त। डाक्टर साहब शीघ्रता से

रसोई घर में गये और बोले—''नरसिम्हा अय्यर आप इन वस्त्रों में बडे आकर्षक लग रहे हैं। क्या मैं फोटोग्राफर को बुला हूँ? एक बार पुनः वे स्नेह से हँसे और चले गये।

मित्रता पूर्वक विनोद करते रहना उनका आदत थी लेकिन इस हँसी में भी ज्ञान का कोई उपदेश छिपा रहता था। वे कभी भी नौकरों के साथ मालिक की तरह व्यवहार नहीं करते थे। वे उनसे प्रेम करते थे और उनके साथ खेलते थे। उनके लिए वे सभी एक समान थे।

यदि उनके पास कोई वस्तु विशेष हो तो अन्यों को भागीदार बनाने की डा. साहब की इच्छा बलवती हो जाती थी। एक बार की घटना के बारे में नरसिम्हा अय्यर बताते हैं—

एक दिन की बात है डा. साहब रसोई घर में आये तो नरसिम्हा अय्यर हरे केले की कढ़ी बना रहे थे। उसमें से डा. साहब ने कुछ टुकड़े उठा लिए और खाने लगे और खाते खाते कहते जा रहे थे अरे नरसिम्हा अय्यर ये धनी लोग खुशी को क्या जानें? राजकुमार लोग कौन-सी खुशी को जानते और उसका आनन्द उठाते है। इसे देखिये! क्या संसार में इसके समान अच्छी कोई चीज है? थोड़ी देर में वे बोले यह श्रेष्ठ कढ़ी है। हाथ में कटोरी और चम्मच लिए हुए ही वे टेलीफोन के पास दौड कर गये। उन्हें अपने मित्र सुब्रह्मण्य अय्यर की याद आयी जिन्हें यह कढ़ी जीवन के समान प्यारी थी। फोन लगाकर वे बोले—''अरे सुब्रह्मण्य अय्यर क्या आप जानते हैं इस समय मैं क्या कर रहा हूँ? मैं इस समय श्रेष्ठ कढ़ी खा रहा हूँ। जैसे ही यह तैयार हो जायेगी मैं आपके लिए भेजूँगा'' जब यह कढ़ाई में ही थी, पकी भी नहीं थी तभी मैंने इसे चख लिया था। मेरा नये रसोइये नरसिम्हा अय्यर जी बलिष्ठ शरीर वाले हैं और कमर पर एक तौलिया लपेटे हैं आपको कढ़ी देने आयेंगे। वह आपका घर नहीं जानते इसलिये आप उसका ध्यान रखिये।''कढी अब तैयार हो गई थी, तो नरसिम्हा अय्यर ने पूछा आप भोजन लेंगे? वे बोले पहले एक प्लेट कढ़ी लीजिये और सुब्रह्मण्य अय्यर को दे कर आइये। क्या आप उनका घर जानते हैं? नहीं? सड़क पर किसी से पूछिये। पहले उनके लिए ले कर जाओ फिर हम खायेंगे। यह

स्वामी जी के कथन—"पहले जो आपके पास है उसे अन्यों को दें फिर स्वयं लें" की अभिव्यक्ति थी।

डा. कुप्पुस्वामी के प्रेमल और दयालु स्वभाव की कुछ घटनाओं को यहाँ वर्णित किया जा रहा है।

"हे श्रीमान्! मैंने पिछले दो दिनों से भोजन नहीं किया, मैं बहुत भूखा हूँ। मैंने हर एक द्वार पर पुकारा, लेकिन मेरे दु:ख को कौन समझे! आह! प्रभु भी निर्दयी दिखाई दे रहे हैं। मैं मरने वाला हूँ। कोई भिखारी गली में पुकार रहा था। वह अपने सिर को पीटने लगा और गिर पड़ा।

हालाँकि यह सब डा. कुप्पुस्वामी से सीधे नहीं कहा गया था लेकिन उन्होंने उस भिखारी की पीठ को थपथपाया और उसे अपने घर में ले गये। उससे कहा यहाँ थोड़ी देर विश्राम करें। अरे नरसिम्हा अय्यर जो भी भोजन बना है उसमें से आधा यहाँ ले आइये। एक अच्छा पत्ता लीजिये और उसे प्लेट पर रख कर उसमें सुन्दर तरीके से सभी चीजें परोसें। और शीघ्र यहाँ ले आयें। जल्दी करिये। नरसिम्हा अय्यर अन्दर गये और भोजन ले कर आये।

"डा. कुप्पुस्वामी बोले—"बूढ़े बाबा आप यहाँ है। यह भोजन ग्रहण कर शक्ति प्राप्त करें।" उस वृद्ध भिक्षुक को अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। उसमे अपनी आँखे मलीं जिससे यह निश्चय हो सके कि वह स्वप्न तो नहीं देख रहा है।

डाक्टर साहब बोले "आइये आप संकोच क्यों कर रहे हैं।! अब वह भिखारी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए भोजन ग्रहण करने लगा। उसकी आँखों में आँसू थे जिन्हें उसके लिए रोकना अत्यन्त कठिन हो रहा था और ये ऊँचे कद के डाक्टर उसके हाथों पर पानी डाल रहे थे, वे कुछ समझ पाते इससे पहले ही वह उनके पैरों गिर पड़ा और उनके चरण छूने लगा। डाक्टर साहब ने उसे जेब खर्च भी दिया जो उसके दो दिनों के भोजन हेतु पर्याप्त था।

नरसिम्हा अय्यर जो यह पूरी घटना देख रहे थे। कुछ भी कहने में असमर्थ थे। अब डाक्टर साहब उनकी ओर मुड़े और बोले अब हम भी अपना भोजन ग्रहण करते हैं। अब बेचारा नरसिम्हा अय्यर क्या करता? उसने तो दो लोगो का भोजन बनाया

था और उसमें से आधा उस भिक्षिक को दे दिया गया था। उसने उत्तर दिया—"मैं थोड़ बना लूँगा और बाद में खा लूँगा।" तुरन्त स्वामी जी का उत्तर आया। कोई बात नहीं जो भी है उसे हम आपस में बाँट लेंगे। यदि हम एक दिन आधी मात्रा में भी भोजन लें तो क्या अन्तर पड़ता है। भूख तो सभी को एक समान ही लगती है। उस भिक्षुक को भोजन दे कर हमने भूख को ही शाँत (तुष्ट) किया है। यह उसकी है या हमारी सभी में एक समान है और तुरन्त ही वे भोजन करने बैठ गये।

ऊपर की तरह ही नरसिम्हा अय्यर को एक और घटना का स्मरण है—एक भिखारी डाक्टर साहब के बंगले पर आया उसने भोजन खरीदने के लिए कुछ पैंसों की माँग की। उन्होंने नरसिम्हा अय्यर से पूछा तो मालूम हुआ भोजन अभी तैयार नहीं हो सकता वे दरवाजे पर दौड़ कर आये और पूछा तुम्हें भोजन हेतु कितने रुपये लगते हैं उसने उत्तर दिया तीन सेन्ट। उन्होंने जेब में हाथ डाला और पचास सेंट निकाल कर उस भिक्षुक को दिये और कहा—"ये लीजिये और अच्छा सा भोजन करिये।"क्या इतना पैसा पर्याप्त होगा? वह भिखारी आश्चर्य से देखता रह गया। उसे ऐसा व्यवहार करने वाला जीवन में पहली बार मिला था। बाकी सब तो उसे अपशब्द कहते और ठोकरें मारते थे। लेकिन यहाँ तो उल्टा ही है। एक तो इतना सारा पैसा दे रहे हैं और यह पूछ रहे हैं कि क्या इतना पर्याप्त है। यह सब देख कर जैसे उसकी जुबान को ताला लग गया वह कुछ न कह सका। डाकटर साहब ने उससे पुन: प्रश्न किया परन्तु उत्तर न पा कर सोचा शायद इतना धन अपर्याप्त है। (इस समय तक वे लगातार अपनी जेब में कुछ ढूँढ़ रहे थे) उन्होंने एक और पचास सेंट का सिक्का निकाला और उसे दे दिया और कहा लीजिये और यदि यह भी कम हो तो पुन: मेरे पास आने में संकोच न कीजियेगा।"

श्री नरसिम्हा अय्यर ने हमें एक पढ़े लिखे युवा व्यक्ति की घटना सुनायी—"उसका नाम था सुब्रमनिया। उसकी आयु थी २४ वर्ष। वह नौकरी की खोज में मलेशिया आया था। वह सिंगापुर गया और एक प्रसिद्ध दक्षिण भारतीय सज्जन से मिला। उन्होंने तत्काल उसे डा. कुप्पुस्वामी के पास जोहोर भेजा तथा उससे कहा ये डाक्टर तुम्हारे लिए सबकुछ करेंगे। इस स्थान पर जितने लोग हैं उनमें से ये सर्वाधिक दयालु और सज्जन हैं। यदि वे तुम्हारे लिए कुछ न कर सके तो मेरे

ख्याल से कोई दूसरा भी कुछ न कर सकेगा तो मेरे ख्याल से कोई दूसरा भी कुछ नहीं कर सकेगा। उस युवक ने डाक्टर साहब के घर की चहार दीवारी के भीतर प्रवेश किया। उसके मन में आशा-निराशा के मिश्रित भाव आ रहे थे। इस समय डाक्टर कुप्पुस्वामी नरसिम्हा अय्यर के साथ शाम के समय घूमने गये हुए थे। जब तक वे वापस आये रात हो चुकी थी आने के तुरन्त बाद वे उस युवक के पास गये और इससे पूछा कि वे उसके लिए क्या कर सकते हैं। सुब्रमनिया ने उन्हें अपने मलेशिया आने के उद्देश्य के बारे में बताया और कहीं काम दिलाने हेतु प्रार्थना की डाक्टर साहब की प्रतिक्रिया युवक के लिए आश्चर्य जनक थी वे बोले मैं निश्चित ही आपको काम दिलाने का प्रयास करूँगा। अब अन्दर आ जाइये। आप अभी मेरे साथ ही रहें और इसे अपना ही घर समझें। चलिये, अब हम भोजन करें। उस युवक की मनोभावना का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था।

युवक वहीं रहने लगा उसके साथ डाक्टर साहब का व्यवहार ऐसा था जैसे वह उनका भाई हो। इस प्रकार एक माह पूरा बीत गया। उसके आने के तुरन्त बाद ही डाक्टर साहब को उसके लिए काम मिल गया था, परन्तु उन्होंने उस युवक को बताया ही नहीं, कि कहीं वह ऐसा न समझ ले कि वे उससे छुटकारा पाना चाहते हैं। वास्तव में उन्होंने अपने मित्र से बात की थी जो रेलवे में थे और उन्होंने उसे तुरन्त ही काम पर रख लिया। सुब्रमनिया ४० डालर प्रतिमाह पर काम पर जाने लगा और अधिक आश्चर्य उस समय हुआ जब उसने अपने रहने के लिए स्थान ढूढ़ने की बात की तो डाक्टर साहब का उत्तर था रात के भोजन के समय मैं स्वयं ही बात करूँगा और उस समय वे बड़े ही अनूठे तरीके से बोले कि आपको यहाँ से जाने के बारे में कभी भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। वह एक माह तक वहाँ रहा। उसे प्रथम माह का वेतन भी प्राप्त हो गया और वह अब अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता था। अत: डाक्टर साहब ने उसकी भावनाओं का ध्यान रखते हुए उसे जाने की अनुमति दे दी।

अगले दिन उन्होंने युवक के लिए मध्यम किराये का एक घर ढूँढ़ दिया और उसकी व्यवस्था भी करके दी। उन्होंने नरसिम्हा अय्यर से उसके लिए एक माह तक भोजन भेजने तथा रसोई के लिए सभी आवश्यक बर्तन भेजने को कहा तथा उसे यह

आश्वासन भी दिया कि मैंने दुकानदार को कह दिया है कि आपको जो भी चीज उधार चाहिये हो दे दे और इन सबसे महत्त्वपूर्ण आश्वासन यह था कि आवश्यकता पड़ने पर वे डा. साहब को नि:संकोच बुला लें।

वे यह भी नहीं सोचते थे कि उन्होंने किसी की जो भी सहायता की है उसके लिए वह उनका आभार माने बल्कि वे यह सोचते थे कि—"क्या मैंने वह सब किया जो मैं कर सकता था?"

उन्होंने सुब्रमनिया की विदाई हेतु बड़ा भोज दिया और उसे नये घर हेतु मार्गदर्शन भी दिया।

डाक्टर साहब को मलेशिया आने पर जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उन्हें वे कभी नहीं भूले। कोई भी व्यक्ति जो ऐसी परिस्थिति में होता वह डा. साहब को अपनी सहायता के लिए सदा तत्पर पाता था। वे अपनी जेब में हमेशा सभी प्रकार के सिक्के रखते थे। अपने घर के बाहर सड़क पर घूमते समय वे अपनी जेब में हाथ डाल कर सिक्कों को खनखनाते रहते थे जिससे उन्हें सिक्कों की उपस्थिति का सदा भान रहे। जिस दिन वे नियत अंश दान नहीं कर पाते थे उन्हें बड़ा दु:ख होता था।

मलेशिया के श्री सीताराम अय्यर याद करते हैं कि उनके तरीके बड़े ही विलक्षण थे। वे सदा प्रफुल्लित रहते थे। उनके पास सभी के लिए मुस्कान और सहानुभूति पूर्ण शब्द थे। वे कभी भी ऊँच-नीच का विचार नहीं करते थे। वे सबके साथ समान व्यवहार करते थे। यदि उन्हें सड़क पर कोई श्रमिक मिल जाता तो वे रुककर उससे थोड़ी देर प्रेमपूर्वक बात करते और आगे बढ़ जाते थे। हम जो भिन्न-भिन्न प्रकार का व्यवहार करते हैं अक्सर उनमें दोष निकाला करते थे। लेकिन वे यह कहते थे कि आप अनुमान कीजिये मेरी बातचीत से उसे कितना आनन्द आया होगा और यह भी उसे खुशी दे कर मेरा क्या कम हो गया? बल्कि मुझे भी इससे थोड़ी खुशी मिली। वे वस्त्र तो राजाओं को समान पहनते लेकिन श्रमिकों से बराबरी जैसी बातें करते थे, ये एक संत के लक्षण थे जिन्हें हम उस समय पहचान न सके।

क्रय विक्रय में मोलभाव से वे अनजान थे। कभी कभी नरसिम्हा अय्यर भी उनके साथ खरीददारी करने जाते। दुकानदार जो भी मूल्य माँगता वे बिना कुछ बोले दे देते। नरसिम्हा अय्यर ने पाया कि वास्तव में डाक्टर साहब ऐसा (मोलभाव) करना ही नहीं चाहते थे। नरसिम्हा अय्यर डाक्टर साहब से बोले ग्राहक मोलभाव करते हैं इसलिए दुकानदार हमेशा अधिक भाव बताते हैं। उन्होंने उत्तर दिया कोई बात नहीं मैं मोलभाव नहीं कर सकता। वह एक गरीब आदमी है। वह जितनी अपेक्षा रखता है उससे कुछ सेंट और अधिक कमाने दीजिये। एक बार मेरा स्वभाव समझ जायेगा तो आगे से भाव अधिक बताने की आदत छोड़ देगा।

डा. कुप्पुस्वामी सदा दूसरे की बात मान लेते थे। वे कभी प्रश्न या शंका नहीं करते थे। एक बार वे एक कार खरीदना चाहते थे कोई व्यक्ति उनसे इस काम के लिए कुछ धन ले कर आया और बहुत समय बाद उन्हें पता चला कि उसने कार करीदने के लिए वह धन दिया ही नहीं। लेकिन डाक्टर साहब का कहना था, कोई बात नहीं भगवान् की ऐसी ही इच्छा रही होगी। वे स्पष्टवादी, निष्कपट, सरल और खुले हृदय के स्वामी थे।

उन्हें राजसी पोषाकें बहुत प्रिय थीं तथा उनके पास सोने, चाँदी और चन्दन की अलंकृत वस्तुओं का संग्रह था। वे कई प्रकार की सोने की अँगूठियाँ और चेने आदि खरीदते थे और उन सभी को एक साथ पहन लेते थे। जब वे दुकान में जाते थे तो चुनाव करने में समय नहीं बरबाद करते थे बल्कि जो भी वे देखते एक साथ खरीद लेते थे वे चीजों का बिल भी बिना छान बीन किये एक साथ चुका देते थे। उनके पास बहुत-सी टोपियाँ थी लेकिन उन्हें वे पहनते नहीं थे, कभी-कभी वे फर की टोपी या कभी राजपूत राजा की भाँति रेशमी पगड़ी बाँधते थे।

उनके मलेशिया के मित्र श्री सीतारामा अय्यर जब ऋषिकेश आये तो उन्होंने स्मरण करके बताया कि वे सदा मंहगे कपड़े पहनते थे। उनकी आलमारी में मात्र रेशमी कपड़े ही थे लेकिन उन्हें वे बिल्कुल भिन्न तरीके से पहना करते थे। वे कभी भी रेशमी वस्त्र का विशेष ध्यान नहीं रखते थे। पहनने के बाद उन्हें ऐसे फेंक देते थे जैसे कोई पुराना कपड़ा हो।

''उन्हें आभूषणों का बहुत शौक था। उनके पास गले में पहनने की ढेरों सोने की चेने थीं और दसों उँगलियों में पहनने की कम-से-कम दस अँगूठियाँ थीं। किसी किसी दिन वे सुबह उन सबको पहन लेते थे और घूमने निकल जाते थे और अगले दिन वे पेटी में अदृश्य हो जाती थी और महीनों के लिए भुला दी जाती थीं। उनके पास भिन्न-भिन्न प्रकार की पगड़ियाँ थीं।

कुप्पुस्वामी जब बालक थे धार्मिक ग्रन्थों का पाठ भक्तिपूर्वक सुना करते थे। युवा होने पर उनके पास योग पर आधारित पुस्तकों का छोटा-सा पुस्तकालय था और यह उनके हर बार पुस्तक की दुकान पर जाने के साथ-साथ बढ़ता जा रहा था। यही कोष वे मलेशिया से अपने साथ ले कर आये थे।

मलेशिया में वे आध्यात्मिक पुस्तकों की सम्पत्ति में विधिवत् वृद्धि करते रहे। नरसिम्हा अय्यर बताते हैं कि डाक्टर साहब हमेशा अपने साथ पुस्तकों की सूची रखा करते थे और यह सूची वे अक्सर किताबों की दूकानों पर ले जाया करते और दुकानदार से कहते कि जो पुस्तकें इस सूची में नहीं हैं वे सभी भेज दें। कुछ पुस्तकों की भाषा डाक्टर साहब नहीं जानते थे, तो भी उन्हें खरीद लेते थे। ताकि अन्य लोग उनसे लाभान्वित हो सके। जो-कुछ भी डा. साहब पढ़ते पूर्ण रुचि और आनन्द से पढ़ा करते थे। नरसिम्हा अय्यर ने जब पहले दिन काम करना प्रारम्भ किया तभी डाक्टर साहब ने उनको अपने पुस्तकालय से परिचित करा दिया था और उन्हें धार्मिक और आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ने हेतु प्रोत्साहित किया। वे अपने सम्पर्क में जो भी आता उसे अपने पास उपलब्ध पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करते थे।

उनका पुस्तकालय हर उस व्यक्ति के लिए खुला था, जो पुस्तकों के प्रति अपने प्रेम को प्रगट करता था। उनके मिलनसार स्वभाव के कारण बहुत से मित्र उनकी और आकृष्ट हुए और वे सभी उनके पुस्तकालय के सदस्य बन गये। इसके फलस्वरूप दुगना सत्संग होने लगा। पुस्तकें तो स्वयं ही संतों की मंडली थीं जो अवकाश के क्षणों में उनके साथ रहती थीं। लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह था कि उन्हें घर, बाजार, समुद्र के किनारे हर जगह ऐसे मित्र मिलते जो उनकी ही भाँति आध्यात्मिक बातों में रुचि रखते थे। इस प्रकार बहुत कम समय अन्य प्रकार की बातों में व्यय होता था। हर एक उनसे यह कहते हुए मिलता उस किताब में उस

योगी ने कहा. . .। आदि आदि और एक जीवंत विवेचन प्रारम्भ हो जाता। यह विवेचना डाक्टर कुप्पुस्वामी को अक्सर गहरे दिवास्वप्न में डुबो देती थी और अक्सर वे आध्यात्मिक ज्ञान के सागर में सत्य के मोतियों की खोज में गोते लगाते। नरसिम्हा अय्यर बताते हैं कि उनका रात्रि का अधिकांश समय घर के चारों ओर स्थित बगीचे में घास पर घूमते हुए अथवा अपने अध्ययन के ऊपर मनन करने में बीतता था। संसार की अस्थायी प्रकृति, समय का द्रुतगामी लक्षण, सुख और दुःख का अनन्त तथा राग और द्वेष जो सम्पूर्ण प्रकृति का मूल है ये सब विचार उनके मन में भ्रमित होते रहते थे। उन्होंने पाया कि दुःख हर एक का अपरिहार्य साथी है। सड़क के किनारे भिखारी, गली में कोढ़ी, अस्पताल में क्रंदन करते रोगी, कष्ट पीड़ित तथा गरीबी से त्रस्त लोग, ये सभी उन्हें निरन्तर मानव मात्र के दुःखों का स्मरण कराते रहते थे।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वे नश्वरता और क्षणभंगुरता के मध्य जो अमरता और स्थायित्व खो गया है, उसकी खोज में और अन्तरमुखी होते चले गये। ऐसे ध्यान के समय वे अक्सर संसार को भी भूल जाते थे।

अचानक उन्होंने गीता पढ़नी प्रारम्भ कर दी। गीता में भगवान् अर्जुन से कहते हैं—''इस नश्वर और क्षणभंगुर तथा दुःख से परिपूर्ण जगत् में जन्म लेने पर तुम मेरी पूजा करो।'' यह पढ़ कर उन्होंने कहा—''हे भगवान् आपने अत्यन्त शीघ्र और सरलता से मेरी समस्या हल कर दी।'' अब वे अपना अधिकांश समय भगवान् के नाम गाने, मानसिक जप करने, विधिपूर्वक पूजा करने तथा भगवान् के गरिमामय भक्तों के चरित्रों का अध्ययन करने में लगाने लगे।

उन्होंने सेनावांग रियासत के अस्पताल में सत्संग प्रारम्भ किया। जोहोर बेहरू में यह रात्रि का नियमित कार्यक्रम था। डा.साहब की आवाज इतनी मधुर थी कि अच्छे से अच्छा गायक भी उनसे ईर्ष्या करता, लेकिन उनके मन में यह विचार आया कि यदि मैं गाने के साथ वाद्य भी बजाऊँ तो यह मेरे भगवान् को और भी प्रिय लगेगा और इस प्रकार मैं भक्ति में और अधिक ऊँचाई तक बढ़ सकूँगा इसलिये उन्होंने हारमोनियम सीखने का निश्चय किया तथा एक संगीत शिक्षक को कुछ सप्ताह तक

हारमोनियम सिखाने हेतु रख लिया। उसे भोजन तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान की गई और एक माह में डा. कुप्पुस्वामी हारमोनियम बजाना सीख गये।

संगीत शिक्षक को पारिश्रमिक के रूप में डा. साहब ने २०० डालर दिये। उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ मात्र आधा घण्टे की २०-२५ दिनों की कक्षा के लिए २०० डालर। इसकी तो उन्हें आशा भी नहीं थी। यह भी डा. कुप्पुस्वामी की महानता का एक और उदाहरण था।

प्रत्येक शाम को डा. साहब नरसिम्हा अय्यर और कुछ चुने हुए मित्रों के साथ पूजा के कमरे में बैठ कर भगवान् के नाम का कीर्तन प्रारम्भ कर देते, उनकी आँखों से प्रेमाश्रु की अविरल धारा बह कर गालों पर से बहने लगती थी। सबके चले जाने पर भी वे देर रात तक मानसिक मन्त्र जप करते रहते थे। अब वे अपना अधिकांश समय भगवान् के बच्चों (रोगियों) की सेवा तथा रात का समय ईश्वर के नाम के जप के लगाने में लगाने लगे। उन्होंने विश्राम का समय नाम मात्र का कर दिया।

वे रामायण तथा भागवत पर प्रवचनों का आयोजन कराने लगे तथा उनका घर धर्म परायणों, निर्धनों तथा असहायों का स्थाई आवास बन गया। अपने घर में उन्होंने एक बड़ा कमरा अलग कर लिया और उसे सजा लिया। इसमें उन्होंने एक मंच बना लिया। वे अपने आसपास के बच्चों को एकत्र करके उन्हें अभिनय का प्रशिक्षण देते थे। बच्चों से उन्होंने कई संतों के चरित्र का अभिनय करवाया। जब उन्होंने 'संत नंदनार' नाटक का मंचन किया तो कई यूरोपियन अधिकारी भी उनके साथ कीर्तन करने हेतु बाध्य हो गये थे। डा. कुप्पुस्वामी स्वयं भी इन नाटकों में हिस्सा लेते थे। इससे उन्हें बहुत अधिक प्रेरणा मिलती और इन संतों के आदर्श सदा उनके मानस पटल पर रहते थे।

वे अपने आसपास और सुबरबन के कस्बों में होने वाले सभी धार्मिक और सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेते थे। डाक्टर साहब की उपस्थिति के बिना किसी को आनंद नहीं आता था। वे उनके भीतर आनंद और ऊर्जा भरते थे। वे हंसी मज़ाक और मनोरंजक गीतों के द्वारा सभी को खूब हंसाते थे। वे इन गीतों के साथ हारमोनियम भी बजाया करते थे।

यदि कभी उनका कोई इष्ट मित्र उन्हें निमंत्रण भेजना भूल जाता या उन्हें निमंत्रण नहीं मिलता तो वे सीधे अपने मित्र के पास जाते और कहते ''क्या आप मुझे भूल गये?'' फिर भी आप मेरे मित्र हैं और मैं आपके बच्चे के जन्म दिन समारोह में आने हेतु बाध्य हूँ और उसके बाद अपनी राजसी निर्भीकता के साथ डा. कुप्पुस्वामी संकीर्तन प्रारंभ कर देते, किसी की अनुमति कोई परिचय या औपचारिकता की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी। हर व्यक्ति जो उनके संपर्क में आता वह उनके उत्साह से प्रभावित हो जाता। कई लोग पहले उनका उपहास करते लेकिन बाद में उनके साथ सम्मिलित हो जाते।

वे निर्धनों और ब्राह्मणों के लिए बड़ा भोज (भंडारा) दिया करते थे। वे अत्यंत श्रद्धा और भक्ति के साथ अपने पूर्वजों का श्राद्ध करते थे और इसके लिए सैकड़ों मील दूर से पंडितों को आमंत्रित करते थे वे अस्पृष्यों को भी अक्सर भोजन कराते थे और उनके माथे पर चंदन लगाते थे ये सभी उदारतापूर्ण कार्य उन्हें भविष्य में **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** सभी वास्तव में ब्रह्म ही हैं इस सत्य का साक्षात्कार करने में सहायक हुए।

कुछ पुस्तकों की सहायता से डा. कुप्पुस्वामी ने शीर्षासन तथा कुछ अन्य महत्वपूर्ण आसनों का अभ्यास प्रारंभ किया। उनका उत्साह इतना अधिक था कि नरसिम्हा अय्यर भी आसनों का अभ्यास करने लगे। रात के समय सोने के पहले डा. साहब ने नरसिम्हा अय्यर को बुलाया और पूछा क्या तुम जानते हो सिर के बल कैसे खड़े होते हैं? पहले आप मेरी सहायता करिये फिर मैं आपकी सहायता करूँगा। वे तैयार हो गये। डाक्टर साहब ने अपना सिर तकिये पर रखा और पैर सीधे दीवार के सहारे ऊपर की ओर कर दिये और बोले ''अरे मेरे पैरों को पकड़ के रखिये वे हिल रहे हैं। उन्हें दीवार से सटा कर रखिये। अब ठीक है'' फिर वे सामान्य स्थिति में आ गये और बोले ''आइये, अब आप करिये।'' यद्यपि नरसिम्हा अय्यर का इस आसन से थोड़ा परिचय तो था लेकिन वे इसमें पूर्ण कुशल न थे, इसलिये वे डर रहे थे। लेकिन डाक्टर साहब ने उन्हें आश्वासन किया ''चिन्ता न करिये मैं आपके पैर जोर से पकड़ कर रखूँगा।''

नरसिम्हा अय्यर ने प्राणायाम, त्राटक तथा अन्य हठ यौगिक क्रियाओं का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। वे गंदे और पुराने वस्त्र पहने रहते, कंघी नहीं करते और उन्होंने अपने कानों की बालियाँ, चूड़ी आदि आभूषण उतार के रख दिये सारांश में कहा जाये तो उन्होंने स्वयं को कुरूप कर लिया। उन्हें यह लग रहा था कि जीवन की आवश्यकताओं को त्याग देने से वे परमानंद प्राप्त कर सकेंगे। जब भी उन्हें अवकाश मिलता वे भंडार गृह में चले जाते और प्राणायाम तथा दीवार के सहारे अपूर्ण शीर्षासन करने लगते। अनियमित ढंग से इन क्रियाओं को करने के कारण ये उनके शरीर पर हानिकर प्रभाव डाल रही थीं और इससे उनके स्वास्थ्य की हानि होने लगी और यह उनके हृदय में कष्ट आदि के द्वारा व्यक्त होने लगी।

डाक्टर कुप्पुस्वामी ने नरसिम्हा अय्यर में आ रहे परिवर्तनों पर ध्यान दिया। चाहे कोई गलत क्यों न हो वे शीघ्र ही किसी के काम में बाधा नहीं डालते थे लेकिन एक दिन वे अनापेक्षित रूप से भंडार गृह में चले गये। वहाँ पर उन्होंने नरसिम्हा अय्यर को प्राणायाम करते देखा। उस समय उन्होंने छोटा सा व्याख्यान दिया "आपको इन चीजों को अधिक गंभीरता से नहीं लेना चाहिये। ये लेखक उनके दिमाग में जो भी होता है लिख देते हैं, बिना यह सोचे विचारे कि जिज्ञासुओं को उनके निर्देशों के पालन के कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। वे संयुक्त विधि से शिक्षा नहीं देते। उनका लेखन एक तरफा होता है। वे आधारभूत बातों की उपेक्षा करके मात्र उच्च आध्यात्मिक अभ्यासों के बारे में लिखते हैं उनका विस्तार से वर्णन करते हैं साथ ही यह सावधानी भी नहीं लिखते कि इन्हें किसी कुशल निर्देशक से सीखना चाहिये क्योंकि ऐसा लिखने से उनकी पुस्तक के बिकने में कठिनाई होगी। इन हठयौगिक क्रियाओं को सीखने के लिए किसी के कुशल निर्देशन की आवश्यकता होती है। आप भगवान् का नाम लीजिये जिसमें किसी निर्देशक की आवश्यकता नहीं होती। इनको छोड़ दीजिये। इनका उतना ही अभ्यास कीजिये जितना अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।" नरसिम्हा अय्यर बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने डा. साहब की आज्ञा का पालन किया।

लेकिन आध्यात्मिक पथ पर बढ़ने की नरसिम्हा अय्यर की उमंग कम नहीं हुई। एक दिन उन्होंने डा. साहब से कहा वे यह संसार छोड़कर हिमालय जाना चाहते

हैं। जहाँ वे एक योगी की खोज करेंगे। फिर उनके चरणों में रहकर योगाभ्यास करेंगे। डाक्टर कुप्पुस्वामी यह सुनकर बड़े प्यार से बोले ''रुकिये, एकदम से अपने उत्तरदायित्वों का त्याग न कीजिये। एक बार वैवाहिक दायित्व लेने के बाद उन्हें अवश्य ही पूर्ण करना चाहिये अन्यथा आपके सामने कठिनाइयाँ आयेंगी जो आपके आध्यात्मिक मार्ग में बाधक बनेंगी। इस संन्यास की इच्छा को अपने भीतर बनाये रखिये, अभी इसमें समय है। और भगवान् ही निर्णय करेंगे कि कब आपको बन्धनों से मुक्त करना है, और तब आपको उनकी कृपा अवश्य ही प्राप्त होगी और आपको हिमालय में एक योगी की सहायता मिलेगी जो आपका आगे के लिए पथ-प्रदर्शन करेंगे।

बाद में नरसिम्हा अय्यर २४ वर्ष बाद पुनः अपने मालिक के साथ जुड़ गये एक नौकर की भाँति नहीं वरन् एक शिष्य की तरह। मलेशिया छोड़ने के २४ वर्ष पश्चात् वे स्वामी शिवानन्द जी से गंगा तट पर मिले। बड़े ही आश्चर्य से वे बोले आपका कथन कितना सत्य था। आप उस समय भी भविष्य का पूर्वानुमान और कथन सौ प्रतिशत सही कर सकते थे।

मलेशिया के दूरवर्ती कस्बों में बहुत कम स्वामी लोग दिखाई देते थे। एक बार डा. साहब के घर पर सुबह एक स्वामी आयें वास्तव मे वे सिंगापुर जा रहे थे, मलेशिया में उन्होंने डा. कुप्पुस्वामी की बड़ी प्रशंसा सुन रखी थी, इस कारण वे डा. साहब को देखना चाहते थे और उनके घर आये थे। डा. कुप्पुस्वामी उन स्वामी को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और सब कुछ भूलकर उनके आतिथ्य सत्कार में लग गये। उन्होंने स्वामी जी के हाथ पैर धुलाये, उन्हें आराम से सोफे पर बैठाया और पंखा झलने लगे तथा इसी समय उन्होंने नरसिम्हा अय्यर को एक गिलास गर्म दूध लेकर आने के लिए कहा। स्वामी जी के आतिथ्य सत्कार से वे बड़े प्रसन्न हुए। डा. साहब ने उनसे कहा आप यहाँ आराम से बहुत दिनों तक रहें।

कुछ दिनों बाद वे स्वामी जी अस्वस्थ हो गये। डा. साहब की अत्यन्त सावधानीपूर्वक की गई परिचर्चा स्वामी जी को मोहित कर दिया। स्वामी जी के पास कुछ अत्यन्त बहुमूल्य पुस्तकें थीं जिन्हें वे अत्यन्त गुप्त रखते थे और उन्हें अपने से कभी अलग कभी नहीं करते थे, लेकिन अब उन्हीं स्वामी जी ने डा. साहब को

स्वामी कडप्पई सच्चिदानंद योगेश्वर-रचित जीव-ब्रह्म ऐक्य वेदान्त रहस्यमय पुस्तक स्वेच्छा से दे दी। इस पुस्तक ने उनके भीतर आध्यात्मिक अग्नि पुनः प्रज्वलित कर दी और उनके विचारों को ईश्वर की ओर मोड़ा। इसने उन्हें अन्य पुस्तकें जैसे स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद जी के साहित्य तथा ब्रह्म विद्या सम्बन्धी पुस्तकों को पढ़ने हेतु प्रेरित किया। स्वामी जी ने थोड़े दिन रुकने के बाद कहा कि अब मुझे किसी से अत्यावश्यक रूप से किसी से मिलने सिंगापुर जाना है, इसलिये अब मेरा रुकना सम्भव नहीं होगा। भारी हृदय और अत्यधिक अनिच्छापूर्वक डा. कुप्पुस्वामी ने सहमति दी और उन्हें स्वादिष्ट भोजन कराया। उन्हें रास्ते में साथ ले जाने के लिए स्वादिष्ट दक्षिण भारतीय व्यंजन बनवा के दिये। वे स्वामी जी को स्टेशन तक छोड़ने के लिए गये। जाते समय वे स्वामी जी को अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखते रहे और साथ ही उनसे यह भी वचन लिया कि जब वे वापस जोहोर आयें तो उन्हें पत्र अवश्य ही लिखें। स्वामी जी ने भी जाते समय डा. कुप्पुस्वामी के निःस्वार्थ, शुद्ध और दिव्य प्रेम को प्रत्यक्ष देखा और उन्होंने जैसा कुप्पुस्वामी चाहते थे, वह वचन भी दिया और शीघ्र ही उसे पूर्ण भी किया।

डा. कुप्पुस्वामी का यहाँ अन्य प्रकार के पुण्यात्मा लोगों से भी सामना हुआ। एक बार बातचीत के समय उन्होंने अपने शिष्यों को बताया:

मलेशिया में कुछ तांत्रिक थे। उनमें से एक तांत्रिक कुछ मंत्रों और यंत्रों का भी ज्ञान रखते थे। तंत्र एक अनूठी विद्या है। वे तांत्रिक एक विशेष अनुलेप अपने दाँयें हाथ के अंगूठे के नाखून पर लगाते थे जिससे स्वयं हनुमान जी प्रगट होकर प्रश्नकर्ता के प्रश्नों का उत्तर दिया करते थे। वे तांत्रिक यह भी बता सकते थे कि अमुक स्थान पर क्या हो रहा है? और अमुक व्यक्ति क्या कर रहा है? कहाँ पर है आदि, आदि। आज भी मुझे वह मंत्र याद है।

मेरे मन में उस मंत्र सिखने वाले व्यक्ति के प्रति आज भी आदर भाव है। जब भी अवसर आता मैं उन्हें प्रणाम करता और उनकी सेवा करता। बाद में मैंने तांत्रिक क्रियाओं को छोड़ दिया क्योंकि मैं देवताओं को वशीभूत कर के उनसे चीज़ें प्राप्त करने के विचार को पसन्द नहीं करता। मैंने कहा ''भगवान् की पूजा और आराधना करना चाहिये। उन्हें हमारी सेवा हेतु विवश नहीं किया जाना चाहिये।'' और उस योगी को कुछ रुपयों की थैली देकर मैंने वापस भेज दिया।

संन्यास

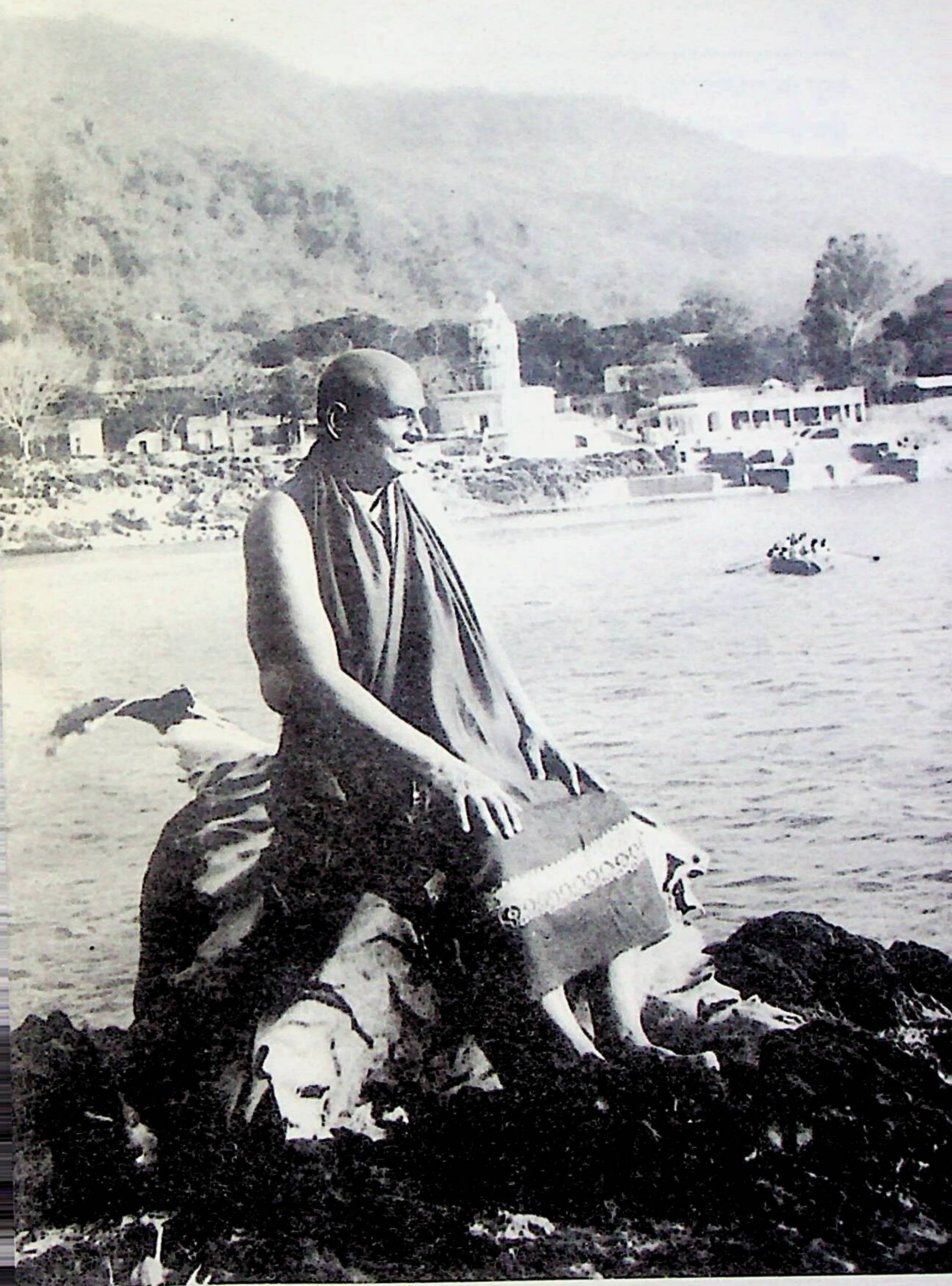
डा. कुप्पुस्वामी का इस सांसारिक जीवन से संन्यास रहस्यमय आवरण में था। वे स्वयं मौन थे और वहाँ मात्र दो प्रारंभिक कारण थे दोनों ही इस बात से सम्बद्ध थे कि वे भारत लौटने के बाद क्या करेंगे? निम्नलिखित विचार श्री नरसिम्हा अय्यर द्वारा बताई गई बातों पर आधारित हैं:

डाक्टर कुप्पुस्वामी मनन करने पर इस तथ्य पर पहुँचे कि यह सत्य है कि मैं धन द्वारा समाज की सहायता कर सकता हूँ लेकिन फिर भी इस प्रकार जो सेवा मैं करूँगा वह मात्र शारीरिक सेवा ही होगी। मैंने सुना है कि आध्यात्मिक सेवा को सच्ची सेवा कहते हैं। इसके द्वारा मानव मात्र को कष्टों से एक बार के लिए नहीं सदा के लिए मुक्ति प्राप्त हो सकती है और यदि मैं अन्यों को यह आध्यात्मिक समृद्धि वितरित करना चाहूँ तो पहले मुझे स्वयं यह सम्पत्ति अर्जित करनी होगी।

मैं संन्यास लूँगा। हाँ, हे प्रभु, आप मेरे हृदय के भीतर के कोने से कह रहे हैं कि मुझे संन्यास लेना चाहिये। अभी आधी रात से अधिक बीत चुकी है लेकिन मेरी आँखों में नींद का नाम न था। मैं कल ही सामान बाँध लूँगा और अपने अमर धाम को खोजने जाऊँगा। मैं अब भगवद् साक्षात्कार करूँगा। उस समय उनकी मानसिक स्थितियों के बारे में उन्होंने लिखा है:

''क्या दैनिक कार्यालयीन कार्यों, भोजन करने और पीने के सिवा जीवन का अन्य कोई उच्च लक्ष्य नहीं है। इन नित्य परिवर्तनशील तथा भ्रामक सुखों से श्रेष्ठ आन्तरिक सुख का कोई रूप नहीं है। इस पृथ्वी पर विभिन्न रोगों, आकुलताओं, भय और निराशाओं के साथ जीवन कितना असुरक्षित है। नाम रूपों का यह संसार निरन्तर परिवर्तनशील है। समय बीतता जा रहा है। इस संसार में सुख की सभी आशायें दर्द, निराशा और दुःख में समाप्त होती हैं।''

ऐसे विचार निरन्तर मेरे मन में उठते रहते थे। चिकित्सा के व्यवसाय में मैंने इन कष्टों को भोगते लोगों को देखा। विवेक और वैराग्य सम्पन्न तथा सहानुभूति पूर्ण





हृदय वाले मनुष्य के लिए यह जगत् दुःखों से परिपूर्ण है। सत्य और खोया हुआ सुख मात्र धन संग्रह से नहीं प्राप्त हो सकता। निष्काम सेवा द्वारा हृदय के शुद्धिकरण से मुझे एक नवीन दृष्टि प्राप्त हुई।

मेरे भीतर पूर्व से ही यह विश्वास था कि वह स्थान अवश्य है जो अति सुन्दर, पवित्र तथा दिव्य तेज से आलोकित है। यही हमारा प्रिय परम धाम है, जहाँ आत्म-साक्षात्कार द्वारा पूर्ण सुरक्षा, परम शाँति और स्थाई सुख प्राप्त होता है। मुझे प्रायः शास्त्रों द्वारा बताई गई बातें का स्मरण हो आता है कि जब मनुष्य को वैराग्य हो जाये उसे उसी क्षण इस संसार से संन्यास ले लेना चाहिये।'' तथा यह भी कि ''सत्य को जानने के लिए व्यक्ति को संन्यास ले लेना चाहिये।''

शास्त्रों के शब्द अत्यन्त मूल्यवान हैं। सन् १८२३ में मैंने आराम और सुख सुविधापूर्ण जीवन का परित्याग कर दिया और ध्यान, प्रार्थना, अध्ययन के लिए एक आदर्श स्थान की खोज तथा इस जगत की और अधिक श्रेष्ठ सेवा हेतु भारत पहुँच गया।

मैंने एक भिक्षुक, सत्य के सच्चे खोजी का जीवन स्वीकार कर लिया। मैंने अपनी चीजें अपने मित्र के यहाँ छोड़ दी। सन् १९३९ में मलेशिया से एक शिक्षक आश्रम आये, उन्होंने बताया श्रीमान् एस. ने आज भी आपकी चीजों को संभाल कर रखा है और आपके आने की राह देख रहे हैं।

श्री नरसिम्हा अय्यर सन् १८२४ में एक वृद्ध व्यक्ति से मिले जिसने उन्हें स्वामी जी के संन्यास के बारे में बताया—

''डा. कुप्पुस्वामी कुछ महीनों पहले भारत आये थे। वे सीधे अपने घर गये। वे अपने साथ कुछ गाड़ियों में सामान भरकर लाये थे। वे बाहर खड़े थे और घर के लोग सामान उतारने में व्यस्त थे इसी बीच वे अचानक रहस्यमय तरीके से गायब हो गये। हम सभी ने सोचा वे अपने पुराने मित्रों से मिलने गये होंगे। लेकिन जब किसी का ध्यान नहीं था वे रेलवे स्टेशन पर खड़ी रेल में बैठकर आगे की यात्रा पर चले गये। हम प्रतीक्षा करते रहे। जब बड़ी देर तक वे वापस नहीं आये तो हमने उन्हें ढूँढना प्रारंभ किया। वे कहीं नहीं मिले। उनका रास्ता देखते हमें हफ्तों बीत गये लेकिन कुछ पता नहीं चलां हम सभी चिंतित थे। उन्हें हमने सभी स्थानों पर ढूँढा पर वे नहीं मिले।

डा. कुप्पुस्वामी मद्रास से रेल द्वारा बनारस गये। रास्ते में बातचीत मनोरंजन के साधन, दृश्य उन्हें रुचिकर नहीं लग रहे थे। उनके कान जैसे बहरे हो गये थे, उन पर आते-जाते यात्रियों द्वारा होने वाले कोलाहल, हलचल आदि का कुछ प्रभाव नहीं पड़ रहा था। उनका मन इतना शान्त था कि उसमें कोई लहर भी नहीं उठ रही थी। वे शायद अपने स्थान से हिले भी नहीं लेकिन वे निरन्तर अपनी खोज के बारे में चिन्तन कर रहे थें

अंततः वे बनारस (वाराणसी) पहुँच गये। यहाँ परेशानी यह थी कि वे हिन्दी का एक शब्द भी नहीं जानते थे और बनारस में जिससे भी उन्हें काम पड़ता—भोजन के प्रबंधक, पुजारी, तीर्थयात्रा हेतु मार्गदर्शक तथा साधु—वे हिंदी के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा नहीं जानते थे। मलेशिया में उनके जीवन में जो अनासक्ति थी वह यहाँ उपयोगी सिद्ध हुई। वे कभी नहीं देखते थे कि दुकानदार उन्हें क्या दे रहा है। वे उसे ग्रहण करते और जो मूल्य माँगता दे देते।

डा. कुप्पुस्वामी उत्तर भारतीय आदतों और रिवाजों से बिलकुल अपरिचित थे। एक बार उन्होंने दूध की दुकान से दूध लिया। उन्होंने सोचा जैसे दक्षिण भारत में ताँबे के बरतन में देते हैं वैसे यहाँ पर मिट्टी के बर्तन में देते होंगे। इसलिये उन्होंने दूध के बर्तन (कुल्हड़) को अच्छी तरह धोया और दुकानदार को वापस देने लगे। उसने उनकी और घृणा से देखा और बोला इसे फेंक दो। उन्हें कुछ समझ में नहीं आया, जैसा उसने कहा उन्होंने वैसा ही किया लेकिन उन्हें यह लगा कि इन स्थानों पर रहने के लिए उन्हें अभी बहुत कुछ सीखना होगा, इसलिये उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया।

बनारस में उन्होंने प्रसिद्ध विश्वनाथ मंदिर के दर्शन किये और अपने जीवन-लक्ष्य का साक्षात्कार किया। मन्दिर में वे अपने प्रिय प्रभु से बातें करते थोड़ी देर खड़े रहे और प्रभु से प्रार्थना की ''मेरे प्रभु मैं आ गया हूँ, आपका बनने के लिए। मुझे स्वीकार करें, आप मेरे साथ जो भी करना चाहें, करें। कर्म करना और प्रतिफल की इच्छा न करना, यही मेरा धर्म है। मैं आपका हूँ। मैं आपकी इच्छा की आँधी में सूखे पत्ते की भाँति हल्का बनने का प्रयत्न करूँगा। सब आपका है। आप ही करेंगे, मेरे प्रभु।

प्रार्थना करते समय उनके गालों पर अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। वे भावोत्कर्ष की उच्च अवस्था में थे। बाद में उन्होंने महर्षि शुद्धानन्द भर्तियार को पत्र में लिखा "भगवान् विश्वनाथ ने मुझे एक नवीन प्रकाश और नवीन जीवन प्रदान किया। पिछले जीवन की सारी स्मृतियाँ पीछे छूट गईं। मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे भगवान् विश्वनाथ स्वयं मेरे गुरु थे।"

अपने भगवद्-साक्षात्कार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वे क्या करना चाहते थे? यह एक बार बातचीत के समय स्वामी जी ने बताया "मैं एक पेड़ के नीचे बैठकर भगवान् का नाम गाना, जप करना और ध्यान करना तथा आते-जाते यात्रीगण जो मुझे भिक्षा देते उस पर निर्वाह करना चाहता था। मेरे मन में किसी संस्थान अथवा आश्रम चलाने का कोई विचार न था।

जब स्वामी जी ने इस जगत से संन्यास लेकर मद्रास छोड़ा तो वे अपने साथ एक धोती और शर्ट से अधिक कुछ नहीं लाये थे। बनारस पहुँचने पर उनके पास जो धन था वह भी उन्होंने दान कर दिया। जब अपने लक्ष्य तक पहुँच गये तो धन की क्या आवश्यकता? वे सोचते थे कि बनारस हिमालय में है। लेकिन अब उन्हें मालूम हुआ कि जिस गंगा जी में वे स्नान करते हैं उसका उद्गम तो यहाँ से सैकड़ों मील दूर उत्तर दिशा में स्थित है।

वे एकान्त चाहते थे लेकिन उन्होंने देखा कि बनारस एक आधुनिक शहर है। अभी शीत ऋतु थी और कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। कुप्पुस्वामी की तपस्या का प्रथम भाग आ गया था। शरीर को लग रही ठंड और भूख की अपेक्षा करते हुए उनका मन तो कहीं दूर उड़ रहा था तथा उनके लिए शरीर की चिंता करने से अधिक उनका लक्ष्य महत्वपूर्ण था। एक दयालु व्यक्ति ने देखा कि यह व्यक्ति ठंड में ठिठुर रहा है लेकिन अन्य लोगों के विपरीत यह किसी से कंबल की मांग नहीं कर रहा था। उसने कुप्पुस्वामी को एक कम्बल दिया और यह उन्हें दान में मिली प्रथम वस्तु थी।

इस दयालु मनुष्य को कुप्पुस्वामी का लक्ष्य ज्ञात हुआ और उसने उन्हें पंढरपुर जाने की सलाह दी तथा पंढरपुर का एक टिकट भी खरीद कर दिया।

पूना पहुँचने पर उन्होंने बाकी बचे रुपये भी दान कर दिये और एक घुमन्तु संन्यासी का जीवन अपना लिया। अपने साथ कुछ भी न रखते हुए एकदम अकेले,

परंतु अपने नित्य साथी के रूप में अपनी आत्मा रूपी ईश्वर के साथ उन्होंने नंगे पाँव यात्रा प्रारम्भ की। जहाँ जाने पर किसी बात की चिंता नहीं रहती। उनके प्रिय जो उनके हृदय में रहते हैं वे ही स्वयं उनका मार्ग दर्शन कर रहे थे।

कुप्पुस्वामी नंगे सिर, नंगे पाँव, अत्यल्प वस्त्रों में महाराष्ट्र की तपती धरती पर विचरण कर रहे थे। रात हो जाने पर जब वे थक जाते तो किसी पेड़ के तले भूमि पर ऐसे ही सो जाते। कभी उन्हें भोजन नहीं मिलता तो वे सड़क के किनारे पड़े जंगली अंजीर और चेरी के फलों को अच्छी तरह पोंछकर खा लेते। उनके दोनों वस्त्र फटकर तार-तार हो गये थे पर उन्हें किसी बात की चिंता नहीं थी।

इस कठिन जीवन की कठिनाइयों ने उनके हृदय में जल रही वैराग्य की अग्नि को हवा ही दी। इस युवा अजनबी यात्री के उज्जवल और अद्‌भुत तेजोमय मुखमंडल को देखकर तथा उनके फटे हुए वस्त्रों को देखकर गांव के दयालु निवासियों ने आपस में कुछ धन एकत्रित कर उन्हें एक जोड़ा धोती लाकर दी। आगामी शीत ऋतु में शीत की तीव्रता को सहन करने में इसने उनकी सहायता की। इसके बाद वे तेज वर्षा में फंस गये। जिसने उन्हें भीतर तक भिगो दिया और मीलों इन गीले वस्त्रों में चलने के बाद वे अंधेरा हो जाने के कारण एक छोटे से गाँव में रुकने को विवश हो गये। वहाँ भी उन्हें कोई आश्रय न मिला। वह रात कुप्पुस्वामी ने भूसे के ढेर पर गीले कपड़ों में ठिठुरते हुए बिताई।

(किसी भी युवा जिज्ञासु को ऐसी या इससे भिन्न अग्नि-परीक्षाओं के दौर से जल्दी या देर से गुजरना पड़ता है। डा. कुप्पुस्वामी ने सभी परीक्षाओं में एक जैसी सहनशक्ति का प्रदर्शन किया। आध्यात्मिक पथ हर बार कठोर तपस्या और अत्यधिक सहनशीलता की माँग करता है। आत्म साक्षात्कार के लिए तड़प रही सभी दृढ़ संकल्पित आत्मायें जिन्होंने इस निरर्थक, असार और अज्ञानता के संसार से अपना मुंह मोड़ लिया है उन सभी में यह अनुभव सामान्य है। भगवान् और मनुष्य के मध्य सेतु का निर्माण अनुभवों और कष्टों की भट्ठी में तपकर होता है।)

कुप्पुस्वामी एक अजनबी क्षेत्र और अनजान लोगों के मध्य भ्रमण कर रहे थे जो उनकी भाषा भी नहीं समझते थे तथा वे इस पढ़े लिखे, पुष्ट देह युवा के मार्ग से भी अंजान थे। इस प्रकार वे गाँव-गाँव भटकते रहे। उन्होंने एक उच्च ब्राह्मण कुल में

जन्म लिया था। भिक्षा कैसे माँगी जाती है यह भी वे नहीं जाते थे। यह उनके लिए एक विचित्र अनुभव था। वे गाँव के किसी व्यक्ति के पास जाते और धीरे से उसके कान में फुसफुसाते ''मैं एक मद्रासी ब्राह्मण हूँ, भूखा हूँ। क्या आप कुछ खाने के लिए मुझे दे सकते हैं?'' इसके बाद न तो वे उससे कुछ प्रश्न करते, न ही कुछ बड़बड़ाते। जो भी कुछ उन्हें दिया जाता उसे विनम्रता पूर्वक लेते और देने वाले को विनम्रता पूर्वक आशीर्वाद देते और आगे चले जाते। जिन भी लोगों से वे मिले उन्हें बड़ा आश्चर्य होता कि जिस व्यक्ति को मुखमंडल स्वयं स्मृद्धि का द्योतक है वह उनके सामने कैसे हाथ फैला रहा है? उनको अपने कानों और अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं होता था। कुछ लोग तो उनका स्वागत बड़े प्रेम से करते, उन्हें अपने घर पर ले जाते और प्रेमपूर्वक उन्हें स्वादिष्ट व्यंजन खिलाते।

अपना भोजन ग्रहण करने के पश्चात् यह तेजस्वी साधु आतिथ्य करने वाले को नीचे झुककर प्रणाम करता और उसे आशीर्वाद देता तथा सर्वशक्तिमान ईश्वर से उन पर कृपा करने की प्रार्थना भी करता। कई बार कई धर्म परायण लोग उनसे उनके घर अस्थाई रूप से निवास करने के लिए भी अनुरोध करते लेकिन वे कभी किसी के घर दूसरे समय भोजन हेतु नहीं रुके। वे ऐसा सोचते थे कि ऐसा करने से वे उन अच्छे लोगों पर भार स्वरूप सिद्ध होंगे जो कि उनके लिए अशोचनीय होगा।

इसी प्रकार चलते-चलते वे एक बार चंद्रभागा नदी के पास धलज गाँव में पहुँचे। वहाँ प्रथम दिन ही वे एक डाक अधिकारी के अतिथि बने। वे विधुर थे, उत्तम चरित्रवान और धार्मिक मनोवृत्ति के स्वामी थे उन्होंने स्वामी जी से बहुत अधिक आग्रह किया कि वे उसके साथ रहें, अंत में स्वामी जी तैयार हो गये लेकिन इस शर्त पर कि उन्हें इस बात की अनुमति दी जाये कि वे पोस्ट मास्टर साहब की जैसे चाहें वैसे सेवा कर सके। पोस्ट मास्टर साहब को कोई विकल्प समझ नहीं आया और उन्होंने अनुमति दे दी।

कुप्पुस्वामी तुरंत सेवा में लग गये। वे पानी भर कर लाते। लकड़ी काटते और गायों की सेवा भी करते। गायों की सेवा उन्हें सबसे ज्यादा प्रिय थी। जैसे ही गायें चरकर वापस आतीं, कुप्पुस्वामी उन्हें प्रणाम करते और उन्हें अपने हाथ से चारा खिलाते। कुप्पुस्वामी ने स्वयं को उस पोस्ट मास्टर का घरेलू नौकर बना दिया था

जिसका वेतन उससे भी कम था जो वे अपने रसोइये को दिया करते थे। पोस्ट मास्टर अत्यन्त दुविधा में पड़ गया था। यदि वह सेवा लेना अस्वीकार करता है तो इसका अर्थ है कि कुप्पुस्वामी को खो देना। और चूँकि वे सारा काम स्वयं ही उत्साह से किया करते थे इसलिये वह शाँत रहा। कुछ समय रहने के बाद कुप्पुस्वामी उनको छोड़कर आगे चले गये। श्री दस्तर नामक एक दयालु सज्जन ने जो बाद में डिक्सल में पोस्ट मास्टर हो गये, उन्हें हरिद्वार का एक टिकट लाकर दिया।

हरिद्वार से ऋषिकेश तक कुप्पुस्वामी पैदल ही गये। रास्ते में जब वे सड़क के किनारे विश्राम कर रहे थे, तो इस ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर जा रहा एक ताँगा उनके पास से गुजरा। उसमें बैठे तीर्थ यात्री ने उनको भेंट करने के लिए एक सिक्का फेंका। यह युवा तपस्वी जिसके भीतर तीव्र आध्यात्मिक आकांक्षा और वैराग्य का भाव था उसे इस संसार की चीजों से क्या सरोकार, वह उस सिक्के पर निगाह डाले बिना आगे बढ़ गया। इसी मनोस्थिति के साथ उनका अब नया जीवन प्रारंभ हो रहा था।

संन्यास दीक्षा

४ मई १९२४ को कुप्पुस्वामी ऋषिकेश पहुँचे। यह स्थान गंगा के किनारे है तथा उस समय अधिक प्रसिद्ध नहीं था। उस समय यह लगभग बाह्य जगत् हेतु अपरिचित जैसा था। यह उन लोगों के लिए अत्यन्त सुरक्षित था जो भगवद्-साक्षात्कार करना चाहते थे। यहाँ पहुँचने पर उनके आनंद की कोई सीमा न थी। वहाँ चिरस्थाई गंगा और हरे-भरे वृक्षों से ढंकी ऐश्वर्यपूर्ण पहाड़ियाँ उनका स्वागत कर रहीं थी।

ऋषिकेश पहुँच कर वे चरणदास धर्मशाला के बरामदे में सोये। यहाँ पर गंगा स्नान, प्रार्थना, ध्यान तथा शेष समय में कठोर तपस्या यह उनका नित्य क्रम था। अब उन्होंने स्वयं को साधना में लगा दिया था।

१ जून १९२४ को जब कुप्पुस्वामी गंगा स्नान कर रहे थे तो वहाँ परम पूज्य श्री स्वामी विश्वानन्द सरस्वती श्रंगेरी मठ के शंकराचार्य जी के साथ आये। स्वामी विश्वानन्द जी और कुप्पुस्वामी दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट हुए। कुप्पुस्वामी ने उनके भीतर गुरु के दर्शन किये और श्री स्वामी विश्वानन्द जी ने उनके भीतर शिष्य

को देखा। वे कुप्पुस्वामी को अपने साथ अपने कुटीर पर लेकर गये। थोड़ी देर विश्राम के पश्चात् कुप्पुस्वामी काली कमली वाला क्षेत्र में भिक्षा हेतु गये। लेकिन उन्हें वहाँ भिक्षा देने से मना कर दिया गया, क्योंकि वे संन्यासी नहीं थे। वहाँ से वापस आते समय उन्हें पुनः स्वामी विश्वानन्द जी मिले। कुछ शब्दों के आदान-प्रदान के बाद श्री स्वामी विश्वानन्द जी ने कुप्पुस्वामी को संन्यास दीक्षा दी। (नोटः काली कमली वाला क्षेत्र संन्यासियों के लिए अन्नक्षेत्र था।) (बाद में विरजाहोम के कर्मकांड श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द सरस्वती द्वारा कैलाश आश्रम में कराये गये।) उन्होंने अपनी सामान्य धोती छोड़कर गुरु द्वारा दिये गये गेरुआ वस्त्र धारण कर लिये स्वामी श्री विश्वानन्द जी ने उन्हें कैवल्य का रहस्य और महावाक्यों का गूढ़ार्थ समझाया। अब डा. कुप्पुस्वामी शंकराचार्य परम्परा के स्वामी शिवानन्द सरस्वती बन गये।

उनसे पूछा गया कि क्या वे श्री स्वामी विश्वानन्द जी के साथ हरिद्वार और बनारस जायेंगे लेकिन उन्होंने यहीं रहकर साधना करने का निश्चय किया। उनके गुरु बाद में उन्हें संन्यास के बारे में उपदेश लिख कर देते रहे। इसके बाद आगे की घटना हेतु श्री स्वामी जी की आत्मकथा में से प्रकाश डाला जा रहा है:

''मैं गुरु की खोज में ऋषिकेश पहुँच गया और भगवान् से उनकी कृपा हेतु प्रार्थना की। ऐसे कई अभिमानी विद्यार्थी हैं जो कहते हैं ''मुझे गुरु की आवश्यकता नहीं है, भगवान् मेरे गुरु हैं।'' वे स्वयं वस्त्र परिवर्तन कर लेते हैं और स्वतंत्रता से रहते हैं। जब बाधाओं से उनका सामना होता है तो वे घबरा जाते हैं। लेकिन मैं शास्त्रों, संतों और ऋषियों के बनाये नियमों का उल्लंघन पसंद नहीं करता। जब हृदय का परिवर्तन हो तो बाह्य रूप में भी परिवर्तन होना चाहिये। संन्यासी की गरिमा और स्वतंत्रता का भीरु और निर्बल अनुमान भी नहीं लगा सकते।

प्रारंभ में एक गुरु का होना अनिवार्य है। वे ही मात्र आपको ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग दिखा सकते हैं और आपके पथ में आने वाले गुप्त संकटों, बाधाओं को दूर कर सकते हैं। आत्म साक्षात्कार एक अति श्रेष्ठ अनुभव है। आप आत्म साक्षात्कार प्राप्त तथा आत्मज्ञानी ऋषियों के वचनों में अचल विश्वास रखकर ही आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ सकते हैं।

गेरुआ वस्त्र की महिमा के बारे में बताते हुए स्वामी जी ने कहाः

जिसने अपना मन बदल लिया हो, उसके लिए गेरुआ वस्त्र अति आवश्यक है। पुरानी आदतों के दबाव में आकर जब इंद्रियाँ विषय वस्तुओं की ओर दौड़ती हैं तो उस समय आपने जो गेरुआ वस्त्र धारण कर रखे हैं उन्हें देखकर आपको स्मरण हो आता है कि आप एक संन्यासी हैं। इसका अपना ही महत्त्व और लाभ है। एक सच्चा संन्यासी ही सभी बंधनों और संबंधों को तोड़ कर पूर्णतया मुक्त हो सकता है। उसके मित्र या संबंधी उसे परेशान नहीं करते। जब कोई मंच पर प्रवचन करने खड़ा होता है तो गेरुए वस्त्र उसकी बड़ी सहायता करते हैं। हिंदू लोगों के मन में इनके प्रति बड़ा ही आदर है। सामान्य जन भी एक संन्यासी की बातों को शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। कुछ ढोंगी लोग कहते हैं ''हमने मन को रंगना छोड़ दिया है, अब हमें वस्त्र परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।'' मैं ऐसे मनुष्यों पर विश्वास नहीं करता। प्रसिद्ध मंडन मिश्र तो ब्रह्माजी के अवतार थे जिन्होंने श्री शंकराचार्य जी के साथ शास्त्रार्थ किया वे भी संन्यासी बने तथा महान् ऋषि याज्ञवल्क्य भी संन्यासी बने। मात्र वे ही वस्त्र परिवर्तन से डरते हैं जिनके भीतर लालसायें, कामनायें और मोह होते हैं। ऐसे लोग झूठे और दोष पूर्ण तर्क देने में भी निपुण होते हैं।

स्वामी जी ने अपनी साधना स्थली ऋषिकेश ही क्यों बनाई इसका कारण स्वयं स्वामी जी के शब्दों में नीचे दिया जा रहा है :

''ऋषिकेश अत्यंत पवित्र स्थल है जहाँ पुण्यात्मा जन निवास करते हैं। यहाँ अन्न क्षेत्र हैं, जो सभी संन्यासियों, योगियों तथा जिज्ञासुओं को निःशुल्क भोजन प्रदान करते हैं। यहाँ साधक किसी कुटीर में निवास कर सकते हैं या स्वयं की झोपड़ी या कुटीर बनाकर रह सकते हैं। ऋषिकेश के आसपास ब्रह्मपुरी, नीलकंठ, वशिष्ठ गुहा और तपोवन जैसे रमणीय स्थल हैं। जो संन्यासी इन स्थानों में रहते हैं अपने लिए पंद्रह दिनों के लिए सूखा राशन ले लेते हैं और अपना भोजन स्वयं बनाते हैं।

यहाँ पर हिमालय का दृश्य अत्यंत रमणीय और आत्मोत्थान करने वाला है। पवित्र गंगा नदी अत्यंत कृपालु है। गंगा जी के किनारे की बालू पर किसी चट्टान पर बैठकर व्यक्ति घंटों ध्यान कर सकता है। यहाँ पर कई ग्रंथालय भी हैं जहाँ पर संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजी भाषा में योग और दर्शन पर आधारित अधिकारिक ग्रंथ

प्राप्त हो सकते हैं। जो विद्यार्थी गण पढ़ना चाहते हैं उन्हें पढ़ाने के लिए विद्वान् जन नियमित कक्षायें लेते हैं और व्यक्तिगत रूप से भी विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। यहाँ का मौसम अत्यंत सुहावना है। शीत ऋतु में हल्का ठंडा तथा ग्रीष्म ऋतु में थोड़ा गरम। यहाँ रोगियों की देखभाल के लिए आयुर्वेदिक और ऐलोपैथिक चिकित्सालय हैं। इन सभी कारणों से मुझे प्रबल और अप्रतिरोध्य साधना हेतु ऋषिकेश आदर्श तथा उपयुक्त स्थल लगा।

अब स्वामी शिवानन्द जी शीत से बचने के लिए एक आश्रय स्थल की खोज में थे, जहाँ छत भी हो, जिससे वे वहाँ बैठकर भगवान् के नाम का गान कर सकें, साथ ही साथ यह भीड़ और तीर्थ यात्रियों से दूर भी होना चाहिये। कोलघाट पर उन्हें यह श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ। यह स्थान बाज़ार और ऋषिकेश से थोड़ा दूर था। जिससे उन्हें भिक्षा हेतु थोड़ा समय भी मिल जाता था। उन्होंने निश्चय किया कि वे स्वयं निश्चित समय पर जाकर अन्न क्षेत्र से अपना अल्प आहार ले आयेंगे और बाकी समय भगवान् के ध्यान में व्यतीत करेंगे। अन्न क्षेत्र यहाँ से २ मील दूर था और ग्रीष्म तथा शीत ऋतु में भी उन्हें १ कटोरी पतली दाल और रोटी के लिए इतनी अधिक दूर जाना पड़ता था। यह स्थान निर्धारित करते समय उन्हें यह ध्यान ही न रहा कि प्रथम तो वे इतने अल्प आहार के अभ्यस्त नहीं हैं और दूसरी बात यह कि क्या इतने से भोजन से उन्हें इतनी अधिक दूर जाने के लिए शक्ति मिल सकेगी।

जीवन मे आयी कठिन परिस्थितियों में उन्होंने स्वयं को कैसे अभ्यस्त किया और समायोजित किया यह एक रुचिकर कहानी हैः

"अन्न क्षेत्र में जाते समय किसी ने उन्हें बताया कि कुछ धनी व्यापारी भिक्षुक लोगों को पका हुआ भोजन देते हैं। दो रोटी और दाल एक साधक तपस्वी के लिए इतना भोजन पर्याप्त है ऐसा स्वामी जी का विचार था और साथ ही यह भी कि अपना मंतव्य तो हल हो गया, इसलिये वे भोजन लेकर, अपनी आत्मा की क्षुधा को शांत करने नदी के किनारे अपने निवास वापस आ गये। शरीर जो इतने समय तक स्वादिष्ट भोजन का आदी था वह इस बेस्वाद, कुपोषणयुक्त तथा कच्ची रोटी और दाल को स्वीकार नहीं कर रहा था। पंजाब और सिंध क्षेत्र के कुछ स्वामी लोगों की रुचि को जानकर थोड़ा नमक और मिर्च दिया करते थे। कुछ दिनों तक स्वामी जी ने

इस सुविधा का आनंद उठाया। लेकिन उन्हें बाद में यह लगा कि यह उनके लिए अनावश्यक है। उनके हृदय में जल रही वैराग्य की अग्नि ने उनकी इंद्रियों की लालसाओं को जला दिया था इसलिये उन्हें जिसे आवश्यकता कहा जाता है उसे भुलाने और त्यागने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

इसी तरह की घटना मीठी रोटियों के विषय में भी हुई। चंद्रभागा नदी के किनारे कभी-कभी स्वामी लोगों को मीठी रोटियाँ दी जाती थीं। प्रारंभ में स्वामी जी ने भी इस स्वादिष्ट भोजन का आनंद लिया लेकिन बाद में उन्हें लगा कि इसके लिए चार मील जाना व्यर्थ है। ध्यान और भगवान् के नाम जप की मिठास के सामने यह कुछ भी नहीं है। ध्यान और भगवान् के नाम के जप से जो आनन्द मिलता है उसी के लिए यह मन इधर-उधर भटकता रहता है।

स्वामी जी के लिए समय इतना बहुमूल्य था कि एक क्षण भी व्यर्थ अनुपयोगी इच्छाओं में गंवाना उनके लिये यंत्रणा की तरह था। काली कमली वाला क्षेत्र जहाँ वे भिक्षा हेतु जाया करते थे वहाँ से माह में दो बार डाढ़ी बनवाने के मुफ्त टिकट दिये जाते थे। लेकिन स्वामी जी को लगा इस हेतु प्रतीक्षा करना समय का अपव्यय है इसलिये उन्होंने डाढ़ी बढ़ा ली।

अंतिम लेकिन सबसे महत्वूपर्ण घटना नेपाली क्षेत्र की है। नेपाली बाबा द्वारा स्थापित नेपाली क्षेत्र में एक विशेष चने की दाल दी जाती थी जो नेपाली बाबा स्वयं अपने हाथों से दिया करते थे। स्वामी जी अक्सर इस दाल को लेने कोलघाट से नेपाली क्षेत्र तक तीन मील दूर जाया करते थे। स्वामी जी जब नेपाली क्षेत्र जाते तो इस घटना की चर्चा अवश्य करते थे। नेपाली बाबा के योग्य तथा संत शिष्य महंत क्षेत्रम जी से बात करते समय स्वामी जी कहते थे ''मुझे आज भी वे दिन याद हैं जब मैं एक कटोरी दाल के लिए कोलघाट से यहाँ आया करता था और स्वामी जी यह मुझे बड़े प्रेम से दिया करते थे।'' हालाँकि स्वामी जी बताते थे कि वह दाल बड़ी स्वादिष्ट थी फिर भी स्वामी जी उस दाल के लिए नहीं बल्कि नेपाली बाबा के दर्शन के लिए वहाँ खिंचे चले जाते थे।

कोलघाट से स्वामी जी ब्रह्मानंद आश्रम चले गये जो वर्तमान आश्रम के पास स्थित है। वहाँ जीर्ण शीर्ण अवस्था में दो कमरे खाली थे। उनमें से एक में स्वामी जी

रहने लगे। ब्रह्मानंद आश्रम में स्वामी जी को गंगा जी और हिमालय का निरंतर मन को प्रेरणा प्रदान करने वाला दृश्य मिला जिसके लिये वे लम्बे समय से उत्सुक थे।

इस समय स्वामी जी की अंतरात्मा की पुकार कभी-कभी अत्यंत प्रबल हो उठती थी और वे पूर्ण एकांत चाहते थे, लेकिन यदि किसी रोगी को उनकी सहायता की आवश्यकता हो तो वे सदा तैयार रहते थे।

उनकी यही आंतरिक इच्छा उन्हें लक्ष्मण झूला और स्वर्गाश्रम के बीच गंगा जी के किनारे एक एकांत कुटीर में ले गई। कुटीर क्या था पत्थरों के ढेर के रूप में दो दीवारें और उनके ऊपर पड़ रही एक वृक्ष की डाल की छाया छत के रूप में। इसमें कीड़े और रेंगने वाले प्राणी स्थाई रूप से निवास करते थे। एक पर्याप्त समयावधि तक यह स्वामी जी का निवास स्थान रहा। यहाँ उन्हें संतुष्टि मिली। यहाँ से कुछ दूर पैदल जाने पर वे हिमालय के घने जंगल में पहुँच जाते थे। गहन और निर्बाध ध्यान के लिए। यहाँ उन्हें कोई परेशान नहीं करता था; क्योंकि कोई यहाँ दिन में आने का साहस नहीं करता था। अब वे आत्मानन्द को प्राप्त कर रहे थे इसलिये भिक्षा हेतु जाने की कोई इच्छा नहीं थी। इसलिये वे स्वर्गाश्रम से एक ही बार भोजन लाया करते थे।

स्वामी जी का तपस्वी जीवन मात्र शुष्क आत्मकेंद्रित नहीं था। यह जीवन संसार और मानवता की उपेक्षा का स्रोत नहीं था बल्कि इसके विपरीत इसका लक्ष्य उस दृष्टि का विकास करना था जिसके द्वारा वे इस संसार को भगवान् के शरीर के रूप में तथा मानव मात्र को ईश्वर के बच्चों के रूप में देख सकें। वे सदा जागरुक थे इसलिये उनकी तपस्या स्वार्थपूर्ण प्रयत्नों में नहीं बदली उनकी सेवा असाधारण प्रकार की थी और यह उनकी तपस्या का अंग थी। यह पूर्णतः निष्काम प्रबल भावना से युक्त तथा ओजस्वी थी इसमें स्वयं का कष्ट और त्याग सम्मिलित था।

एक प्रसिद्ध महात्मा स्वामी कालिकानन्द जी यह समझ गये कि रोगियों की सेवा करना स्वामी जी का मूल स्वभाव है। इसलिये उन्होंने सोचा यह अवसर खोना नहीं चाहिये, और उन्होंने स्वामी जी के सामने एक पारमार्थिक औषधालय खोलने का प्रस्ताव रखा जिसे स्वामी जी ने अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया तथा यह शुभ कार्य साधारण सुविधाओं के साथ एक औचित्यपूर्ण नाम सत्य सेवाश्रम डिस्पेंसरी के नाम से प्रारंभ कर दिया गया। स्वामी जी कहते थे कि रोगियों, निर्धनों

और पुण्यात्मा जनों की सेवा हृदय को शुद्ध करती है। इससे सभी दिव्य गुण जैसे सहनशीलता, सहानुभूति, करुणा और उदारता का विकास होता है। यह मन की अपवित्रता, अहंकार, स्वार्थ, गर्व, घृणा, क्रोध, कामुकता, वासना, ईर्ष्या आदि दुर्गुणों को नष्ट करने में हमारी सहायता करती है। धर्म परायण जन तथा गरीब गाँव वालों को बीमारी में उचित चिकित्सा सेवा नहीं प्राप्त होती थी इसलिये स्वामी जी ने लक्ष्मण झूला क्षेत्र में एक छोटी डिसपेंसरी प्रारंभ कर दी और स्वामी जी ने भक्तों की सेवा अत्यंत प्रेम भाव और त्याग की भावना के साथ की। बद्रीनाथ की यात्रा कठिन थी और रास्ता ऊबड़-खाबड़ था तथा अन्य भी कई खतरे थें स्वामी जी सामान्य प्रयोग में आने वाली दवाइयों के पैकेट बनाकर रखते थे और उन्हें तीर्थ यात्रियों को अनुरोध के साथ दिया करते थे और इन दवाइयों के प्रयोग संबंधी निर्देश भी देते थे जिससे तीर्थ यात्री इन्हें यात्रा में प्रयोग कर सकें।

गंभीर रोगियों के विषय में वे विशेष भोजन, दूध तथा अन्य चीजों की भी व्यवस्था करके देते थे।

सन् १९३४ में स्वर्गाश्रम छोड़ने से पहले तथा मुनि की रेती में स्थापित होने के पूर्व स्वामी जी ने इस डिसपेंसरी का प्रबंधन स्वामी ज्ञानानन्द जी को सौंप दिया, जो संन्यास के पूर्व भी पेशे से डाक्टर थे।

हिमालय के हृदय उत्तरकाशी में निवास करने वाले प्रसिद्ध वेदांती और बड़े वैरागी महात्मा साधु प्रज्ञनाथ जी स्वामी जी के समकालीन थे और संयोगवश नादयोग नामक पुस्तक के लेखक भी थे। वे प्रायः प्रतिवर्ष ऋषिकेश आया करते थे और जंगल में स्थित साधुओं की बस्ती (जिसे पुराना झाड़ी कहते थे) में एक साधारण सी झोंपड़ी में आकर कुछ माह तक रहते थे। स्वामी शिवानंद जी ने देखा कि पुराना झाड़ी में चिकित्सा सुविधायें न्यूनतम हैं। इसलिये उन्होंने महात्मा साधु प्रज्ञानाथ जी को वहाँ रहने वाले अन्य महात्माओं की स्वास्थ्य रक्षा हेतु समझाया और उनसे उनकी देखभाल हेतु कहा। जब तक प्रज्ञानाथ जी प्रत्येक कुटीर में जाकर वहाँ रहने वाले साधु महात्माओं का स्वास्थ्य परीक्षण कर उन्हें आवश्यक औषधियाँ नहीं दे देते, तब तक स्वामी जी को संतोष नहीं होता था।

इतना करने के बाद वे स्वामी जी को रोगियों की स्थिति के बारे में सूचना देने आते और आवश्यक दवाइयाँ प्राप्त कर लेते थे। कभी-कभी कुछ जटिल रोगियों को देखने स्वयं स्वामी जी जाते थे।

एक बार की घटना है बद्रीनाथ जाने वाला एक तीर्थ यात्री सन्ध्या के समय स्वामी जी के दर्शन के लिए आया। जब वह विदा लेने लगा तो स्वामी जी ने उसे प्रयोग करने के निर्देश के साथ दवाइयों के पैकेट दिये। फिर वह लक्ष्मण झूला चला गया जहाँ वह रात्रि विश्राम के लिए रुकने वाला था। उसके जाने के बाद स्वामी जी को याद आया कि एक विशेष दवा देना रह गई है जो उसे यात्रा के समय विशेष रूप से काम में आती। उनके मन में यह विचार बार बार घूमने लगा कि ''जो उन्हें करना चाहिये वह नहीं किया गया।'' इसलिये अगले दिन प्रातः उन्होंने दवा साथ में ली और उस तीर्थयात्री को देने के लिए चढ़ाई चढ़ने लगे। जब वे अगले विश्राम स्थल पर पहुँचे तो पाया कि वह यात्री उनकी तुलना में अधिक शीघ्रता से आगे बढ़ गया है। अब स्वामी जी ने दौड़ना चालू कर दिया। वे गरुड़ चट्टी तक गये। फिर फूल चट्टी तक गये और वहाँ पर भी उसे न पाकर वे और चार कि.मी. आगे तक गये और आखिर उसे पकड़ ही लिया और उसे यह मूल्यवान औषधि प्रदान की। इस समय नौ बज चुके थे और स्वामी जी को पुनः दौड़ते हुए ही वापस लौटना था ताकि वे समय पर भिक्षा लेने पहुँच सकें।

एक अन्य घटना है। एक बार कनिष्ठ स्वामी आत्मानंद ऋषिकेश में गंभीर रूप से बीमार हो गये तो स्वामी जी तत्क्षण स्वर्गाश्रम छोड़कर ऋषिकेश चले गये। जहाँ उन्होंने इस कठिन समय में स्वामी आत्मानंद की तीन सप्ताह तक देखभाल की। बाद में स्वामी जी की महानता के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हुए स्वामी आत्मानंद ने लिखा ''वे जिन्हें मैं अपना गुरु कहने में गर्व का अनुभव करता हूँ वे मेरी गंभीर बीमारी के समय मेरी देखभाल करने के लिए ऋषिकेश में एक धर्मशाला में रहे और उन्होंने लगभग २० दिनों तक स्वयं मेरी सेवा सुश्रुषा की। रोग के समय जब मेरा जीवन खतरे में था उन्होंने मेरे प्राणों की रक्षा की।''

शिंघई की महारानी अत्यंत धर्मपरायण महिला थीं। वे स्वामी जी का बड़ा आदर करती थीं और अक्सर स्वामी जी के दर्शनार्थ लक्ष्मण झूला आया करती थीं। र्स्वगाश्रम मंदिर के पास ही उनकी स्वयं की एक सुंदर इमारत थी। ऋषिकेश आकर

वे यहाँ एक-दो महीने निवास करती थीं। वे स्वामी जी को नित्य फल तथा मिठाइयाँ भेजतीं थीं, जिन्हें स्वामी जी वितरित कर देते थे। क्योंकि स्वामी जी उन दिनों कठोर साधना कर रहे थे जिसमें फल जैसी सुविधा का कोई उपयोग न था, और इस साधना के प्रक्रम में उन्होंने धीरे-धीरे स्वयं को सबसे दूर रखना प्रारंभ कर दिया था तथा वे अपनी इस धनिक शिष्या से भी दूर रहना चाहते थे। लेकिन फिर भी महारानी ने फल-दूध आदि भेजना बंद नहीं किया।

एक दिन महारानी ने एक भंडारे का आयोजन किया। वे स्वयं एक-एक साधु को आमंत्रित करने गईं। स्वाभाविक रूप से स्वामी जी भी आमंत्रित थे। वे दोपहर का भोजन स्वामी जी के साथ लेने हेतु बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करती रहीं। लेकिन स्वामी जी ने पाया कि वे सभी प्रकार के प्रलोभनों से ऊपर आ चुके हैं। वे बड़े दृढ़ निश्चयी थे। उन्होंने अपने दो शिष्यों को बुलाया और कहा ''मैं अंदर ही रहूँगा। आप बाहर से ताला लगा दें।'' शिष्य व्याकुल हो गये। लेकिन स्वामी जी ने उन्हें कठोरता से आदेश दिया ''इधर आओ, मुझे इस कुटीर में २-३ दिन तक बंद करके चले जाओ।'' युवा शिष्यों ने उनकी आज्ञा का पालन किया।

निराश होने पर भी महारानी बड़ी हठी थीं। उन्होंने अपने नौकरों के हाथ से बहुत से व्यंजन भिजवाये और उसे यह भी निर्देश देकर भेजा कि स्वामी के न होने पर कुटिया के द्वार पर प्रतीक्षा करे और स्वामी जी को देकर ही आये। नौकरों ने आकर देखा कि द्वार पर ताला लगा है। वे स्वामी जी की प्रतीक्षा करने लगे। (उन्होंने सोचा शायद स्वामी जी कहीं गये हैं, आते होंगे।) रास्ता देखते-देखते उसके पैर दुखने लगे। उन्होंने स्वामी जी के शिष्यों से इस बारे में पूछा। स्वामी जी के शिष्य उनसे बोले कि तुम अपनी मालकिन के पास वापस चले जाओ।

स्वामी जी तीन दिनों तक कुटीर में से बाहर नहीं आये। बाहर किसी को भी नहीं मालूम था कि वे कुटीर के अंदर बंद हैं। बिना भोजन और पानी के उन्होंने उन तीन दिनों तक गहन ध्यान किया। उनके पास एक मिट्टी का बर्तन था जिसे उन्होंने बेड-पैन की तरह प्रयोग किया। जब रात हो जाती तो वे खिड़की खोलकर इसे खाली कर देते थे। स्वामी जी के आदेशानुसार शिष्यों ने चौथे दिन ताला खोला। यह जानकर कि वे महारानी पूर्व दिवस की सन्ध्या को यह स्थान छोड़कर चली गईं, स्वामी जी ने चैन की श्वाँस ली।

स्वर्गाश्रम

सच्ची साधना की एक झलक

स्वामी जी की तपस्या के प्राथमिक कुछ वर्ष तो आवास विहीन स्थिति में व्यतीत हुए। आज यहाँ, कल वहाँ परसों की परसों देखी जायेगी, यह उनका रुख था। वे इस समय नीलकंठ की पहाड़ियों में रहे और वहाँ रहकर उन्होनें कठोपनिषद की व्याख्या लिखी। इसके बाद वे स्वर्गाश्रम गये। वहाँ वे ८ फुट१० फुट के छोटे से कुटीर में रहते थे, जिसके सामने छोटा सा बरामदा था। यहाँ पर वे भोजन के लिए काली कमली वाला क्षेत्र पर निर्भर थे।

जब वे कुटीर - ३ में आये, उसके बाद शीघ्र ही स्वामी जी इतने प्रसिद्ध हो गये कि स्वयं स्वर्गाश्रम के अधिकारी लोग तीर्थ यात्रियों और अन्य दर्शनार्थियों को उनके पास यह कहकर भेजा करते थे कि वे स्वर्गाश्रम के एकमात्र महात्मा और योगी हैं।

स्वामी जी के पास एकमात्र जिज्ञासा शांत करने वालों के लिए समय नहीं था, इसलिये वे व्यर्थ समय नष्ट न हो इसलिये कहीं दूर चले जाया करते थे। ऐसा बताते हैं कि वे एकांत में ध्यान करने के लिए गंगा नदी के किनारे बड़ी सी चट्टान के नीचे छुप जाते या जंगल में भाग जाया करते थे।

श्री स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा में अपने स्वर्गाश्रम के जीवन के बारे में निम्न विवरण दिया हैः

''मैं दाँत साफ करने, स्नान करने और वस्त्र धोने में अधिक समय व्यय नहीं करता था। मैं इन्हें शीघ्र समाप्त करके अपनी साधना, अध्ययन और सेवाकार्य हेतु मुक्त हो जाया करता था। मैं कभी भी अपने शिष्यों अथवा मेरी सेवा हेतु अवसर की प्रतीक्षा करने वालों पर निर्भर नहीं रहता था। मैं सभी काम जैसे अध्ययन, आध्यात्मिक साधकों को निर्देश देने हेतु, पत्र लेखन, व्यायाम, भोजन हेतु बाहर जाना आदि एक निश्चित समय पर किया करता था। धीरे-धीरे मेरे पास बहुत अधिक लोग आने लगे जिससे मेरी व्यवस्थित दिनचर्या बुरी तरह से प्रभावित हुई।

आश्रम के अधिकारियों से अनुमति लेकर मैंने अपने कुटीर के चारों और कांटेदार तारों की बाड़ लगवा ली और द्वार पर ताला लगा दिया।

दर्शनार्थियों के सामने उच्च दर्शन पर बड़ी-बड़ी विद्वतापूर्ण बातें करके मैं अपनी विद्वता दिखाने का प्रयास नहीं करता था। मैं उन्हें व्यवहारिक साधना पर थोड़ा निर्देश देता और पाँच मिनट में बाहर भेज देता था। अपने बाड़े के बाहर मैंने एक सूचना-पट लगा रखा था। साक्षात्कार का समय सायं ४ बजे से ५ बजे के मध्य—एक बार में पाँच मिनट।

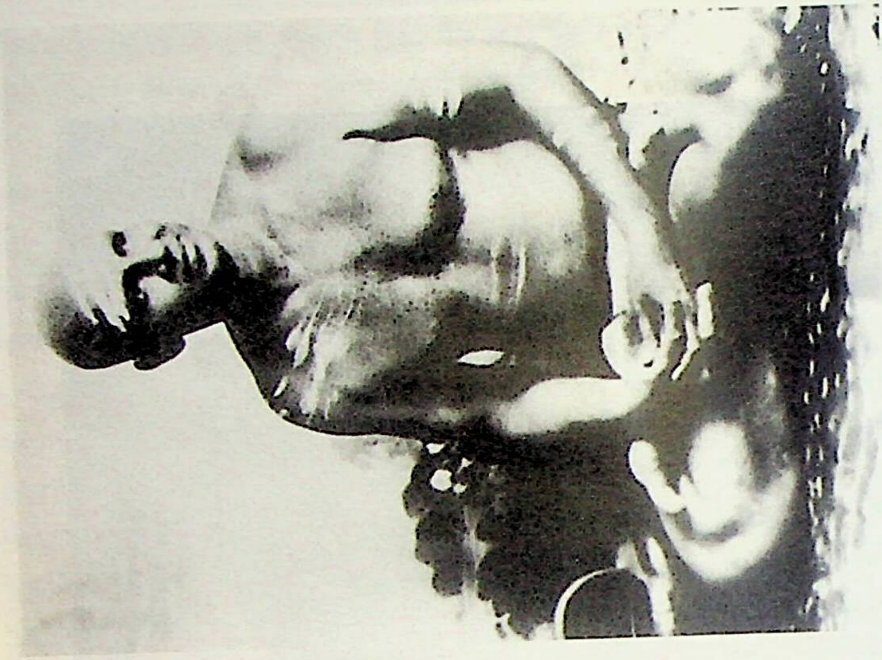
शीतऋतु में दर्शनार्थी बहुत कम होते थे। इस समय का सदुपयोग मैं अपने परिसर में तेजी से भ्रमण करने, भजन करने और कीर्तन करने में किया करता था। कुछ दिनों तक मैं अपने कमरे से बाहर नहीं आता था और भोजन का काम पूर्व में भिक्षा से बचाई गई रोटियों से चलाता था। इस प्रकार प्रबल साधना मेरा लक्ष्य था। जब मैं गंगा नदी के किनारे बालू पर अथवा किसी चट्टान पर बैठकर ध्यान करता था उस समय मेरा आनंद अवर्णनीय होता था। मैं उस समय प्रकृति के साथ एक हो जाता था।

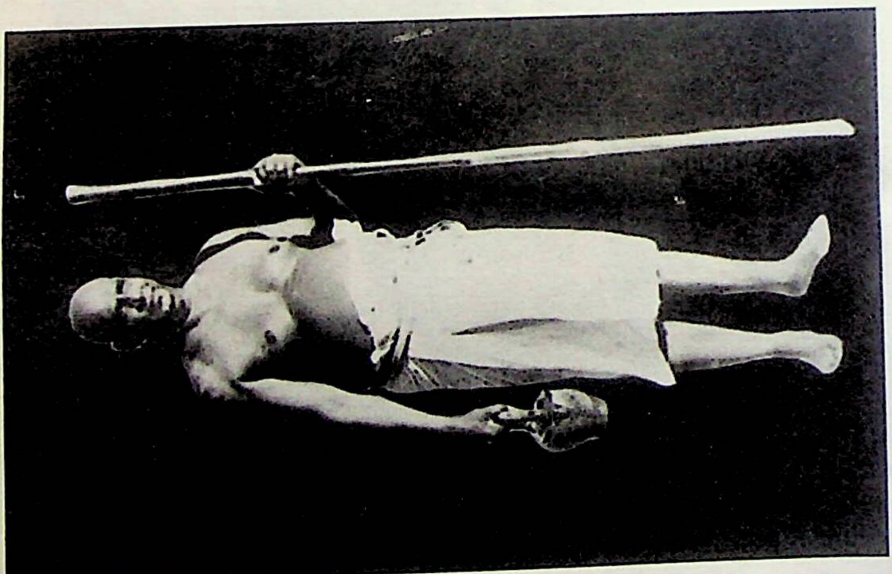
स्वामी जी के आरंभिक दिनों के साथी श्री राज गिरि स्वर्गाश्रंम के दिनों के बारे में कहते हैं :

स्वामी जी का प्रबल वैराग्य इस बात से परिलक्षित होता है कि उन्होंने जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को भी अस्वीकार कर दिया था। यहाँ तक कि वे भोजन और वस्त्र की भी चिंता नहीं करते थे। अन्न क्षेत्र जाने के कारण उनकी साधना में नित्य ही बहुत विघ्न पड़ता था इसलिये वे एक दिन के राशन पर एक सप्ताह व्यतीत कर देते थे और उन्होंने सूखी रोटियाँ खाने की आदत डाल ली थी। पड़े-पड़े रोटियाँ सूख जाती थीं फिर जब खाना होता तो उन्हें गंगा जल में डुबाकर खा लेते थे और इस समय का सदुपयोग वे ध्यान, जप और पूजा में किया करते थे। बिना नमक की बेस्वाद रोटियों को ही उन्होंने अपना मुख्य भोजन बना लिया था।

उनके पास पहनने को मात्र दो ही वस्त्र थे। उनके कमरे में सामान के नाम पर मात्र एक जल का पात्र और कंबल था। एक बार तो स्वामी जी ने वह कंबल भी एक निर्धन तीर्थ यात्री को दे दिया और स्वयं पतले सूती कपड़े में ठिठुरते रहे। आखिर







भगवान् एक दयालु दर्शनार्थी के रूप में कृपालु हुए, जिसने उन्हें एक नवीन कंबल प्रदान किया।

वे सारी रात कमर तक गंगा जी के शीतल जल में खड़े रह कर जप करते रहते। जब सूर्योदय हो जाता तो सूर्य भगवान् की पूजा करके ही बाहर आते। वे अत्यंत शीतल जल में घंटों खड़े रहते थे और उनका आहार भी अत्यंत संयमित था। इस कारण उन्हें एक गंभीर दस्त रोग और कटिवात हो गया तथा लंबे समय तक गहन ध्यान करने के कारण उन्हें विशेष प्रकार का मधुमेह रोग हो गया था।

बाद के समय में एक बार स्वामी जी ने एक जिज्ञासु को कठोर तप हेतु शीत ऋतु में भी बिना कुर्ता पहने देखा तो उन्होंने स्वर्गाश्रम की उपरोक्त तपस्या के बारे में बताया।

स्वामी जी के प्रारंभिक शिष्यों में से एक श्री स्वामी परमानन्द जी जब प्रथम बार स्वामी जी के कुटीर में गये तो उन्होंने देखा वहाँ सूखी रोटियों का ढेर, कागज के बहुत से बंडल, देवदार की लकड़ी की बहुत सी पेटियाँ, बहुत सी बोतलें और बहुत सी पेटियाँ थीं, जिनमें ताला लगा हुआ था। स्वामी जी ने उन्हें प्याली में कुछ बिस्किट और बादाम दिये। ये बिस्किट हंटले और पारमर के थे। स्वामी परमानन्द जी सूखी रोटियों और बिस्किट के मध्य संबंध को न समझ सके। लेकिन अगले दिन यह समस्या स्वयं ही सुलझ गई। स्वामी जी उन्हें अपने साथ अन्न क्षेत्र लेकर गये, अन्न क्षेत्र में अन्य लोग रोटी के लिए एक कपड़ा तथा दाल के लिए एक बर्तन लिए हुए थे लेकिन स्वामी जी के पास तीन-चार बर्तन थे। स्वामी जी ने उन बर्तनों में दूध-दही लिया। अपनी रोटियाँ और दाल अपने कुटीर में छोड़ने के बाद वे उन बर्तनों को लेकर पैदल-पैदल लक्ष्मण झूला तक गये और वह सब दूध-दही भिक्षुकों में वितरित कर दिया। सूखी रोटियाँ स्वयं उनके लिए थीं और बिस्किट, बादाम अन्य लोगों के लिए थे। इस प्रकार स्वामी परमानन्द जी को समझ आया कि "चूँकि उनका हृदय करुणा से परिपूर्ण था इसलिये वे निर्धनों और बीमारों की सेवा के लिए कुछ चीज़ें अपने कुटीर में रखते थे।" जो लोग उनके अधिक नजदीक नहीं होते थे वे उन्हें बाबू संन्यासी (सुविधाओं में रहने वाला) समझने की भूल कर बैठते थे।

वास्तव में वे एक महान् वैरागी महात्मा थे। सुबह की सूखी रोटियाँ उनका संध्याकालीन भोजन था और गंगाजल उनकी चटनी।

स्वामी जी अपने साथ एक छोटी स्मरण पुस्तिका रखते थे जिसमें वह सब जो वे याद रखना चाहते थे लिख लिया करते थे और इसमें वे बड़े ही नियमित थे। स्वर्गाश्रम के दिनों में उन्होंने जो अखंड कठोर तप किया स्वामी जी की यह स्मरण पुस्तिका उसकी झलक दिखाती है :

अधिकांश समय (आठ घंटे), यहाँ तक कि १२ से १६ घंटे नित्य ध्यान और मात्र ध्यान में व्यतीत किया गया। थोड़े समय के लिए स्वाध्याय और चिकित्सा कार्य भी त्याग दिया। एकमात्र ध्यान किया।

शीत ऋतु का भली भाँति उपयोग किया। यह ध्यान के लिए सर्वश्रेष्ठ समय है। बिना किसी को बताये पंद्रह दिनों या एक माह के लिए स्वर्गाश्रम छोड़ दिया। अपने साथ मात्र दो वस्त्र और एक कंबल लिया। गंगा नदी के किनारे-किनारे हरिद्वार से मेरठ तक घूमता रहा। घर-घर भिक्षा माँग कर जीविका चलाई। गाँव वालों से बात नहीं की। इन दिनों मौन व्रत रखा।

१. हरिजनों की सेवा
२. धूर्त बदमाशों की सेवा
३. अपने से निम्न लोगों की सेवा
४. मुसलमान के हाथ से भोजन
५. मैला साफ करना
६. साधुओं के कपड़े आनंदपूर्वक धोना
७. पानी भर कर लाना

इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिससे घृणा की जाये। किसी भी प्राणी या वस्तु के प्रति घृणा की समस्त भावनाओं को प्रेम और विचार से दूर करना।

१. किसी अन्य द्वारा की गई हानि को शिशु की भाँति तुरंत भूल जाओ।

२. इसे अपने हृदय में कदापि न रखो। यह घृणा को जन्म देती है।

अभ्यास करो

१. मैत्री
२. करुणा
३. दया
४. प्रेम

५. क्षमा

१. बदला मत लो २. दुर्व्यवहार का प्रतिकार न करो।

३. बुराई के बदले में भला करो। ४. अपमान और चोट को सहन करो।

अच्छी आदतों, अत्यधिक विनम्रता, सौजन्यता, सदाचार, सद्व्यवहार, उदारता, सज्जनता और मृदु स्वभाव का विकास करो। कभी भी असभ्य, कठारे और निर्दयी न बनो।

नमस्कार साधना

सभी को सर्वप्रथम नमस्कार करो।

१. नमक छोड़ो। २. शक्कर छोड़ो।

३. मसाले छोड़ो। ४. सब्जियाँ छोड़ो।

५. मिर्च छोड़ो। ६. इमली छोड़ो।

उपरोक्त सभी के अभ्यास के बिना आप सच्चे साधु नहीं बन सकते।

स्वामी जी के वरिष्ठ शिष्य श्री स्वामी चिदानंद जी ने इस स्मरण पुस्तिका के बारे में बाद में लिखा :– स्वामी जी की स्मरण पुस्तिका यह प्रकट करती है कि स्वामी जी साधुता की सच्ची भावना का निर्माण करना चाहते थे। इसका एक भाग यह प्रकट करता है कि एक ही घर से भिक्षा लेने से कहीं आसक्ति की भावना न उदित हो जाये इसलिये उन्होंने यह नियम ही बना लिया था कि दो या तीन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से क्रमवार रूप से दो-दो रोटियाँ ली जायें। आगे चलकर उन्होंने क्षेत्रों से भोजन लेना ही बंद कर दिया। वे खुले में भिक्षा लेने जाया करते थे।

एक अनुच्छेद से यह ज्ञात होता है कि ''साधु बन जाने पर नया जन्म होता है। यदि बड़े क्षेत्राधिकारी आपका अपमान करें तो सहन करें। पूर्वाश्रम के जीवन और जन्म का विचार भी मन में न आने दें।

दूसरे अनुच्छेद से ज्ञात होता है ''यथा सम्भव बिना जूतों के चलें। साधु के लिए आजीवन कठोर जीवन यापन आवश्यक है।

सामान्यतया देखा गया है कि जब कोई अपने घर और सम्बन्धियों का त्याग करता है तो वह समझता है कि वह अपने सम्बन्धियों के प्रति मोह से मुक्त हो गया है

परंतु नहीं, उनके प्रति आसक्ति को वह अपने साथ ही ले आया है। यह आसक्ति बराबर उसके साथ रहती है तथा संन्यास लेने के बाद भी साधना काल में विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। स्वामी जी ने अथक परिश्रम द्वारा अपने मन के कोने-कोने से अपने सभी कर्मों और विचारों का निरीक्षण करके इसका पूर्ण मूलोच्छेदन कर दिया था।

हृदय का ऐसा विकास मुश्किल से ही देखने को मिलता है और इतनी तत्परता से दान देने की भावना सहज ही प्राप्त नहीं होती। स्वामी जी में जो आश्चर्यचकित करने वाली उदारता और हृदय की विशालता दृष्टिगोचर होती थी उसका पूर्वाभ्यास तो वे स्वर्गाश्रम में ही कर चुके थे। यात्रियों द्वारा जो फल, धन आदि स्वामी जी को अर्पण किया जाता था उसे वे अपने आसपास रहने वाले साधुओं को बाँट दिया करते थे। इसी कारण उनके पड़ोसी साधु स्वयं ही आने वाले तीर्थ यात्रियों को स्वामी जी के पास भेज देते थे क्योंकि उन्हें पता था कि अर्पित की गई सभी वस्तुएँ उन्हें ही प्राप्त होने वाली हैं।

स्वामी जी में आज आत्म विश्वास, परम महत्ता और अखंड शांति की जो किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं उसकी पृष्ठ भूमि में उनके उच्च ध्यान की शक्ति है। निस्संदेह उनकी गहन साधना और तप के कारण ही उनकी वाणी और दृष्टि में रहस्यमयी शक्ति का तत्क्षण ही आभास होता था।

स्वामी जी के भीतर शारीरिक व्यायाम की आदत बाल्यावस्था से ही थी और अपनी इस आदत को उन्होंने साधना अवधि में भी कर्तव्य निष्ठा से नियमित दिनचर्या बनाये रखा। इनमें से प्रमुख था एक या दो मील खुली हवा में दौड़ना, योगासनों तथा प्राणायाम का अभ्यास आदि। कुछ रुढ़िवादी संन्यासी व्यायाम की अवहेलना करते हैं और उन्हें हेय दृष्टि से देखते हैं लेकिन स्वामी जी ने धर्मान्धता का पक्ष कभी नहीं लिया। वे स्वर्गाश्रम से दूर थोड़े शांत क्षेत्र में नदी के मोड़ वाले स्थान पर जाकर थोड़ी दूर तक तेजी से दौड़ लगाया करते थे।

यह लगभग सन् तीस के प्रारंभ का समय था। उस समय स्वामी जी को लगा कि उनके पूर्व समय की बचत का कुछ अंश निकालना चाहिये। इसके लिए उन्होंने सेवा निवृत्त न्यायाधीश श्री गंगाशरण जी की सहायता से संबंधित विभाग में याचिका

लगाई। इससे उन्हें ५००० रुपये प्राप्त हुए। उनके अनुशासित और संयमी मन ने कहा कि वे इसमें से एक भी पैसा स्वयं के उपयोग में नहीं लेंगे। उन्होंने इसे डाक बचत बैंक में जमा कर दिया और इससे प्राप्त होने वाले ब्याज का दवाइयों तथा साधना हेतु कुछ पर्चे निःशुल्क छपवाने हेतु उपयोग किया।

स्वामी जी के लिए शरीर और आत्मा दोनों का उपचार समान रूप से आवश्यक था। ब्याज के धन की प्रथम किश्त जो लगभग २० रुपये प्रतिमाह होगी, इस धन से स्वामी जी ने कुछ आवश्यक वस्तुओं को मंगाया। देवदार की लकड़ी से बने जिन डिब्बों में दवाइयाँ आती थीं उनके पटियों से शिवानन्द पारमार्थिक अस्पताल की पहली अल्मारी बनी। इसके खंड पुष्टे से बनाये गये थे। उनमें स्वेद जनन तथा वायुनाशक औषधियाँ, ब्रोमाइड और अन्य मिश्रण रखे रहते थे। इस प्रकार औषधियों की प्राप्ति की समस्या बड़े पैमाने पर हल हो गई। लेकिन रोग के उपचार हेतु औषधियाँ मात्र पर्याप्त नहीं होतीं वरन् आहार में भी परिवर्तन आवश्यक होता है और अन्न क्षेत्र थोड़ी सी रोटियों और दाल के अलावा कुछ भी नहीं देते थे, चाहे संन्यासी बीमार हो या स्वस्थ। इसलिये स्वामी जी ने प्रतिमाह प्राप्त होने वाले ब्याज को दवाइयों के साथ-साथ दूध, दही, साबूदाना और जौ खरीदने में भी खर्च करना प्रारंभ कर दिया। यह स्वामी जी के लिए रोगी महात्माओं के कुटीरों में नित्य सेवा हेतु जाने का साधन हो गया। अब स्वामी जी ज्वर से पीड़ित रोगी के लिए शक्तिदायक जौ का पानी, बीमारी से स्वस्थ हो रहे व्यक्ति को गरम दूध तथा जिन रोगियों को दस्त लग रहे हों, उन्हें स्निग्ध दही दे सकते थे। हालाँकि यह धन मुश्किल से ही सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता था, लेकिन फिर भी स्वामी जी के लक्ष्य में धीरे-धीरे किंतु संतोषजनक प्रगति हो रही थी और उनकी प्रसन्नता की सीमा न थी।

एक जमींदार की पत्नी स्वामी जी के बारे में बताया करती थी ''वह स्वामी जी जो स्वर्गाश्रम में ढेरों कप अपने हाथों में लिए हर एक कुटीर में जाया करते थे और जिनके सिर पर एक गंदे कपड़े का टुकड़ा रहता था। वे तेज धूप में भी इसी प्रकार घूमते रहते थे और स्वयं अपने कुटीर में मात्र भोजन लेने जाया करते थे।'' सूखी रोटी और दाल जो अब तक गंगा जल की तरह ठंडी हो चुकी होती थी वह उनका प्रिय

स्वादिष्ट भोजन था यदि रास्ते में कोई भिक्षुक या भूखा आदमी उन्हें मिल जाता तो इस अल्प भोजन का अधिकांश भाग भी उसे दे दिया जाता। बाद में यह बात अन्न क्षेत्र के अधिकारियों को ज्ञात हुई तो उन्होंने स्वामी जी के दान में सहायता करने के लिए उनके भोजन की मात्रा में वृद्धि कर दी।

यदि प्रसन्नतापूर्ण शब्दों और प्रसन्न मुखमंडल के साथ भोजन और औषधियों को न दिया जाये तो वे उतनी प्रभावकारी नहीं होतीं। स्वामी जी बिना कुछ कहे रोगी के गंदे कपड़े ले जाते और कुछ घंटों बाद उन्हें धो कर, सुखाकर, तहकर वापस पहुँचा देते थे। वे जहाँ जाते वहाँ पानी का बर्तन भरकर रख देते और फर्श भी साफ कर देते।''

जब भी कभी सेवा का सुअवसर मिलता स्वामी जी उसे कभी हाथ से नहीं जाने देते। उन्होंने जीवन में कभी भी किसी काम को टाला नहीं।

लगभग सन् १९२६ की बात है। एक युवा संन्यासी जो दक्षिणी प्रदेश का रहने वाला था स्वर्गाश्रम में तपस्या रत था। वह एक अत्यंत समृद्ध परिवार से था या ऐसा कहें वह एक राजकुमार ही था। उसका संन्यास कठोर था और उसका आत्म त्याग अत्यंत दृढ़ था तथा उसकी प्रवृत्ति इतनी अति संवेदनशील थी कि वह किसी से कोई उपहार भी नहीं ग्रहण करता था और किसी से कोई वस्तु उधार भी नहीं लेता था। वह स्वामी जी द्वारा दी जाने वाली नित्य प्रति की आवश्यक वस्तुओं को भी अस्वीकार कर देता था। यहाँ तक कि वह उनके द्वारा की गई छोटी सेवाओं को भी स्वीकार नहीं करता था।

धीरे-धीरे वह स्वामी जी की पूर्ण निष्काम भावना और सेवा की शुद्ध भावना से वह इतना प्रभावित हुआ कि वह स्वामी जी को अब किसी भी चीज के लिए मना नहीं करता था। स्वामी जी की निष्काम भावना के कारण उसने अपनी उस तपस्या में थोड़ी शिथिलता लाई जिसके लिए वह साधु समाज में बुरी दृष्टि से देखा जाता था।

स्वार्गश्रम के जीवन के आरंभिक दिनों में ही स्वामी जी उन कामों को करने हेतु जाने जाते थे जिसे कोई भी करना पसंद नहीं करता था। एक बार स्वामी अनन्तानन्द जी एक प्रकार के घातक हैजा रोग से पीड़ित हो गये, लोग उनके कुटीर के पास जाने में भी डरते थे; लेकिन स्वामी जी उनके बिस्तर के पास निरंतर खड़े रहते थे। वे रोगी

के शरीर से विसर्जित होने वाले मल का बैडपैन अपने हाथों से साफ करते थे और उनके शरीर को भी साफ करते थे। जब श्री वीर राघवाचारी जी का शिष्य इसी रोग से पीड़ित हुआ तो स्वामी जी ने स्वेच्छा से उसकी देखभाल की।

एक बार जब कैलाश आश्रम में छोटी माता रोग का आक्रमण हुआ तो तत्काल स्वामी जी को रोगी के पास भेजा गया। वे रोगी के स्वस्थ होने तक वहीं रहे। रोग से संक्रमित होने के स्थान पर स्वामी जी को ऊर्जा और शक्ति के एकमात्र स्रोत (ईश्वर) से नयी ऊर्जा और शक्ति प्राप्त होने का अनुभव हुआ। स्वामी जी का हृदय पीड़ितों की पीड़ा से द्रवित हो गया और इस समय उन्हें अन्य समयों की अपेक्षा भगवान् के नाम का अधिक स्मरण हुआ।

श्री स्वामी कल्याणानन्द जी स्वामी जी की सेवा से आश्चर्य चकित रह गये और प्रसन्न होकर उन्होंने स्वामी जी के पास ही कुटीर बना लिया। जब भी श्री स्वामी कल्याणानन्द जी बीमार होते तो वे स्वामी शिवानंद जी को छोड़कर अन्य किसी के पास नहीं जाते थे। वे कहा करते थे कि अपने इन चमत्कारिक हाथों जो आप मुझे देंगे वह मुझे स्वस्थ कर देगा।

स्वामी जी को रोगियों के शरीर से निकलने वाले मल को साफ करने में भी घृणा नहीं होती थी। जब उनके स्वयं के शिष्य श्री स्वामी आत्मानंद जी बीमार हुए तो आवश्यकता पड़ने पर स्वामी जी ने स्वयं उनकी गुदा में उंगली डालकर मल को बाहर निकाला।

स्वामी जी के भीतर विशेष बात यह थी कि वे लोगों की आलोचनाओं से बिलकुल नहीं डरते थे। वे हमेशा स्वयं से प्रश्न करते थे कि मेरा क्या कर्तव्य है? वे कभी यह नहीं सोचते थे कि लोग क्या कहेंगे? सन् १९३० में शिघई की वृद्ध महारानी स्वामी जी के दर्शनार्थ कई बार ऋषिकेश आया करती थीं। जब वे धूप में जातीं तो गेरुआ परिधान पहने स्वामी जी छाता लेकर उनके ऊपर छाया करते चलते। स्वामी जी महारानी के साथ एक साधारण गृहस्थ महिला की भाँति व्यवहार करने के स्थान पर वे उनका आदर माँ के समान करते और उनसे सेवा भाव से पूछते—"क्या मैं आपके पैरों की मालिश कर दूँ?" उनके साथी संन्यासी उनका उपहास करते थे लेकिन स्वामी जी के लिए यह उनमें स्थित भगवान् की सेवा का अवसर था और वे

ऐसा करने के बाद यह अनुभव करते थे कि ऐसा करके वे गेरुए वस्त्र के साथ न्याय ही नहीं कर रहे वरन् उसकी गरिमा को बढ़ा रहे हैं। स्वामी जी भविष्य में आत्म साक्षात्कार प्राप्त महान् संत के रूप में प्रसिद्ध हुए और अन्य उपहास करने वाले संन्यासी जो संन्यास के अभिमान से वशीभूत थे वे अपना गेरुआ बाना त्याग कर जाने कहाँ चले गये। क्योंकि उन्होंने माया के मोहजाल को परम सत्य अथवा ब्रह्म समझ लिया था।

स्वामी जी अपने प्रवास के समय लखनऊ गये और महारानी के महल में ठहरे। वृद्ध महारानी हुक्का पीने की आदि थीं। उनके नौकर कर्तव्य पालन में असावधानी कर देते थे, लेकिन महारानी को पता भी नहीं चलता था और स्वामी जी हुक्का तैयार करके प्रातः महारानी को दे देते थे। वे सुबह-सुबह सोडा पीना पसंद करती थीं और उनके नौकर उन्हें कई बार उन्हें समय पर सोडा तैयार करके नहीं देते थे। परंतु स्वामी जी (जो महारानी के सम्माननीय अतिथि और गुरु थे) को अपनी शिष्या की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान रहता था। वे स्वयं सोडा तैयार करके महारानी को सही समय पर दे दिया करते थे।

स्वामी जी संन्यासियों को यह चेतावनी देते जीवन भर नहीं थके कि वे विपरीत लिंग वाले लोगों के अत्यधिक निकट रहने से बचें। वे उन्हें इस बात के प्रति भी सावधान करते थे कि उस कमरे में भी रात न व्यतीत करें जहाँ कोई स्त्री अकेली सोई हो। यह आचार का सिद्धाँत है लेकिन स्वामी जी के लिए इससे भी ऊँचा एक और आचार का सिद्धाँत था और वह था सेवा। एक बार जब वे लखनऊ में थे तो स्वामी जी ने बताया कि महारानी एक असाध्य रोग से पीड़ित थीं और यहाँ तक कि उनके स्वयं के नाती-पोते भी उनकी इतनी चिंता नहीं करते थे जितनी स्वामी जी। स्वामी जी महारानी के कमरे में एक कोने में सोये रहते थे और आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता हेतु तत्पर रहते थे।

सड़क पर भ्रमण करते समय भी स्वामी जी अपने साथ औषधियों का बक्स रखा करते थे रोगियों को औषधि वितरित करने के लिए तथा उन्हें वे बीमारों को दिया करते थे। उत्तरकाशी के स्वामी परम पूज्य स्वामी श्री तपोवन जी हमेशा बताया करते थे कि स्वामी जी कहीं भी जाते तो अपने साथ तीन थैले रखते थे। इसमें से एक

में निःशुल्क पर्चे, लघु पुस्तिकायें, कापियाँ आदि रहती थीं। दूसरे में फल तथा तीसरे में दवाइयाँ। सड़क के किनारे वे सैकड़ों स्थानों पर रुक कर संन्यासियों तथा गाँव वालों के बारे मे जानकारी लेते और उन्हें फल, दवाइयाँ और आध्यात्मिक साहित्य देते। निष्काम सेवा के लिए उनका संकेत वाक्य था **''ऐसी सेवा स्वयं रोगी को खोजेगी''**।

स्वामी जी कहा करते थे—''कई अवसरों पर आपको अपनी सेवाओं में आक्रामक होना चाहिये। कभी-कभी असहाय लोग जिन्हें सहायता की अत्यधिक आवश्यकता होती है, अज्ञानतावश सहायता को हठपूर्वक अस्वीकार कर देते हैं। ऐसे विषयों में उनके संकोच के बाद भी उनके लिए आवश्यक सेवा को किया जाना चाहिये। लेकिन वे शाँतिपूर्वक इसमें जोड़ते हैं कि आपको हर समय समान रूप से सहनशील, सभ्य, मृदु, शिष्ट तथा नम्र होना चाहिये। सदा दूसरों की भावनाओं को समझें और सेवा के नाम पर कभी भी अशिष्ट, असभ्य व कठोर न बनें।

स्वामी जी ने हंसते हुए दो अवसरों के बारे में बताया जब उन्होंने ऐसी आक्रामक विधियों का प्रयोग किया। पहला तो तब जब वे स्वामी ज्ञानानन्द जी को लखनऊ के अस्पताल में पीठ पर लाद कर ले गये जहाँ उसका उपचार चल रहा था। स्वामी ज्ञानानन्द जी इतने दुर्बल हो गये थे कि वे ड्रेसिंग रूम तक जाने और वापस अपने वार्ड में आने हेतु सक्षम नहीं थे और वे स्वामी जी के कंधों पर भी नहीं बैठना चाहते थे। लेकिन बाद में स्वामी जी ने मामला अपने हाथों में लिया और विरोध कर रहे स्वामी ज्ञानानन्द को अपनी पीठ पर बैठा कर नित्य ड्रेसिंग रूम में ले जाया करते थे। दूसरी घटना तब की है जब स्वामी जी गंगा सागर की तीर्थ यात्रा पर जा रहे थे। उस समय उनके साथ शिंघई की वृद्ध महारानी भी थीं जिनकी आयु उस समय लगभग ७० वर्ष ही की होगी। पानी का बहाव अत्यंत तीव्र था और नाव बहुत भारी हो गई थी। इस कारण सभी यात्री नाव से जहाज पर जा रहे थे लेकिन महारानी अत्यंत भयभीत होने के कारण जाने को तैयार नहीं थीं। स्वामी जी ने कहा मैं आपको जहाज पर पहुँचा देता हूँ। परंतु महारानी स्त्रियोचित संकोच के कारण विरोध कर रहीं थी। एक क्षण में ही स्वामी जी ने प्रतिवाद कर रही महारानी को सम्मानपूर्वक उठा

कर जहाज के बोर्ड पर पहुँचा दिया। महारानी की बेटियाँ स्वामी जी के काम करने की तत्परता को देखकर हँस रही थीं।

धीरे-धीरे स्थिति बदल गई। उनकी चिकित्सा में योग्यता तथा प्रेमपूर्ण स्वभाव के बारे में सुनकर असंख्य लोग सहायता और उपचार हेतु असमय ही उनके कुटीर में आने लगे। यह इतना अधिक बढ़ गया कि कभी-कभी तो वे कुटीर से भागकर किसी चट्टान के पीछे, जल धारा के पास अथवा किसी जीर्ण-शीर्ण कुटीर में छिप जाते और इस प्रकार वे गहन ध्यान के लिए एक या दो घंटे निकाल लेते थे।

कष्ट से पीड़ित जनों का बुलावा आने पर (चाहे यह समय अर्धरात्रि का क्यों न हो) पीड़ित को कष्ट से मुक्ति दिलाने के लिए स्वामी जी सब कुछ छोड़कर एकदम दौड़ पड़ते थे। एक बार की रोचक घटना है जिससे स्वामी जी की महान् सहनशीलता का ज्ञान होता है—एक बार एक साधु ने उनके कुटीर पर मध्य रात्रि के समय धावा बोल दिया। वह सुरक्षा तारों के ऊपर चढ़कर भीतर आ गया और उनके दरवाजे को जोर-जोर से ठोकने लगा। स्वामी जी बहुत अधिक थके हुए थे लेकिन फिर भी उन्होंने आकर उसकी समस्या जानी। वह साधु अपनी आँख में चले गये धूल के कणों को निकलवाना चाहता था। हालाँकि यह कोई ऐसी समस्या नहीं थी जिसके लिए स्वामी जी को देर रात में परेशान करना जरूरी था लेकिन फिर भी स्वामी जी ने अपना संतुलन बनाये रखा और अपनी सहनशीलता का परिचय दिया और उसे संतुष्ट कर वापस भेज दिया। इस सारे क्षेत्र में बिच्छू बहुत अधिक थे। इस कारण बिच्छू दंश से पीड़ित लोग कभी भी अनचाहे क्षणों में आ जाया करते थे। अत्यधिक परेशानी में भी स्वामी जी ने अपने मन को कभी उद्विग्न नहीं होने दिया।

अपनी तपस्या के बाद के समय में स्वामी जी ने रोगियों की सेवा के लिए मन और हृदय के साथ-साथ प्राण शक्ति का भी प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया। वे शीघ्र उपचार हेतु अपनी प्राण शक्ति का प्रयोग करते थे। वे रोगी के रोग ग्रस्त अंग में प्राण शक्ति भेजने की विद्या में सिद्धहस्त थे और इससे उपचार चमत्कारिक रूप से प्रभाव करता था।

वे हमेशा कहा करते थे कि दवाई का प्रयोग करने के बाद उन्हें रोगी के पैरों की मालिश करने दी जाये। इस कार्य में उन्होंने सभी प्रकार की भिन्नताओं जैसे जाति,

पंथ, रंग, सामाजिक स्थिति और लिंग भेद को भी भुला दिया था। इससे संबंधित एक आश्चर्यजनक किंतु महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है— एक बार की बात है एक दक्षिण भारतीय यात्री महिला थी। वह काली कमली वाला धर्मशाला में ठहरी थी। वह बीमार हो गई। उसे स्वामी जी के बारे में पता चला तो वह आयी और उसने स्वामी जी को अपनी बीमारी के बारे में बताया और दवाई माँगी। स्वामी जी ने उसे औषधियाँ दीं और प्राण शक्ति क्रिया द्वारा उसके पैरों की मालिश करनी चाही, लेकिन वह स्त्री तरुणी थी। नारी सुलभ लज्जा और संकोच तथा अपनी धर्मपरपायण भावना के कारण वह आदरणीय स्वामी जी से अपने पैरों को स्पर्श नहीं कराना चाहती थी। अतः उसने स्वामी जी के मालिश करने के निवेदन को अस्वीकार कर दिया और स्वामी जी ने भी अपना विचार त्याग दिया। स्वामी जी जब अपने कुटीर में आये उनके मन में यही घटना घूम रही थी और वे निरंतर इसके विषय में सोच रहे थे। उन्होंने अपने वरिष्ठ शिष्य आत्मानन्द जी को बुलाया और कहा—''मैंने अपनी समर्पित भाव से की जाने वाली सेवा हेतु उससे आग्रह क्यों नहीं किया? वह अवश्य ही दूसरे ढंग से सोचती थी किंतु मैं तो वेदांती हूँ सभी शरीरों में एक ही आत्मा का वास होता है। इसलिये मुझे उसे अपने दृष्टिकोण से सहमत करने का प्रयत्न करना चाहिये था। नहीं, नहीं, मैंने अपने कर्तव्य की उपेक्षा की।

यह बात उनके मन में घूमती रही। नित्य प्रातःकाल जब वे गहन ध्यान में रहते थे। आज वे अपने शिष्य के साथ उस रोगिणी को खोज रहे थे और शीघ्र ही उन्होंने उसे खोज ही लिया तथा उस स्त्री को अपने आने का कारण बताया और समर्पण भाव से अपनी सेवा प्रदान की जो काम औषधि न कर सकी वह इस प्राण शक्ति वाली मालिश ने कर दिखाया और उस स्त्री को आराम का अनुभव हुआ।

भगवान् के भक्तों के आमंत्रण पर स्वामी जी छोटे-छोटे प्रवासों पर जाया करते थे। सन् १९२५ में वे शेरकोट रियासत में धामपुर गये, वहाँ की रानी फूल कुमारी देवी ने उनका आत्मिक स्वागत किया। स्वामी जी ने वहाँ कीर्तन-भजन के कार्यक्रम किये और वहाँ के निवासियों का उपचार भी किया। इन कार्यक्रमों में मंडी की महारानी ने भी भाग लिया। वे कहती थीं ''मैं स्वामी जी के मधुर और प्रेरक भजनों को कभी नहीं

भूल सकती, वे मुझे सदा स्मरण रहेंगे। मैं आज भी उनके प्रभाव का अनुभव कर सकती हूँ। इन भजनों ने मुझे शांति प्रदान की और मेरा आत्मोत्थान किया।''

स्वामी जी के मुख से मधुर और संगीतमय भजनों तथा प्रेरक व्याख्यानों को सुनकर तथा उनके महान् व्यक्तित्व से शीघ्र ही धर्मपरायण तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाली महारानी और रियासत के अधिकारी प्रभावित हो गये और स्वामी जी से हमेशा के लिए रियासत में ही रहने का आग्रह करने लगे। सदा के लिए वहाँ रहने का विचार स्वामी जी को उचित नहीं लगा। इसलिये स्वामी जी ने तत्काल निर्णय लिया और उसे कार्यान्वित किया। यह एक नाजुक परिस्थिति थी। वे बिना किसी के ध्यान में आये, बिना किसी को सूचना दिये चल दिये।

कमर पर एक वस्त्र लपेटे और एक वस्त्र कंधे पर लिए वे पैदल ही ऋषिकेश वापस चल पड़े। यह शीत ऋतु के मध्य का समय था। दो दिनों तक वे भूखे रहे और मात्र गंगा जल ही ग्रहण किया। ठंड तीव्र थी और वस्त्र भी कम। लेकिन वे हर श्वाँस पर भगवान् का नाम लेते थे और उसकी उष्णता से अपने शरीर को गर्म रखते थे।

धरती माँ ने उन्हें घास की नर्म शय्या प्रदान की। वे कड़कती ठंड में भी इस शय्या पर निढाल हो कर गहरी निद्रा में सो जाया करते थे।

रास्ते में पड़ने वाले छोटे-छोटे गाँवों में लोगों को एकत्र करके स्वामी जी भजन-कीर्तन करते। वे स्वयं को होने वाली असुविधाओं पर कभी ध्यान नहीं देते थे। इस प्रकार वे ऋषिकेश पहुँच गये। शरीर से तो वे निर्बल हो गये थे लेकिन मानसिक रूप से अत्यधिक ऊर्जावान हो गये थे।

स्वामी जी मध्यम मार्ग पसंद करते थे। वे एकांत तो पसंद करते थे लेकिन सबसे अलग-थलग नहीं रहते थे। वे कहा करते थे कि कभी-कभी ऐसे प्रवासों पर जाने से उन्हें सभी दैवी गुणों के विकास और मानव मात्र की व्यापक रूप से सेवा करने में सहायता मिलती है।

स्वामी जी तो यहाँ तक कि रेल यात्रा में भी यात्रियों को योगासन सिखा देते थे तथा जप और ध्यान पर सरल निर्देश भी दे देते थे। वे अपने साथ हमेशा छोटा सा दवाई का बक्सा भी रखते थे और बीमारों को दवाई भी दिया करते थे।





बाद में उन्होंने अपने शिष्यों को बताया कि ''मैं प्रवास के समय अपने साथ स्याही की शीशी, पेन, पेंसिल, पिनें, अध्ययन हेतु कुछ पुस्तकें जैसे गीता, ब्रह्मसूत्र, विवेक चूड़ामणि, उपनिषद् आदि रखा करता था। मैं अपने साथ आवश्यक पत्र व्यवहार हेतु डाक टिकिट भी रखता था। मैं रेल के समय से दो घंटे पूर्व रेलवे स्टेशन पहुँच जाता था। इधर-उधर देखने के स्थान पर मैं एक वृक्ष के नीचे बैठ जाता और अपना लेखन कार्य करता। यात्रा के मध्य महत्वपूर्ण स्थानों पर रुक कर स्वादिष्ट भोजन तथा आर्थिक सहायता प्राप्त करने या मित्रों तथा भक्तों से मिलने के लिए मैं उनके पतों की कापी अपने साथ कभी नहीं रखता था। मैं जिस काम के लिए जाता था उसे शीघ्रतापूर्वक पूर्ण करके शीघ्र ही ऋषिकेश लौट आता था।

इस समय स्वामी जी ने हिमालय पर स्थित कई तीर्थ स्थानों की यात्रा की—

सन् १९२६ में स्वामी अद्वैतानन्द जी, स्वामी बालानन्द जी और स्वामी विद्यासागर जी के साथ स्वामी जी केदारनाथ और बद्रीनाथ गये। वे इस यात्रा के लिए ऋषिकेश से मई माह के मध्य में निकले। वे पूरी यात्रा में उच्च भावोत्कर्ष की स्थिति में थे। जब वे मार्ग में किसी बीमार यात्री से मिलते तो उसका उपचार करते और चलते-चलते भजन और कीर्तन करते चलते। उन्होंने तप्त कुंड के गर्म जल में तथा बद्रीनाथ में अलकनंदा के बर्फीले जल में स्नान किया। वे व्यर्थ की बातों में एक क्षण भी नहीं गंवाते थे। स्वामी जी सदा आत्मस्वरूपानन्द जी के साथ वेदांत पर चर्चा करते थे।

वापसी यात्रा में वे देव प्रयाग से मसूरी और टिहरी गये और फिर ऋषिकेश वापस चले गये।

सन् १९३० में उन्होंने कलकत्ता के पास गंगा सागर की यात्रा की। इस समय महारानी सूरत कुमारी देवी और उनके सचिव भी उनके साथ थे। वे कलकत्ता से स्टीम बोट में गये और अगले दिन प्रातः गंगा सागर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सागर में स्नान किया और कपिल मुनि के मंदिर के दर्शन किये।

बारह जून को स्वामी जी ने परम पूज्य श्री स्वामी अद्वैतानन्द जी, श्री स्वामी स्वयं ज्योति महाराज, श्री ब्रह्मचारी योगानन्द, महारानी सूरत कुमारी देवी, सिंघई रियासत के ओ.बी.सी. और श्री केदारनाथ (महारानी के सचिव) के साथ कैलाश

यात्रा प्रांरभ की। वहाँ पहुँच कर सभी ने मानसरोवर झील के स्वच्छ नीले जल में स्नान किया। उसके बाद सभी ने पवित्र कैलाश पर्वत की परिक्रमा लगाना प्रारंभ की। पहले दिन वे इंडस नदी के किनारे ठहरने वाले स्थान पर रुके। यह स्थान तिब्बती मठ के सामने था। इसी दिन सन्ध्या के समय ब्रह्मचारी योगानंद के साथ स्वामी जी इंडस नदी के उद्‌गम को देखने गये। बर्फ और ढलवाँ चट्टानों पर लगभग एक मील थका देने वाली चढ़ाई चढ़कर वे अपनी मंजिल पर पहुँच गये। यहाँ पर बर्फ के बीच से एक छोटी धारा बह रह थी। यहाँ पर एक बर्फ के टुकड़े का आकार शिवलिंग जैसा है। उसकी स्वामी जी ने पूजा की और फिर वे वापस अपने शिविर चले गये। अगले दिन प्रातः सभी गौरी कुंड गये। यह समुद्र से लगभग १८६०० फीट ऊँचाई पर स्थित एक झील है। यहाँ पर हवा इतनी विरल थी कि सांस लेने में कष्ट हो रहा था। इसलिये सभी बुरी तरह थक गये। फिर भी स्वामी जी ने झील की सतह की बर्फ को तोड़ा और बर्फीले जल में स्नान किया। कैलाश पर्वत की परिक्रमा के पश्चात् वे तिब्बत की सीमा को वापस आये और अल्मोड़ा की ओर चल पड़े। भीषण शीतल हवा और जला देने वाली धूप से स्वामी जी का चेहरा काला पड़ गया था और उनका वजन १५ पौंड कम हो गया था लेकिन संपूर्ण यात्रा में मिले अत्यधिक आनंद के सामने यह स्वामी जी के लिए कोई अर्थ नहीं रखता था। वे बोले ''तुम अनिच्छापूर्वक वापस आये। जो मार्ग तुम्हें पवित्र कैलाश जो अमर आनंद का धाम है, वहाँ लेकर जाता है उसी रास्ते से तुम पुनः अन्तहीन कष्टों, असमंज़सता और दुःखों के प्रदेश में प्रविष्ट हो गये।''

कैलाश पर्वत को मेरु पर्वत अर्थात पृथ्वी की धुरी भी कहते हैं। पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं है जिसकी तुलना कैलाश की स्थायी बर्फ के अप्रतिम सौंदर्य से की जा सके। सभी तीर्थयात्राओं में कैलाश मानसरोवर की यात्रा सबसे अधिक कठिन है। स्वामी जी ने पूरी यात्रा में लगभग ४६० मील दूरी तय की।

इस यात्रा के मध्य भी स्वामी जी ने रोगियों की सेवा की। जब लोग चलते-चलते थक जाने पर विश्राम करते थे, वे अपनी चिकित्सा सेवा में व्यस्त रहते थे। स्वामी जी ने वमन कराने वाला इंजेक्शन लगाकर एक बंगाली साधु के जीवन की रक्षा की।

समाधि

धीरे-धीरे स्वामी जी का ध्यानाभ्यास तीव्रतर होता चला गया। उन्होंने भोजन, लोगों से मिलना-जुलना, बातचीत आदि सब छोड़ दिया। वे गहन समाधि में रहने लगे। वे कई-कई दिनों तक एकदम स्थिर और ध्यान में रहते थे और अपने कमरे में बंद रहते थे। इस अवधि में वे विश्राम भी नहीं करते थे। उनके साथियों को बड़ा आश्चर्य होता था कि वे किस मिट्टी के बने हैं।

इस प्रकार धीरे-धीरे पाँच वर्ष बीत गये। सन् १९२९ या १९३० में वह भाग्यशाली दिन आ गया जब स्वामी जी अपनी संपूर्ण साधना के लक्ष्य पर पहुँच गये। इस बारे में स्वयं स्वामी जी ने अपनी आत्म कथा में लिखा हैः

''मैंने जीवन में सदा ही उच्च विचार, हल्का भोजन, गहन अध्ययन, शांत ध्यान और नियमित प्रार्थना पर विशेष ध्यान दिया। मुझे एकांत प्रिय था और मैं मौन रहता था। मुझे लोगों से मिलना-जुलना और बातचीत पसंद नहीं थी। मैं मुनि की रेती स्थित राम आश्रम ग्रंथालय से कुछ पुस्तकें ले आता था और प्रतिदिन अध्ययन हेतु कुछ समय दिया करता था। विश्राम और शिथलीकरण से मुझे प्रबल साधना हेतु पर्याप्त शक्ति प्राप्त हो जाती थी। मैं बहुत से पुण्यात्मा लोगों से भी मिला लेकिन मैं कभी भी तर्क और विवाद में नहीं पड़ा। आत्मविश्लेषण और आत्मावलोकन मेरे पथ प्रदर्शक थे। मैं ध्यान और साधना में विभिन्न योगासनों के अभ्यास में बहुत समय दिया करता था। और मेरी साधना के सारे अनुभव जिज्ञासुओं के निर्देशन हेतु मेरी पुस्तकों के रूप में सामने आये। सामान्यता लोग अपने दुर्लभ ज्ञान और साधन के रहस्य को गुप्त रखते हैं और कुछ चुने हुए लोगों को सिखाते हैं लेकिन मैं अपने अनुभवों और विचारों को सत्य की खोज हेतु यत्न शील लोगों की सहायता हेतु शीघ्रता से बाहर भेज दिया करता था।''

स्वामी जी ने भगवद्-साक्षात्कार की वास्तविक तिथि स्वयं तक ही सीमित रखी। हम सब स्वयं उनके मुख से वह घटना सुनने के लिए एकत्र हुए थे। जब उन्हें गहन ध्यान में उपनिषदों के ऋषियों और भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन हुए तक उन्हें क्या अनुभव हुये। इस विषय में स्वामी जी ने लिखा हैः

"ईश्वर मेरे जीवन में कैसे आये? इस प्रश्न को यह कहकर समाप्त करना अत्यंत सरल है कि जब मैं स्वर्गाश्रम में रहता था, तो मैंने बहुत समय तक तपस्या और ध्यान किया। उस समय मुझे बहुत से महर्षियों के दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त हुए और भगवान् मेरे समक्ष श्री कृष्ण के रूप में प्रकट हुए।" लेकिन न तो यह ही संपूर्ण सत्य है और न ही यह उस ईश्वर से सम्बन्धित प्रश्न का जो कि अनंत, असीम और मन तथा वाणी से परे है का संतोषजनक उत्तर है। यहाँ तक कि सांसारिक अनुभव में भी आप स्वाद को व्यक्त नहीं कर सकते। आप सेबफल के स्वाद को उस व्यक्ति के सामने नहीं व्यक्त कर सकते जिसने सेबफल को कभी चखा न हो। आप एक दृष्टिहीन व्यक्ति को रंग की प्रकृति के बारे में नहीं बता सकते। ठीक इसी प्रकार समाधि का स्वाद पूर्ण प्रसन्नता, आनंद और शांति है। बस इतना ही कहा जा सकता है कि इसका अनुभव स्वयं ही किया जा सकता है।

इस अनुभव पर उन्होंने निम्न कविता लिखीः

मैंने इस मंगलमय दिवस को
बड़ी धूमधाम और वैभव के साथ
प्रकाश और आनंदमय गीतों के साथ मनाया
आज मेरी आकांक्षा पूर्ण हुई
आज मेरे प्रिय से मेरा मिलन हुआ।

मेरे प्रिय के सौंदर्य वर्णन के लिए मैं शब्द कहाँ खोजूँ
वे तो करोड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान थे।
वे मेरे हृदय सिंहासन पर आरूढ़ हुए
प्रेम का दीप और अधिक प्रदीप्त हो उठा।

मैंने उन्हें प्रेम के जल से स्नान कराया
मैंने उनकी प्रेम के पुष्पों से अर्चना की
मैंने उन्हें मक्खन और मिश्री दी
मैंने लबालब भरे प्रेम के प्याले से आनंद रूपी अमृत का पान किया
यह परमानंद का प्याला था।
यही मेरे आनंद का स्त्रोत था।

मेरे भगवान् की कृपा मुझ पर हुई

मैं कितना भाग्यवान् हूँ मैंने मेरे प्रिय को देखा।

स्वामी जी अपनी साधना की चरम सीमा पर पहुँच गये। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक साधना के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त किया। अब उन्हें और साधना की आवश्यकता नहीं रही क्योंकि समाधि अब उनके लिए स्वाभाविक हो गई थी। अब वे बिना किसी प्रयत्न के सदा आत्मा के साथ रहते थे।

स्वामी जी ने एक जीवनी लेखक को बताया कि उनकी साधना में कोई विघ्न नहीं आये और न ही उन्हें मन के साथ संघर्ष करना पड़ा। इस समय उनके सामने कोई बाधायें नहीं आईं और यह मार्ग उनके लिए अत्यंत सरल था।

इसका यह अर्थ नहीं है कि साधना काल में उन्हें सदा पुष्पों की शय्या मिली। उन्हें भी साधना काल में तथा बाद में भी कई कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा किंतु उनके भीतर प्रसन्नता और आनंद भरा रहता था जो कि प्रत्यक्ष कष्टों और संकटों से अप्रभावित रहने में उनकी सहायता करता था।

स्वामी जी के आरंभिक शिष्यों में से एक श्री नारायणानंद जी ने बताया कि स्वामी जी सदा जागरुक रहते थे, इस कारण उनकी साधना में कोई विघ्न नहीं आये। साधना में गंभीर बाधायें आने पर भी उन्होंने वासनाओं और आलस्य की लहरों को कभी भी उठने नहीं दिया। उनका मन तथा इंद्रियाँ उनकी पूर्ण दास थीं और इस विषय में उन्होंने कोई भूल नहीं की।

जब उन्हें वह ज्ञान प्राप्त हुआ जो मानव मात्र के कष्टों का अंत कर सके तो उनके हृदय में सभी को इस ज्ञान में भागीदार बनाने तथा इस आध्यात्मिक ज्ञान का विस्तार करने की ज्वलंत इच्छा जाग्रत हुई। उनके हृदय से प्रस्फुटित इस दिव्य ज्ञान की ज्योति ने अपने पास पहुँचने वाले सभी लोगों के हृदय से अज्ञानता रूपी अंधकार को दूर कर दिया। इस ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् उनके प्रवचन और लेखन में एक विशेष प्रकाश दिखाई दिया और उनमें एक सुस्पष्ट दृढ़ता का आभास होता था। लोग उनके पास खिंचे चले आते थे और शाँत होकर उनके प्रवचनों को सुनते थे। अधिकांश श्रोता अंग्रेजी नहीं समझते थे। और स्वामी जी सदा अंग्रेजी में ही बोलते थे। लेकिन फिर भी सब उनकी बातें सुनते थे क्योंकि उनकी उपस्थिति में कुछ विशेष बात थी।

एक लक्ष्य का जन्म

प्रथम पुस्तक

पर्याप्त सुविधाओं तथा भोजन का अभाव होने पर भी स्वामी जी की कार्य करने की क्षमता अद्भुत थी। वे रोगियों की देखभाल करते, विद्यार्थियों को कुछ बातें लिखवाते, समाचार पत्रों में लेख भेजते तथा साक्षात्कार के समय में यात्रियों के प्रश्नों का उत्तर देते।

इस प्रकार काम करते हुए वे कुछ पत्रिकाओं और समाचार पत्रों जैसे कल्याण, भक्ति, पारकोली, संकीर्तन, विज्ञन, लोकोपकारी, पीस, मेहेर गजेट, शांति, द स्टूडेंट आदि में अपना सहयोग देने लगे।

सर्वाधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि वे एक पुस्तक लिखने और सन् १९२९ में इसे प्रकाशित करवाने में सफल हो गये। इस पुस्तक का शीर्षक था **'प्रेक्टिस ऑफ योगा—भाग १'** (अब यह हिंदी में भी **योगासन** नाम से उपलब्ध है) उनके पास उस समय टाइपराइटर भी नहीं था और कागज भी नहीं था और न इसे खरीदने हेतु पर्याप्त धन ही था। यदि उनके पास कभी कागज खरीदने के लिए धन होता तो भी पास में कोई दुकान भी नहीं थी। स्वामी जी के नेतृत्व में बहुत से साधु रद्दी कागजों के ढेर में से छोटे-छोटे खाली कागज या लिफाफों के भीतर के कोरे कागज की खोज में निकल पड़े। इन खाली कागजों और लिफाफों के भीतर के कोरे कागज को कापी की तरह बना लिया गया। उस समय उनके पास लालटेन भी नहीं थी। इसलिये स्वामी जी ने स्याही की बोतल में मिट्टी का तेल भर लिया और धागे से बत्ती बना ली, और इस घरेलू लैंप के प्रकाश में वे देर तक लिखा करते थे। उनके पास पुनः स्वच्छता से लिखने वाला भी कोई नहीं था। फिर भी उन्होंने परिश्रम से एक रोमांचक पुस्तक तैयार कर ही ली।

स्वामी जी किसी प्रकाशक को भी नहीं जानते थे, लेकिन उन्होंने अपने प्रारंभ के लेखों को प्रकाशित करने के लिए एक अनूठा तरीका खोज लिया। उन्होंने

स्वनिर्मित कागज पर एक प्रेरक लेख लिखा और उसे मद्रास, लखनऊ तथा कलकत्ता के डाक अधिकारी के पास यह संदेश लिखकर भेज दिया कि ''ये विचार मेरे मन में प्रकट हुए और मुझे ऐसा लगा कि ये अत्यंत प्रेरणाप्रद हैं। अतः आपसे विनम्र निवेदन है कि आप इन्हें एक छोटे से पत्रक के रूप में छपवायें। आप इनकी जितनी चाहें प्रतियाँ छपवा सकते हैं और वितरित कर सकते हैं। लेकिन आप मुझे १०० प्रतियाँ भेज दें।'' इनमें से एक पोस्टमास्टर ने स्वामी जी के पास १०० प्रतियाँ भेजीं इस संदेश के साथ कि ''मैं आपके विश्वास की प्रशंसा करता हूँ।'' बाद में वह स्वामी जी का बड़ा तथा प्रसिद्ध प्रकाशक बन गया।

प्रथम शिष्य

यह वह समय था जब स्वामी जी ने अपने प्रथम शिष्यों को संन्यास में दीक्षित किया। उनके प्रथम शिष्य थे स्वामी सच्चिदानंद जी। इन श्रेष्ठ स्वामी जी के बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती, लेकिन हम जानते हैं कि जब स्वामी परमानंद जी सन् १९३२ में जुड़े तब वे स्वामी जी के साथ रहते थे।

जब स्वामी जी को परमानंद जी ने पत्र लिखा तब वे मद्रास में रेलवे में नौकरी करते थे और स्वामी जी स्वर्गाश्रम में थे। वे स्वामी जी की पुस्तक 'प्रेक्टिस ऑफ योग—भाग १' से बहुत अधिक प्रेरित हुए। वे स्वामी जी के दर्शन कग्ना चाहते थे तथा यदि सम्भव होता तो वे प्रत्यक्ष शिष्य के रूप में उनके पास रहकर सेवा करना चाहते थे। स्वामी जी ने स्वामी परमानंद जी को जो पत्र लिखे वे अत्यंत प्रेरणाप्रद थे। इनमें से प्रथम पत्र जो २९ अगस्त सन् १९३० को लिखा गया था। इस पत्र का सार नीचे दिया जा रहा है:

''आप आध्यात्मिक संस्कार वाले व्यक्ति हैं। इन संस्कारों का पोषण करें। उनमें पूर्णता लायें और उनमें वृद्धि करें। आप यहाँ मत आइये। आप पाँडिचेरी के श्री अरविंद घोष के आश्रम में या रामकृष्ण मिशन में प्रवेश लेने का प्रयास करें। आप वहाँ निश्चित ही विकास करेंगे। उनमें से किसी एक के साथ जोंक की तरह चिपके रहिये। आध्यात्मिक मार्ग में युवावस्था के उत्साह या भावनाओं मात्र से काम नहीं चलता। यह पथ फूलों का नहीं है। यह कांटों, बिच्छुओं और सर्पों से भरा हुआ है। यह मार्ग ऊबड़-खाबड़, पथरीला तथा अत्यंत कठिन है। ''लेकिन मैं साक्षात्कार

करूँगा अन्यथा अपना जीवन त्याग दूँगा।'' ऐसे दृढ़ निश्चयी मनुष्य के लिए सरल है। ज्ञान हेतु प्रबल तृष्णा चाहिये। आध्यात्मिक प्रगति की एक दैनिन्दनी रखिये। उसमें हर बात लिखिये। भविष्य में मेरे उत्तर हेतु टिकट अवश्य भेजें।''

यह स्वामी जी की विशिष्ट शैली थी। द्वितीय पत्र जो ३ अक्टूबर १९३० को लिखा गया है यह बताता है कि शिष्य अपनी महान् आकांक्षा में दृढ़ था इसलिये उसे इस पत्र में लाभप्रद निर्देश दिये गये हैं।

जितना सम्भव हो अधिक से अधिक धन बचायें और इसे डाक बचत योजना में ५ वर्षों के लिए जमा करा दें। इससे आपको अच्छा ब्याज मिलेगा। उन दिनों आपको धन की आवश्यकता पड़ेगी। आजकल गृहस्थों की संन्यासियों के प्रति सहानुभूति कम हो गई है। इसलिये संन्यासी को भी धन की आवश्यकता पड़ती है। मायलापुर के रामकृष्ण मिशन में जाया कीजिये। सुख के दो ही केंद्र होना चाहिये—एक स्वाध्याय और दूसरा ध्यान इसके अलावा अन्य सुख के बाह्य केंद्रों से संबंध विच्छेद कर लीजिये।

तीसरा पत्र १२ दिसम्बर १९३० को लिखा गया है। उससे यह ज्ञात होता है कि चूँकि शिष्य ने गुरु से मिलने का निश्चय कर लिया है इसलिये उसे ऋषिकेश आने हेतु स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं। लेकिन स्वामी जी मूल्यांकन की युक्ति में दृढ़ हैं।

कृपया स्वर्गाश्रम में कुछ दिन निवास करें। निस्सन्देह यहाँ का एकान्त वातावरण तथा आध्यात्मिक स्पन्दन आपको आनन्द प्रदान करेंगे। आप स्वामी सच्चिदानंद जी के साथ रहें। मेरा नाम उन्हें बतायें। वे आपकी व्यवस्था करेंगे और सेवा करेंगे। कुटीर संख्या ३१ में एक अन्य स्वामी बालानंद मिलेंगे। जब तक मैं आश्रम में वापस नहीं आ जाता वे आपकी सहायता करेंगे। कृपा करके आप ऋषिकेश के डाक अधिकारी महोदय से मेरा पता मालूम कर लें और अपने आने की सूचना दें। यदि आप स्वामी अद्वैतानन्द जी तथा तपोवन स्वामी जी के दर्शन भी कर लेंगे तो यह और भी अच्छा होगा। ये दोनों भी श्रेष्ठ महात्मा हैं। ब्रह्मपुरी वन में जाकर स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी के दर्शन कीजिये। ये सभी मेरे अन्तरंग मित्र हैं।

अगली बात पर कृपा करके ध्यान दें। इस संसार को छोड़ने में शीघ्रता न करें। यह संसार सात्विक गुणों के विकास हेतु कार्य क्षेत्र है। जो लाभ लेना चाहते हों उनके

लिए यह जगत् सर्वश्रेष्ठ गुरु है। अभी कुछ समय तक और वहीं रहें। सद्गुणी जीवन व्यतीत करें और अर्जित करें तथा सुरक्षित रहें। भोग से ही वैराग्य होता है। विवाह न करें। यह एक भिन्न बिन्दु है। यह जगत् नर्क नहीं है। जब अहंकार, राग-द्वेष मृत हो जाते हैं तो यहाँ आनन्द ही आनन्द है। अपने मनोभावों को परिवर्तित करें। इन सभी तीर्थ स्थलों और महात्माओं के दर्शन कीजिये। इनसे आपको प्रेरणा मिलेगी। लेकिन संसार का त्याग करने में उतावली न करें। आध्यात्मिक पथ फूलों की राह नहीं है। यह पत्थरों से भरा है।

परमानन्द जी ने भी स्वामी जी के बताये अनुसार अनुसरण करने का निश्चय किया। स्वामी जी का अगला पत्र जो दिनाँक १७ जनवरी १९३१ को लिखा गया था भविष्य के होनहार शिष्य के प्रति गुरु के प्रबल भावना युक्त दिव्य प्रेम की झलक देता है तथा उनकी उस उत्सुकता को भी दर्शाता है जिससे कि आगे आने वाले कामों के प्रति वह शिष्य भली प्रकार तैयार हो सके।

ईश्वर और धर्म के प्रति आपकी भक्ति निस्सन्देह आपको इस माया जाल से ऊपर उठायेगी। भगवान् आपको जीवन के लक्ष्य भगवद् साक्षात्कार की प्राप्ति हेतु आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करे। कृपया रामकृष्ण मिशन में जाया कीजिये। मैं यह आपको वचन देता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ कि वहाँ आपका बहुत अधिक विकास होगा। आप कुछ समय तक मिशन से दृढ़ता पूर्वक जुड़े रहें। आप यहाँ मात्र दर्शन हेतु आयें, स्थाई निवास हेतु नहीं। बिना सोचे कोई काम न करें। सोचें, विचार करें। अपनी नौकरी से त्याग पत्र न दें। आपको बाद में पश्चाताप होगा। जितना अधिक से अधिक सम्भव हो पैसे बचायें। कुछ और वर्षों तक और काम करें। संसार श्रेष्ठ गुरु है। आपको अभी बहुत कुछ सीखना है। जल्दबाजी न करें। यौवन का जोश अधिक सहायता नहीं करता है। यह रास्ता अत्यन्त जोखिम भरा और खतरनाक है।

शिष्य ने अत्यन्त धैर्यपूर्वक सोच विचार करके गुरु के निर्देशों का पालन किया। हालाँकि मानसिक रूप से शिष्यता वे पहले ही स्वीकार कर चुके थे अतः वे रामकृष्ण मिशन से जुड़ गये। यहाँ वह पत्र दिया जा रहा है जो स्वामी जी ने सन् १९३१ में लिखा था। इसमें उन्होंने स्वामी परमानन्द जी को बधाई दी है और उन्हें आध्यात्मिक मार्ग में ईश्वर की सहायता प्राप्त करने हेतु शुभकामना दी है।

मैं अभी अभी एक लम्बी कैलाश यात्रा से वापस आया हूँ। मैं आपके पत्र हेतु प्रतीक्षारत था। मैं आपको इस आध्यात्मिक साहसिक कार्य हेतु बधाई देता हूँ। यह आपके बारे में पहले ही बहुत कुछ बता रहा है। आपने रामकृष्ण मिशन से जुड़कर बहुत ही अच्छा काम किया है। भग्वान् आपको ब्रह्म-साक्षात्कार के आपके प्रयत्नों में आध्यात्मिक शक्ति तथा दुगना बल प्रदान करें। आपने सभी लौकिक बन्धनों को काट दिया है। अब आप अपनी राह पर निर्बाध रूप से आगे बढ़ सकते हैं। रामकृष्ण मिशन से दृढ़ता पूर्वक जुड़े रहें और अपने से बड़े सभी लोगों की सेवा आदर, लगन तथा निष्काम भाव से करें।

और फिर यह देखकर कि परमानन्द जी शीघ्र ही उनसे जुड़ने वाले हैं, स्वामी जी उन्हें अच्छा संन्यासी बनने हेतु स्वर्णिम उपदेश दिये।

किसी भी मूल्य पर सदा सत्य बोलें। सच बोलने से किसी की कोई हानि नहीं होती। यह आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करता है। सत्य तक केवल सत्य बोलकर ही पहुँचा जा सकता है। धैर्य, विश्व प्रेम, सेवा और सहनशीलता का विकास करके क्रोध पर नियन्त्रण प्राप्त करो। आपको विनम्रता, उदारता और साहस का विकास करना चाहिये। ६ घण्टे अध्ययन तथा ६ घण्टे ध्यान निर्बाध रूप से किया जाना चाहिये। भूतकाल को भूल जायें। पूर्णतया वर्तमान में जियें। सभी प्रकार की काल्पनिक इच्छाओं को त्याग दें। यदि लोग आपको दुःख पहुँचायें, आपसे घृणा करें तथा आप पर हंसें तो भी शान्त रहें। बदला न लें। अपना कार्य आरम्भ करने के पहले संत मैथ्यू की पुस्तक ''सेरमन ऑन द माउँट'' नित्य पढ़ें। मैं एक अनुच्छेद लिख रहा हूँ। इसे नित्य प्रति स्मरण करें। यह आपको मोक्ष प्रदान करेगा। किसी भी मूल्य पर इसका अभ्यास करें। ''अपने शत्रुओं से प्रेम करो। उन्हें आशीर्वाद दो। जो आपको श्राप दें, जो आपसे घृणा करें आप उनके साथ अच्छा व्यवहार कीजिये और जो आपकी उपेक्षा करें और आपको दुःख दें उनके लिए प्रार्थना करें।'' इसका अभ्यास कठिन है लेकिन किया जा सकता है और किया जाना चाहिये।

स्वामी परमानन्द जी ऋषिकेश आ गये। वे आश्रम के अपने आरम्भि दिनों के अनुभवों के बारे में बताते हैं।

''एक दिन मैं स्वामी शिवानन्द जी के कुटीर में गया। स्वामी जी ने मेरा स्वागत अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक किया। मैंने उनसे आध्यात्मिक साधना हेतु निर्देश चाहे तो उन्होंने मुझसे पूछा क्या आप जानते हैं अपने से बड़ों और साधुओं को कैसे प्रणाम किया जाता है? मुझे लज्जा का अनुभव हो रहा था। स्वामी जी ने तत्काल भूमि पर सीधे लेटकर साष्टांग प्रणाम करके दिखाया। उनको देखकर मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे विशाल हिमालय भूमि पर गिर पड़ा हो। इसके बाद तो उग्र शब्दों की मूसलाधार वर्षा होने लगी। ''आजकल के युवा साधक अहंकारी, उद्दंड और लापरवाह होते हैं। झुकना कैसे चाहिये वे जानते ही नहीं। उनका इन्द्रियों पर कोई नियन्त्रण नहीं होता। वे बिना किसी पूर्व तैयारी के सिद्धि और निर्वाण हेतु मूर्खतापूर्ण यत्न कर रहे हैं। मात्र महात्माओं और रोगियों की सेवा ही हृदय को शुद्ध करने हेतु प्रभावकारी है। यह प्रबल आध्यात्मिक विकास करती है। हर कुटीर में पानी भर के ले जाइये और रोगियों की परिचर्चा आस्था और सच्चे आन्तरिक भाव से करिये। रोगी के पैरों की मालिश करिये। उनके वस्त्र धोइये! क्या आप चार बजे सुबह उठते हैं? आप नित्य प्रति कितनी माला जप करते हैं? नित्य कितने घण्टे मौन रखते हैं? आप जोर जोर से क्यों हंसते हैं? तथा अपनी ऊर्जा और समय बातचीत में व्यर्थ क्यों गंवाते हैं? हंसी मजाक के लिए समय कहाँ है? मुझे अपनी दिनचर्या तथा दिन के चौबीस घण्टे आप कैसे व्यय करते हैं, बताइये। मैं अवाक् रह गया। मैं मूर्तिवत् खड़ा था। श्वाँस भी लेना मेरे लिए कठिन था। अन्त में उन्हें साष्टांग दण्डवत् करके मैंने वह स्थान छोड़ दिया और उन प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार किया। मैंने उन्हें कागज के एक टुकड़े पर लिख लिया। एक महात्मा द्वारा लाई गई इस आँधी ने मेरी आँखें खोल दीं। मैं उन्हें देखने तथा उनसे और अधिक सीखने हेतु अवसरों की सावधानी से प्रतीक्षा करने लगा।

चूँकि स्वामी जी ने परमानन्द जी को संन्यास लेने में उतावली न करने हेतु दृढ़ चेतावनी दी थी इसलिये स्वामी जी से मिलने के बाद भी परमानन्द जी स्वर्गाश्रम में ब्रह्मचारी की भाँति रह रहे थे। यह नियम था कि अन्नक्षेत्र मात्र संन्यासियों को ही भोजन दिया करते थे। लेकिन स्वामी जी का वहाँ बड़ा प्रभाव था। इसलिये परमानन्द जी के विषय में एक श्वेत वस्त्रधारी ब्रह्मचारी को भी भोजन दिया जाता था। जब उन्हें भोजन देना बन्द कर दिया जाता तो स्वामी जी को पुनः भोजन देने के लिए अनुरोध

करने क्षेत्र जाना पड़ता। इस प्रकार ६ माह व्यतीत हो गये। स्वामी परमानन्द जी ने अपनी पुस्तक 'एपोस्टल ऑफ पीस एण्ड लव' में लिखा है कि स्वामी जी को बीस बार क्षेत्र जाना पड़ा।

इस समय स्वामी जी के पास तीन युवक प्रकाश चैतन्य, विवेक चैतन्य तथा परमानन्द जी प्रशिक्षण ले रहे थे तथा एक अन्य बड़े विद्वान् व्यक्ति पास ही अपने परिवार सहित रहते थे। परमानन्द जी इन विद्वान् व्यक्ति को अपने समूह के साथ जोड़ने हेतु प्रयास रत थे। उन्होंने कहा यदि तुम संन्यास लोगे मैं भी संन्यास ले लूँगा, परमानन्द जी तैयार हो गये।

परमानन्द जी ने आगे बताया :

''मैं अपनी युवावस्था में भी बहुत बातूनी था, इसी कारण मैं स्वाभाविक रूप से बहुत से युवकों को बातें करने हेतु आकर्षित कर लेता था। जब मैं भिक्षा लेने क्षेत्र जाता था तो पंक्ति में खड़े-खड़े भी लोगों के साथ बातें करता रहता था। स्वामी जी यह सब देखते रहते थे। एक दिन स्वामी जी ने मुझे बुलाया और आड़े हाथों लिया। वे बोले ''आप एक संन्यासी हैं। मैं देखता हूँ आप जब क्षेत्र जाते हैं तो लगातार व्यर्थ की बातों में लगे रहते हैं। आप एक संन्यासी हैं, इसलिये आपको बाहर जाते समय सिर ढाँक कर जाना चाहिये। भीड़ से अलग रहना चाहिये। किसी का आपके ऊपर ध्यान नहीं जाये इसलिये शीघ्र अपनी भिक्षा ले लेना चाहिये तथा सदा स्वयं को काम में लगाये रखना चाहिये। यही साधना है।'' यहाँ तक कि वर्तमान आश्रम में भी स्वामी जी ने मुझे इस आदत के लिए चेतावनी दी थी। मैं कमरे में स्वामी जी के पीछे बैठकर अन्य व्यक्ति को आश्रम से सम्बन्धित काम के बारे में निर्देश देता था। यह बातचीत भी स्वामी जी पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने मुझे कई बार अधिक न बोलने तथा काम करते समय मानसिक जप करने के लिए कहा।

स्वामी परमानन्द जी ने आगे स्वामी जी की विधियों में गहरी सूझबूझ को बताया है।

जब मैं स्वामी जी से पहली बार मिला उसके दो वर्ष बाद मैंने छद्म नाम 'आनन्द' से एक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक दो वर्ष बाद मद्रास में प्रकाशित हुई

(अभी आपको इसकी दो प्रतियाँ श्री रामाश्रम पुस्तकालय मुनि की रेती में मिल सकती हैं)। इसके अलावा अन्य प्रतियों का क्या हुआ, मुझे नहीं मालूम।

इस पुस्तक में मैंने गुरु और शिष्य के सम्बन्धों के बारे में गुरु की उपस्थिति में शिष्य को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये तथा आध्यात्मिक पथ में प्रविष्ट होने वाले जिज्ञासु के व्यवहार के लिए जो अन्य बाते आवश्यक हैं, उनका उल्लेख किया था। इसी पुस्तक में मैंने स्वामी शिवानन्द जी की विशिष्ट प्रकृति तथा उनके संस्थान के बारे में बताते हुए पूर्व में मैंने जिन आश्रमों में निवास किया उनके प्रबंधकों और अध्यक्षों के बारे में भी बताया था।

मैंने इसकी एक प्रति स्वामी शिवानन्द जी के पास भी भेजी जिसके प्रत्युत्तर में स्वामी जी ने लिखा ''अद्‌भुत, अतिश्रेष्ठ।'' थोड़े समय में मैंने इसके द्वितीय भाग की पांडुलिपी तैयार कर ली। (प्रथम पुस्तक के अन्त में यह सूचना पूर्व में ही दे दी गई थी कि इसका द्वितीय भाग शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।) इसके लिए प्रेस, कागज आदि सभी की व्यवस्था हो गई थी। अचानक मझे स्वामी जी का पत्र मिला। उसमें लिखा था ''आपकी पुस्तक एकदम बेकार है। इसे किसी को मत बेचिये। इसे निःशुल्क भी मत वितरित करें। इसका अगला भाग भी मत छापें। मैं भौंचक्का रह गया। अरे! स्वामी जी ने अभी पिछले दिनों तो इसकी प्रशंसा की थी और अभी निंदा कर रहे हैं। मैंने सोचा कि मद्रास से स्वामी जी को पत्र लिखकर उनसे निवेदन करूँ कि इस (उपरोक्त) पत्र से उनका क्या आशय है? कृपा करके प्रकाश डालें। मैंने स्वामी जी को पत्र लिखा। स्वामी जी ने जो उत्तर दिया वह मेरे पक्ष में था और यहाँ नीचे वह पत्र दिया जा रहा है—

''अमुक-अमुक महात्मा ने मुझे लिखा कि आपकी पुस्तक ने उन पर तथा उनके संस्थान पर कड़ा प्रहार किया है और उन्हें चोट पहुँचाई है। चूँकि आपकी पुस्तक ने मेरे मित्र को चोट पहुँचाई है, उनके हृदय को आहत किया है, इसलिये आप इसकी बिक्री को रोक दें, और इसके अगले संस्करण का भी प्रकाशन न करें।

ध्यान दें, स्वामी जी का हृदय कितना विशाल था। उनके भीतर कितनी उदारता थी। स्वामी जी उस पुस्तक को बहुत पसन्द करते थे, लेकिन इसके द्वारा कोई आहत हुआ है तो यह पुस्तक नहीं निकाली जानी चाहिये। ''किसी को दुःख न

पहुँचाओ, किसी की भावनाओं को आहत मत करो।'' इस बात की शिक्षा ही स्वामी जी हर एक को दिया करते थे, और यही शिक्षा मैंने उस दिन ग्रहण की।

स्वामी जी के प्रारंभिक शिष्यों में से कई शिष्य ऐसे थे जिनकी आयु स्वामी स्वामी जी से भी अधिक थी। नीचे दो ऐसे उदाहरण दिये जा रहे हैं जो स्वामी परमानन्द जी ने सन् १९३४ में लिखी पुस्तक **''लाइफ ऐंड सेइंग्स ऑफ शिवा''** में लिखीं हैं—ये अत्यन्त शिक्षाप्रद हैं।

''स्वामी ज्ञानानन्द जी जिनकी आयु लगभग ७० वर्ष रही होगी। वे आन्ध्र प्रदेश से आये थे। वे बड़े विद्वान् और पुण्यात्मा थे। यदि उन्हें कुछ जानने की इच्छा होती तो सभी उन्हें कहते आप स्वामी जी के पास जाइये, वे तुरन्त कहते थे ''मैं स्वामी जी के सामने खड़े होने में ही काँप जाता हूँ, मैं किस प्रकार उनसे पूछूँगा।'' जो कठोर हृदय, स्वार्थी तथा उग्र स्वभाव के होते हैं, वे उनकी महिमा को नहीं जान सकते। स्वामी जी की आध्यात्मिक महिमा को स्वामी ज्ञानानन्द जी जैसे श्रेष्ठ जन ही जान सकते हैं।

स्वामी विद्यानन्द जी जिनकी आयु लगभग ६० वर्ष रही होगी। वे एक बंगाली साधु थे वे अत्यन्त दुर्बल तथा रोगी थे और कुछ कदम चलने में भी असमर्थ थे। एक बार वे स्वामी जी के पास आशीर्वाद लेने गये, स्वामी जी ने अत्यन्त सहज भाव से कहा ''आप पूर्ण स्वस्थ हो जायेंगे।'' एक सप्ताह के भीतर वे पूर्ण स्वस्थ हो गये और आराम से चलने-फिरने लगे। जब भी मैं स्वामी विद्यानन्द जी से मिलता तो वे कहते ''यदि मैं शिवानन्द नाम लेता हूँ तो मेरे लिए कुछ भी असम्भव नहीं रहता।'' स्वामी जी का नाम सभी में नयी शक्ति और आशा भर देता था और सबके दुःख दूर कर देता था।

अपने मिशन को चलाने के लिए शिष्यों का चुनाव स्वामी जी बड़ी सावधानी पूर्वक करते थे। उन्हें बुद्धिमान्, विद्वान्, परिश्रमी, भक्त, वृद्ध तथा सम्माननीय व्यक्तियों की आवश्यकता थी। प्रत्येक व्यक्ति का चुनाव उसकी विशेष योग्यता के अनुसार किया जाता था। जो कार्यकर्ता थे उनके अलावा अन्य किसी से भी काम की अपेक्षा नहीं रखी जाती थी। हालाँकि कुछ लोग ऐसे भी थे जो उपरोक्त में से किसी भी श्रेणी में नहीं आते थे। वे अत्यन्त रहस्यमय तरीके से काम करते थे। वास्तव में वे

स्वामी जी तथा उनके शिष्यों के गुणों का परीक्षण करते थे। वास्तव में उन्हें स्वामी जी द्वारा सीखने तथा विकास करते के लिए अवसर प्रदान किये जाते थे। एक घटना यहाँ दी जा रही है—एक वृद्ध व्यक्ति स्वर्गाश्रम में स्वामी जी के पास आया और उनसे कहने लगा ''कल रात स्वप्न में मेरे गुरु ने मुझे दर्शन दिये और मुझसे कहा कि मैं आपको संन्यास दूँ। आप एक दिन निश्चित कर लें। उस दिन मैं आपको विधिवत् संन्यास दीक्षा दूँगा।'' स्वामी जी ने उसे बताया कि उन्होंने पहले ही श्री स्वामी विश्वानन्द जी महाराज से दीक्षा ली हुई है। थोड़े दिन बाद वही व्यक्ति पुनः आया और उसने स्वामी जी से स्वयं उसे संन्यास दीक्षा देने की प्रार्थना की क्योंकि वह दीक्षा प्राप्त संन्यासी नहीं था, इस कारण क्षेत्रों ने उसे भोजन देने से मना कर दिया था। सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह थी कि स्वामी जी ने न तो उसका उपहास किया और न ही दीक्षा देने से मना किया। क्योंकि उस मनुष्य को भोजन प्राप्त करने के लिए भगवा वस्त्र चाहिये थे इसलिये उन दयालु हृदय स्वामी जी को उस पर दया आ गई और उन्होंने उसे संन्यास दीक्षा दे दी।

एक दिन यह नवीन शिष्य स्वामी जी के पास आया और उनसे कहने लगा ''मैं वेदान्त का पूर्ण ज्ञान रखता हूँ, इसलिये मुझे वेदान्त केसरी की उपाधि दीजिये।''

स्वामी जी ने अपनी बालसुलभ सरलता से तुरन्त घोषणा कर दी ''हाँ, हाँ, आप वेदान्त केसरी हैं।'' यह आश्चर्यजनक स्वामी सभी को यह बताने के लिए बाहर चला गया कि स्वामी जी ने उसे वेदान्त केसरी की उपाधि दी है। और अधिक आश्चर्यजनक बात तो तब हुई जब थोड़े दिन बाद वह स्वामी परमानन्द जी से बोला ''स्वामी शिवानन्द वेदान्त के बारे में कुछ नहीं जानते, मैं सम्पूर्ण वेदान्त का ज्ञान रखता हूँ। इसलिये तुम उन्हें छोड़कर मेरे शिष्य बन जाओ।''

परमानन्द जी कहते थे कि हालाँकि स्वामी जी जानते थे कि ब्रह्मानन्द उनके बारे में भला-बुरा कहता रहता है लेकिन फिर भी स्वामी जी हमसे उस वृद्ध व्यक्ति की सेवा करने तथा वेदान्त केसरी की जो उपधि उसे दी गई है उसका समर्थन करने के लिए कहते थे।

यहाँ तक कि उनके धर्म प्रचार के मिशन के प्रारम्भ से ही वे इस बारे में कभी भी विचार नहीं करते थे कि उनके सहयोगी और यहाँ तक कि उनके शिष्य भी उनके प्रति

पूर्ण निष्ठा रखते हैं या नहीं। वे उन जिज्ञासुओं को भी संन्यास में दीक्षित कर देते थे जो अन्य महात्माओं के शिष्य थे तथा अन्य संतों और महात्माओं की सेवा हेतु अपने संन्यासी शिष्यों को भेज दिया करते थे। उदाहरण के लिए जब स्वामी परमानन्द जी स्वामी जी के साथ जुड़े उसके थोड़े दिनों पश्चात् शान्ति आश्रम के परम पूज्य श्री ओंकार जी स्वर्गाश्रम आये और उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी से निवेदन किया कि वे स्वामी परमानन्द जी को उनकी सेवा के लिए थोड़े दिनों के लिए छोड़ दें। हालाँकि स्वामी जी के उस समय एकमात्र सहयोगी स्वामी परमानन्द जी ही थे, फिर भी स्वामी जी ने उन्हें स्वामी ओंकार जी के साथ भेजने हेतु तुरन्त सहमति दे दी। शान्ति आश्रम में स्वामी परमानन्द जी को भेजे एक पत्र में स्वामी जी ने उन्हें निर्देश दिया कि प्रातःकाल सबसे पहले बहन सुशीला, स्वामी ओंकार जी तथा सफाई कर्मियों सहित सभी आश्रमवासियों के चरणों में प्रणाम करो।

श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ओंकारेश्वर माता जी के शिष्य थे। माता जी ने उन्हें स्वामी जी से दीक्षा लेने हेतु निर्देश दिया और स्वामी जी ने उन्हें तुरन्त संन्यास दीक्षा दे दी। स्वामी जी कभी भी अपने शिष्यों से यह अपेक्षा नहीं रखते थे कि वे मात्र उनकी ही सेवा करें और न ही वे कभी अपने होने वाले शिष्यों से ऐसा कोई वचन ही लेते थे कि वे मात्र स्वामी जी की ही सेवा करेंगे। स्वामी जी जब भी यह देखते कि जिज्ञासु के भीतर संन्यास की प्रबल आकांक्षा है वे उसे संन्यास दीक्षा दे देते थे तथा उन्हें यह स्वतन्त्रता थी कि वे स्वामी जी की सेवा करें अथवा चले जायें। हालाँकि स्वामी आत्मानन्द जी स्वामी जी के मिशन की धरोहर थे विशेष रूप से मिशन के प्रारम्भ के दिनों में। वे स्वामी जी के प्रवासों में उनके साथ रहे और उनके काम में बहुत अधिक सहायता की।

बाद में स्वामी परमानन्द जी को स्वामी जी की पुस्तकों के कार्य हेतु मद्रास भेज दिया गया। स्वामी जी चाहते थे कि उनके शिष्य स्वयं स्वामी जी की भाँति ही चमकें। स्वामी परमानन्द जी को लिखे गये पत्रों में यह बात स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इसमें स्वामी जी ने सन्देश के विस्तार हेतु शिष्य का व्यवहार कैसा होना चाहिये। इस हेतु विस्तृत निर्देश दिये हैं। प्रत्येक बात में स्पष्टता यह उनके महान् गुणों में से एक था।

दिनांक ४ मार्च सन् १९३३ को लिख गया पत्र पढ़ें—

''मैं चाहता हूँ कि आप मद्रास और आसपास के सभी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों से मिलें और वहाँ ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान दें और आसन तथा प्राणायाम सिखायें। भस्त्रिका, शीतली, सरल पूरक रेचक, कुम्भक प्राणायाम का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करके सिखायें। आप एक अद्‌भुत सेवा कर रहे हैं। आप ब्रह्मचर्य पर आधारित लेख पढ़ सकते हैं। ब्रह्मचर्य का महत्त्व बताते हुए अंग-संचालन की अभिव्यक्ति द्वारा बल देकर तथा दर्शकों की ओर देखते हुए धीरे-धीरे पढ़ें। यदि आपको ऐसा लगे कि यह लेख कुछ अधिक लम्बा है तो बीच के एक दो पन्ने छोड़ दें। इस काम को करने में भूल न करें। ठीक यही काम मैंने अपने प्रवासों में नौ विद्यालयों में किया है। आपको विभिन्न स्थानों पर कीर्तन और भजन का संचालन भी करना चाहिये। जो कुछ भी आपके पास समाग्री है वह पर्याप्त है। प्रातः-सायं मेरे लेख पढ़ें और उन्हें समझायें। कुछ थोड़े और चुने हुए लोगों का समूह रखें तथा अन्त में उन्हें ॐ के नाद के बाद अपना सन्देश दें। उपरोक्त तीन प्रकार की गतिविधियों को करें और इनकी सूचना मुझे देते रहें। कभी झूठे बहाने न गढ़ें। दवाइयों का वितरण भी करें। सिरदर्द होने पर मेन्थाल ऑइल लगाना चाहिये। १ बूँद मेन्थाल आइल को एक औंस पानी के साथ अच्छी तरह हिलाने से यह क्लोरोडाइन वाटर की तरह पीपरमेंट का पानी बन जाता है। यह पाचन, गैस आदि के लिए उपयोगी है। आप मेन्थाल आइल का प्रयोग जहाँ नाड़ियों में दर्द (न्यूरल्जिया) हो उन अंगों पर कर सकते हैं।

इसी विषय में स्वामी जी द्वारा ६ मार्च को लिखे गये पत्र को देखिये। इसमें स्वामी जी ने आगे और निर्देश दिये हैं।

मैं चाहता हूँ आप ये सभी कार्य ऊर्जावान होकर करें। आपको एक शक्तिशाली आयोजक बनना चाहिये। मैं चाहता हूँ कि आप अपने आस्थावान मित्रों के साथ मिलकर एक योग संघ वेदान्तिक संघ और संकीर्तन संस्था प्रारम्भ करें। अभी बीज बोयें, यह अंकुरित होगा, पुष्पित होगा और बाद में इसमें फल लगेंगे। वर्तमान् में इसे एक कमरे में प्रारम्भ करें। यदि यहाँ पाँच सदस्य भी नियमित रूप से आयें तो यह पर्याप्त होगा। एक पुस्तकालय भी होना चाहिये जिसमें दर्शन सम्बन्धी

पुस्तकें होना चाहिये। संस्था के लिए कुछ लेटर हैड, फार्म तथा पत्रक छपवा लें। एक नाम पटल बनवा लें। संस्था के विषय और लक्ष्य निम्नानुसार हैं—

१. आत्म-साक्षात्कार प्राप्ति के लिए।

२. विश्व प्रेम तथा भाई-चारे की भावना के विकास के लिए।

३. आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार हेतु।

मैं मेरे पत्रक, पुस्तकें आदि भेजूँगा।

नीचे स्वामी जी द्वारा ८ मार्च १९३३ को लिखे गये सर्वाधिक प्रेरणाप्रद पत्र दिये जा रहे हैं।

"आपको नित्य नियमित रूप से ध्यान, जप तथा स्वाध्याय करना चाहिये। जब मैं उत्तरकाशी में अकेले रहूँगा तब अध्ययन करूँगा, ऐसा कभी न सोचें। यह गलत है। यह मूर्खता है। आपको इसकी नित्य आदत होनी चाहिये। वह कल कभी नहीं आयेगा। अवसर का पूरा लाभ उठायें। मक्का को तभी फटक लें जब हवा चल रही हो। चित्त को एकाग्र करें, ध्यान करें, कुछ घण्टे एकान्त में रहें। विनम्र बनें। कभी अभिमान न करें। सहनशीलता और धैर्य रखें। काम करते समय तथा बातचीत करते समय इन गुणों को प्रकट करें। प्रत्येक विचार को ध्यान से देखें। आपने एक उत्तरदायित्व पूर्ण पोषाक पहनी है। इसे धारण करना कोई खेल नहीं है, क्या आपको इसका भान है। भिक्षा न माँगें। भिखारी की तरह बात न करें। शासन करें। हर चीज स्वयं आयेगी। यह सम्पूर्ण जगत् आपका घर है, इसका अनुभव करें। मुझे अपने द्वारा किये गये काम को दिखायें। कभी-कभी प्रतिवेदन भेजें। काम करने का तरीका और अनुशासन दोनों ही आवश्यक हैं। अपनी अन्तरात्मा और भगवान् में पूर्ण आस्था रखें। अपनी प्रकृति का निरीक्षण करें। स्वार्थ की प्रवृत्ति को नष्ट कर दें। सभी प्रकार की तुच्छ भावनाओं को नष्ट कर दें। श्रेष्ठ बनें। अपने सभी छोटे-छोटे कार्यों में भी ईमानदार रहें। छोटी-छोटी चीजों के लिए न झगड़ें। दुष्ट प्रवृत्तियों का उन्मूलन अनिवार्य है। —शिवा

प्रथम आध्यात्मिक अभियान

"धर्म के बिना आप नहीं जी सकते। उनके मधुर नाम की शरण में जाइये। भगवान् में जियें।" ब्रह्म में जीवन बितायें। यह संसार एक धर्मशाला है। अपनी

साधना में अडिग रहें। निष्काम सेवा, आत्मत्याग, वैराग्य तथा ध्यान से युक्त जीवन व्यतीत करें। दिव्य पुरुषों और उनके द्वारा लिखी पुस्तकों की शरण में जायें। ध्यान करें और सोचें मैं कौन हूँ? सारा अज्ञान समाप्त हो जायेगा। सत्य के ज्ञान का उदय होगा। धीरे-धीरे चढ़ते जायें और वैराग्य तथा प्रबल साधना के अभ्यास को बढ़ाते हुए ज्ञान के शिखर पर पहुँच जायें।''

यह उस प्रथम धर्मोपदेश का सार है जो श्री स्वामी शिवानन्द जी ने सीतापुर में २० अगस्त सन् १९३२ को दिया था। स्वामी जी यहाँ अपने प्रथम शक्तिशाली तथा बृहत आध्यात्मिक अभियान हेतु गये थे। उनके साथ स्वामी आत्मानन्द जी थे जो कीर्तन करते थे तथा स्वामी स्वरूपानन्द जी उनके प्रवचनों का हिन्दी में अनुवाद करते थे।

उस समय स्वामी जी के हृदय में एकमात्र ज्वलंत आकांक्षा थी कि भारत के कोने-कोने में भगवान् के नाम की धूम मचना चाहिये। स्वामी जी ने भगवान् के नाम के अमृत का पान किया था तथा इसके चमत्कारिक प्रभाव का अनुभव किया था। इसलिये उनकी हार्दिक आकांक्षा थी कि इस परमानन्द को वे जन-जन के साथ बाँटें। उन्होंने भगवान् के दर्शन किये थे और वे अन्य सभी के पथ प्रदर्शन के लिए प्रबल आध्यात्मिक सेवा करने हेतु तैयार थे।

एक सप्ताह में सारे सीतापुर में भगवान् के नाम की लहर व्याप्त हो गई। हजारों लोगों ने स्वामी जी के प्रवचनों को सुना। वे सभी जानते थे कि स्वामी जी का इस संसार में अपना कुछ नहीं है लेकिन वे संसार के सबसे धनी व्यक्ति से अधिक प्रसन्न, अधिक शाँति-सम्पन्न, अधिक ऊर्जा-सम्पन्न और अधिक उत्साह से परिपूर्ण हैं। वे स्वामी जी से इसका रहस्य जानना चाहते थे और स्वयं स्वामी जी इसे बताने के लिए उत्सुक थे।

स्वामी जी ने गाया, नृत्य किया और सुनने वालों के हृदय को झंकृत कर दिया। उनका स्वर्गिक नृत्य श्रोताओं को किसी अन्य लोक में पहुँचा देता था और उन्होंने ऐसे किसी महापुरुष के जीवन में दर्शन नहीं किये थे।

संकीर्तन के मध्य अन्तराल में स्वामी जी छोटे-छोटे प्रवचन देते थे जिसमें वे निष्काम्य सेवा, दान और पवित्रता पर सर्वाधिक बल देते थे। इस समय वे वेदान्त की

भी बातें बताते थे क्योंकि इनका आत्मोत्थान हेतु बड़ा महत्त्व है। वे जो भी कुछ कहते वह उनके हृदय के भीतर की गहराइयों से निकल कर आता था। उनके भीतर अद्‌भुत शक्ति थी। एक किशोर इसका उदाहरण था। उसने अपने विद्यालय में स्वामी जी के प्रवचन को सुना। अगले दिन उसके पिता को बालक के बिस्तर में एक पत्र मिला जो इस प्रकार था ''पिता जी, यह मेरा आपको अन्तिम प्रणाम है। मैं अपने वास्तविक पिता मेरे भगवान् को जो मेरे हृदय में निवास करते हैं, ढूँढ़ने जा रहा हूँ। मैं स्वामी शिवानन्द जी के प्रवचनों से प्रेरित हुआ हूँ। अब मेरी आँखें खुल गई हैं। भगवद् साक्षात्कार करना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। यही मेरा सच्चा धर्म है।

स्वामी जी लोगों के मध्य तो वे अद्‌भुत शक्ति-सम्पन्न थे ही, वे अपने क्रिया-कलापों में भी आश्चर्यजनक थे। एक बार जब वे सीतापुर में थे। अचानक उनके भीतर एकान्त में ध्यान की प्रबल इच्छा जाग्रत हुई। वे बिना किसी को बताये शहर के बाहर पैदल-पैदल दूर तक चले गये और एक जीर्ण-शीर्ण कुटिया में पहुँचे और उन्होंने वहीं सारे दिन ध्यान किया।

सीतापुर तो प्रारम्भ था, इसके बाद उन्हें लक्ष्मीपुर, मेरठ, लखनऊ, मुंगेर, शाँति आश्रम आदि जगहों पर भी आमंत्रित किया गया। इन सभी स्थानों पर भी वैसे ही कार्यक्रम हुए। सुबह ४ बजे से ६ बजे तक कीर्तन होता। फिर सम्पूर्ण मंडली भगवान् का नाम गाते-गाते कस्बे के भिन्न-भिन्न भागों में दो घण्टों तक भ्रमण करती। मुंगेर में कीर्तन मंडली एक गाड़ी में गई और इसने एक-एक गली और आसपास की जगहों में भी भ्रमण किया। एक सप्ताह तक इस प्रकार कीर्तन करने से सारे शहर मे आध्यात्मिक वातावरण हो गया।

शहर के लोगों को सभा के बारे में मालूम हो गया और उन्होंने विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लिया। स्वयं स्वामी जी ने भी सात दिनों तक कई जगहों पर कीर्तन किया और वहाँ सम्मिलित होने वाली कीर्तन मंडलियों को प्रशिक्षित किया। समापन के दिन निर्धन लोगों को भोजन भी कराया गया।

ये कार्यक्रम कई स्थानों पर जैसे धर्मशालाओं, मन्दिर, विद्यालय आदि में आयोजित हुए। हर शहर में बड़ा जनसमूह एकत्रित होता था। कभी-कभी १०,००० लोग भी एकत्रित होते थे। जब स्वामी जी अगड़ बम गीत गाते थे तो हजारों लोग उठ

कर नृत्य करने लगते थे। वे अंग्रेजी में दार्शनिक गीत गाते थे जिससे यूरोपियन और पढ़े-लिखे लोग भी आकृष्ट होते थे।

इस सामूहिक कीर्तन की यह विशेषता थी कि स्वामी जी श्रोताओं के मध्य से सरकारी अधिकारियों को बुला कर उनसे मंच पर कीर्तन संचालन करने के लिए कहते थे। फिर वे महाविद्यालय के व्याख्याताओं, चिकित्सकों, विद्यार्थियों, स्त्रियों और बालिकाओं के बुलाते। यह एक विलक्षण आयोजन होता और लोगों में बहुत अधिक उत्साह आ जाता। पहले तो वे हिचकिचाते और लज्जा का अनुभव करते, परन्तु शीघ्र ही उन्हें इससे होने वाले लाभ का ज्ञान हो जाता। कुछ समय बाद वे पक्के कीर्तनकार बन जाते और विभिन्न स्थानों पर अपनी मंडली बना लेते थे।

स्वामी जी प्रत्येक अवसर का सर्वश्रेष्ठ लाभ हेतु प्रयोग करते थे। वे हाथी पर सवारी करते समय, रेल-यात्रा के समय स्टेशन के प्लेटफार्म पर, गलियों तथा सड़कों पर जहाँ भी बहुत से लोग मिलते, कीर्तन किया करते थे।

कीर्तन के साथ-साथ स्वामी जी योगासन और प्राणायाम का प्रत्यक्ष प्रदर्शन भी करते और छोटे-छोटे प्रवचन भी दिया करते थे तथा बीस आध्यात्मिक सूत्र, ब्रह्मचर्य का महत्त्व आदि पर्चों का वितरण भी किया करते थे। वे लोगों को मन्त्र लेखन करने के लिए भी कहते थे।

उनकी जनसभाओं में कई लोग स्थिर बैठकर मन्त्र लिखा करते थे। स्वामी जी उसको पुरस्कार भी दिया करते थे जो सुन्दर अक्षरों में सर्वाधिक मन्त्र लिखकर लाता था। अन्य भाग लेने वाले प्रतियोगियों को भी पुरस्कार के रूप में आध्यात्मिक पुस्तकें मिलती थीं। भक्तगण बड़ी मात्रा में फल लाया करते थे और उन्हें उसी समय उपस्थित लोगों को वितरित कर दिया जाता था।

पंजाब और बिहार में स्वामी जी वर्ष में एक या दो सप्ताह के प्रवास पर जाया करते थे। वहाँ को आयोजन कर्ता लगातार कार्यक्रम रखते थे। इस प्रवास अवधि में वे पत्राचार नहीं करते थे और अपना पूरा ध्यान गत्यात्मक प्रचार में लगाते थे। वे ऋषिकेश में डाक अधिकारी को कहकर रखते कि पत्रों को उनके पास न भेजा जाये।

स्वामी जी की सभाओं में वे किसी को भी उनका परिचय देने नहीं देते थे और न ही उनकी सभा में कोई अध्यक्ष होता था। वे सभी प्रकार की औपचारिकताओं को

तोड़ देते थे। स्वामी जी स्वयं ही सभा के अध्यक्ष थे लेकिन वे श्रोताओं के बीच बैठते थे। वे सभी अतिथियों का स्वागत करते और अन्त में सभा की ओर से सभी को धन्यवाद देते और कभी भी किसी को धन्यवाद देने की अनुमति नहीं देते थे।

हालाँकि स्वामी जी ऋषिकेश में सूखी रोटियाँ खा कर अत्यन्त सरल जीवन व्यतीत करते थे लेकिन प्रवास के समय दिन-रात कठिन परिश्रम करने के कारण वे ऊर्जा प्रदान करने वाले भोजन तथा फल की आवश्यकता का अनुभव करते थे। इसलिये वे आयोजकों से स्वयं के लिए और अपने शिष्यों के लिए उस समय जो उपलब्ध हों वे फल तथा बिस्किट आदि की व्यवस्था के लिए कह कर रखते थे। कभी-कभी काम की अधिकता के कारण उन्हें भोजन तथा विश्राम हेतु समय भी नहीं मिल पाता था, इसलिये वे अपनी जेब में कुछ ब्रेड या बिस्किट रखते थे। अपने प्रवास में स्वामी जी साथ रहने वालों के साथ बड़ा ही स्नेहपूर्ण व्यवहार करते थे और उनके साथ जाने में बड़ा ही आनन्द आता था। स्वामी जी के पास जो भी रहता था उसे वे सबके साथ मिल बाँटकर खाया करते थे और सभी के स्वास्थ्य का वे बहुत ध्यान रखते थे और उन्हें बड़ा ही प्रसिद्ध बना देते थे।

ऐसे जन सम्मेलनों में जाने के पहले स्वामी जी वापसी हेतु अपने साथ पर्याप्त धन रखते थे। वे अपने कार्यक्रमों के आयोजकों से किसी धन की माँग नहीं करते थे बल्कि उनसे वे सम्मेलन में वितरित करने के लिए विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न पर्चे छपवाने के लिए कहते थे। ये पर्चे निःशुल्क वितरण के लिए छपवाये जाते थे।

स्वामी जी के पास उस समय ढेर सारे आमन्त्रण आने लगे थे और बहुत से लोग स्वर्गाश्रम आकर स्वामी जी से संकीर्तन सभा और वेदान्त सम्मेलन हेतु अनुरोध करते जिससे स्वामी जी लगातार प्रवास पर रहते थे। पंजाब और कश्मीर इन दोनों प्रदेशों में स्वामी जी का प्रभाव देखने लायक था। वहाँ के निवासी स्वामी जी का बड़ा आदर करते थे।

प्रथम पंजाब प्रांतीय संकीर्तन सभा सन् १९३५ में लाहौर में आयोजित हुई। इसमें सभा के सदस्यों ने साधना हेतु संकल्प लिए और इस प्रकार अपनी गतिविधियों को मूर्त रूप प्रदान किया। लाहौर में किला गजर संकीर्तन मंडल इन संकीर्तन गतिविधियों का केन्द्र बना और श्री गंगाशरण वर्मा उसे प्रमुख थे। यह श्री वर्मा जी के

ही विशेष प्रयास थे कि दिव्य जीवन पत्रिका का प्रारम्भ लाहौर से हुआ। सभी देखते थे कि गंगा निवास में सदा संकीर्तन और दिव्य जीवन संघ की गतिविधियाँ चलती रहती थीं। यह वास्तव में एक असाधारण दृश्य था। वास्तव में सत्य तो यह है कि यह स्वामी जी द्वारा बनाई गई एक आध्यात्मिक कार्यशाला थी।

अगला संकीर्तन सम्मेलन और अधिक आध्यात्मिक था तथा यह आश्चर्यजनक घटनाओं से पूर्ण था। लाहौर के इस संकीर्तन सम्मेलन में उपस्थित पंजाबी भक्त बड़े ही भाग्यवान् थे। उन्हें यहाँ स्वामी जी के साथ संकीर्तन में समाधि के परमानन्द की अनुभूति हुई। लोगों ने स्वामी जी को एकदम स्थिर और शांभवी मुद्रा में देखा। इस समय वे भाव समाधि में थे। स्वामी जी ने ज्ञान की किरणें विकरित करते हुए सारे जनसमूह को भावोत्कर्ष की अवस्था में ला दिया। कुछ रो रहे थे, कुछ हंस रहे थे; कुछ गा रहे थे, पर वास्तव में सभी अचेतनावस्था में थे। एक सात वर्षीय बालक तो हमेशा ही असाधारण भावोत्कर्ष में चला जाता था। लुधियाना की एक बालिका सावित्री देवी गाते और नृत्य करते समय अपनी देह चेतना को भूल गई और जब स्वामी जी ने जय जय सीताराम के तीव्र उद्घोष के साथ सभा समाप्त की तभी वह चेतनावस्था में आयी।

अपने प्रारम्भिक प्रवासों में स्वामी जी अपने साथ दवाइयों का एक बड़ा थैला तथा सामान्य रूप से प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं का एक थैला रखते थे। यह थैला एक छोटी-सी दुकान की तरह था। इसके भीतर चाकू, कैंची, टेप, माचिस, मोमबत्ती, बच्चों के लिए कुछ मीठी गोलियाँ, मिठाइयाँ, चूर्ण, पेंसिल तथा अन्य वस्तुएँ जो उस स्थान पर सेवा के लिए आवश्यक होती, रखी रहती थीं। स्वामी जी किसी के द्वारा कोई इच्छा उनके सामने प्रकट करने के पूर्व ही समझ लेते थे, और यदि कोई उनके सामने कुछ निवेदन कर देता तो जब तक वे उसे पूरा नहीं कर लेते चैन से नहीं बैठते थे। वे उसकी इच्छा को उसी समय वहीं पूर्ण कर देते थे। इस कार्य में देरी उन्हें पसन्द नहीं थी।

एक बार कुछ भक्तों ने उन्हें संकीर्तन हेतु आमन्त्रित किया। उस समय उनकी तबियत ठीक नहीं थी। उन्हें तीव्र ज्वर था। अगर उनके स्थान पर कोई और होता तो शायद वह बिस्तर में से भी नहीं उठता। लेकिन उन्होंने कोई चिन्ता नहीं की और उठ

बैठे। रेलयात्रा और अनियमित भोजन के परिणाम स्वरूप उन्हें अतिसार हो गया था उस समय भी उन्होंने कीर्तन हेतु निवेदन को अस्वीकार नहीं किया। वे मंच के पास वाले कमरे में बैड पैन रखवा लेते थे और स्वयं रबर से निर्मित जांघिया पहनकर उत्साह से मंच पर कीर्तन करते। वे अपने सभी कार्यों से अन्य सभी को लाभान्वित तथा प्रसन्न करने की हार्दिक इच्छा रखते थे। हालाँकि स्वामी जी अपने स्वास्थ्य के प्रति सदा सावधान रहते थे लेकिन वे कहते थे कि समय के अनुसार त्याग भी अनिवार्य है। उनके सभी कार्यकलाप 'दूसरे के लिए जियें', इस बात पर आधारित थे।

न तो उन्हें कोई बात हतोत्साहित करती थी, न ही कोई बात उन्हें प्रभावित करती थी। वे सदा ईश्वर में लीन रहते थे और ईश्वर सदा उनके साथ रहते थे। जब स्वामी जी लखनऊ, लाहौर अथवा कलकत्ता की भीड़-भरी सड़कों पर जाते थे तो वहाँ क्या हो रहा है, उससे पूर्णतया अनभिज्ञ रहते थे। उनका मन सदा कार्यरत रहता था परन्तु उनकी सहज निर्विकल्प समाधि की अवस्था बनी रहती थी।

कुछ लोग एकदम अव्यवहारिक होते हैं परन्तु स्वामी जी उन पर ध्यान ही नहीं देते थे। यदि वे स्वामी जी की सुविधाओं का भी ध्यान नहीं रखते तो भी स्वामी जी कभी शिकायत नहीं करते थे। वे स्वयं अपना धन प्रयोग करके अपना काम कर लेते थे। उनके लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण था भगवान् के नाम का प्रसार।

५ अप्रैल १९४९ को काश्मीर के एक प्रोफेसर अपने परिवार के साथ स्वामी जी के दर्शन के लिए आये। स्वामी जी ने उन्हें उसी समय पहचान लिया और कहा आपको हमने एक कीर्तन के कार्यक्रम में देखा था। वे प्रोफेसर बोले "स्वामी जी, हमें आज भी उस सम्मेलन की स्मृति है। आपके मधुर तथा आत्मा को झंकृत कर देने वाले संगीत को सुनने के लिए स्त्री-पुरुषों और बच्चों का अपार जनसमूह सारे-सारे दिन आपके सामने बैठा रहता था तथा उन प्रसन्नता और सुख से पूर्ण दिनों के साथ-साथ हमें आपका अगड़-बम गीत अच्छी तरह स्मरण है। उस समय मैं तो छोटा बालक ही था लेकिन जीवन के वे क्षण आज भी मेरी स्मृति में एकदम जीवंत हैं।

प्रोफेसर महोदय के पिता ने कहा ''स्वामी जी, उस समय काश्मीर में अपार जनसमूह एकत्र हुआ था। मैंने अपने जीवन में इतने लोगों को एक साथ एकत्रित होते कभी नहीं देखा। हर दिन कम-से-कम दस हजार लोग वहाँ रहते थे। ऐसा दृष्टिगोचर होता था कि जैसे सिरों का समुद्र हो जो स्वामी जी के संगीत की लय के साथ लहरों की भाँति आगे-पीछे हिल रहा हो। यह एक दैवीय दृश्य था। इस घटना को सुनाते समय प्रोफेसर के पिताजी की आँखों में प्रेम और भाव के अश्रु थे, क्योंकि स्वामी जी के गीत और नृत्य आज भी उनकी आँखों के सामने जीवंत थे।

गुरुदेव के बड़े ही भक्त श्री देशराज सचदेव १७ जनवरी सन् १९५० में आश्रम दर्शन हेतु आये। उन्होंने स्वामी जी के प्रवास के रोमांचक अनुभव सुनाये।

उन्होंने कहा ''सन् १९३३ में हम रावलपिंडी में एक संकीर्तन सम्मेलन का आयोजन करना चाहते थे, लेकिन धन नहीं एकत्र हो पा रहा था। हममें से दो-तीन लोगों ने एक माह का वेतन जमा करने हेतु विचार किया और स्वामी जी तथा कुछ अन्य लोगों को आमन्त्रित किया। स्वामी जी आये और एक ही दिन में उन्होंने रावलपिंडी के सभी लोगों के हृदय में स्थान बना लिया, वे उन सभी के प्रिय हो गये।

सम्मेलन में कुछ स्थानीय युवा मात्र उत्सुकता से आये और बोले संकीर्तन से क्या होता है। स्वामी जी ने अंग्रेजी में अत्यन्त रोमांचक और प्रेरक प्रवचन दिया। स्वामी स्वरूपानन्द जी ने उसका हिन्दी में अनुवाद करके सुनाया। वहाँ उपस्थित हर व्यक्ति उनके प्रवचन से बड़ा ही प्रभावित हुआ। प्रवचन के बाद तत्काल ही स्वामी जी ने 'सुना जा, सुना जा, सुना जा, कृष्णा तू गीता वाला ज्ञान सुना जा, कृष्णा' यह भजन गाना प्रारम्भ कर दिया। सम्पूर्ण श्रोता समूह एक आनन्द के प्रदेश में प्रविष्ट हो गया। थोड़ी देर बाद स्वामी जी ने नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया। यह दृश्य देखने लायक था। हर एक स्वामी जी के साथ नृत्य कर रहा था। यहाँ तक कि जो थोड़ी देर पहले संकीर्तन पर विश्वास नहीं करते थे, वे भी स्वामी जी के साथ नृत्य कर रहे थे। यह सच में एक चमत्कार था।

स्वामी जी सामान्य व्यवहार हेतु भी सचेत करते थे। एक बार कुछ शिष्य चिल्ला रहे थे ''शिवानन्द जी महाराज की जय''। स्वामी जी ने उन्हें रोका और कहा ''किसी भी काम में भावावेश में नही आना चाहिये। यहाँ तक कि भगवान् की

प्रार्थना के समय भी अपनी भावनाओं और आवेगों पर नियन्त्रण रखना चाहिये। परमानन्द की अभिव्यक्ति चिल्ला चिल्ला कर नहीं करनी चाहिये। उनकी शिक्षा सम्पूर्ण थी। उनका प्रशिक्षण निर्दोष था।

स्वामी जी एक महान् संत थे। ऐसे महात्मा अत्यन्त दुर्लभ हैं। उनका व्यक्तित्व दैवी और चुम्बकीय था जो लोगों को प्रभावित करता था। बुद्धिवादी जन भी जब स्वामी जी जैसे पढ़े-लिखे और चरित्रवान् महात्मा को बृहत जनसमूह के सामने अंग्रेजी में गरजते हुए प्रवचन करते, भावोत्कर्ष में नृत्य करते हुए तथा कीर्तन करते देखते तो उनका कीर्तन से सम्बन्धित संशय हवा हो जाता और वे भी इसमें सम्मिलित हो जाते थे।

रावलपिंडी में धनवान लोग स्वामी जी को चारों ओर से घेरे रहते थे परन्तु स्वामी जी गरीब से भी गरीब लोगों के साथ रहना पसन्द करते थे। वे हरिजनों और मजदूरों के साथ उन्मुक्ता से घुल-मिल जाते थे और उन्हें कीर्तन हेतु तैयार करते थे। ऐसा व्यवहार बहुत ही कम देखने को मिलता है। आजकल के अधिकांश महात्मा मात्र पैसा बनाना चाहते हैं। इसलिये वे मात्र जमींदारों के आमंत्रणों पर ध्यान देते हैं। स्वामी जी के एक और विशेषता उन्हें अनूठा बनाती थी वह था उनका निष्कलंक चरित्र।

सन् १९३३ में लाहौर की सभा में यह रहस्य खुला कि स्वामी जी कैवल्य अद्वैत परम्परा के संन्यासी थे जो अंग्रेजी जानते थे। स्वामी जी का संकीर्तन प्रचार अपने आप में विशिष्ट था। इस सभा में पहले ही दिन से हर रात लगभग १०,००० भक्त एकत्र होते थे।

सम्पूर्ण लाहौर संकीर्तन द्वारा भगवान् नाम की मधुर तरंगों से आवेशित हो गया था। अगले दिन कुछ पंजाबी युवक जो अंग्रेजी जानते थे, वे इस वेदान्त के ज्ञाता और प्रवचन कर्ता को संकीर्तन मंच पर गाते और नृत्य करते देखना चाहते थे। (अभी तक मात्र वैष्णव लोग ही संकीर्तन किया करते थे।) एक श्रेष्ठ संन्यासी जो अद्वैत दर्शन का विद्वान् भी हो, उसे मंच पर नृत्य करते और गाते (भगवान् के नाम का संकीर्तन करते हुए) देखना सारे पंजाब के लिए असाधारण दृश्य था। स्वामी जी का यह अपना ही विलक्षण तरीका था। स्वामी जी भक्ति, ज्ञान तथा योग पर दार्शनिक

प्रवचन भी देते तथा विभिन्न विषयों पर भिन्न-भिन्न धुनों में मधुर, आत्मोत्थान करने वाले तथा आत्मा को झंकृत कर देने वाले कीर्तन भी करते थे। इन संकीर्तनों से बुद्धिजीवी तथा धनवान वर्ग जो आज तक कभी किसी धार्मिक सभा में सम्मिलित नहीं हुआ था, वह भी आकृष्ट हुआ। स्वामी जी की सभाओं में विभिन्न धर्मों और पंथों के प्रतिनिधि भी थे प्रथम रात्रि में एक वृद्ध आर्य समाजी आये, उन्हें भी स्वामी जी ने मंच पर नृत्य करने हेतु तैयार कर लिया। अगले दिन एक आधुनिक युवक जो सूट-बूट पहने था, सभा में आया और उसने स्पष्ट रूप से कहा कि "मैं तो यहाँ एक अंग्रेजी जानने वाले संन्यासी को नाचते-गाते देखकर उपहास करने आया था।" लेकिन सभी को तब बड़ा आश्चर्य हुआ जब वह स्वयं वहाँ पर ही संकीर्तन करने लगा और पक्का संकीर्तनकार बन गया।

लाहौर में सभी वर्गों के लोगों का इतना बड़ा सम्मेलन पहली बार हुआ था। वृद्ध और जवान, स्त्रियाँ और बच्चे, विवाहित तथा अविवाहित सभी जनों ने बारी-बारी से संकीर्तन मंच पर गाया और नृत्य किया। सभी एकसाथ एक ही जगह एकत्रित हुए और आधी रात के बाद भी जागते रहते थे और वहीं तम्बू में सो जाते ताकि वे ब्रह्ममुहूर्त (४ बजे से ६ बजे तक) में स्वामी जी के प्रवचन को सुनने के स्वर्णिम अवसर से वंचित न रह जायें।

पंजाबी भक्त दर्शन हेतु स्वामी जी को चारों ओर से मधुमक्खियों की तरह घेरे रहते थे। स्वामी जी को विश्राम हेतु कुछ मिनट का समय भी निकाल पाना पहाड़ जैसा दुष्कर था। जिनसे यह निवेदन किया जाता कि कृपा करके वे स्वामी जी को कुछ समय विश्राम हेतु प्रदान करने की अनुमति प्रदान करें, वे बाद में स्वामी जी से शिकायत करते कि उनके शिष्य गुलाब के चारों ओर स्थित काँटों की तरह हैं और उन्हें स्वामी जी से मिलने नहीं देते हैं। उत्तर में स्वामी जी मुस्कुरा कर कहते कि करुणासागर भगवान् ने गुलाब की रक्षा के लिए ही उसके चारों और काँटे दिये हैं।

स्वामी जी के पास ऐसे सम्मेलन से लोग अधिक लाभ उठायें इसके लिए कई विधियाँ थी। समान्यतया ऐसा होता है लोग प्रवचन सुनते हैं और बाद में सब भूल जाते हैं लेकिन स्वामी जी ऐसा कभी नहीं होने देते। स्वामी जी इन सभाओं का प्रयोग

एक सुनियोजित अभियान हेतु करते थे और वे अत्यन्त दूर-दृष्टि से कार्य करते थे कि इस अभियान हेतु पूर्व से ही कैसे कदम उठाना चाहिये।

नीचे जो पत्र दिये जो रहे हैं वे उनमें स्वामी जी की उन अचूक विधियों तथा उनकी पूर्णता का रुचिकर वर्णन है, जिनके द्वारा स्वामी जी ने अपने भविष्य के अभियान हेतु दृढ़ भूमि तैयार की। ये सभी पत्र श्री स्वामी परमानन्द जी को लिखे गये हैं जिन्हें लाहौर में इन सम्मेलनों को बृहत स्तर पर आयोजित करने हेतु विशेष रूप से नियुक्त किया गया था।

दिनाँक ३ दिसम्बर १९३५ को लिखा गया पत्र पढ़िये—

कृपया स्वामी विरक्तानन्द जी के साथ तत्काल सीधे लाहौर जायें और कार्यक्रम को श्रेष्ठता से, भव्यता से और दार्शनिकता से आयोजित करें।

आपको कम-से-कम ५ मिनट हिन्दी और अंग्रेजी में प्रवचन देना है। ठंड के दिन होने से चाहे आपका मन न कहे परन्तु आपको कीर्तन के साथ नृत्य भी करना है। यदि प्रवचन देने में कठिनाई हो तो मुख्य बिन्दु याद कर लें। यदि मुख्य बिन्दु बोलना भी कठिन हो तो पर्चा लेकर पढ़ें। यदि आप ऐसा नहीं कर पायेंगे तो मुझे आपको जबरदस्ती मंच पर ले जाना होगा और मैं सोचता हूँ आप ऐसा अवसर मुझे नहीं देंगे।

१३ दिसम्बर को लिखे गये पत्र में स्वामी जी ने प्रायोजकों को कार्यक्रम के बारे में विस्तृत निर्देश दिये हैं।

चेतू राम जी से कहिए मैं उनसे अब थोड़ा प्रसन्न हूँ। एक अलग मंच पर ३ दिन तक अखंड कीर्तन अनिवार्य है। यह महत्त्वपूर्ण है तथा निरन्तर चल रहे कार्य का एकमात्र प्रभावकारी अंग है। भिन्न-भिन्न भागों में संकीर्तन करने से वातावरण स्पंदित तथा ऊर्जावान हो उठेगा। यह भी एक और महत्त्वपूर्ण कार्य है। ये दोनों ही काम महत्वपूर्ण हैं। राम-नाम के सामने दंगे और धारा १४४ कुछ भी नहीं है। किञ्चित मात्र भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी स्वरूपानन्द जी की बातें मानना चाहिये। वे संकीर्तन मंडल के अध्यक्ष हैं।

मैं २१ तारीख को सुबह के नाश्ते में टोस्ट और मक्खन चाहता हूँ। हम सुबह और रात दोनों समय ये ही वस्तुएँ लेंगे। हमें मिठाइयाँ नहीं चाहिये। एक आराम कुरसी मेरे लिए तथा कमरे में तीन कुर्सियाँ चाहिये। कुछ महिला स्वयं सेवक तथा

बहुत से प्रशिक्षित स्वयं सेवकों की आवश्यकता होगी। जिस प्रकार स्वामी स्वरूपानन्द जी ने बताया उसी प्रकार संकल्प पत्र छापें। कुछ शान्ति-पाठ के पर्चे भी आवश्यक हैं। मैं सोचता हूँ आप मेरे अच्छे मित्र बने रहेंगे।

स्वामी जी अपने शिष्यों का किस प्रकार सम्मान करते थे और किस प्रकार उनके साथ बराबरी का व्यवहार करते थे, यह उनके पत्रों से स्पष्ट होता है—स्वामी जी द्वारा लिखे गये अधिकांश पत्रों पर स्वयं वे ही हस्ताक्षर करते थे। वे लिखते थे "आपका विनम्र सेवक शिवानन्द"। स्वामी जी के शिष्य कभी यह अनुभव नहीं करते थे कि वे अपने गुरु से हीन हैं। स्वामी जी चाहते थे कि उनके शिष्य उन्हीं की तरह प्रवचन दें, नृत्य करें और कीर्तन करें। वे स्वामी जी के लिए उनके काम में सहयोग देने हेतु ईश्वर द्वारा भेजे गये सहयोगी थे। इसी कारण स्वामी जी उनके साथ ही भोजन ग्रहण करते थे (जैसा कि उनके पूर्व के पत्रों से मालूम पड़ता है)। भक्तों द्वारा अर्पित किये फल आदि को भी वे उनके साथ मिल बाँट कर खाते थे। वास्तव में पहला हिस्सा शिष्यों का ही होता था और इससे भी बड़ी बात यह कि वे अपने शिष्यों को स्वयं उनकी ही भाँति विश्व में चमकाना चाहते थे।

स्वर्गाश्रम साधु संघ

जब स्वामी जी स्वर्गाश्रम में रहते थे तो उन्होंने भगवद् साक्षात्कार प्राप्ति हेतु स्वेच्छा से सभी प्रकार के शारीरिक कष्टों का सामना किया। वहाँ बहुत से अन्य संन्यासी भी थे जो स्वामी जी की तरह संयमी जीवन के अनभ्यस्त थे और कठिनाइयों का सामना नहीं करना चाहते थे।

साधु समाज के साथ निकट सम्पर्क होने पर उन्होंने स्वामी जी से कहा कि यह भी उनकी सेवा हेतु एक क्षेत्र है। साधुओं को भी पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। बहुत से साधुओं को किसी प्रकार का आध्यात्मिक निर्देशन नहीं मिल पाता है। वे तो मात्र वैराग्य के आवेश में आकर अपना घर छोड़ आये हैं लेकिन यहाँ उनका कोई गुरु नहीं था जो उनका आध्यात्मिक पथ में निर्देशन करता। क्षेत्र के अधिकारियों को भी सलाह चाहिये थी कि साधुओं की कौन-सी माँगें स्वीकार की जायें और कौन-सी नहीं। संक्षेप में स्वर्गाश्रम में एक संस्था बनाने की आवश्यकता थी और इसके लिए स्वामी जी की आवश्यकता थी।

स्वामी जी इस सेवा को हाथ में लेने के लिए आगे आये। उन्होंने इस कार्य से दो प्रकार के परिणाम प्राप्त करने का प्रयास किया। पहली तो यह कि साधु लोग उन्हें पहचान मिलने के कारण प्रसन्न थे और दूसरी बात यह कि जब साधुओं को इससे सहानुभूति प्राप्त हुई, जिससे वे बन्द कमरों में अपना समय व्यय करने के स्थान पर वे कुछ उपयोगी काम भी कर सकने में सक्षम हो गये। इन विचारों ने उन्हें स्वर्गाश्रम साधु संघ स्थापित करने हेतु प्रोत्साहित किया। स्वामी जी ने यह निश्चय किया कि साधुओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रबंधन सहयोगी ढंग से कार्य करेगा। स्वामी जी ने अपनी सेवाओं से उनका विश्वास जीत लिया तथा उन्हें साथ-ही-साथ प्रबंधकों की भी सहानुभूति भी मिली। वरिष्ठ साधुओं ने उन्हें अपना अध्यक्ष तथा प्रमुख नियुक्त कर दिया। इस चुनाव का प्रबंधकों द्वारा भी स्वागत किया गया क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास था कि स्वामी जी द्वारा किया जाने वाला किसी भी बात का आग्रह उचित और स्वीकार करने योग्य होगा।

स्वर्गाश्रम साधु संघ की स्थापना २४ अगस्त १९३३ को हुई और इसका विधिवत् पंजीयन २३ अक्टूबर १९३३ को सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत किया गया।

इसके लक्ष्य और गतिविधियाँ निम्नानुसार थीं—

१. साधुओं की समस्याओं के समाधान हेतु।
२. रोगियों और यात्रियों की चिकित्सा तथा परिचर्या हेतु।
३. दार्शनिक उलझनों पर विचार-विमर्श हेतु तथा सदस्यों के मध्य धार्मिक विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान हेतु समय-समय पर धार्मिक संगोष्ठियाँ आयोजित करने के लिए।
४. यदि परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो स्वर्गाश्रम के भीतर सन्ध्या के समय कीर्तन तथा कथाओं का संचालन करना।
५. सदस्यों तथा बाहरी लोगों के लिए योगासन कक्षाओं का संचालन करना।
६. साधुओं के आध्यात्मिक कल्याण में संवाहक सभी आवश्यक कार्यों को करने हेतु तथा बृहत स्तर पर आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार हेतु।





७. साधुओं को आध्यात्मिक साधना में प्रशिक्षण देना तथा पाठ्यक्रम पूर्ण होने पर बृहत जन समूह में आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार हेतु बाहर भेजना।

८. जितना अधिक-से-अधिक व्यवहारिक रूप से सम्भव हो एक या दो विषयों पर ध्यान देने हेतु।

१०. व्यवहारिक रूप से यथा सम्भव संघ की शाखायें अन्य स्थानों पर खोलना।

इस संघ के भीतर एक महान् विश्वव्यापी संस्था दिव्य जीवन संघ के बीज छुपे थे जो कि स्वामी जी शीघ्र ही स्थापित करने वाले थे।

संघ के तत्वाधान में स्वामी जी ने यूनाइटेड प्रोवीजन्स के दस शैक्षणिक संस्थानों में व्याख्यान देकर विद्यालयों तथा महाविद्यालयीन युवाओं के लिये शारीरिक और आध्यात्मिक पुनर्जागरण की तीव्र गतिविधियाँ संचालित की।

हरि ॐ तत् सत्!

शिवानन्द आश्रम की स्थापना

बहुत से गहन आध्यात्मिक जिज्ञासु स्वामी जी के पास आध्यात्मिक प्रशिक्षण की आकांक्षा लेकर आया करते थे। सन् १९३१ तक स्वामी जी यह कहकर सावधान करते थे कि "मैं एक साधारण संन्यासी हूँ। मैं आपकी बहुत अधिक सहायता नहीं कर सकता। मैं कोई शिष्य नहीं बनाता। मैं जीवनपर्यन्त आपका मित्र बना रहूँगा। मैं अपने पास अधिक समय तक किसी को नहीं रखता। मैं कुछ माह तक उन्हें शिक्षा देता हूँ और फिर उन्हें काश्मीर या उत्तरकाशी ध्यान करने के लिए भेज देता हूँ।" लेकिन फिर भी उनके पास जिज्ञासु युवक आया करते थे। स्वामी जी ने स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखा है—

"सन् १९३० से मेरे मन में इस जगत् की सेवा करने की ज्वलंत आकांक्षा थी। कुछ संन्यासियों और योगियों के समूह को सही प्रशिक्षण देने के लिए मैंने उन्हें समीपवर्ती कुटीरों में रहने की आज्ञा दे दी तथा उनको ध्यान करते समय आने वाली कठिनाइयों और बाधाओं को दूर करने हेतु निर्देश देने लगा। इससे मेरे पास बहुत अधिक लोग आने लगे लेकिन स्वर्गाश्रम का प्रबन्धन सत्य के खोजी लोगों की बढ़ती हुई भीड़ को सम्भालने में सक्षम नहीं था।

अचानक स्वर्गाश्रम के महन्त का देहावसान हो गया और उनकी गद्दी सम्भालने वाला व्यक्ति एक युवक था और उसके मन में साधुओं प्रति बहुत कम आदर था। महन्त के पद पर बैठने के थोड़े दिनों बाद वह साधुओं को भिन्न-भिन्न प्रकार से कष्ट देने लगा। उसने उन पर बहुत से प्रतिबन्ध लगा दिये। स्वामी जी ने इस प्रतिबन्धों को मानने से इन्कार कर दिया और साधुओं को भी कहा कि वे जैसे चाहें वैसे रहें। सभी साधु स्वामी जी से सहमत थे और उन्होंने भी उन प्रतिबन्धों को अस्वीकार कर दिया।

नया महन्त अत्यन्त जिद्दी और उद्दण्ड था। वह साधुओं के ऊपर से स्वामी जी के प्रभाव को समाप्त करना चाहता था। लेकिन ऐसा कैसे सम्भव होता? महन्त ने

कुछ युवा बलिष्ठ साधुओं को घी-मक्खन आदि खिलाकर तथा अच्छे वस्त्र आदि देकर स्वामी जी का विरोध करने के लिए तैयार कर लिया। बहुत से अन्य साधु जो योगी थे और ईमानदार थे, वे स्वामी जी के मित्र और सहयोगी थे।

महन्त कुछ बिगड़ैल साधुओं के साथ स्वामी जी और उनके सहयोगियों पर हमले का षडयन्त्र रचने में लगा हुआ था। महन्त के एक सहयोगी से इस गुप्त षडयन्त्र का पता स्वामी जी को लग गया। स्वामी जी तुरन्त सीधे महन्त के पास गये और विनम्र किन्तु दृढ़ स्वर में उसे चेतावनी दी। उनका रौद्र रूप देखकर महन्त ने क्षमा माँगी और आश्रम को सही ढंग से चलाने का वचन दिया। इससे पूर्व किसी ने स्वामी जी का रौद्र रूप कभी नहीं देखा था। यह देखकर वहाँ के साधु आपस में कहने लगे कि स्वामी जी अपने शिवानन्द (शिवका रूद्र तत्त्व) नाम को सार्थक करते हैं, और वास्तव में वे इस नाम के सच्चे अधिकारी हैं।

स्वामी जी ने संघ द्वारा कई आश्चर्यजनक काम किये। जब महन्त बाद में साधुओं को कष्ट देने लगा और उसने उन्हें भोजन देना बन्द कर दिया तो स्वामी जी ने करीब सौ साधुओं की जंगल में रहने हेतु सहायता की तथा उनके भोजन की व्यवस्था भी की। स्वामी जी पूर्ण निर्भय और साहसी थे। अन्त में महन्त ने आकर स्वामी जी से क्षमा माँगी। स्वामी जी ने अपने सहज स्वभाव के अनुसार उसे क्षमा कर दिया।

एक बार उस महन्त को पैर में चोट लग गई। वह स्वामी जी के पास जाने में संकोच कर रहा था। उसे लगा कि स्वामी जी उससे बात भी नहीं करेंगे, किन्तु स्वामी जी ने उसका विशेष उपचार किया और उसका पैर एकदम ठीक हो गया। स्वामी जी का व्यवहार देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया।

एक बार स्वामी जी मेरठ में सकीर्तन सम्मेलन में गये थे और स्वामी जी की अनुपस्थिति में महन्त वहाँ रहने वाले साधुओं को प्रताड़ित करने लगा। स्वामी लोगों ने पुलिस से सहायता की प्रार्थना की लेकिन सब व्यर्थ रहा। उन लोगों ने स्वामी जी को सूचित किया। स्वामी जी मेरठ से वापस आये और उनकी सारी बातें शान्तिपूर्वक सुनीं और मन का संतुलन खोये बिना एक जीवन्मुक्त की भाँति व्यवहार किया। ऋषिकेश आने के बाद स्वामी जी ने स्वामी परमानन्द जी को ११ जनवरी १९३४ को

पत्र लिखा "उन पर भरोसा रखो, प्रार्थना करो, बुराई में से ही अच्छाई प्रकट होती है। भगवान् आप सबको शान्ति और शक्ति का आशीर्वाद दें।"

स्वामी जी के पास स्वर्गाश्रम पहुँचने के बाद दो विकल्प थे—या स्वर्गाश्रम छोड़ दें या शिष्यों को छोड़ दें। स्वामी जी ने प्रथम विकल्प का चुनाव किया। उन्होंने कहा "दुष्टता का प्रतिरोध करना ठीक नहीं है। आज नहीं तो कल महन्त परेशानी देगा ही और इसलिये शान्ति नहीं होगी। अतः उन्होंने सभी संन्यासियों को सलाह दी कि वे यह स्थान छोड़ दें। लेकिन कई साधु हिचकिचा रहे थे। हालाँकि स्वामी जी ने भी स्वर्गाश्रम में दस वर्ष रहकर साधना की थी लेकिन उन्हें उस स्थान से कोई मोह नहीं था। स्वामी जी ने कहा "मैं जहाँ जाऊँगा, वहीं मेरे लिए स्वर्गाश्रम होगा। यहाँ तक कि मैं यदि मेरठ, लाहौर, लखनऊ आदि कहीं भी चला जाऊँ, मैं वहाँ स्वर्गाश्रम खोज लूँगा।" यह कहकर स्वामी जी ने गंगा नदी पार की और दूसरे किनारे रहने चले गये।

महन्त को जब इस बारे में पता चला तो उसने स्वामी जी को वापस बुलाने की लिए बहुत सी सुविधायें प्रदान करने को कहा लेकिन सब व्यर्थ रहा। बाद में स्वामी जी ने कहा कि मुझे उस स्थान से प्रेम था और मैंने वहाँ शान्ति पाई, लेकिन बड़ी संख्या में जिज्ञासुओं को ज्ञान प्रदान करने के लिए मैंने वह स्थान छोड़ने का निश्चय किया।

इस प्रकार १७ जनवरी १९३४ को जब स्वामी जी अपनी यात्रा से वापस आये तो वे अपने चार शिष्यों परमानन्द, कृष्णानन्द पुरी, योगी नारायण तथा स्वर्णगिरि के साथ राम आश्रम चले गये। (यह वर्तमान शिवानन्द आश्रम के पास स्थित है)। वे राम आश्रम पुस्तकालय की मुख्य इमारत के पूर्व में स्थित चार कमरों में रहने लगे।

एक बार पुनः स्वामी जी काली कमली वाला क्षेत्र जो ऋषिकेश स्थित था और दो मील दूर था, से भिक्षा प्राप्त करने लगे। ऋषिकेश की जो सड़क आज है, वह पहले नहीं थी तथा वर्षा में दो माह तक चन्द्रभागा की तीव्र धारा को पार करना अत्यन्त खतरनाक था। यह सब भगवान् के कार्य को पूर्ण करने के लिए स्वामी जी को पुनः करना पड़ा।

प्रथम चरण—शिवानन्द आश्रम

कुछ वर्षों बाद शिवानन्द जी को स्वर्गाश्रम से जानने वाले भक्तगण तथा ऋषिकेश के महात्मा लोग जब शिवानन्द आश्रम के बारे में बताते थे तो कहते थे कि पहले वहाँ जंगल था। लेकिन अब वहाँ एक नगर बस गया है। जहाँ साधु निवास करते हैं। वहाँ जाने पर भक्तों को आश्रय मिलता है और भगवान् के दर्शन होते हैं। स्वामी जी ने स्वर्गाश्रम छोड़कर अपेक्षाकृत सरल जीवन को ही नहीं छोड़ा वरन् समाधि का आनन्द प्रदान करने वाले जीवन को भी त्याग दिया तथा उन्हें अपने उस आदर्श को भी त्यागना पड़ा कि 'वे आश्रम नहीं बनाना चाहते और अपने साथ शिष्यों को भी नहीं रखेंगे।'

स्वामी जी स्वेच्छा से मानव-मात्र की सेवा हेतु उत्सुक तथा तत्पर थे। लेकिन स्वर्गाश्रम में उनका यह प्रिय कार्य अत्यधिक तीव्रता से हो सकता था। वे चाहते तो जबरदस्ती वहाँ रह सकते थे लेकिन उन्होंने निरन्तर कार्य, अपने उत्तरदायित्वों तथा प्रबन्धन के हितार्थ ऐसा नहीं किया। यह भगवान् की इच्छा थी और स्वामी जी ने प्रसन्नतापूर्वक इसके सामने समर्पण कर दिया, यह कहते हुए कि "ऐसा तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था वे जीवन को ऐसा मोड़ देंगे। मैंने मेरे समस्त बन्धनों को काट दिया था यह सोचकर कि बचा हुआ जीवन मैं शान्त एकान्त स्थान में राम-नाम का स्मरण करते हुए बिताऊँगा। लेकिन भगवान् ने मुझे एक परिवार दिया है जो मुझसे अत्यधिक प्रेम करता है। चाहे मैं इसे चाहूँ या नहीं, यह स्वयं ही मेरे साथ रहेगा। कौन जाने? शायद मेरा जन्म ही इसीलिए हुआ हो। कोई भी इस आत्मा से जितना अधिक-से-अधिक लाभ लेना चाहे, ले। मैं पूर्णतया उनका होकर प्रसन्न हूँ। जो मुझ पर अपना अधिकार जतायें, उन्हें मैं स्वयं को भी देने को तैयार हूँ।"

वर्षों बाद स्वामी जी ने अपने शिष्यों से कहा " योजनायें बनाना और कल्पनाएँ करना मेरा स्वभाव नहीं है। मैं भगवान् की दया पर निर्भर करता हूँ। मैंने स्वर्गाश्रम छोड़ने का निश्चय कर लिया था लेकिन समस्या यह थी कि मैं कहाँ जाऊँ? थोड़े दिनों तक मैं राम आश्रम ग्रन्थालय के एक छोटे से कमरे में रहा। मेरे कुछ शिष्य पास स्थित एक छोटी सी धर्मशाला में रहते थे और क्षेत्र से भोजन लेते थे। कुछ

दिनों तक मैं भी क्षेत्र में भोजन लेने हेतु गया। समय बचाने के लिए बाद में मैं क्षेत्र के एक वरिष्ठ संन्यासी से मेरा भोजन प्राप्त करने लगा।'' इस प्रकार कई महीने व्यतीत हो गये।

स्वामी जी ऐसे स्थान की खोज में थे जहाँ पर वे सभी रह सकें और काम कर सकें। उन्हें एक जीर्ण-शीर्ण कुटीर प्राप्त हुई जिसमें चार कमरे थे। वह ऐसी लगती थी जैसे पूर्व में कोई गौशाला रही हो। स्वामी जी के लिए तो वह महल के समान थी। उन्होंने इसे स्वच्छ करके अधिग्रहीत कर लिया। स्वामी जी ने २८ मार्च १९३४ को लिखा ''अब मैंने वह कुटीर अधिग्रहीत कर ली है जिसमें ४ कमरे हैं। श्री स्वामी अद्वैतानन्द जी मेरे साथ ही रहेंगे।

यह एक महान् संस्था का केन्द्र था। एक कमरा स्वामी जी के कार्यालय के लिए, एक कमरा डिसपेंसरी के लिए तथा अन्य दोनों कमरे शिष्यों के रहने के लिए थे। इसके बाद से शिष्यों की संख्या में वृद्धि होने लगी। आने वाले शिष्यों को यह जानकारी थी कि यहाँ रहने के लिए जगह नहीं है लेकिन फिर भी वे निर्भीकतापूर्वक आते जा रहे थे। इस कारण स्थान बढ़ाने की आवश्यकता थी। भवन-निर्माण का अर्थ था पैसा। स्वामी जी तो भोजन के लिए भी पैसा खर्च करने की स्थिति में नहीं थे, तो भवन-निर्माण का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। स्वामी जी कहते थे कि मैं जंगल में फूस की झोंपड़ियाँ आराम से बना सकता हूँ, परन्तु वे अधिक उपयुक्त नहीं होंगी, क्योंकि दीमक पुस्तकों और कागजों को नष्ट कर देगी। मैंने एक धर्मशाला में एक पंक्ति में कमरे देखे हैं जो कि पूर्व में एक दुकानदार द्वारा प्रयोग किये जाते थे। उन कमरों में दरवाजे नहीं हैं। धीरे-धीरे एक-एक करके सारे कमरे विद्यार्थियों के निवास में परिवर्तित हो गये। स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा में आगे लिखा है :-

''उनको दरवाजे और खिड़की लगाकर थोड़ा सुधार दिया गया। मैं वहाँ पर ८ वर्षों तक रहा।

जब भक्तगण मुझे मेरे व्यक्तिगत उपयोग हेतु पैसा देते मैं उनका उपयोग बीस आध्यात्मिक उपदेश, शान्ति और आनन्द का मार्ग, चालीस स्वर्णिम शिक्षायें तथा अन्य पर्चों को छपवाने में करता था तथा ये मैं दर्शनार्थियों को निःशुल्क वितरित करता था। मैंने बीमार महात्माओं के उपचार हेतु कुछ उपयोगी दवाइयाँ खरीदीं और

समाचार पत्रों में लेख भेजने हेतु तथा गहन रुचि रखने वाले जिज्ञासुओं को पत्र भेजने के लिए डाक सामग्री खरीदी। काम धीरे-धीरे किन्तु स्थिरतापूर्वक आगे बढ़ता गया। मैं शिष्यों की खोज में कभी भी बाहर नहीं जाता था।

सत्य के सच्चे खोजी मेरी सहायता और निर्देशन प्राप्त करने के लिए मेरे पास आया करते थे। वे सब मुझसे दीक्षा लेते और पास की धर्मशाला के कमरों में रहा करते थे तथा दिन-रात काम किया करते थे। काम के भारी बोझ को हल्का करने के लिए मुझे एक डुप्लिकेटर और टाइपराइटर प्राप्त हुआ। जगत् के आध्यात्मिक उत्थान हेतु की जाने वाली दैवी सेवा के लिए लोग अत्यधिक रुचि दर्शाते थे। मेरे प्रति उनकी भक्ति की मैं प्रशंसा किया करता था। काम में वे अपना पिछला सब भूल जाते तथा सेवा और साधना द्वारा अपने आध्यात्मिक विकास में लग जाते थे। भक्तगणों ने इस श्रेष्ठ कार्य में स्वेच्छा से मुझे सहयोग किया। विद्यार्थियों के निर्वाह के लिए ऋषिकेश स्थित काली कमली वाला क्षेत्र से मुझे ५ व्यक्तियों का सूखा राशन मिलता था। शेष विद्यार्थियों और दर्शनार्थियों के लिए मैं कुछ प्रशंसकों से प्राप्त अत्यल्प दान का उपयोग करता था। इससे मैंने बिक्री हेतु कुछ पुस्तकें भी छपवाई।''

स्वामी जी ने आश्रम-निर्माण के लिए टिहरी महाराज से भूमि हेतु आवेदन में बिल्कुल देर नहीं की। उन दूरदर्शी महाराज ने शीघ्र भूमि दे दी तथा साथ ही वह भूमि भी दी जहाँ पर वर्तमान कैलाश कुटीर स्थित है। यह सच कहा जाये तो स्वामी जी के शिष्यों के लिए जो उन कुटीरों का निवास हेतु प्रयोग कर रहे थे, एक वरदान ही था।

इसी बीच स्वामी जी को कुछ कमरे ऐसे भी मिले जो गोबर और धूल से अटे पड़े थे और खाली थे। उनमें से एक कमरे में एक बूढ़ा गड़रिया रहता था। स्वामी जी ने इसकी सफाई कर इसे अधिग्रहीत कर लिया। (अब यहाँ डाक घर है)। यहाँ एक कमरे में एक विद्यार्थी रहने लगा और एक छोटा रसोई घर बनाया गया। एक वर्ष के भीतर उस वृद्ध गड़रिये ने भी वह कमरा खाली कर दिया।

स्वामी जी ने देखा कि एक संस्था द्वारा मानव मात्र के कल्याण के लिए अधिक अच्छा कार्य किया जा सकता है। उनका लक्ष्य था आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार तथा आध्यात्मिक जिज्ञासुओं को योग और वेदान्त का प्रशिक्षण देना। स्वर्गाश्रम साधु

संघ की स्थापना से उन्हें यह बात ध्यान में आयी। (साधु संघ के विचार की पूर्णता अखिल विश्व साधु संघ में हुई। फिर भारतीय साधु समाज की स्थापना हुई।)

स्वामी जी तथा उनके शिष्यों का ध्यान इस श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उत्तम मार्ग की खोज में लगा हुआ था। स्वामी जी ने त्वरित निर्णय लिया और जैसी कि उनकी प्रकृति थी उसे उतनी ही शीघ्रता से कार्यान्वित भी किया। जब स्वामी जी तथा स्वामी स्वरूपानन्द जी पंजाब यात्रा से वापस लौट रहे थे तो उन्होंने इस विषय पर रेल में आपस में बातचीत की। अम्बाला स्टेशन के पास पहुँचने तक वे एक निष्कर्ष पर पहुँच गये। अम्बाला रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर स्वामी जी के कुछ शिष्य उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, उनमें से एक वकील थे। स्वामी जीने उन्हें संस्था स्थापित करने के निर्णय को बताया। उनका कहना था कि स्वामी जी आपको इस कार्य के लिए एक न्यास बनाकर उसका पंजीयन कराना होगा। न्यास के पंजीयन के लिए एक दस्तावेज तैयार करना होगा। स्वामी जी तुरन्त बोले हमें यह काम अभी और यहीं करना है और उन्होंने अपनी अम्बाला से आगे की यात्रा रोक दी। उसी दिन दिनाँक १३ जनवरी १९३६ को वकील सा. ने दस्तावेज तैयार किये और स्वामी जी ने अम्बाला में इसका पंजीयन कराया।

दिव्य जीवन न्यास संस्था

संस्था दस्तावेज में जो लक्ष्य तथा विषय बताये गये थे, वे निम्नानुसार थे —

१. आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार के लिए

अ. आद्य और प्राचीन हिन्दू दर्शन, धर्म तथा औषधियों पर आधारित पुस्तकों, पर्चों तथा पत्रिकाओं का प्रकाशन तथा वितरण यदि न्यासधारियों की परिषद के लिए सम्भव हो

ब. लगातार धार्मिक प्रवचनों तथा सम्मेलनों के आयोजन और निरन्तर संकीर्तनों के आयोजनों द्वारा हरिनाम का प्रसार करना

स. यौगिक प्रशिक्षण और नैतिक और आध्यात्मिक साधना के लिए केन्द्र या संस्था की स्थापना जिससे पूजा, भक्ति, ज्ञान, कर्म तथा हठयोग (आसनों, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि) के विधिवत् प्रशिक्षण के द्वारा साधकों का आध्यात्मिक जागरण हो सके

द. उपरोक्त सभी बातों और कार्यों को करना सामान्य जन के आध्यात्मिक उत्थान हेतु आवश्यक और संवाहक है तथा विशेष रूप से भारतवर्ष में उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक है

२. आधुनिक दिशा और सही आधारभूत सिद्धांतों पर आधारित विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा अन्य संस्थानों की स्थापना करना तथा हिन्दू शास्त्रों की विभिन्न शाखाओं में शोध करने वाले जरूरतमन्द विद्यार्थियों को छात्र वृत्ति प्रदान करना जो वापस करने वाली और न वापस करने वाली दोनों प्रकार की हों

३. विधवा, अनाथों और पीड़ितजनों की सहायता करना चाहे वे वैयक्तिक अथवा वर्ग विशेष से सम्बन्धित हों। यह सहायता इस प्रकार की जाये कि समाज उनकी सहायता हेतु उचित प्रकार से विचार करे।

४. यदि न्यासधारियों की परिषद के लिए सम्भव हो तो रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा तथा विशेष रूप से निर्धन और सामान्यजनों को निःशुल्क औषधि वितरण हेतु औषधालयों और चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना करना और उन्हें संचालित करना।

१५ दिसम्बर १९५७ में दिव्य जीवन संघ की तेजी से बढ़ रही गतिविधियों को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए न्यासधारियों की बैठक में इन लक्ष्यों तथा विषयों की पुनः व्याख्या की गई और नियम १ (अ) में हिन्दू दर्शन के मध्य अन्य समकालीन शब्द डाल दिये गये। अतः इस अंश को इस प्रकार पढ़ा जायेगा हिन्दू और अन्य समकालीन दर्शन। इसी प्रकार हिन्दू शास्त्रों को संशोधित करके हिन्दू और अन्य समकालीन शास्त्र कर दिया गया

दिव्य जीवन संघ

संघ की सदस्यता सीमित थी। सत्य के खोजी अनेक लोग इस महान् लक्ष्य से जुड़ना चाहते थे। इसलिये स्वामी जी ने दिव्य जीवन संघ को चार भागों मे स्थापित किया—दिव्य प्रेम संघ, वेदान्तिक संघ, यौगिक संघ और ब्रह्मचारी संघ। ''सदस्यता हेतु कोई शुल्क नहीं था।'' दिव्य जीवन संघ का प्रथम वार्षिक प्रतिवेदन बतलाता है कि कोई भी जो आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना चाहता हो तथा सत्य,

अहिंसा और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता हो, संघ का सदस्य बन सकता है। संस्थाओं की शाखायें देश के विभिन्न भागों में बनाई जा चुकी थीं।

दिव्य जीवन संघ का लाहौर में १६ अप्रैल १९३९ की सन् १९६० के संस्थाओं के पंजीयन अधिनियम क्र. १११ के तहत विधिवत् पंजीयन हुआ। संस्था का प्रथम लक्ष्य था आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार और प्रसार हेतु मार्गों और साधनों की खोज करना। इस कार्य के लिए जनवरी १९३८ में न्यासधारियों ने एक स्थाई निधि बनाने का निश्चय किया। भक्तगण इसमें २५ रुपये दान कर सकते थे। यह धन बैंक में जमा कर दिया गया। इस धन द्वारा प्राप्त ब्याज से एक समयकालिक पत्रक छपवाया गया। यह पत्रक उन्हें भेजा जाता था जो इस हेतु डाक टिकट भेजते थे, परन्तु स्वामी जी अक्सर उन्हें बिना माँगे तथा जो भी उन्हें भेजने के लिए लिखता, उसे भेज देते थे।

लाहौर में दिव्य जीवन संघ के विधिवत् पंजीयन के ठीक पहले वहाँ पर ८, ९, १० अप्रैल को पंजाब प्रादेशिक दिव्य जीवन संघ का प्रथम सम्मेलन आयोजित हुआ। संस्था के आरम्भिक इतिहास में यह सर्वाधिक दूरस्थ स्थान था तथा इस सम्मेलन में स्वामी जी स्वयं उपस्थित थे। स्वामी जी एक महान् संस्था के संचालन हेतु जो आवश्यक समझते थे, ऐसे विशेष निर्णय इस सम्मेलन में लिए गये।

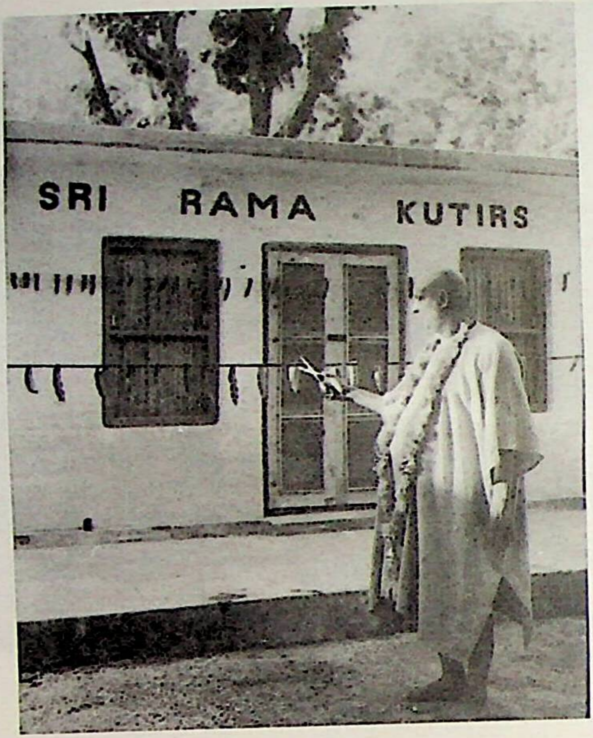
यह सम्मेलन मूलचन्द मन्दिर नवलखा लाहौर में आयोजित हुआ था। इससे पूर्व स्वामी जी ने एक या दो बार आनन्द कुटीर से बाहर जाने से इन्कार कर दिया था, इस कारण जब स्वामी जी इस सम्मेलन में ७ तारीख को लाहौर आये तो आयोजकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसमें होने वाले कार्यक्रम आनन्द कुटीर में होने वाले साधना सप्ताह के अनुसार थे। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें स्वामी जी की उपस्थिति में कुछ प्रस्ताव पारित किये गये जो निम्नानुसार थे—

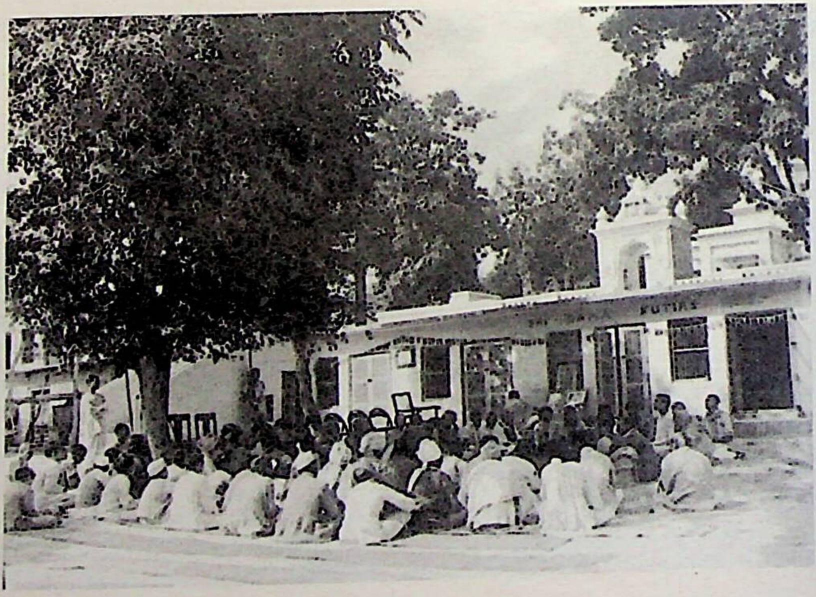
१. यह कि विशेष रूप से दिव्य जीवन संघ के सदस्य, संकीर्तन प्रेमी जिज्ञासु तथा सामान्य भक्त कम-से-कम १ माला (१०८ मन्त्र) गुरुमन्त्र नित्य लिखेंगे। यदि वे किसी कारण से ऐसा न कर पायें तो अगले दिन उसकी बिना चूके भरपाई करेंगे।

२. संघ का प्रत्येक सदस्य नित्य दैनन्दिनी भरेगा।






SRI RAMA KUTIRS


KUTIRS

३. संघ का प्रत्येक सदस्य २० आध्यात्मिक नियम क्र. १, ३, ७, ८, १२, १४, १५, १७ और १९ का पालन बिना चूके करेगा।

४. संघ का कोई भी सदस्य किसी भी कीमत पर धूम्रपान, मद्यपान और आमिषाहार नहीं करेगा।

५. संघ का प्रत्येक सदस्य प्रतिदिन साधना के रूप में १ माला मन्त्र जप अवश्य ही करेगा तथा सत्य, अहिंसा और भगवद्-साक्षात्कार के मार्ग पर चलेगा।

६. संघ का सदस्य सिनेमा अथवा थियेटर में नहीं जायेगा और हर प्रकार के फैशन से बचने का प्रयत्न करेगा।

७. संघ का प्रत्येक सदस्य देश सेवा हेतु प्रयत्नशील रहेगा और देश में निर्मित वस्त्र और देश में निर्मित वस्तुओं का प्रयोग करेगा।

८. संघ का प्रत्येक सदस्य मात्र हिन्दी का प्रयोग करेगा जिससे वह अधिक से अधिक देश और भारतीयता से जुड़ा रहे।

९. संस्था के प्रत्येक केन्द्र को ब्रह्ममुहूर्त में कक्षा चलाने का प्रयत्न करना चाहिये। यह शाखाओं की नियमित दिनचर्या होनी चाहिये।

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि स्वामी जी का दिव्य जीवन संघ को स्थापित करने का मुख्य लक्ष्य सभी को दिव्य जीवन तथा भगवद्-साक्षात्कार के मार्ग पर लेकर जाना था। स्वामी जी कभी भी घुमा-फिरा कर अपनी बात नहीं कहते थे। स्वामी जी ने सदस्यों को उनके कर्तव्य स्पष्ट रूप से बताये तथा लक्ष्य तक पहुँचने हेतु शत-प्रतिशत व्यवहारिक उपदेश दिये। उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया कि उनकी संस्था के पीछे उनका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था, लेकिन यह उनकी इस ज्वलंत आकांक्षा की पूर्ति हेतु माध्यम अवश्य बनी कि इस जन्म-मृत्यु के कष्टों से मुक्त होने हेतु सभी उनकी शिक्षाओं से लाभान्वित हो सकें।

आश्रम का विकास

स्वामी जी को गुरु स्वीकार करने वाले साधक तथा स्वामी जी के दर्शन हेतु नियमित रूप से ऋषिकेश आने वाले लोग स्वेच्छा से टिहरी महाराज द्वारा दी गई

भूमि पर कुटीर बनाने हेतु उत्सुक थे। उनमें से सर्वप्रथम थे श्री हरि गणेश अम्बेडकर (श्री स्वामी हरिओमानन्द जी महाराज)। इसके बाद अन्य भक्त दान के साथ आगे आये और इनके द्वारा स्वामी जी ने योग साधना कुटीर का निर्माण कार्य हाथ में लिया।

यह विचार अन्य लोगों को भी अच्छा लगा। उन्होंने भी आश्रम प्रवास पर ठहरने हेतु कुटीर बनवाने की इच्छा व्यक्त की। इसका लाभ यह था कि जब वे आश्रम से वापस चले जाते तो उनका प्रयोग स्वामी जी के संन्यासी शिष्य कर सकते थे। इस प्रकार आश्रम के सारे कुटीर भक्तों ने अपने लिए बनवाये और और उनकी अनुपस्थिति में आश्रमवासी उनका प्रयोग करते थे।

जब स्वामी जी ने देखा कि गंगा किनारे कुटीर बनवाने का विचार सभी को अच्छा लगा तो वे इसे प्रोत्साहन देने लगे। संघ की पत्रिका दिव्य जीवन में यह सूचना प्रकाशित की गई।

दिव्य जीवन हेतु आश्रम से आमन्त्रण

"आनन्द कुटीर के आसपास सुन्दर मनोरम प्राकृतिक वातावरण है और यह पतित पावनी गंगा नदी के ठीक किनारे स्थित है। अतः यह ध्यान हेतु एक आदर्श स्थान है। यहाँ पूर्ण एकान्त और शान्ति है। निकट भविष्य में यहाँ कुछ एकान्त कुटीरों का निर्माण तथा एक प्रवचन हॉल, ध्यान मन्दिर, संकीर्तन गृह का निर्माण होने वाला है। जो आनन्द कुटीर में ध्यान करना चाहते हों, यहाँ पर कुटीर निर्माण हेतु उनका स्वागत है।"

इसकी बड़ी अच्छी प्रतिक्रिया रही। बड़ी संख्या में ऐसे साधक कुटीर निर्माण हेतु उत्सुकता से आगे आये जो सेवा निवृत्त हो चुके थे। इन लोगों ने उन्हें भी प्रेरित किया जो कुछ समयावधि तक वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करना चाहते थे।

स्वामी जी ने तुरन्त ही इस विचार को लिया और परिणामस्वरूप दिव्य जीवन पत्रिका के सन् १९४२ के अप्रैल के अंक में यह सूचना छपी "जो सेवानिवृत्त हो चुके हैं और कठोर साधना के लिए ऋषिकेश आना चाहते हैं, वे यहाँ कुटीर निर्माण हेतु

स्थान आरक्षित कर सकते हैं। इस कुटीर में एक ध्यान का कमरा, स्नान घर तथा रसोई घर है। प्रथम कुटीर का निर्माण प्रारम्भ हो गया है।''

इसी समय भजन गृह (कक्ष) का निर्माण कार्य चल रहा था। जो सन् १९४२ में पूर्ण हुआ। सभी महत्वपूर्ण कार्यक्रम विशेष रूप से साधना सप्ताह आदि यहीं आयोजित होते थे।

ऐसा बताया जाता है कि जब स्वामी जी ब्रह्मानन्द आश्रम में रहते थे तो वे अक्सर उस स्थान पर जाते थे जहाँ पर अभी विश्वनाथ मन्दिर स्थित है, और वहाँ पर बिल्व पत्र के वृक्षों की बाहुल्यता देखकर सोचते थे कि यहाँ पर शिवजी का मन्दिर होना चाहिये। वे उस स्थान पर काल्पनिक मन्दिर में स्थापित शिव भगवान् की मूर्ति को मानसिक रूप से सारे बिल्वपत्र अर्पण कर देते थे। इसी कारण भजन कक्ष के पूर्ण होते ही विश्वनाथ मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। इसके लिए श्री मिजर गोविन्द पाई ने भगवान् मुरली मनोहर की मूर्ति दी तथा बम्बई के श्री एच.एम.मेहता ने भगवान् राम, लक्ष्मण, सीता जी और हनुमान जी की मूर्तियाँ भेजीं। स्वामी जी की इच्छा विश्वनाथ मन्दिर के रूप में साकार हुई। इसका उद्घाटन ३१ दिसम्बर १९४३ को किया गया।

लगभग इसी समयावधि में स्वामी जी गंगा नदी के किनारे स्थित कुटीर में रहने चले गये। आश्रम भी अब विकसित हो गया था और आश्रमवासियों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही थी।

पुराना रसोई घर वहीं पर बड़े कमरे में स्थानान्तरित हो गया था तथा यह कमरा स्वामी जी को कार्यालय के लिए दे दिया गया था। आल्मारियों में स्वामी जी की पुस्तकें रखी रहती थीं तथा स्वामी जी के सामने कुछ टाइपिंग करने वाले बैठे रहते थे, जो उनके बहुमूल्य लेखों और पत्रों को टाइप करने के लिए तैयार रहते थे। अगले कमरे में सचिव कार्य करते थे। जब डाकघर आया तो वह भी इसी जगह अन्तिम कमरे में खुल गया।

स्वामी जी छोटे से सोफे पर बैठे रहते थे और उनके सामने एक छोटी मेज रहती थी। कभी वे सत्य के खोजी किसी व्यक्ति का पत्र पढ़ने में लीन रहते या कभी कुछ पत्रों को हाथ में लिए तेजी से डाक अधिकारी के पास जाते। यहाँ तक कि मलाया में

भी वे अपने पत्र स्वयं ही पोस्ट करते थे। जब वे पत्रों को पत्र-पेटी में डालते तो वे ऐसा अनुभव करते जैसे वे स्वयं उस व्यक्ति के हाथों में दे रहे हों। बाद में उनकी यही भावना किताबों के पैकेट के साथ में थी। वे हर एक पैकेट को देखते, फिर मेज पर रख देते थे।

स्वामी जी को रसोई घर के बरामदे में पड़ी बेंचों पर अपने सचिव के साथ अथवा अन्य आश्रमवासियों के साथ संसार की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते देखना, हर आश्रमवासी के कमरे मे उनकी आवश्यकताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते तथा प्रेम पूर्वक बादाम, दही, मक्खन आदि देते हुए देखना बड़ा ही अच्छा लगता था।

जब कोई जिज्ञासु अथवा अतिथि उनसे अपनी आध्यात्मिक साधना के बारे में किन्हीं सन्देहों का निवारण करने के लिए व्यक्तिगत चर्चा करना चाहता था तो स्वामी जी उसे उसी समय अपने पुराने कुटीर के ऊपर छत पर ले जाते, धैर्यपूर्वक उसकी बातें सुनते और शंकाओं का समाधान करते थे।

सन् १९४१ के पहले आश्रम का सत्संग रामाश्रम के बरामदे में होता था। भजन-कक्ष के निर्माण के बाद जब स्वामी जी नये कुटीर में आये तो शीत-ऋतु में सत्संग भजन-कक्ष में होता था और ग्रीष्म-ऋतु में यह बरामदे में (जहाँ भोजन किया जाता था) होता था। स्वामी जी सत्संग में सर्वप्रथम आते तथा सबसे अन्त में जाते थे। जब अत्यधिक अतिथि होते उसके सिवा सन्ध्या का सत्संग विधिवत् रूप से होता था। इसमें धर्मग्रन्थों (गीता, उपनिषद्, पुराण) तथा स्वामी जी की किसी पुस्तक के अध्ययन के बाद सभी उपस्थित जन या तो ध्यान करते अथवा कीर्तन करते थे। अध्ययन हेतु जलायी जाने वाली मिट्टी के तेल की लालटेन और तेल के दीपक के अलावा प्रकाश का कोई अन्य साधन नहीं था। ध्यान का एक महत्वपूर्ण विषय तो स्वयं स्वामी जी की उपस्थिति थी जो मात्र सत्संग में भाग लेने के लिए अपने कमरे से आया करते थे और सत्संग समाप्ति के बाद अपने कमरे में वापस चले जाते थे। स्वामी जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व दिव्य था। जब वे बड़ा सा ओवरकोट पहने, एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ में आवश्यक थैले लिए हुए शीत-ऋतु में कुटीर

से भजन-कक्ष आते थे तो उनके हाथ हर कदम के साथ एक लय में हिलते रहते थे। इस समय उन्हे देखना बड़ा ही अच्छा लगता था।

भजन-कक्ष का प्रयोग स्वामी जी मात्र सत्संग और प्रार्थना के लिए ही नहीं करते थे वरन् यह उनके लिए खेल का मैदान भी था। प्रातःकालीन कक्षाओं के बाद स्वामी जी मन्दिर में पूजा के लिए जाते थे। फिर वे प्रातःकालीन व्यायाम के रूप में भजन-कक्ष में दौड़ लगाते थे। हीरक जयन्ती वर्ष में आश्रम में अनेक काम हुए। आश्रम के कार्यालय हेतु एक बड़े कमरे की आवश्यकता थी, अभी तक यह आश्रम में भिन्न-भिन्न खण्डों में फैला हुआ था। इसलिये एक हीरक जयन्ती कक्ष का निर्माण किया गया और कार्यालय यहीं लगने लगा। पहले यह कार्यालय जहाँ अभी डाक घर स्थित है, वहाँ पर था। इसी वर्ष गंगा नदी के किनारे विश्वनाथ घाट का भी निर्माण हुआ। आश्रम में इस वर्ष तीन कुटीर और निर्मित हुए। यह कहना गलत नहीं होगा कि इस वर्ष आश्रम की गतिविधियों में असीमित वृद्धि हुई। विश्व के चारों कोनों में स्वामी जी की प्रसिद्धि फैल गई ओर लोग उनकी इच्छाओं की पूर्ति हेतु प्रसन्नता पूर्वक आगे आये।

सन् १९५० में स्वामी जी ने सम्पूर्ण भारत यात्रा की जिसके फलस्वरूप आश्रम में अतिथियों की भीड़ निरन्तर बड़ने लगी। इसलिये आश्रम को कुटीरों की अत्यधिक आवश्यकता पड़ने लगी। इस कारण पड़ोस के आश्रमों से भी कमरे किराये पर लेने की आवश्यकता पड़ने लगी। अब आश्रम एक नगर शिवानन्द नगर में परिवर्तित हो गया।

विश्वनाथ मन्दिर के समीप स्थित ज्ञानेश्वरी कुटीर से सम्बन्धित एक अद्‌भुत घटना है। योगीराज श्री गौरी प्रसाद जी एक सेवा निवृत्त न्यायाधीश थे, जो कि स्वर्गाश्रम में निवास करते थे और संकीर्तन करते थे। सन् १९४८ में स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ उनके घर गये थे। कुछ समय बाद योगीराज जी की पोती की दिवंगत आत्मा ने उनसे यह इच्छा व्यक्त की कि वह स्वामी जी के पास रहना चाहती है। इसलिये योगीराज जी ने ज्ञानेश्वरी कुटीर स्वामी जी को दान कर दी।


BE GOOD
DO GOOD



स्वामी जी के शिष्यों की परम गुरुभक्ति के कारण शिवानन्द मन्दिर (जहाँ स्वामी जी की संगमरमर की प्रतिमा स्थापित है) तथा शिवानन्द स्तम्भ का निर्माण हुआ। इस स्तम्भ पर जीवन को परिवर्तित करने वाले उपदेश अंकित हैं।

जब उपरोक्त निर्माण कार्य चल ही रहे थे तभी योग-वेदान्त अरण्य एकाडेमी के व्याख्याताओं तथा विदेशी छात्रों के लिए एक दो-मंजिला भवन का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ, जो सन् १९५४ में पूर्ण हुआ। निर्माण कार्य चल रहा था और कुटीरों के निर्माण हेतु धन भी निरन्तर आ रहा था। इसके बाद पार्वती कुटीर का निर्माण हुआ जो दो-मंजिला था। फिर पुराने योग-साधना कुटीर के ऊपर कमरे बनाये गये। सन् १९५८ में शासन ने आश्रम को पास की छोटी पहाड़ी भी दे दी, तो कैलाश कुटीर भी आश्रम में सम्मिलित हो गये। ये कुटीर तथा नेत्र चिकित्सालय आश्रम के सबसे व्यवस्थित तथा योजनानुरूप बनाये गये कमरे थे, जिनकी रूपरेखा तथा निर्माण कार्य श्री स्वामी माधवानन्द जी की देखरेख में किया गया था। शिवानन्द कुटीर के समय श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द जी निर्माण कार्य के प्रमुख थे और इससे पहले श्री स्वामी नित्यानन्द जी ने इस कार्य को किया, तब शिवा कुटीर तथा अन्य कुटीर बनाये गये।

सन् १९४४ में दिव्य जीवन संघ ने हरिद्वार मार्ग पर स्थित विश्वनाथ बाग को अधिग्रहीत किया। श्री स्वामी सारदानन्द जी ने यहाँ एक गुहा का निर्माण किया। बाद में श्री शंकरानन्द जी ने इसे सब्जियों और फूलों के बगीचे में परिवर्तित कर दिया तथा इसके सारे कमरों का नवीनीकरण करके उन्हें सीमेंट कांक्रीट के पक्के भवन में बदल दिया।

शिवानन्द आश्रम में बहुत से लोगों ने सहायता की, लेकिन हर नवीन निर्माण के पीछे काम करने वाली शक्ति तथा प्रेरणा स्वयं स्वामी जी ही थे, जो इस श्रेष्ठ लक्ष्य में सहायता करने वाले भाग्यशालीजनों के हृदय में अन्तःप्रेरणा की निरन्तर जल रही ज्योति को अपनी अनूठी विधियों द्वारा जलाये हुए थे। इसलिये आश्रम द्वारा स्वामी जी का व्यक्तित्व ओजस्विता और निष्काम्य सेवा के प्रति अथक उत्साह प्रतिबिम्बित होता था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि विश्वनाथ मन्दिर के निर्माण के समय स्वामी जी स्वयं अपने सिर पर ईंटें रखकर ले जाया करते थे।

(सन् १९४४ से आश्रम की अत्यधिक तीव्रता से वृद्धि हुई तथा कमरों की संख्या २०० से अधिक हो गई थी।)

अतिथियों के साथ व्यवहार

लोग आनन्द कुटीर के प्रसिद्ध महात्मा के दर्शन के लिए तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आया करते थे। लेकिन जब वे स्वामी जी से मिलते तो उन्हें लगता जैसे स्वामी जी स्वयं उनसे मिलने के लिए लालायित हैं तो वे आश्चर्यचकित और भ्रमित हो जाते थे। उदाहरण के लिए दक्षिण भारतीय एक स्त्री स्वामी जी से मिलने के लिए आयी। वह कार्यालय में गई, जहाँ वह स्वामी जी से मिली, थोड़ी देर बाद जब वह बाहर आयी तो उसने वहाँ खड़े एक आश्रमवासी से पूछा कि स्वामी शिवानन्द जी कहाँ हैं। उत्तर मिला—आप अभी स्वामी जी के पास से तो आ रही हैं। यह सुनते ही वह आश्चर्यचकित रह गई और बोली क्या वे संत हैं? मुझे तो लगा कि वे कार्यालय के प्रबन्धक हैं। उस स्त्री की आँखों से आँसू आ गये। वह उल्टे पाँव दौड़ पड़ी और स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ी।

स्वामी जी को सबके साथ विनोद करते देखकर कुछ लोग ऐसा सोचते कि वे एक सांसारिक व्यक्ति हैं। लेकिन विवेकवान व्यक्ति तो उनकी आँखों के दिव्य तेज से ही उन्हें पहचान लेते थे।

स्वामी जी के चारों ओर व्याप्त शान्ति और गरिमामय वातावरण से उनकी उपस्थिति का स्पष्ट आभास होता था। स्वामी जी के शब्द और कार्यकलाप प्रतिक्षण यह आभास कराते कि "मैं आपका दास हूँ।" हालाँकि स्वामी जी अत्यंत सम्माननीय संत थे, वे सारे देश के प्रसिद्ध गुरु और सुधारक थे और एक महान् संस्था के संस्थापक तथा प्रमुख थे, लेकिन वे इन सभी तथ्यों से अनभिज्ञ प्रतीत होते थे। वे स्वयं को दैवीय सेवक तथा पूजक मानते थे। यहाँ तक कि उनके एक शब्द पर उनके दर्जनों शिष्य सेवा के लिए तैयार रहते थे लेकिन स्वामी जी को हाथ में दूध का प्याला लिए तथा सफेद झोले में कुछ फल लेकर अतिथि के पास जाते हुए देखा जा सकता था। यदि स्वामी जी ऐसा देखते कि अतिथि कुछ लज्जा का अनुभव कर रहा है या वह संकोची स्वभाव का है और अपनी आवश्यकतायें बताने में संकोच कर रहा है तो

वे यह बात उसके कहने से पहले ही समझ लेते और उसकी देखभाल के लिए एक आश्रमवासी को नियुक्त कर देते थे।

स्वामी जी जब सन्ध्या के समय घूमने जाते तो वे अपने साथ हमेशा कुछ फल, कुछ अच्छी चीजें अथवा कोई रुचिकर पुस्तक (जिसे वे किसी को देने के लिए ले जाते) अपने साथ लेकर जाते थे। कभी मध्यान्ह में अपने कुटीर वापस जाते समय यदि वे देखते कोई आश्रमवासी किसी साधु को भिक्षा दे रहा है तो वे रुककर बन्दरों को भगाते और उस साधु को हाथ धोने के लिए पानी डालते। जब भक्तगण स्वामी जी को फल इत्यादि अर्पित करते तो वे जो भी प्राणी सामने दिखाई देता, उसे वितरित करने लग जाते। उस समय नौकर, लड़के, डाकिया, भिखारी, हरिजन, बन्दर आदि जो भी वहाँ होता उसे अपना हिस्सा मिलता।

विशेष रूप से जब कोई कार्यक्रम होता और बहुत से लोगों को भोजन कराया जाता तो स्वामी जी बच्चों के समान अधीर हो जाते। वे शीघ्रता से गंगा माँ को अर्पित करते और उस समय तैयार सारी-की-सारी मिठाई बाँटने की जल्दी करने लगते। वे कभी एक हाथ से नहीं देते थे। वे दोनों हाथों से थाली में से उठाते और हर एक के हाथों में डालते जाते। बाँटते समय वे बड़ों और बच्चों के अन्तर को भूल जाते। कभी-कभी स्वामी जी बच्चे को भी इतना अधिक दे देते कि वह उसे ले जाने में भी असमर्थ रहता।

स्वामी जी अपने भक्तों की जिस प्रकार से सेवा करते थे, उसे देखकर रूढ़िवादी संन्यासी आश्चर्यचकित रह जाते थे। स्वामी जी के पास आने वाले हर अतिथि को यह अनुभव होता था जैसे स्वामी जी का पूरा ध्यान उसी पर है और उनके सारे समय पर उसका एकाधिकार है, तथा उसकी सुविधाओं का विशेष ध्यान रखा जा रहा है। आने वाले अतिथि को जैसे ही कमरा मिलता, उसकी आवश्यकताओं के बारे में ढेरों प्रश्नों की बौछार होने लगती। उसके कमरे में जल भरकर रख दिया जाता। तुरन्त एक लालटेन दी जाती। यदि गरमी के दिन होते तो एक मच्छरदानी दी जाती और यदि ठण्ड के दिन होते तो एक एक या दो कम्बल प्रदान किये जाते। यदि आगन्तुक अतिथि वृद्ध है तो उसे एक आराम-कुरसी भी दी जाती। अन्त में स्वामी जी ग्रन्थपाल से उसे पुस्तकालय से एक पुस्तक देने के लिए कहते।

स्वामी जी द्वारा अत्यन्त सावधानीपूर्वक किये जाने वाले आतिथ्य सत्कार को देखकर कई अतिथियों ने स्पष्ट रूप से कहा कि ''स्वामी जी को देखकर हमें लज्जा का अनुभव होता है। उन्होंने हमें अतिथियों के साथ व्यवहार तथा उनकी सेवा की सही विधि सिखलाई।'' स्वामी जी आतिथ्य सत्कार में पूर्ण निपुण हैं और हमें उनसे कई बातें सीखने की आवश्यकता है। हम तो सोचते थे कि अतिथियों के सत्कार के बारे में गृहस्थ ही सब कुछ जानते हैं, परन्तु यहाँ एक व्यक्ति ऐसा भी है जिसका अनुकरण हमें आदर्श के रूप में करना चाहिये।''

शिवानन्द आश्रम में अतिथियों तथा दर्शनार्थियों के साथ किया जाने वाला व्यवहार सच में आँखें खोलने वाला था। आश्रमवासी तथा इससे जुड़े लोग इस पर गर्व का अनुभव कर सकते थे। इस हेतु स्वामी जी पूरा ध्यान रखते थे। उनके हर काम करने वाले को निर्देश थे कि किसी भी स्थिति में किसी भी अतिथि के ऊपर क्रोध न किया जाये। स्वामी जी हमेशा कहते थे ''यदि आप सभी में आत्मा का दर्शन करते हैं तो इसे आपके सभी कार्यकलापों में व्यक्त होना चाहिये। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि आगन्तुक असाधारण आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त करते हैं या नहीं, लेकिन फिर भी उन्हें यहाँ रहने पर सच्ची शान्ति का आनन्द तो प्राप्त करना ही चाहिये। यहाँ से जाने के बाद जब वे यहाँ मिले प्रेम तथा करुणा का स्मरण करेंगे तो वे गंगा नदी की शान्ति, कीर्तन तथा इस स्थान से जुड़े आध्यात्मिक अनुभवों को भी याद करेंगे। इसलिये उनकी सेवा भाव सहित करो। निष्काम्य सेवा और निःस्वार्थ प्रेम की शिक्षा देने के लिए मठों और आश्रमों को सेवा का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये।''

अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार तथा उदारता के द्वारा स्वामी जी सभी में जाग्रति लाने के अपने लक्ष्य में सफल हो गये। वे जो आवभगत तथा सेवा करते थे, उससे वे थोड़े समय में ही लोगों के विचार, धारणाओं तथा व्यवहार को रूपान्तरित कर देते थे। यह काम स्वामी जी अपने विशिष्ट तरीके से करते थे। वे उन्हें कीर्तन करना, आसन और सरल प्राणायाम करना तथा छोटे से श्रोताओं के समूह के सामने भाषण देना सिखा देते थे। उन्हें लिखित जप करना सिखाते, उन्हें आध्यात्मिक दैनन्दिनी भरना तथा नियमित दिनचर्या कैसे रखी जाये, यह भी सिखाते थे। आगन्तुकों को इसकी भी

शिक्षा दी जाती कि ध्यान, प्रार्थना तथा स्वाध्याय की कक्षायें किस प्रकार संचालित की जायें। सारांश में आश्रम में निवास की छोटी-सी अवधि में हर-एक व्यक्ति दिव्य विचारों तथा आध्यात्मिक साधना के आगे प्रसार हेतु एक शक्तिशाली केन्द्र बन जाता था। एक सप्ताह अथवा दस दिनों की छोटी-सी समयावधि के भीतर आश्रम आने वाला जिज्ञासु संक्षेप में किन्तु स्पष्ट रूप से अनेक बातें सीख जाता।

स्वामी जी कहा करते थे कि व्यक्ति को आज ''संक्षिप्त और आकर्षक'' की नीति का अनुसरण करना चाहिये। संसार में लोगों के पास आजकल समय की बड़ी कमी है। अवसर के अनुरूप ही हर चीज बनायी जानी चाहिये। जीवन क्षणिक है और वर्षों बीत गये हैं। इसलिये जब लोग मेरे साथ होते हैं, मैं उनकी आवश्यकता तथा प्रकृति के अनुरूप जो मुझे देना होता है तुरन्त दे देता हूँ।

स्वामी जी का सम्बन्ध आश्रम में आने वाले अतिथियों के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता था, वरन् वे कुछ कम स्वागत करने योग्य अतिथियों का भी स्वागत करते थे। यहाँ तक कि वे पृथ्वी के किसी प्राणी को चोट पहुँचाने की किसी दूसरे को भी अनुमति नहीं देते थे। एक बार की बात है किसी आश्रमवासी ने स्वामी जी जिस खाट पर सोते थे, उसे बाहर निकाला। उसने देखा कि यह तो खटमलों का घर है। उसके हृदय में गुरुभक्ति का भाव आया और उसे लगा ये स्वामी जी को सोने नहीं देते हैं, इसलिये इन्हें मार देना चाहिये। इसलिये उसने एक बड़ी सी लकड़ी तैयार की और उसे मिट्टी के तेल में डुबोकर खाट पर लगाने वाला था, जिससे खटमल मर जाते, परन्तु खटमल बड़े ही भाग्यशाली थे (आखिर क्यों न होते, वे सारी रात स्वामी जी के पवित्र सान्निध्य में जो रहते थे)। इसी समय स्वामी जी वहाँ आ गये। उनके चेहरे पर आ गये अत्यधिक कष्ट के भावों को देखकर वह आश्रमवासी एकदम रुक गया। स्वामी जी ने उससे कहा ''कृपया ऐसा मत करो।''

शिष्य ने उत्तर दिया ''यह खाट खटमलों से भरी हुई है और इसी कारण आप सो नहीं पाते हैं।''

स्वामी जी तुरन्त बोले ''कोई बात नहीं, थोड़े दिन के लिए इस खाट को जंगल में छोड़ आओ और उतने दिनों के लिए मुझे कोई अन्य खाट दे दो।''

स्वामी जी ने चूहों को भी इसी प्रकार का संरक्षण प्रदान कर रखा था। उनमें से कुछ ने उनके महत्वपूर्ण कागजातों को चट कर डाला, कुछ ने उनके बिस्तरों और कपड़ों को कुतर डाला था। शिष्य गण इन चूहों को पकड़ते और बाहर छोड़ आते थे लेकिन संध्या को वे पुनः आश्रम में आ जाते थे। वे तो यहाँ तक कि स्वामी जी के पंजों को भी कुतर लेते थे और यह उनके लिये खतरनाक था क्योंकि उन्हें मधुमेह था। फिर भी उन्हें स्वामी जी की दया प्राप्त थी। चूहों की समस्या हल करने के लिए एक निपुण व्यक्ति आश्रम में आया, उसने कहा इस समस्या का सर्वश्रेष्ठ हल यह है कि चूहों को मार दिया जाये। स्वामी जी किसी भी प्रकार की बात चाहे वह अच्छी हो या बुरी, लौकिक हो या गम्भीर, अत्यन्त धैर्यपूर्वक सुनते थे। लेकिन जैसे ही यह बात उनके कानों में पड़ी, उन्होंने इसे सुनने से भी इन्कार कर दिया और जोर-जोर से सिर हिलाते हुए बोले ''नहीं, नहीं, चूहों को नहीं मारा जायेगा। इसके विपरीत हम अपनी चीजों को सम्भाल कर रखेंगे। पांडुलिपियों को लोहे की अल्मारी में रखेंगे और बिस्तर और कपड़ों को भी सुरक्षित रखेंगे, लेकिन चूहों को कदापि मारा नहीं जायेगा।'' यदि वह व्यक्ति और कोई सलाह देता तो स्वामी जी चूहों के लिए नियमित राशन देना प्रारम्भ कर देते। जैसा कि उन्होनें बन्दरों के विषय में किया। कुछ लोगों ने स्वामी जी को सलाह दी कि बन्दरों को आश्रम से बाहर खदेड़ देना चाहिये, पास वाले आश्रम वालों ने ऐसा ही किया है, तो स्वामी जी ने इस सुझाव को बन्दरों के लिए चनों की नियमित आपूर्ति प्रदान करने के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया।

सन् १९४९ में सन्ध्या का सत्संग कभी-कभी स्वामी जी के कुटीर में होता था। सत्संग समाप्त होने के बाद पुरुषोत्तम जी स्वामी जी का बिस्तर बिछाते थे। एक दिन उन्होंने एक चादर लेने के लिए अल्मारी खोली तो देखा कि एक चुहिया ने एक नयी बहुमूल्य चादर चिंदी-चिंदी कर दी थी और उसमें चार बच्चों को जन्म दे दिया था। पुरुषोत्तम जी उन बच्चों को स्वामी जी को दिखाने के लिए चादर सहित उठाकर लाये। स्वामी जी ने जब उन नवजात शिशुओं को देखा तो उनका हृदय करुणा से भर आया और उन्हें बहुत अधिक दुःख हुआ, उन्होंने स्वामी पुरुषोत्तम जी को कहा कि वे उन्हें उसी समय उसी स्थिति में वापस रख आयें। दो-एक दिन में पता नहीं कैसे उन बच्चों की माँ को बिल्ली ने मार दिया। थोड़े दिनों में दुर्भाग्य से वे बच्चे भी मर गये।

उन मृत चूहों को देखकर स्वामी जी का आँखों में दुःख के भाव आ गये। उन चूहों की आत्मा की शान्ति के लिए स्वामी जी ने महामन्त्र कीर्तन किया।

ग्रीष्म ऋतु में आश्रम में बिच्छू बहुतायत में निकलते थे। स्वामी जी के कुटीर के बरामदे में इन बिच्छुओं को उठाकर दूर फेंकने के लिए एक चिमटा रखा रहता था। एक बार की बात है कि एक अतिथि ने कीर्तन के समय रात्रि में एक बिच्छू देखा। उसने उसे टार्च से मसल कर मार डाला। स्वामी जी इस घटना को देख रहे थे। उन्होंने कीर्तन के तुरन्त बाद उस अतिथि को बुलाया और पूछा कि आपने उस बिच्छू को क्यों मारा? उसने उत्तर दिया ''यह एक खतरनाक जीव है और किसी को भी काट लेता, इसलिये मैंने इसे मार दिया।'' स्वामी जी ने प्रश्न किया कि क्या एक बिच्छू को मार देने से देश भर में पाये जाने वाले करोड़ों बिच्छुओं के काटने से लोगों को बचाया जा सकता है? इस जीव को मारने में आपको मात्र कुछ सेकेन्ड का समय लगा होगा, परन्तु क्या आप इसे पुनः जीवन दान देने में सक्षम हैं? जब आपके पास किसी को जीवन देने की क्षमता नहीं है तो आप किसी का जीवन कैसे ले सकते हैं? वह अतिथि स्वामी जी के आगे नतमस्तक हो गया और बोला ''मैं अपने किये हुए पर शर्मिन्दा हूँ और आगे से जीवन भर किसी जीव की हत्या नहीं करुँगा।''

आत्मनिर्भरता का प्रशिक्षण

स्वामी जी ने अपने आरम्भिक शिष्यों को अत्यन्त सावधानी तथा पूर्णता के साथ प्रशिक्षित किया और उनमें सेवा के प्रति उत्साह का समावेश किया। स्वामी जी सदा इस बात पर बल देते थे कि उन्हें हर प्रकार की परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार किया गया है। जैसे कि एक बार प्रकाशन के कार्य में किसी प्रकार के मुकदमे की सम्भावना लग रही थी और इस पर विचार-विमर्श चल रहा था, तो २ जुलाई सन् १९३५ को स्वामी जी ने लिखा कि हर-एक को सभी प्रकार का अनुभव होना चाहिये। तभी भय और लज्जा की भावना दूर होगी।

ठीक यही बात स्वामी जी ने सन् १९५५ में तब कही जब आश्रम के अधिकारीगण (जो आश्रम का डाक अधिकारी था) के विरुद्ध न्यायालय में केस लगाने में हिचकिचा रहे थे। स्वामी जी बोले ''यदि सही बात हो तो मैं न्यायालय

जाने में नहीं घबराता। हमें सम्मान के साथ-साथ अपमान का भी स्वागत करना चाहिये।''

सन् १९४१ में स्वामी जी के शिष्यों को एक गम्भीर परीक्षण से गुजरना पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि शायद स्वामी जी ने यह योजना अपने शिष्यों के समर्पण को परखने तथा उन्हें सभी परिस्थितियों हेतु प्रशिक्षित करने के लिए बनाई थी। १८ फरवरी सन् १९४१ को स्वामी जी ने बिना किसी को बताये आश्रम छोड़ दिया और एक सन्देश छोड़कर गये ''मैंने स्वामी परमानन्द जी को जो कि मेरे वरिष्ठ शिष्य हैं, दिव्य जीवन संघ का अध्यक्ष नियुक्त किया है... चूँकि वे मेरे निकट सम्पर्क में वर्षों तक रहे हैं... मैं अपने दुर्बल स्वास्थ्य के कारण तत्काल सेवा निवृत्त हो रहा हूँ।''

मार्च १९४१ के दिव्य जीवन पत्रिका के अंक में श्री स्वामी परमानन्द जी ने लिखा :

परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का जन्म सन् १८८७ में हुआ। उन्होंने मलेशिया में चिकित्सक की तरह १० वर्षों तक मानव-मात्र की सेवा की। फिर वे भारत वापस आये। सन् १९२३ में उन्होंने शंकराचार्य परम्परा में संन्यास दीक्षा ली और एकान्त में तपस्या करने के लिए ऋषिकेश को अपना निवास स्थल बनाया।

श्री स्वामी जी का हृदय असीम करुणा और प्रेम से परिपूर्ण था। मानव-मात्र की बृहत् रूप में सेवा करने के लिए उन्होंने सन् १९३६ में दिव्य जीवन संघ की स्थापना की। वे गंगा जी के किनारें एक छोटे से कुटीर में निवास करते थे और इस जगत के कल्याण के लिए उन्होंने बहुत से काम किये। उन्होंने लगभग २०० संन्यासियों और ब्रह्मचारियों को दीक्षा दी। स्वामी जी की कृपा और दया तथा आशीर्वाद से हजारों को नया जीवन मिला, उन्हें नयी आशा मिली तथा अवर्णनीय आनन्द तथा शान्ति की प्राप्ति हुई।

१८ फरवरी १९४१ के अविस्मरणीय दिवस पर स्वामी जी ने दिव्य जीवन संघ के कार्य से अवकाश ले लिया। वे पुनः हिमालय के घने जंगलों अथवा गंगा नदी के किनारे के समतल प्रदेश में एकान्त में चले गये हैं। स्वामी जी ने लगभग २ बजे मध्यान्ह में मात्र एक वस्त्र में तथा बिना एक भी पैसा साथ में लिए आनन्द कुटीर

त्याग दिया। यदि सौभाग्य से किसी की भी इन महान् संत से भेंट हो तो हमारा उनसे विनम्र निवेदन है कि वे उन्हें परेशान न करें। लेकिन यदि लोग उनसे मिलें तो उनके दर्शन करें और यथा सम्भव उनकी देखभाल करें।

स्वामी जी ने आध्यात्मिक पथ पर कार्य करने के लिए हमें निश्चित दिशायें दीं, और हमारा दीर्घकाल तक पथ-प्रदर्शन किया और अब वे देखना चाहते हैं कि हम हमारा दायित्व किस प्रकार निभाते हैं। निस्सन्देह यह एक कड़ी परीक्षा की घड़ी है, विशेष रूप से तब जबकि उनके शिष्य इस मार्ग में एकदम युवा ही है। हमें विश्वास है कि यदि हम उनकी इच्छा को पूर्ण करने का सच्चे मन से प्रयास करेंगे तो स्वामी जी की कृपा से हम इस कठोर परीक्षा में अवश्य ही सफल होंगे। श्री स्वामी जी हम सभी से अत्यधिक स्नेह करते हैं। वे सदा हमारे साथ हैं। वे हमें अपने दर्शनों से वंचित नहीं रख सकते। वे किसी भी प्रकार किसी को कष्ट नहीं पहुँचा सकते। जब गुरुदेव हमसे सन्तुष्ट होंगे तो हमें विश्वास है वे हमें अवश्य ही पुनः दर्शन देंगे और जब तक हम लक्ष्य तक नहीं पहुँच जाते वे हमारा आध्यात्मिक पथ में पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। लेकिन हमें उनके उपदेशों का परिपालन करना होगा।

सभी स्थानों पर दिव्य जीवन संघ के सदस्यों तथा श्री स्वामी जी के शिष्यों और आनन्द कुटीर में रहने वालों द्वारा स्वामी जी के उत्तम स्वास्थ्य तथा शीघ्र वापसी हेतु विशेष प्रार्थनायें की जा रही हैं। स्वामी जी के जन्म दिवस ८ सितम्बर को हाने वाले कार्यक्रमों में हमें आशा है स्वामी जी महाराज दर्शन देंगे तथा सभी भक्तों को आशीर्वाद प्रदान करेंगे।

निम्नलिखित विज्ञप्ति २१ फरवरी को प्रकाशित हुई थी। इस परिशिष्ट में स्वामी जी के नाम एक खुला पत्र था, जिसके अन्त में उनके प्रशंसकों, संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, शिष्यों तथा दिव्य जीवन संघ के सदस्यों के हस्ताक्षर थे। इसका सारांश नीचे दिया जा रहा है :

स्वामी जी, आपके पवित्र हाथों से लिखा गया अन्तिम पत्र सारे संसार के लिए आशीर्वाद स्वरूप है, क्योंकि इसमें आपने हमें अनुकरण करने के लिए निश्चित निर्देश दिये हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम आपके द्वारा बताये गये उपदेशों का पालन करेंगे। आपकी संकल्पशक्ति दृढ़ और शक्तिशाली है। आपकी

कृपा और आशीर्वाद चमत्कार करते हैं। हम सभी की आपके चरण-कमलों में पूर्ण आस्था है... आपने हम सभी का पथ-प्रदर्शन किया। आपके जीवन का एक-एक क्षण हमें कुछ न कुछ शिक्षा देता है। सारे संसार की सम्पत्ति आपके चरणों में है। यदि हम आपके एकान्तवास को सुविधाजनक बना सकें तो यह संसार कितनी अधिक प्रसन्नता का अनुभव करेगा। आनन्द कुटीर के आश्रमवासियों की स्थिति करुणा के योग्य है। कुछ ने भोजन त्याग दिया है, कुछ की आँखों से नींद उड़ गई है और कुछ आपके दर्शन की आशा में जंगल में भटक रहे हैं। गुरुदेव, यदि एक पत्र द्वारा एक शब्द भी मिल जाये तो वह करोड़ों को शान्ति तथा सुख प्रदान करेगा।

इसके पश्चात् जो गुरुदेव के हृदय को सर्वाधिक प्रिय था, उसकी सूचना दी गई थी :–

''गीता का छठवाँ भाग, इन्सपायरिंग सॉंग्स, फिलसोफी ऑन ॐ, मांडूक्य उपनिषद्, इन्सापायरिंग मैसेज फॉर ऑल आदि सभी पुस्तकें तैयार हैं और इनकी प्रथम प्रतियाँ विमोचन हेतु आपके आशीर्वाद की प्रतीक्षा कर रही हैं। हमें आपके नवीनतम लेखन के शीघ्र प्रकाशन हेतु सभी जगहों से सहायता मिलने का पूर्ण विश्वास है और एक-एक करके उन सभी को प्रकाशित कर दिया जायेगा।''

''आपके ५४वें जन्म दिवस पर भक्तों के अनुदान से खरीदा गया मूवी कैमरा बड़ा भाग्यशाली है, लेकिन हम अपनी अज्ञानता के कारण इस कैमरे का उचित प्रकार से प्रयोग नहीं कर सके। अभी हमने आपकी आनन्द कुटीर की गतिविधियों की मात्र ३०० फीट रिकार्डिंग ही की है। यदि हम कुछ और रिकार्डिंग कर लेते तो जब भी हम आपके दर्शन करना चाहते तो कम-से-कम परदे पर ही सही, आपके दर्शन कर पाते। अतः आपसे हमारा विनम्र निवेदन है कि कृपया हमें दर्शन दें ताकि हम आने वाली पीढ़ियों के लिए आपके प्रेरणाप्रद क्रियाकलापों की रिकार्डिंग कर सकें।''

उन दिनों जब स्वामी जी दोपहर में विश्राम करते थे तो कोई भी उन्हें परेशान नहीं करता था। स्वामी जी इसी समय आश्रम से चले गये। आश्रम से जाने के पहले वे पोस्ट ऑफिस में गये और दो रुपये माँगे। उनके पास एक धोती थी जो उन्होंने कमर में लपेट रखी थी और एक अंगोछा था। दो रुपये का सिक्का लेकर वे एक

बालक की भाँति उससे थोड़ी देर खेलते रहे। ऋषिकेश के चुंगी-नाके के पास मार्ग में उन्हें श्री स्वामी अभ्यानन्द जी तथा कुछ अन्य महात्मा मिले। उन्होंने स्वामी जी को प्रणाम किया पर स्वामी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। शायद वे मौन में थे। इसके बाद वे हरिद्वार गये, जहाँ उन्होंने सार्वजनिक स्थान पर रात्रि व्यतीत की। फिर वे नदी के किनारे-किनारे ज्वालापुर होते हुए पैदल-पैदल चलते गये। करनाल के पास एक गाँव जगदीशपुर में स्वामी जी ने एक पेड़ के नीचे विश्राम किया। स्वामी जी के अद्भुत व्यक्तित्व ने गाँव वालों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। उनमें से एक व्यक्ति ने उनकी सेवा की। इस व्यक्ति का गन्ने का खेत था और उसने स्वामी जी की आवभगत भोजन और गन्ने के रस से की। उसे लगा कि स्वामी जी अवश्य ही कोई बड़े महात्मा हैं। इसलिये वह स्वामी जी के पास गया और उनकी सेवा बड़ी भक्ति तथा आस्था से की।

इस समय ऋषिकेश, हरिद्वार और आसपास की सारी जगहों पर सबको मालूम हो गया कि स्वामी जी कहीं चले गये हैं। स्वामी जी की खोज में गये स्वामी जी लोगों में से एक न स्वामी जी को उस कृषक के घर पर देखा। उन्होंने स्वामी जी से विनती की "कृपा करें आप आश्रम वापस चलें।" अब उस कृषक को पता चला कि स्वामी जी एक महान् संत हैं और उसे ऐसे महान् संत की सेवा का अवसर मिला। वह स्वामी जी का बड़ा भक्त हो गया तथा इस महान् दिवस की स्मृति में वह प्रति वर्ष दो ड्रम भरकर गन्ने का रस आश्रम लेकर आता था।

जिस शिष्य ने स्वामी जी को खोजा था उसके साथ स्वामी जी २४ फरवरी को सुबह १० बजे आश्रम पहुँचे। वापस आकर स्वामी जी ने स्वामी परमानन्द जी को जो उस समय मद्रास में थे, निम्न पत्र लिखा : "आपकी तथा अन्य लोगों की इच्छाशक्ति मुझे वापस खींच लाई। आपको ही सब प्रबन्ध करना होगा। मेरा तो मात्र नाम ही रहेगा। भगवान् शिव की लीला अत्यन्त गूढ़ है। उनकी कृपा आप सब पर सदा बनी रहे। ...हमें सदा किसी भी परिस्थिति के लिए तैयार रहना चाहिये। आप साहसी, आनन्दित तथा सन्तुष्ट रहें।"

एक शक्तिशाली तथा महत्वपूर्ण संस्था के निर्माण मात्र से ही अभियान आगे नहीं बढ़ सकता वरन् इसे संत के ऐसे शिष्यों की आवश्यकता होती है जो

स्वावलम्बी हो, निपुण हो तथा संत प्रकृति के हों, तथा इस श्रेष्ठ कार्य के लिए जिनकी क्षमता का परीक्षण किया जा चुका हो और जो इस महान् लक्ष्य के लिए अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं का भी परित्याग कर दें और यदि विषम परिस्थितियाँ भी आ जायें तो वे अपने कार्य को जारी रख सकें।

ऐसी परीक्षा की घड़ी सन् १९४२ में आयी जब स्वामी श्री परमानन्द जी से आश्रम छोड़ने के लिए कहा गया। जब ३ अक्तूबर को जब उन्होंने आश्रम छोड़ा तो स्वामी जी उन्हें परिचय हेतु एक सामान्य पत्र दिया जिसमें लिखा था "स्वामी परमानन्द जी मेरे शिष्य हैं। वे मेरे साथ वर्षों तक रहे। वर्षों से बहुत अधिक काम करने के कारण वे अब विश्राम ले रहे हैं।" इसके द्वारा दिव्य जीवन के मिशन के विस्तार हेतु मार्ग प्रशस्त हुआ।

स्वामी परमानन्द जी जहाँ भी गये उन्होंने स्वामी जी की कीर्ति और उपदेशों को फैलाया। उन्होंने स्वामी जी की कई पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद किया तथा उन्हें प्रकाशित किया और इस प्रकार उन्होंने बाद में मद्रास में एक गत्यात्मक दिव्य जीवन संघ केन्द्र स्थापित करने के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इस उदाहरण का अनुकरण स्वामी जी के अन्य संन्यासी शिष्यों द्वारा किया गया। ये भारत और विदेश के भिन्न-भिन्न भागों में गये और वहाँ स्वामी जी के मिशन के विस्तार हेतु आश्रमों और संस्थानों की स्थापना की। स्वामी परमानन्द जी ने भी दिव्य जीवन संघ की विभिन्न शाखाओं में जाकर उनमें नवजीवन का संचार किया। लोगों तथा स्वयं स्वामी जी ने उनकी प्रशंसा की। स्वामी जी ने ३१ अक्तूबर सन् १९५१ को लिखा "आप जिन शाखाओं में गये, वहाँ से मुझे अनेकों पत्र मिल रहे हैं जिनके द्वारा आपके द्वारा किये गये श्रेष्ठ कार्यों और आपके द्वारा दी गई प्रेरणा की सूचना मुझे मिली, मैं भी आपकी इस कार्य हेतु प्रशंसा करता हूँ। ऐसा काम आज तक किसी ने भी नहीं किया। यह अपूर्व है।

स्वामी जी अर्थ के प्रबन्ध की चिन्ता बिल्कुल नहीं करते थे। वे जानते थे यदि काम करने वालों का ध्यान रखा जाये, उनके भीतर सेवा के प्रति उत्साह बना रहे तो काम अवश्य ही प्रभावकारी होगा और लोगों से दान के रूप में प्रचुर सहयोग प्राप्त होगा। २ अक्तूबर १९४९ को एक बार स्वामी जी ने कहा था— "आपको

सर्वप्रथम अपने शरीर का ध्यान रखना है। यदि आप भगवान् के इस साधन का ध्यान नहीं रखते हैं तो इसका अर्थ यह है कि आप भगवान् की पूजा सही प्रकार से नहीं करते। भगवान् की सबसे बड़ी पूजा यह है कि भगवान् की इच्छापूर्ति सही रीति से करने के लिए इस शरीर को स्वस्थ रखो।''

स्वामी जी के भीतर आशावादिता अद्भुत थी। जब आश्रम में मात्र १२ अन्तेवासी थे तो सभी रसोईघर में ही भोजन लेते थे। स्वामी जी अक्सर रसोईघर में आकर अपनी आँखों में अपूर्व चमक लिये कहते—''एक दिन ऐसा आयेगा जब हमारी भोजन की पंक्ति ऋषिकेश से लक्ष्मण झूले तक लम्बी होगी।'' और यह कोई हंसी में कही गई बात नहीं थी। हालाँकि हम १९४९ तक आश्रम में एक पंक्ति में बैठकर ही भोजन किया करते थे। स्वामी जी ने २ अक्तूबर १९४९ को कहा था—''धन आयेगा, धन अवश्य ही आयेगा। बहुत शीघ्र ही यहाँ करोड़ों रुपये होंगे। जिन्हें गिनने में तुम असमर्थ रहोगे। मेरा विश्वास करो ऐसा समय अवश्य आयेगा और इस हेतु आपका सच्चा सहयोग आपके द्वारा किये जाने वाला कठोर श्रम होगा।'' यह स्वामी जी के आत्मविश्वास की प्रतिध्वनि थी।

स्वामी जी के द्वारा कही हुई बात कभी असत्य नहीं हुई। सन् १९५० में सम्पूर्ण भारतं यात्रा के समय इतना धन आया कि सच में उसे गिनना कठिन था।

उपरोक्त बातों से यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिये कि स्वामी जी का लक्ष्य धन कमाना था। नहीं, स्वामी जी ने अपने जीवन में धन अर्जित करने हेतु कभी प्रयास नहीं किया। उनका लक्ष्य स्वयं उनके शब्दों में नीचे वर्णित है।

''मैंने आश्रम बनाने के बारे में कभी भी नहीं सोचा था। लेकिन जब विद्यार्थियों तथा भक्तों की भीड़ आध्यात्मिक पथ में निर्देशन हेतु मेरे पास आने लगी तो मैंने उन्हें इस संसार के लिए उपयोगी बनाने में सहायता के दृष्टिकोण से उनके विकास तथा कल्याण के लिए कुछ कार्य क्षेत्रों का सृजन किया। मैंने उन्हें अध्ययन तथा साधना हेतु प्रोत्साहित किया। मेरे प्रशंसकों से मेरे व्यक्तिगत उपयोग के लिए जो धन प्राप्त होता था उसके द्वारा मैं उनके निवास तथा अन्य आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था करता था। इस प्रकार कुछ समय पश्चात् मैंने अपने चारों ओर उपयुक्त वातावरण सहित एक बड़ा आश्रम और एक आदर्श संस्था पाई।

मैं कभी भी योजनायें नहीं बनाता, न ही कल्पनाएँ करता हूँ। मैं कभी धन प्राप्त करने के लिए महान् व्यक्तियों अथवा महाराजाओं के पास नहीं जाता। इस संसार ने सदा ही सही दिशा में की गई सेवाओं की प्रशंसा की है। दैवी स्रोत से मुझे यदि थोड़ी-सी भी सहायता मिली तो मैंने इसके एक-एक पैसे का प्रयोग इस संसार के कल्याण के लिए अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया है। आश्रम में प्रतिवर्ष कई सुन्दर भवनों का निर्माण होता है, किन्तु फिर भी जगह की कमी बनी रहती है। प्रत्येक स्थिति में कार्य का अच्छा विकास हो रहा है। कई बार भक्तों ने मुझे धन एकत्र करने के दृष्टिकोण से प्रचार यात्राओं हेतु दबाव डाला, किन्तु यह मेरे लिए असम्भव था। मुझे तो सबकी सेवा करने और दान देने में आनन्द आता है। सन् १९४० में पंजाब में एक लम्बी प्रचार यात्रा हेतु आयोजन किये गये। मैंने वह कार्यक्रम निरस्त कर दिया और तुरन्त निम्न तार भेजा ''दिव्य जीवन संघ उन्नति करे या नहीं, मुझे चिन्ता नहीं है। यदि भगवान् की कृपा हो और यदि हम अपनी साधना और सेवा सही तरीके तथा आन्तरिक भाव तथा आस्था के साथ करें तो दैवी स्रोत से सहायता स्वयं आने हेतु बाध्य होगी। मुझे गंगा किनारे अपने छोटे से कुटीर में रहकर जितना अधिक-से-अधिक सम्भव हो काम करने दो। जब मधु यहाँ है तो मधुमक्खियाँ स्वयं ही आयेंगी। धन की आकांक्षा को निष्ठुरतापूर्वक त्याग दें।''

संस्था की रूपरेखा

स्वामी जी ने १९ फरवरी १९४९ को संन्यास के महत्त्व तथा संन्यासियों के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों पर एक प्रवचन दिया। स्वामी जी का यह विचार था कि आश्रम-जीवन का मुख्य लाभ यह है कि यह संन्यासियों को सांसारिक प्रभावों के आक्रमणों से संरक्षण प्रदान करता है। इस कारण स्वामी जी को संस्था चलाने की प्रेरणा मिली।

आश्रम के भीतर किसी को भी स्वयं को अलग-थलग अनुभव नहीं करना चाहिये। प्रत्येक के भीतर बहुत सी योग्यतायें हैं। सभी के भीतर कोई-न-कोई बड़ा काम करने की क्षमता है। भगवान् की इच्छा स्वयं उनका पथ-प्रदर्शन करती है, परन्तु कठिनाई यह है कि जब कोई अपना घर, अपनी पत्नी और बच्चों, माता-पिता और सम्बन्धियों, अपनी सम्पत्ति तथा पद को त्यागता है, तो वह ऐसा अनुभव

करता है कि वह अब स्वतन्त्र रहने हेतु अधिकृत हो गया है और वह अपने ऊपर किसी का भी स्वामित्व अस्वीकार कर देता है। हालाँकि यह बात प्रशंसनीय है लेकिन साधक को इस बात की सावधानी रखना आवश्यक है कि यह स्वतन्त्रता उद्दण्डता में नं परिवर्तित हो जाये। जो लोग संस्था चलाते हैं उन्हें सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि उन्हें किसी की भावना को आहत नहीं करना चाहिये, न ही उसे ऐसा अनुभव होने देना चाहिये कि उसे नीचा दिखाया जा रहा है। प्रत्येक विभाग जब किसी विशेष व्यक्ति को सौंपा जाये तो उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिये।

परन्तु इसमें भी थोड़ी कठिनाई है, वह यह कि इस कार्य में भी थोड़ा ध्यान देने की आवश्यकता है, जैसे, यदि एक आयुर्वेदिक फार्मेसी तथा प्रकाशन विभाग है जहाँ बिक्री हेतु सामग्री संग्रहित रहती है, यदि इनको पूर्णतया उन्हें सौंप दिया जाये, जो इन्हें सम्भालते हैं, तो माया उन पर अपना जाल फैला लेगी तथा उन्हें चोरी जैसा कुकर्म करने को विवश करेगी और इस प्रकार वे स्वयं अपना और संस्था का भी विनाश करेंगे। व्यवस्था में लापरवाही नहीं होनी चाहिये और साथ ही इनका निरीक्षण भी होता रहना चाहिये।

इस निरीक्षण से हमारे भीतर यह भावना नहीं आनी चाहिये कि हम पर सन्देह किया जा रहा है। यदि विभिन्न विभागों के प्रमुख यह अनुभव करेंगे कि उन पर सन्देह किया जा रहा है तो उनका उत्साह और रुचि समाप्त हो जायेगी। हमें बस थोड़ी आँख खुली रखनी है। यह संस्था के लिए भी लाभप्रद होगा तथा यह व्यक्ति को सही मार्ग से भटकने से भी बचायेगा।

आरम्भिक दिनों में स्वामी जी ने एक बार कहा—"संन्यास कोई सरल बात नहीं है। मैं सोचता हूँ जो बातें सांसारिक जीवन में होती हैं वह संन्यास जीवन में भी होती हैं। लड़ाई, झगड़े, वासना, लालच आदि सभी यहाँ भी हैं। कई संन्यासी संन्यास लेने के बाद वापस गृहस्थ जीवन में चले जाते हैं। वास्तव में उन्होंने संन्यास-योग्य बनने से पूर्व ही संन्यास ले लिया है। इनमें से कुछ पुनः संन्यास जीवन में वापस आ जाते हैं और बहुत अच्छे साधु बन जाते हैं। पाप तो भीतर रहता ही है लेकिन हमें इसके उन्मूलन हेतु सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

प्रत्येक आश्रमवासी को इसे अपना घर समझना चाहिये और जो आपकी जाति, पंथ, समाज या समूह से सम्बन्धित न हो उसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। उसे ऐसा अनुभव कदापि नहीं होने देना चाहिये कि वह पंजाबी है इसलिये यहाँ के मद्रासी मुझे उपेक्षित रखेंगे, बल्कि उसे ऐसा लगना चाहिये कि यहाँ पर उसका उस स्थान से भी अधिक ध्यान रखा जाएगा जहाँ उसके अपने लोगों की संख्या अधिक होती। आश्रम में एक ऐसा प्रमुख भी होना चाहिये जो कभी-कभी उनसे मिले, उनके झगड़ों का निबटारा करे और उनकी शिकायतों को भी सुने तथा उन सभी मतभेदों को दूर करें जो मानव-मानव के मध्य वैमनस्यता पैदा करते हैं।

आश्रम के पुराने कार्यकर्ता गणों (मेरा आशय उन दोनों से है जो वृद्ध हैं तथा जिन्होंने संस्था की लम्बे समय तक सेवा की है) का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये। यदि कोई तीन-चार वर्षों तक भी संस्था की अच्छी तरह से सेवा करता है और हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होता है तो संस्था को उनकी आवश्यकताओं का उनके सम्पूर्ण जीवनकाल तक ध्यान रखना चाहिये। उनसे किसी प्रकार का अधिक कार्य नहीं करवाना चाहिये। वे स्वेच्छा से समाज की जो भी सेवा करना चाहें, करने देनी चाहिये। उन्हें ध्यान तथा साधना करने देना चाहिये।

अभी हम ऐसे लोगों के लिए उचित व्यवस्था नहीं कर पा रहे हैं, जो ध्यान तथा साधना में अपना समय लगाना चाहते हैं। स्वामी कृष्णानन्द जी, अच्युतानन्द जी और उनके जैसे अन्य लोगों को तत्काल कुटीर दिये जाने चाहिये ताकि वे एकान्त में ध्यानाभ्यास कर सकें। स्वामी प्रेमानन्द जी को भी पहाड़ी के ऊपर कहीं कमरा दिया जाना चाहिये। उन्होंने बहुत अधिक काम किया है। उन्हें तुरन्त विश्राम की आवश्यकता है। उनकी आवश्यकता की हर वस्तु दूध, फल, बिस्किट, कॉफी, चाय आदि बिना कहे उनके कुटीर में पहुँचा दी जानी चाहिये।

आपके भीतर भीरुता नहीं होनी चाहिये। कुछ लोगों की प्रकृति षडयन्त्र रचने की होती है। वे समूह बना लेते हैं और परेशान करते हैं। उनके साथ आपको मृदुभाषी किन्तु सख्त होना चाहिये। ऐसे लोगों से कहिए—"ॐ नमो नारायणाय! स्वामी जी महाराज आप आश्रम छोड़ सकते हैं।" ऐसे विश्वासघाती व्यक्तियों को वातावरण में जहर नहीं घोलने देना चाहिये, न ही उन्हें आन्तरिक कलह पैदा करने देना चाहिये।

ये वे विचार हैं जो मेरे मन में आये। इन्हें अपने मन में रखें। हमारी संस्था हमारी आशाओं से भी अधिक सारे संसार में फैल गई है। अतः हमें कुछ सिद्धांतों पर दृढ़ रहना चाहिये। सारा संसार पथ-प्रदर्शन के लिए हमारी ओर देख रहा है। यह आवश्यक है कि संस्था की मुख्य धुरी दृढ़ हो और सही दिशा में चल रही हो।

मैं जानता हूँ कि यदि हम सभी परिदृश्य से हट जाएँ तो भी भगवान् की इच्छा अन्य साधनों से कार्य करेगी ही। किन्तु इससे हमें सन्तुष्टि नहीं मिलेगी। हमें अपने काम के लिए अधिकतम प्रयास करने चाहिये।

स्वामी जी द्वारा विद्यार्थियों को व्यवहारिक प्रशिक्षण

यहाँ पर दिव्य जीवन संघ संस्था का प्रथम वार्षिक प्रतिवेदन दिया जा रहा है जो स्वामी जी द्वारा वहाँ रहने वाले विद्यार्थियों को प्रशिक्षण प्रदान करने की विधियों का रुचिपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करता है।

सन् १९३६ में इस संसार से संन्यास लेकर निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करने वाले सात पूर्णकालिक साधकों ने संस्था में प्रवेश लिया। इनमें से एक को स्वामी शिवानन्द जी ने अपने प्रत्यक्ष निर्देशन में योग की सभी शाखाओं में दक्ष किया। यहाँ पर जिज्ञासुओं को बहुत से साधुओं, संन्यासियों, रोगियों तथा अन्य लोगों की सेवा द्वारा हृदय को निर्मल करने के बड़े अवसर थे। यह करुणा, विश्वप्रेम, सहनशीलता, सामंजस्य, आत्मभाव तथा अन्य सद्गुणों के विकास के लिए अद्भुत क्षेत्र था। युवकों को सेवा तथा ध्यान को संयुक्त करना चाहिये, निष्काम्य सेवा का व्यवहारिक ज्ञान सभी क्षेत्रों के प्रत्येक साधक की अनिवार्य योग्यता है। कभी-कभी जब वह एकान्त में अकेला रहता है तो उसे भोजन पकाना, सफाई और अन्य काम भी करने पड़ते हैं। वे जिज्ञासु जो स्वामी जी के पास कुण्डलिनी योग के अभ्यास तथा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के लिए आते थे और उन्हें रोगियों और वृद्धजनों की सेवा के लिए भेजा जाता था, तो वे आश्चर्यचकित रह जाते थे। प्रारम्भ में तो वे मुँह बिगाड़ते, लेकिन बाद में वे सेवा के महत्त्व को समझ जाते।

क्योंकि जब हृदय निर्मल होता है तभी कुण्डलिनी जागरण की क्रियाओं को करने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है, यही इसका रहस्य था। स्वामी जी के पास जिज्ञासु पाठ सीखते, आसन, मुद्रा और प्राणायाम, बन्ध तथा ध्यान का अभ्यास करते। श्री स्वामी जी उनकी शंकाओं का समाधान करते तथा योग, वेदान्त तथा दर्शन के जटिल बिन्दुओं की व्याख्या करते। वे कभी भी अधिक बातें नहीं करते थे। वे थोड़े से वाक्यों में सारभूत ज्ञान दे देते थे। जो भी व्यक्ति स्वामी जी के लेखन की ६ महीनों तक नकल करता, वह योग, भक्ति और वेदान्त के मूल बिन्दुओं को स्पष्ट रूप

से समझने लगता। वह दर्शन सम्बन्धी पुस्तकों को गहराई से समझने योग्य हो जाता। श्री स्वामी जी जिज्ञासु को उसके स्वभाव, रुचि और योग्यता के अनुसार प्रशिक्षित करते थे। जैसा कि कई लोग बताते हैं कि स्वामी जी सभी प्रकार के रोगियों को एक-ही दवा नहीं देते थे, वे वेदान्त के विद्यार्थी को वेदान्त के पाठ देते थे, राजयोग के विद्यार्थी को राजयोग के पाठ देते थे तथा भक्त को भक्ति मार्ग में प्रशिक्षित करते थे। जो ध्यान में उच्च थे, उन्हें कोई काम नहीं दिया जाता था। वे मात्र गहन ध्यानाभ्यास करते थे। हर जिज्ञासु को प्राथमिक चिकित्सा, रोगियों की परिचर्या, औषधियों के निर्माण और वितरण हेतु प्रशिक्षित किया जाता था।

प्रातः ४ बजे राम आश्रम के बरामदे में सामूहिक ध्यान होता था और अन्त में स्वामी जी गीता तथा उपनिषद् पर थोड़ा प्रवचन करते थे और व्यवहारिक ध्यान और साधना के बारे में बताते थे। बाहरी लोग भी इस कार्यक्रम में सम्मिलित होते थे।

विद्यार्थियों को विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर लेख लिखने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता था। अन्य जगहों पर प्रचार हेतु उन्हें आध्यात्मिक कक्षाएँ संचालित करने तथा व्याख्यान देने हेतु प्रशिक्षण दिया जाता था।

द्वितीय वार्षिक प्रतिवेदन में जिह्वा पर नियन्त्रण के बारे में बताया गया था—

श्री स्वामी जी आनन्द कुटीर के सदस्यों को प्रत्येक रविवार को नमक रहित भोजन तथा प्रत्येक एकादशी पर फलाहार का निर्देश देते थे। ऐसा करने से जिह्वा पर नियन्त्रण में सहायता मिलती है। इस प्रतिवेदन में स्वामी जी ने अपने शिष्यों को जिस प्रकार प्रशिक्षित किया, उसकी झलक मिलती है।

"प्रातःकाल (४ बजे से ६ बजे तक) गहन ध्यान हेतु अत्यन्त अनुकूल समय है। इस समय वातावरण सात्विक तरंगों से आवेशित रहता है। इस समय मन बिना किसी विशेष प्रयास के आश्चर्यजनक रूप से एकाग्र हो जाता है।

मैं अपने कुटीर से ॐ, ॐ, ॐ, श्याम, श्याम, श्याम, राधेश्याम, राधेश्याम, राधेश्याम का जोर-जोर से उच्चारण करता था जिससे मेरे विद्यार्थी प्रातःकाल की प्रार्थना तथा जप हेतु जाग जाते थे। लेकिन आलसी विद्यार्थियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। मैं उनके लिए सूर्यास्त पूर्व भोजन की व्यवस्था करता था,

जिससे उन्हें प्रातःकाल शीघ्र जागरण में सहायता मिलती थी। जो रात में खूब पेट भर कर भोजन करते हैं, मात्र उन्हें ही सुबह जागने के कष्ट होता है।

''साधना के प्रारम्भ में यदि जिज्ञासु कमरे में अकेले ध्यान करते हैं तो सुबह जल्दी उठने के बाद वे निद्रालु हो जाते हैं और ध्यान का सारा समय वे बैठे-बैठे सोने में गँवा देते हैं। इससे मुझे ब्रह्ममुहूर्त के समय सामूहिक ध्यान कराने का विचार आया। एक विद्यार्थी हर-एक कुटीर के आगे घण्टी बजाता और सभी जिज्ञासुओं को सामूहिक ध्यान हेतु एक स्थान पर एकत्रित करता। कुछ वर्षों तक मैं नित्य वहाँ सामूहिक ध्यान कराने गया।

''इस कार्यक्रम का प्रारम्भ भगवान् गणेश जी की स्तुति, गुरु स्तोत्र तथा महामन्त्र कीर्तन से होता। एक विद्यार्थी गीता का एक अध्याय पढ़ता और एक श्लोक के अर्थ की व्याख्या करता। अन्य विद्यार्थी ध्यान और एकाग्रता पर संक्षिप्त में थोड़े निर्देश देता। अन्त में मैं आधा घण्टा शीघ्र आध्यात्मिक विकास, मन की दुष्ट प्रवृत्तियों के उन्मूलन तथा उच्छ्रृंखल इन्द्रियों पर नियन्त्रण हेतु विभिन्न उपाय बताता। मैं नैतिकपूर्णता पर सबसे अधिक बल देता था। सामूहिक शान्ति पाठ के साथ कार्यक्रम का समापन हो जाता था। इसके द्वारा विद्यार्थियों के भीतर सम्पूर्ण दिवस दैवी चेतना बनी रहती थी।

कुछ विद्यार्थी ब्रह्मानन्द आश्रम में रहते थे जो मेरे कुटीर से बहुत दूर था। कई बार उन्हें देखने मैं प्रातः ४ बजे अचानक पहुँच जाता था। मैं वहाँ जाकर कई बार ॐ, ॐ कहता और उन्हें प्रातःकालीन प्रार्थना हेतु जगा देता था। स्वामी परमानन्द जी ने एक-बार की घटना बताई, जो इसका उदाहरण है—

''सन् १९३४ में मैं ब्रह्मानन्द आश्रम में रहता था। यह शीत ऋतु का मध्यकाल था। कड़कड़ाती ठण्ड पड़ रही थी और ऐसे समय में प्रातः ४ बजे स्वामी जी मुझे जगाने के लिए इतनी दूर तक पैदल-पैदल आए। (यह दूरी कम-से-कम आधा मील होगी)। मेरे कमरे की खिड़की में से झांककर उन्होंने दो बार कहा महाराज ॐ, महाराज ॐ, मैं झुंझला उठा और मैंने कहा—''महाराज आप क्या चाहते हैं?'' पुनः महाराज ॐ...। मैं पहचान गया, यह तो स्वामी जी की आवाज है। मैं झटके से उठ बैठा। फिर स्वामी जी बड़े ही प्रेम से बोले—''महाराज, आप सो

रहे हैं, यह ब्रह्ममुहूर्त है।'' मैंने उन्हें बताया कल मैं देर रात तक आश्रम के अत्यावश्यक कार्य में व्यस्त था। स्वामी जी ने कहा कि जब एक सोते हुए व्यक्ति की नींद में विघ्न डाला जाता है तो वह क्रोधित हो जाता है, लेकिन आपने अत्यन्त मृदुलता और मधुरता से उत्तर दिया। यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

स्वामी जी ने आगे लिखा है—

''मैं सभी विद्यार्थियों को सामूहिक ध्यान हेतु आने के लिए नहीं कहता था। उनमें से कुछ को कुटीर में स्वयं की साधना हेतु अनुमति थी। इस प्रकार मैं अपना सम्पूर्ण ध्यान अपने विद्यार्थियों के आध्यात्मिक उत्थान हेतु लगाता था। उन दिनों सामूहिक प्रार्थना तथा ध्यान में भाग लेने वाले विद्यार्थी आज भी बताते हैं कि वे मेरे द्वारा साधना पर दिए जाने वाले संक्षिप्त प्रवचनों से किस प्रकार प्रेरित होते थे। संध्या के समय भी मैं ३ से ४ बजे के बीच कक्षा लेता था। मैं किसी एक विद्यार्थी को मेरी किसी पुस्तक का एक अध्याय पढ़ने के लिए कहता। अगले दिन मैं महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रश्न पूछता था। मैंने अपने विद्यार्थियों को कई प्रकार से प्रशिक्षण दिया। वे सभी वेद मन्त्रों का पाठ तथा कीर्तन का संचालन कर सकते थे और संक्षिप्त प्रवचन भी दे सकते थे। मैं एक विद्यार्थी को प्रश्न पूछने के लिए कहता और अन्य उसका उत्तर देते थे। संध्याकालीन कक्षाओं में मैं लिखित जप के बारे में बताता देता था। प्रातःकाल त्राटक और अन्य योगासन के बारे में बताता था। दिन के समय वे सभी योग और दर्शन पर लेख तैयार करते तथा स्वयं के अनुभवों के बारे में लिखते।

प्रातः ४ बजे से लगने वाली समस्त कक्षाओं में स्वामी जी रहते थे। वे पहले मन्दिर जाते और फिर ध्यान कक्षा के लिए भजन-कक्ष में जाते थे। यद्यपि वे सभी विद्यार्थियों से आयु में बहुत बड़े थे और अधिक आसन करना उनके लिए सम्भव नहीं था, फिर भी वे धोती ऊपर बाँधकर आसन की कक्षा में भाग लेते थे। हालाँकि न तो स्वामी जी आसन की कक्षा का संचालन करते थे, न ही उनका वहाँ जाना आवश्यक ही था, परन्तु फिर भी वे वहाँ जाते अवश्य थे। शीत ऋतु में जब वर्षा भी होती तो भयंकर ठण्ड पड़ती थी और हमारे पास हीटर भी नहीं थे। स्वामी जी का कमरा ठीक गंगा जी के किनारे था, जहाँ प्रातः नौ बजे तक ठण्डी हवाएँ चलती थीं, परन्तु फिर भी स्वामी जी अपना ओवर कोट पहन लेते और पगड़ी बाँध लेते तथा

एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ में कुछ झोले लिए अपने कमरे से भजन-कक्ष की ओर चल पड़ते थे। कभी-कभी जब बहुत वर्षा हो रही होती तो वहाँ कोई भी नहीं रहता, क्योंकि सभी सोचते इतनी तेज वर्षा हो रही है और कड़ाके की ठण्ड है, इसलिये स्वामी जी नहीं आएँगे। स्वामी जी आकर भजन-कक्ष में सोये लोगों को जगाते। (मात्र इसी समय वे ४.३० बजे के पहले किसी को भी नींद में से उठाते नहीं थे)। इसके बाद वे किसी भी एक व्यक्ति को सभी को उठाकर कक्ष में लेकर आने के लिए कहते थे। इससे मालूम पड़ता है कि वे आरम्भ में कितने सख्त थे, लेकिन बाद में वे इतनी चिन्ता नहीं करते थे।

शिष्य की परिभाषा

जून १९३८ की दिव्य जीवन पत्रिका में एक रुचिकर चेतावनी थी जो स्वामी जी के शिष्य के बारे में एक विशिष्ट परिभाषा देती थी। वह इस प्रकार है—

चेतावनी : कुछ संन्यासी ऋषिकेश की एक दुकान में गए। वहाँ से उन्होंने मेरे नाम पर वान हान्टन का कोको, एक चाकू और एक छाता लिया और कहा वे मेरे शिष्य हैं। कृपया ऐसे किसी संन्यासी को धन न दें जो आपसे कहे कि वह मेरा शिष्य है। मेरे शिष्य की यही पहचान है कि वह कभी धन की माँग नहीं करेगा। आप उसे मात्र एक समय का भोजन दे सकते हैं।

स्वामी शिवानन्द मार्च १९४७ की दिव्य जीवन पत्रिका में स्वामी जी ने अपने आदर्श शिष्य का चित्र खींचा है।

शिवा के शिष्य में दैवी गुण होंगे। वह उदार, सज्जन और विनम्र होगा। वह अत्यन्त दयालु होगा। वह कभी भिक्षा नहीं मांगेगा। वह सदा दान ही करेगा। उसका हृदय बहुत विशाल होगा। वह सबके साथ घुल मिल जाएगा। वह सबकी सेवा करेगा, सबसे प्रेम करेगा। वह भगवान् के नाम का कीर्तन करेगा। वह सेवा में निपुण होगा। वह कर्मयोग में सिद्धहस्त होगा। वह मन्दिर में पूजा करता होगा। वह रुद्र स्तोत्र का पाठ करता होगा। वह अखण्ड कीर्तन में सम्मिलित होता होगा तथा जहाँ भी जाएगा, अखण्ड कीर्तन प्रारम्भ करेगा। वह जप और ध्यान करता होगा। वह आसन, मुद्रा, प्राणायाम और बन्ध का अभ्यास करता होगा। वह समन्वय योग का

व्यवहार करता होगा। उसको विचारों पर नियन्त्रण की विधि का ज्ञान होगा। वह योग और वेदान्त में पूर्ण दक्ष होगा। वह एक व्यवहारिक वेदान्ती होगा।

वह रसोई बनाना, प्रूफ रीडिंग, टाइपिंग, रोगी की परिचर्या तथा चिकित्सा और प्रवचन करना जानता होगा। वह एक लेखक होगा, वह पत्रकार होगा। वह योग तथा वेदान्त पर कक्षाएँ संचालित करता होगा। वह सरल और विनम्र होगा। वह सबको महाराज कहकर सम्बोधित करता होगा तथा सबका अभिवादन 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर करता होगा। वह सबसे सर्वप्रथम प्रणाम करेगा। वह निर्धनों की सेवा आत्मभाव से करता होगा। वह कभी भी कठोर शब्दों अथवा अपशब्दों का प्रयोग नहीं करता होगा।

उसमें सभी धर्मों और आस्थाओं के प्रति पूर्ण सम्मान होगा। वह बहुत कम बोलता होगा। वह बहुत शान्त किन्तु ओजस्वी होगा। उसके लिए काम ही पूजा होगी। उसके लिए कर्म, भक्ति, ज्ञान तथा योग अभिन्न होंगे। वह एक भक्त, योगी और ज्ञानी होगा। वह दूसरों के कल्याण के काम करने में सदा व्यस्त रहता होगा। वह सेवा के उत्साह से सदा पूर्ण रहेगा। आप इन सब गुणों से उसे सरलता से पहचान सकते हैं।

स्वामी जी अपने आश्रम के कार्यकर्ताओं को सदा साधु तत्त्व का विकास करने के लिए कहते थे। वे कहते थे कि आप सदा साधु तत्त्व के विकास की ओर ध्यान दें और बाबू तत्त्व का प्रतिरोध करें। दो आश्रमवासी झूठे बहाने बनाकर आश्रम छोड़कर चले गये, उन्हीं की ओर संकेत करके स्वामी जी ने २७ अक्तूबर १९४९ को निम्न बातें कहीं—

शायद आप बहुत अच्छे कार्यकर्ता हों। आप अत्यन्त विद्वान् हो सकते हैं। आपको गीता, उपनिषद्, बाइबल प्रारम्भ से अन्त तक कंठस्थ हो सकती है। आप हठ यौगिक क्रियाओं में प्रवीण हो सकते हैं, लेकिन यदि आपमें साधु तत्त्व नहीं है तो उपरोक्त सब किसी काम के नहीं। अध्ययन, ध्यान तथा माला घुमाने से क्या लाभ? इस बात का सदा स्मरण रखें कि यदि आपमें साधु तत्त्व नहीं है तो आप संन्यासी के रूप में असफल हैं।







साधु तत्त्व विभिन्न सद्‌गुणों का एक विशेष मिश्रण है। इसका वर्णन करना सम्भव नहीं है, परन्तु आप इसे देखते ही पहचान लेंगे। यह विनम्रता, धैर्य, सहिष्णुता, क्षमा, शान्तिप्रियता, सेवा के प्रति उत्साह, अनुकूलनीयता, ईश्वर के प्रति प्रसन्नता से आत्मार्पण, क्रोध, वासना तथा लालच का न होना, असन्तोष की भावना का पूर्ण अभाव का सम्मिलित रूप है। जिसके भीतर साधु तत्त्व होता है, वह सदा प्रसन्न रहता है। प्रत्येक बात को शान्तिपूर्वक ग्रहण करता है और सोचता है कि प्रत्येक वस्तु भगवान् की कृपा है। उसके पास शिकायत हेतु कोई अवसर नहीं होता है।

इसके विपरीत बाबू तत्त्व के पास शिकायतों के सिवा और कुछ होता ही नहीं। यदि किसी दिन चाय में थोड़ी शक्कर कम हो जाए या एक दिन चाय थोड़ी देर से मिले, तो उसे बहुत अधिक क्रोध आ जाता है। वह गला काट स्पर्धा करता है। उसका हृदय द्वेष, ईर्ष्या, लालच और वासना से पूर्ण रहता है। वह सदा शक्ति और सम्मान के पीछे भागता है। वह चुगली, बुराई, षडयन्त्र रचने तथा चालाकी करने में लगा रहता है। उसका मस्तिष्क भयंकर योजनाएँ बनाने में लगा रहता है। वह भीतर से ही स्वार्थी होता है। यदि आप ऐसे व्यक्ति के साथ दो दिन भी रहते हैं तो आप उसको तुरन्त पहचान सकते हैं। ऐसे लोगों से सदा बच के रहें।

स्वामी जी का जीवन स्वयं ही साधु तत्त्व का प्रत्यक्ष उदाहरण था। स्वामी जी ने बताया कि जब वे प्रचार यात्राओं पर जाया करते थे तो लोग उनके प्लेटफार्म पर उतरने के साथ ही उन्हें मालाएँ पहनाने लग जाते थे, परन्तु वे अपना सामान स्वयं ही उठाते थे।

संतों के निर्माता

स्वामी जी एक पारस पत्थर की तरह थे जो धातु को स्वर्ण में बदल देता है। उनके भीतर मनुष्यों को मानव-रत्न में बदलने का कौशल था। उन्होंने यह कार्य सभी के भीतर संतता को अध्यारोपित करके किया। वे किसी व्यक्ति के हजार दुर्गुणों की उपेक्षा कर देते किन्तु यदि उसमें एक भी सद्‌गुण होता तो वे उसकी प्रशंसा करते और उसमें वृद्धि करते। वे किसी की निन्दा नहीं करते थे, किसी का अपमान नहीं करते थे। स्वामी जी के लिए इस भूमि पर ऐसा कोई मनुष्य नहीं था, जिसमें कोई सद्‌गुण न

हो और न ही ऐसा कोई मनुष्य था जिसे सुधारा न जा सके। उनकी दृष्टि में जो भीतर से पापी होगा वह स्थाई नहीं रह सकता। वे सर्वत्र भगवान् और देवत्व के दर्शन करते थे और इसकी परम ओजस्विता उनमें शक्ति का संचार करती थी, जिससे कि सभी के भीतर छिपी अच्छाई तत्काल जाग्रत हो जाती थी और उस सद्गुण को बल प्रदान करती थी। यद्यपि जिसे लाभ मिल रहा है वह इससे अनभिज्ञ रहता था।

सन् १९३४ में स्वामी जी द्वारा लिखे गये निम्न पत्र बताते हैं कि स्वामी जी अपने शिष्यों से अपेक्षा रखते थे कि वे अन्य लोगों में दोष देखने (दोषदृष्टि) तथा निन्दा करने जैसे दुर्गुण को त्याग दें—

"प्रत्येक बात हृदय से भुला दें, चिन्ता न करें, ऐसा करने से हमारा काम प्रभावित होगा। जब लोग कहें... तो अपने कानों को बहरा कर लो। इस प्रकार का उत्तर... किसी को पत्र द्वारा भी न दें। बीते हुए पर मिट्टी डालें। निराश न हों। मन को काम, जप और भजन गाने में लगाए रखो। यदि हजार लोग भी आपके लिए मेरे कानों में जहर घोलें तो भी मुझे विश्वास नहीं होगा। अनावश्यक चिन्ता करके अपनी ऊर्जा व्यर्थ न गँवायें। हमारा काम सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर आगे बढ़ रहा है। क्या हम लोगों के षडयन्त्रों और आलोचनाओं की चिन्ता करते रहेंगे या अपना काम करेंगे। भूल जायें, भूल जायें। क्षमा करें। क्षमा करें। सदा प्रसन्न रहें। साहसी बनें। उठ खड़े हों, कमर कस लें और सर्वत्र वेदान्त, योग तथा भक्ति के उपदेश दें। जरा भी चिन्ता न करें। इस संसार में आपको कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। आप अजेय हैं। सत्य पर दृढ़ रहते हुए किसी भी मंच से शेर की भाँति दहाड़ें। आपके भीतर जो थोड़ी कमियाँ हैं वे शीघ्र ही दूर हो जाएँगी। चिन्ता न करें। आत्मा पूर्ण पवित्र है। यह निर्दोष है। आप निर्दोष हैं, इस बात पर दृढ़ रहें, सारी अपवित्रता नष्ट हो जाएगी। यह सभी दुर्गुणों को उन्मूलन करने की धनात्मक विधि है। शक्ति, आनन्द, शान्ति परमानन्द और अमरता, यही आपकी प्रकृति है। इसे पहचानें और ईश्वर से यही माँगो।

"कभी किसी की आलोचना न करें। अन्यों द्वारा की जाने वाली अस्वस्थ और विधवंसक आलोचना के बारे में अध्यात्मिक साधक को विचार नहीं करना

चाहिये। उसे सदा रचनात्मक कार्यों हेतु उद्यत रहना चाहिये।'' स्वामी जी सबको अपने सामने उपरोक्त आदर्श रखने के लिए कहते थे।

इस पत्र से, जो कि स्वामी जी ने दो दिन बाद लिखा है स्वामी जी उनके शिष्य के कल्याण के प्रति चिन्ता तथा उसके मन में जो प्रतिकूलता उत्पन्न हो गई है उसे दूर करने की उत्कण्ठा स्पष्ट परिलक्षित होती है।

''प्रत्येक बात को भूल जायें। शान्त रहें। आप आत्मा हैं अथवा मन या शरीर? यहाँ तक कि आपने मेरा लिखा हुआ १००१ बार पढ़ा है, तो फिर आप अभी भी स्वयं को इस मन तथा शरीर के साथ एकाकार कैसे समझते हैं। आप स्वयं ही अपने शरीर तथा मन को नापसन्द करते हैं। जो आपके इस नश्वर शरीर की आलोचना करते हैं वे तो आपके मित्र हैं। फिर आप उत्तेजित क्यों होते हैं? आप निर्बल हैं। आलोचनाओं पर ध्यान न दें। आप बीती बातों की चिन्ता क्यों करते हैं? यह एक बुरी आदत है। इससे आपको मन की शान्ति नहीं मिल पाएगी। आलोचना तथा आक्षेपों से ऊपर उठें। जो आपको जहर देकर मारना चाहता हो उसके साथ भी अच्छा व्यवहार करें इसे अपने व्यवहार में लाएँ।''

अगला पत्र भी इसी विषय पर आधारित है। इसमें स्पष्ट उपदेश दिये गये हैं—

''अपमान और आघात सहन करो, यही संन्यासी का स्वभाव है। यह आध्यात्मिक शक्ति है। यह मन का सन्तुलन है। व्यर्थ की बातों पर व्यथित होना, महीनों तक चिन्ता करते रहना और निरर्थक शक्ति का अपव्यय करते रहना कोई बुद्धिमानी नहीं है।''

इस पत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु है ''अपमान और आघात सहन करना संन्यासी की मूल प्रकृति है। यह न तो कोई नीति है, न ही यह कोई साधना है, वरन् यह एक परम आदर्श है। परम लक्ष्य-सिद्धि अथवा पूर्णता को प्राप्त करने के लिए इसका पालन साधना की भाँति किया जाना चाहिये। स्वामी जी ने हमें इन थोड़े से शब्दों में भगवान् कृष्ण ने गीता में जो योग सिखाया, उसका सार दे दिया है।

इस पत्र के अन्त में हमें उस सख्त गुरु की भी झलक मिलती है जो अपने शिष्य को प्रेम से समझाने का प्रयास करते हैं, लेकिन यदि आवश्यकता पड़े तो उसे शिक्षा देने हेतु डाँटने में भी नहीं चूकते हैं। निम्न पत्र को देखिए—

"क" से सम्बन्धित किसी विषय को सार्वजनिक करने की आवश्यकता नहीं है। सावधान, जब कोई स्वयं ही अपनी गलती पर पश्चाताप कर रहा हो तो आप उसी विषय को बार-बार क्यों उठाते हैं? यह संन्यासी का धर्म नहीं है। मन को शान्त रखिये तथा अपना ध्यान पुस्तकों के प्रकाशन तथा अन्य कार्यों में लगायें। मेरी बात की गम्भीरता को समझें तथा इस पर ध्यान दें और शान्ति बनाए रखें। मुझे अब आपके कोई तर्क या सफाई नहीं सुनना है। इस बात को अब यहीं समाप्त कर दें। मुझे उत्तर भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन आपको इस बात का अवश्य ही ध्यान रखना है कि मेरे बारम्बार निवेदन पर आपने क्या किया। संन्यास शान्ति तथा रचनात्मक कार्यों के लिए लिया जाता है। इससे अधिक मैं आपको क्या लिखूँ?

विकास कर रहे साधक के किसी भी दोष को स्वामी जी तब तक सहन कर लेते थे जब तक वह उनके मिशन के दो महत्वपूर्ण आधार स्तम्भों—शान्ति तथा रचनात्मक कार्यों—को आघात नहीं पहुँचाता था। सन् १९३७ की बात है, किसी ने स्वामी परमानन्द जी को स्वामी जी के नाम से एक झूठा पत्र भेजा कि अब स्वामी जी को आपकी सेवाओं की अपेक्षा नहीं है इसलिये उन्हें आश्रम वापस आने की कोई आवश्यकता नहीं है। स्वाभाविक रूप से इससे एक समर्पित शिष्य का मन विचलित हो उठा। इस कारण स्वामी परमानन्द जी ने स्वामी जी को एक पत्र लिखा। स्वामी जी ने प्रत्युत्तर में जो पत्र लिखा, वह स्वामी जी में स्थित मनोवैज्ञानिक गुरु तथा दिव्य जीवन के सिद्धांतों, संन्यास के मूलभूत आधारों, और उन महान् आदर्शों को भी प्रकट करता है जिन्हें स्वामी जी ने अपने भीतर उतार लिया था और वे चाहते थे कि उनके शिष्य भी इन्हें अपने जीवन में उतार लें। निम्न पत्र ७ अगस्त १९३६ को लिखा गया है—

मैंने ऐसा कोई पत्र आपको नहीं लिखा। यह शायद स्वामी 'अ' या 'ब' ने लिखा होगा। कृपया इस पत्र के हस्ताक्षरों तथा उस झूठे पत्र के हस्ताक्षरों का मिलान करें। आप चोर को पकड़ लेंगे। कृपया मुझे देखने के लिए उस पत्र को रजिस्ट्री से भेजें। मेरा अनुमान है कि वह पत्र अवश्य टाइप किया हुआ होगा। क्या आप बता सकते हैं कि यह अपनी मशीन पर छपा है या किसी अन्य मशीन पर १ तथा हममें से इसे किसने टाइप किया है। कुछ समय पहले यहाँ कुछ परेशानी थी, 'ब' ने कुछ

गड़बड़ की थी। इसलिये मैंने उसे आश्रम छोड़ देने के लिए कहा था। उसके साथ-साथ 'अ' ने भी छोड़ दिया। वे दोनों अब बाहर रह रहे हैं। उन्होंने इस कार्य की योजना आपके और मेरे बीच गलतफहमी पैदा करने तथा 'य' को आनन्द कुटीर से बाहर ले जाने के लिए बनाई है।

आपको तत्काल ही समझ जाना चाहिये था कि स्वामी जी ऐसा पत्र कभी नहीं लिख सकते। सम्भवतः यह कोई शरारत हो।

सब कुछ ठीक हो जाएगा। परेशान न हों। जैसे ही काम समाप्त हो जाए, आप तत्काल यहाँ आ जाएँ। आपको एक क्षण भी वहाँ रुकने की आवश्यकता नहीं है। इस बारे में कुछ भी न सोचें। यह षडयन्त्रकारियों की शरारत है। जो गलत काम करेगा, फल भोगेगा। कर्म का सिद्धान्त अटल है।

मैं आपको तार भेजना चाहता था कि 'यह धोखा है, चिन्ता न करें। ऐसा पत्र मैंने नहीं लिखा। यह किसी की शरारत है। पत्र इसके बाद पहुँच रहा है।' फिर मैंने सोचा कि एक विस्तृत पत्र सभी बातों को स्पष्ट कर सकेगा। अब कुछ भी विचार न करें। प्रसन्न रहें। वह सब गलत है। ईर्ष्यावश कुछ गड़बड़ की गई है और ऐसा जिसने किया है, उसकी खोज करना कठिन है। यदि वहाँ कुछ काम बाकी है तो इस विषय के कारण आपको यहाँ जल्दी आने की आवश्यकता नहीं। शान्त रहें। पर्याप्त काम करें। लेकिन अब यह आपके मद्रास जाने का अन्तिम वर्ष है। मन की सभी किरणों को एकत्र करके शान्त हो जाएँ। पिछला भूल जाएँ। जितना अधिक से अधिक काम कर सकते हों, करें; किन्तु यदि उत्पादन अत्यन्त कम हो तथा धन की कमी के कारण कार्य में विलम्ब हो रहा हो तो आप यहाँ ४ सितम्बर के पूर्व आ जाएँ। उत्तेजित न हों। ये छोटी-छोटी कठिनाइयाँ और बाधाएँ हमें मजबूत बनाने के लिए आयी हैं। हाँ, एक बात मैंने पाई कि आप शीघ्र उत्तेजित हो जाते हैं। जैसे ही मुझे आपका पत्र मिला, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह आपने किसे लिखा है; क्योंकि मैंने ऐसा कोई पत्र आपको कभी नहीं लिखा। यदि आपको यह भी लगता कि ये हस्ताक्षर मेरे हैं और लिफाफे पर पता भी मैंने ही लिखा है तो भी आपको यह सोचना चाहिये कि यह किसी की शरारत है। कल्पना करें कि ऐसा मैंने स्वयं ही लिखा है तो भी आपको यह सोचना चाहिये कि अवश्य ही यह आपके तथा सबके भले के लिए ही किया होगा।

आपको ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिये कि यह मैंने आपको कष्ट पहुँचाने के लिए किया होगा। मैं कभी किसी की भावनाओं को आहत नहीं कर सकता। यहाँ तक कि जो मुझे जहर देकर मार देना चाहता हो या उसने जिसने मुझे गम्भीर रूप से घायल कर दिया हो, उसके लिए भी मैं स्वप्न में भी बुरा नहीं सोच सकता। मैं मात्र इसी सद्‌गुण का विकास कर रहा हूँ। यदि भविष्य में भी ऐसी कोई बात हो तो आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहें।

यह संसार अद्‌भुत है। हमें अभी बहुत सी बातें सीखनी हैं। भगवान् ईसामसीह के एक शिष्य ने ही उनके साथ छल किया था। विकास कर रहे जिज्ञासु के सामने हर चरण पर बहुत से विघ्न आते हैं। हमें अपनी क्षमता प्रदर्शित करनी होगी। छोटी-छोटी बातों में उत्तेजित नहीं होना चाहिये। प्रसन्न रहें, मुस्करायें, साहस के साथ आगे बढ़ें। ऐसा सोचें और अनुभव करें जैसे कुछ हुआ ही नहीं। छोटी-छोटी बातों की चिन्ता न करें। आपको अभी बहुत से महान् कार्य करने हैं। प्रकृति आपको भिन्न-भिन्न प्रकार से तैयार कर रही है। इसका अनुभव करें और उस माँ के प्रति सदा कृतज्ञ रहें।

ऐसी बातें होने के बाद भी मैं 'अ' या 'ब' किसी को भी नहीं छोड़ सकता। आखिर सभी भूल करके ही तो विकास करते हैं। आपको पिछला पूरी तरह भुला देना चाहिये। आप बुरे लोगों को इस संसार के किसी भी स्थान से बाहर नहीं निकाल सकते। आप जहाँ भी जाएँगे ऐसे लोगों के बीच ही रहना है। लेकिन आप ऐसा अनुभव करें जैसे सब आपकी ही आत्मा हैं। यह सोच सम्पूर्ण स्थिति को ही बदल देगा। आपको सबसे, यहाँ तक कि जो आपको मिटा देना चाहता हो, उससे भी प्रेम करना चाहिये। यही संन्यास है। सच्चा संन्यासी वह है जो यह अनुभव करता है कि उसका कोई शरीर नहीं है। ऐसे लोग जो हमारा विनाश करना चाहते हैं उनके बीच रहकर तथा विषम वातावरण में रहकर हमें काम करना चाहिए, ध्यान करना चाहिए। मात्र तभी हमारा विकास होगा। तभी हम संत के समान अविचल मन पा सकेंगे।

अपनी धारणा को कभी न बदलें। मैं आपका सेवक, हितैषी, मित्र और भाई हूँ। यहाँ तक कि आप मुझे छोड़ देंगे लेकिन मैं आपको कभी नहीं छोड़ सकता। आप सदा मेरे हृदय में रहेंगे। आप सदा मेरे प्रिय हैं। मैं किसी से कठोर शब्द नहीं कहता।

यदि कभी कहता भी हूँ तो तभी जब मुझे यह अनुभव होता है कि उसे ठीक करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। ऐसे कठोर शब्द उसे आहत नहीं करते, ये उसे मात्र सही करते हैं। मैं भगवान् का सदा आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस सद्गुण का कम-से-कम थोड़ा अंश तो प्रदान किया। मुझे इससे अधिक कुछ पाने की आकांक्षा नहीं है। भगवान् ने मुझे यह सद्गुण प्रदान किया है। यह उनकी कृपा है। प्रेम, शान्ति तथा आनन्द की शुभकामनाओं के साथ।

शिवानन्द

पुनश्चः —

वर्षों तक किसी के समीप रहकर भी उसे समझना कठिन है। यहाँ तक कि अपने मन को समझना भी अत्यन्त कठिन है। मात्र भगवान् ही असली अपराधी को जानते हैं। उसे ढूँढ़ निकालना मुश्किल है। आप मुझे बहुत ही अच्छी तरह जानते हैं क्योंकि आप कई वर्षों तक मेरे निकट सम्पर्क में रहे हैं। इस प्रकरण को मैं यही समाप्त करना चाहता हूँ। यदि यहाँ आकर उस पत्र तथा मेरे हस्ताक्षर के बारे में मुझसे व्यक्तिगत रूप से कोई बात करना चाहें तो आप कर सकते हैं। आपके तथा मेरे और सभी के लिए इस विषय में ज्यादा सोचना निरर्थक है। हम सभी के पास इसके लिए समय नहीं है। हमें अपने प्रत्येक क्षण का उस ईश्वर की सेवा और उनके ध्यान में करना चाहिये।

अब आपको दृढ़ विश्वास हो गया होगा कि ऐसा कोई पत्र मैंने कभी नहीं लिखा। आप यहाँ असफल रहे। कोई बात नहीं। मनुष्य विकास करता है और गलतियों से ही सीखता है।

शिवानन्द

शिष्य की योग्यता

सन् १९५३ के प्रारम्भ में स्वामी जी ने अपने व्यक्तित्व के रुद्र तत्त्व को धारण कर लिया तथा आश्रम की गतिविधियों तथा समन्वय में बाधक बन रहे एक व्यक्ति को बाहर निकाल दिया और सभी आश्रमवासियों को एकत्र करके कहा—

नैतिक पतन साधक के लिए अयोग्यता है तथा संन्यासी के लिए कलंक है। फिर भी मैं ऐसे व्यक्ति को जो वासना के आगे हार जाता है, एक चेतावनी देकर छोड़ देता हूँ, उसे सुधरने का एक अवसर देता हूँ। लेकिन आश्रम के समन्वय में बाधा डालने वाले तथा भगवान् के कार्य में बाधा डालने वाले, भगवान् के कार्य को विफल करने वाले तथा आश्रम के कार्यकर्ताओं के मध्य दीवार खड़ी करने वालों के विरुद्ध मैं कड़ी कार्यवाही करता हूँ। आप सभी को ऐसे षडयन्त्रकारियों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये और उन्हें उसी समय हटा देना चाहिये, क्योंकि ये आश्रम के लिए कैंसर के समान हैं। ऐसे विषयों में मैं कड़ी कार्यवाही करता हूँ और चेतावनी देने के स्थान पर उन्हें अचानक बाहर कर देता हूँ।

श्री... ने जो सेवाएँ प्रदान की, मैं उसके लिए उनका बड़ा ही आभारी हूँ। लेकिन मेरी इस इच्छा के मार्ग में (कि भगवान् का काम बिना किसी विघ्न-बाधा के चलता रहे) कोई भी विरोधी तत्त्व बाधक नहीं बन सकता। इन खरपतवारों को उखाड़ फेंकने में घबराना नहीं चाहिये क्योंकि यह हमारा कर्तव्य है।

ऐसे लोगों में समर्पण की भावना की कमी है। यदि आप ईमानदारी और सम्पूर्ण हृदय से दैवी कार्य हेतु स्वयं को समर्पित कर दें तो ऐसी कोई स्थिति कभी उत्पन्न नहीं होगी। अधूरे हृदय से सेवा करने से पुराने कुसंस्कार पुनः बाहर आ जाते हैं और आप गलत मार्ग पर भटक जाते हैं। चाहे आप दिन-रात परिश्रम करें परन्तु जब तक आपके हृदय में समर्पण की भावना न होगी, आप अपनी आस्था में, दिव्य जीवन में दृढ़ रहने में विचलित होते रहेंगे और आपके मार्ग में खतरे आते ही रहेंगे। मात्र समर्पण ही आपके अहंकार को चूर-चूर करने तथा इसका उन्मूलन करने योग्य बनाता है। साधना के पथ पर शीघ्र प्रगति करने में आपकी सहायता कर सकता है।

जब यह भावना आपके भीतर पूर्ण विकसित हो जाएगी तभीआप सच्ची विनम्रता का अर्थ समझ सकेंगे।

आज्ञाकारिता, समर्पण, आध्यात्मिक मिलन सभी एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। जब आप कार्य के प्रति स्वयं को पूर्ण हृदय से समर्पित कर देते हैं तभी आप मेरे साथ आन्तरिक रूप से सम्बन्ध स्थापित करने योग्य हो सकते हैं अन्यथा आप यहाँ वर्षों

तक रहेंगे और बैल की तरह काम करेंगे लेकिन आप अधिक आध्यात्मिक लाभ प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

तुच्छ व्यक्तिगत आकांक्षाओं, महत्वाकांक्षाओं, रुचि तथा अरुचि की भावना तथा आध्यात्मिक जीवन के प्रति आपके दुराग्रह इस कार्य के बीच खड़े हुए हैं। आपको नित्य आत्म-निरीक्षण करना चाहिये और अपने दोषों को ढूँढ़ना चाहिये। आपको नित्य प्रति गंगा मैया से प्रार्थना करनी चाहिये कि "माँ आपकी परम अनुकम्पा से मैं आपके तट पर रह रहा हूँ, जबकि संसार के करोड़ों लोग आपकी एक झलक के लिए, आपका आचमन करने के लिए तरसते हैं। माँ, मुझे आशीर्वाद दें जिससे मेरा हृदय शुद्ध हो और मैं इस मोक्ष मार्ग पर दृढ़ रहूँ। मैं सभी पापों से मुक्त हो जाऊँ तथा मैं स्वयं को इस दैवी कार्य हेतु सम्पूर्ण हृदय से समर्पित कर दूँ।"

सोचिये, आप सब यहाँ क्यों आए हैं? क्या एक कप अतिरिक्त दूध या अतिरिक्त फल के लिए झगड़ने के लिए? क्या पद और शक्ति के लिए झगड़ने के लिए? नहीं। आप यहाँ आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए आए हैं। अपने मन को इस महान् लक्ष्य पर केन्द्रित रखिए। अब कोई भी आपके ध्यान को यहाँ से हटा न सके।

यदि आपका लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार नहीं है और आप मात्र मन की शान्ति प्राप्त करने के लिए आए हैं तो भी आपका यह प्रथम कर्तव्य है कि जब तक आप यहाँ हैं कुछ सात्विक गुणों का विकास करें, क्योंकि मात्र सद्‌गुण ही आपको मन की शान्ति प्रदान कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि आप अपना सारा समय बेकार की गपशप में अथवा षडयन्त्र रचने में गँवा देंगे तो आप कैसे मन की शान्ति का आनन्द उठा पाएँगे। इससे तो आप औरों की शान्ति भंग करेंगे।

इसी क्षण से सारे वेदान्तिक समुदायों को विलीन कर दें। जहाँ कहीं भी तीन निकम्मे इकट्ठे होते हैं, चाहे वे संन्यासी हों या गृहस्थ, वे किस बारे में बात करते हैं, भगवान् या साधना के बारे में? अथवा मानव-मात्र की सेवा या आत्म-साक्षात्कार के बारे में? नहीं, वे अन्य किसी तीसरे व्यक्ति के बारे में बात करते हैं। यह स्टालिन या चर्चिल के बारे में अथवा उनके गुरु भाइयों के बारे में होगी अथवा संस्था के सचिव के बारे में होगी। वे स्वयं के अलावा दुनियाँ में हर किसी की बुराई करते हैं।

जब यह समूह टूटता है और इसके सदस्य अन्य किसी समूह से जुड़ते हैं तो वे पुराने समूह के लोगों की आलोचना, बुराई करते हैं। कितना अपमानजनक है यह सब कुछ?

आपको सदा सेवा कार्य में ही व्यस्त रहना चाहिये। काम, काम और काम। इस दैत्य (मन) को सदा व्यस्त रखने के लिए, इसे उपद्रव करने से रोकने के लिए काम के समान शक्तिशाली अस्त्र कोई दूसरा नहीं है। आपको स्वयं को चारों ओर से काम से घिरा हुआ रखना चाहिये। आपको अपने साथ एक माह का काम अधिक रखना चाहिये। कभी भी स्वयं को यह अनुभव करने ही नहीं देना चाहिये कि मैंने सारा काम समाप्त कर दिया है। क्योंकि इसी क्षण हम अपने मन को इधर-उधर भागने की अनुमति दे देते हैं। मेरे पास काम की कोई कमी नहीं है। मैं आपको अभी तुरन्त इतना काम दे सकता हूँ कि यदि आप दो वर्षों तक रात-दिन काम करें तो भी समाप्त नहीं होगा।

लेकिन आप मेरे समीप आना ही नहीं चाहते। आप मुझसे बचना चाहते हैं। इतने सारे आश्रमवासियों में से हर एक को देखना मेरे लिए कठिन है। आपने स्वयं को एक अंग्रेज की भाँति कमरे में बन्द कर रखा है और मैं आपको काम बताने के लिए द्वार पर आपका इन्तजार कर रहा हूँ। आप एक-साथ दो-तीन कामों का उत्तरदायित्व लेना ही नहीं चाहते क्योंकि आप सोचते हैं कि ऐसा करने से आप थक जाएँगे और दुर्बल हो जाएँगे। पर नहीं काम कभी भी आपको दुर्बल नहीं करता। वह तो आपके भीतर नयी ऊर्जा का समावेश करता है। आप तभी कमजोर होते हैं जब आपका दुष्ट मन व्यस्त रहता है और आपके हाथ आलसी हो जाते हैं, जब आप सोचते हैं कि आपने अपना काम समाप्त कर दिया है, और फिर आप समाचार पत्र पढ़ने के लिए राम आश्रम ग्रन्थालय की ओर भाग जाते हैं या दूसरों की आलोचना करने के लिए वेदान्तिक दल में सम्मिलित हो जाते हैं। आप सोचते हैं मुझे कुछ मालूम नहीं है लेकिन मैं सब कुछ जानता हूँ। मैं प्रत्येक आश्रमवासी के बारे में ही नहीं, नये आगन्तुकों के बारे में भी सब कुछ जानता हूँ। आप मुझसे कुछ नहीं छुपा सकते। यह मेरा स्वभाव है कि मैं आपको ढील देकर रखता हूँ। मैं किसी के द्वारा की गई कई गलतियों पर ध्यान नहीं देता क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह मानव स्वभाव है।

मैं अत्यन्त ध्यानपूर्वक यह देखता हूँ कि वह अपने में सुधार ला रहा है या नहीं। मैं शान्तिपूर्वक उसे सुधरने का प्रत्येक अवसर प्रदान करता हूँ। मैं उसे सभी प्रकार के कार्यों तथा धर्म ग्रन्थों के अध्ययन तथा ध्यान करने हेतु श्रेष्ठ अवसर प्रदान करता हूँ। मैं व्यक्ति की असंख्य भूलों को क्षमा कर देता हूँ लेकिन उसके कामों का विवरण मेरे भीतर एकत्रित होता रहता है और जब इसकी सीमा पार हो जाती है तो मैं उसे यहाँ से बाहर कर देता हूँ।

आप सोचते हैं कि मैं सदा दया और प्रेम करता हूँ, आप सोचते हैं कि काम की खोज में रहता हूँ और दूसरों को काम करने में लगा देता हूँ, हाँ, मैं ऐसा ही हूँ। लेकिन आप मेरे रुद्रतत्त्व को नही जानते। जब आप अल्प ज्ञान से अभिमानी हो जाते हैं और यह सोचने लगते हैं कि आपके बिना संस्था का काम नहीं चल सकता तब मैं आपको अपना रुद्र तत्त्व दिखलाता हूँ। जिस प्रकार गाँधी जी ने अकेले ही बिना किसी साधन के भारत को स्वतन्त्रता दिलाई उसी प्रकार एक संत सारे संसार का आध्यात्मिक उत्थान कर सकता है। संस्था तो उसके हाथ में एक साधन मात्र है तथा यह अन्यों को आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करती है। मैं बिना किसी संस्था के अपना काम कर सकता हूँ। आज भी मैं गुफा में जाकर भिक्षा माँगकर रह सकता हूँ। और अनूठे काम कर सकता हूँ। मैं बी.ए. पास लोगों के पीछे पागल नहीं हूँ। यदि बी.ए. पास लोग संस्था छोड़ देंगे तो एम.ए. पास लोग संस्था के साथ जुड़ने हेतु प्रतीक्षारत हैं। यदि द्वितीय श्रेणी के लेखक संस्था छोड़ देंगे तो कल प्रथम श्रेणी के लेखक इससे जुड़ जाएँगे। हजारों अपरिपक्व जिज्ञासुओं का नहीं एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व का इस संसार में महत्त्व है।

आज भी मैं आपके सामने संन्यास का उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूँ। मैं दो सूखी रोटियाँ खाकर और गंगा जल पीकर जी सकता हूँ। अत्यधिक कार्य, आर्थिक चिन्ताएँ और इनसे भी अधिक मेरी मधुमेह की बीमारी मुझे इस शरीर हेतु कुछ आराम पहुँचाने के लिए विवश करती हैं। आप अनुमान नहीं लगा सकते कि विभिन्न कार्यों में मेरी कितनी ऊर्जा व्यय होती है? मुझे इस शरीर को अवश्य ही आराम देना चाहिये और इसे सेवा हेतु स्वस्थ रखना चाहिये। मैं एकादशी के दिन पूर्ण उपवास

रखता हूँ और सप्ताह में कई-कई दिन बिना नमक का भोजन करता हूँ। क्या कोई अन्य ऐसा करता है?

परन्तु इसके विपरीत आप एक कप अतिरिक्त दूध के लिए झगड़ा करते हैं। इस युवावस्था में जब आप ऊर्जा से परिपूर्ण हैं, आप त्याग, तितीक्षा और आत्मसंयम का व्यवहार नहीं करते तो फिर आप यह सब कब करेंगे? आपको किञ्चित मात्र भी आत्मसन्तोष नहीं है। इसी कारण आपके मुखमंडल पर ब्रह्मतेज नहीं है। यदि आपके भीतर सन्तोष होगा तो आपके मुखमंडल पर तेज और आँखें में चमक होगी तथा आप शान्ति और आनन्द का विकिरण (चारो ओर फैलायेंगे) करेंगे। लेकिन जब आपका हृदय कामनाओं और वासनाओं से भरा होगा, आप संसार की तुच्छ वस्तुओं के लिए सदा उत्कंठित रहेंगे तो क्या आप आध्यात्मिक उन्नति कर सकेंगे?

ऐसे लोगों के लिए अच्छा होगा कि वे संसार में जाएँ और विवाह करके व्यवस्थित गृहस्थ जीवन बिताएँ। अन्यथा आप दोनों से वंचित रहेंगे। आप स्वयं को सांसारिक सुखों से भी वंचित रखेंगे और आध्यात्मिक जीवन में भी कुछ न प्राप्त कर सकेंगे। आश्रम में आपको निष्क्रिय जीवन बिताने से कोई लाभ नहीं होगा, यहाँ पर आपको शक्ति तथा उत्साह से परिपूर्ण होना चाहिये।

मान लीजिए, आप गृहस्थ जीवन बिता रहे हैं और पाँच सदस्यों के परिवार के मुखिया हैं और आपका वेतन १५० रुपये प्रतिमाह है, तो क्या आप दूध और फल का नित्य सेवन कर सकेंगे? क्या आप केले जैसा फल (जो कि सस्ता होता है) भी माह में एक बार क्रय कर सकेंगे? नहीं, तब आपके मन में ऐसा करने का विचार भी नहीं आएगा। आप सोचेंगे यह तो धन की बरबादी है।

क्योंकि तब आप सोचेंगे कि आप के ऊपर अपने परिवार का उत्तरदायित्व है और आपको अपने बच्चों के पढ़ाई के लिए धन बचाना चाहिये। लेकिन यहाँ पर आप ऐसे किसी उत्तरदायित्व के बारे में नहीं सोचते। आपकी संस्था के प्रति भी कोई भावना नहीं है। यदि आपके मन में कोई भावना होती तो फिर कोई भी कठिनाई नहीं होती, क्योंकि तब आपका प्रयास सदा इसके लिए होता कि ऐसे उपाय खोजे जाएँ जिससे आश्रम की आय का सर्वाधिक उपयोग हो सके, जिससे मानव-मात्र के

कल्याण हेतु अधिकाधिक काम किए जा सकें। आपको काम के लिए स्वयं को भूल जाना चाहिये, तभी और केवल तभी आप कर्मयोग के अर्थ को जान सकेंगे।

लेकिन आपकी आश्रम में कोई रुचि नहीं है। आप मात्र अधिकार प्राप्त करने के बारे में सोचते हैं और उसके बाद आपके स्वार्थ का अन्त हो जाता है। आप अपना व्यक्तिगत बटुआ (पर्स) रखना चाहते हैं। आपका बैंक में अपना स्वयं का खाता है। एक सच्चे साधक के लिए व्यक्तिगत बटुआ और चैक-बुक होना महान् अभिषाप है। ये आपको संसार की असीम गहराइयों में फेंक देंगे। जब आप ऐसे आश्रम में रह रहे हैं जो आपका पालन-पोषण करता है। आपकी देखभाल करता है, आपकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तो आपको अपने व्यक्तिगत बटुए की क्या आवश्यकता है? जब आप संस्थान में निष्काम भाव से सेवा करते हैं आपका किसी बाहरी व्यक्ति से व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं है, तो आपको अपने बटुए हेतु धन कहाँ से प्राप्त होगा? यह धन की इच्छा आपको उत्मत्त बना देगी। यह आपको आपके बैंक के खाते के लिए धन कमाने की विभिन्न विधियाँ अपनाने के लिए बाध्य करेंगी। आप आश्रमवासी की तरह अतिथियों की सेवा कीजिए, आश्रम की आलोचना कीजिए, और उनसे सहानुभूति तथा थोड़े रुपये प्राप्त कर लीजिए। इन रुपयों का आप क्या करेंगे? जबकि आपकी सारी आवश्यकतायें आश्रम द्वारा पूर्ण की जाती हैं। आप कुछ गलत आदतों का विकास कर लेंगे। आपके दबे हुए कुसंस्कार उभर आएँगे। आपका पतन हो जाएगा। आप अपने साथ दूसरों को भी खींचने का प्रयास करेंगे। आप अपना एक दल बना लेंगे। आप अपने गुरु की भी चिन्ता नहीं करेंगे, आप उनकी आलोचना करेंगे। थोड़े धन से आपके मन में अधिक धन की उत्कण्ठा उत्पन्न होगी। शक्ति तथा धन प्राप्ति के प्रयत्न में आप आश्रम के प्रमुख कार्यकर्ताओं के मध्य दीवार खड़ी करने का प्रयास करेंगे और आश्रम का वातावरण दूषित करेंगे। शक्ति और धन की लालसा में आपका मस्तिष्क अपना सन्तुलन खो देगा और आप एक विध्वंसक तत्त्व बन जाएँगे। यहाँ तक कि आप गुरुद्रोही बन जाएँगे तथा उनके मिशन का विनाश करने में लग जाएँगे।

ऐसे लोग अपने कर्मों के भयंकर परिणाम को नहीं जानते। गुरुद्रोह एक घृणित अपराध तथा महान् पाप है। जो गुरुद्रोह करता है वह वृद्धावस्था में भयंकर रूप से

कष्ट भोगता है। वह अत्यन्त घृणित रोग जैसे कुष्ठ रोग, मुँह में घाव होना आदि से पीड़ित हो जाता है तथा उसे भोजन तथा वस्त्र का अभाव हो जाता है। उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं रहता, वह असह्य भूख और प्यास की वेदना तथा कष्ट सहते हुए शनैः-शनैः मृत्यु को प्राप्त होता है।

गुरु-सेवा के बारे में कहने की आवश्यकता ही नहीं है। आपको गुरु के साथ-साथ उस आश्रम या संस्था की भी सेवा सम्पूर्ण हृदय से करनी चाहिये जिसने आपको भोजन और आश्रय प्रदान किया। कृतज्ञता एक स्वर्णिम सद्गुण है। यदि आपके पास यह आधारभूत सद्गुण नहीं है जो कि यहाँ तक कि पशुओं में भी होता है, तो फिर आप भगवद्-साक्षात्कार प्राप्ति की आशा कैसे करते हैं?

प्रारम्भ से ही आपने अपने जीवन के प्रति गलत व्यवहार किया है। यदि आप अपने माता-पिता की सेवा करते हैं, तो ही आप जान सकेंगे आज्ञाकारिता और सेवाभाव क्या है। जब आपको सेवा का अवसर दिया जाता है तो आप सोचते हैं मैंने तो अपने माता-पिता की सेवा ही नहीं की। मैं इनकी सेवा क्यों करुँ। यह आपके अहंकार की पराकाष्ठा है। यह बार-बार के आघात और भगवान् की कृपा से ही नष्ट हो सकेगा।

भगवान् को सदा स्मरण रखो, सदा उनके नाम का जप करो। सेवा, सेवा और सेवा, काम, काम और काम करें। जब आप काम न कर रहे हों तो किसी अच्छी पुस्तक का अध्ययन करें, जप और ध्यान करें। मैंने आश्रम में इन सबके लिए स्वयं ही सुविधाएँ प्रदान कर रखी हैं। यहाँ काम और सेवा के भरपूर अवसर हैं, अध्ययन के लिए बहुत सी पुस्तकें हैं, ध्यान के लिए भजन कक्ष, मन्दिर तथा कुटीर हैं। आप बिना किसी प्रयास के भोजन तथा कपड़े प्राप्त कर सकते हैं, फिर आपको आश्रम से बाहर जाने की क्या आवश्यकता है? जब आपके कुसंस्कार प्रकट होते हैं तो वे ही आपको बाहर लेकर जाते हैं। वे आपको दल बनाने, व्यर्थ की बातों में उलझाने तथा षडयन्त्र रचना करने के लिए उकसाते हैं। सेवा, स्वाध्याय, ध्यान, अन्य लोगों में अच्छाई देखना, दूसरों के दोषों के बारे में विचार न करना आदि के द्वारा इन कुसंस्कारों से मुक्ति पाएँ। अपने काम से मतलब रखें। अपना मन शुद्ध करें। विकास, विकास और विकास करें।

जो मैंने आज कहा वह आपको आगामी तीन वर्षों तक जागरुक रखने के लिए पर्याप्त है। मुझे आप सभी से बहुत प्रेम है। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वे आपको ज्ञान, विवेक और वैराग्य प्रदान करें। मैं आप पर कठोर अनुशासन नहीं लादना चाहता क्योंकि मैं जानता हूँ यहाँ सभी विकास की विभिन्न स्थितियों में हैं और मैं उन्हें बिना किसी रुकावट के स्वेच्छा से विकसित होने देना चाहता हूँ। मैं उनमें छिपी योग्यताओं को जगाने तथा उनकी योग्यताओं को विकसित करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता हूँ तथा उनका आध्यात्मिक उत्थान करना चाहता हूँ। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं अत्यधिक नरम दिल हूँ। मैं आपके प्रत्येक काम को ध्यान से देखता रहता हूँ, मैं आपके बोलने के तरीके से, आपके व्यवहार से आपके हृदय का मूल्यांकन कर सकता हूँ। मैं उसी समय आपके दोष गिना सकता हूँ और आपके भविष्य को आकार दे सकता हूँ। लेकिन मैं नही चाहता कि आप भय के कारण मेरी बातों को मानें। आज्ञा का पालन सदैव प्रेम और समर्पण से, आध्यात्मिकता में विकास करने की सच्ची इच्छा से होना चाहिये। भय और चिन्ता के कारण किया जाने वाला आज्ञा पालन स्थाई नहीं रहता। यह ईमानदारी तथा सम्पूर्ण हृदय से नहीं होता और आप अनुशासन से भागने हेतु अवसर को देखते रहते हैं। इसलिये मैं आपके पथ-प्रदर्शन के लिए प्रेमपूर्ण विधि अपनाता हूँ।

आप यहाँ रहें और मिलजुल कर काम करें। किसी की आलोचना न करें। वातावरण को दूषित न करें। यदि आप सचिव लोगों को आलोचना और चिन्ता से मुक्त रखें तो वे कितना अधिक तथा अच्छे ढंग से काम कर सकेंगे। अभी तो उनका सारा समय आपके मतभेद को सुलझाने तथा आश्रमवासियों की तुच्छ माँगों को पूरा करने में व्यर्थ ही चला जाता है। यदि आप सब मिलजुल कर काम करें तो आप अनूठे काम कर सकते हैं। भगवान् आप सबको ज्ञान और आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति का आशीर्वाद प्रदान करें।

स्वामी जी की अपरम्परागत विधियाँ

स्वामी जी ने अपने सम्पूर्ण जीवन में जो भी काम किए तथा आश्रम और दिव्य जीवन संघ की स्थापना की, यह मानव-मात्र के लिए ही नहीं था वरन् यह सत्य के खोजी साधकों के लिए साधना का क्षेत्र भी था। स्वामी जी कहते थे योग किसी क्लब की मेज पर बहस का विषय नहीं है, यह दैनिक जीवन में व्यवहार के लिए है।

सेवा और दान, ये स्वामी जी के मूल गुण थे। स्वामी जी के लिए यह सोचना भी कठिन था कि मानव इन गुणों के बिना जीवित भी रह सकता है। स्वामी परमानन्द जी स्मरण करके कहते हैं—''एक बार स्वामी जी ने कहा कि आप सदा दूसरों की सेवा हेतु अवसर खोजते रहिए। वे हमें अपनी जेब में एक रुमाल रखने के लिए कहते थे और कहते थे कि इससे सत्संग में आने वाले महात्माओं और तीर्थ यात्रियों के जूते बिना उनकी जानकारी में लाए साफ करो। वे ऐसा इसलिये करते थे जिससे हमारे भीतर इस भावना का विकास हो सके कि सभी में हम ईश्वर की ही सेवा कर रहे हैं। यदि कोई इन सद्गुणों के विकास का कोई भी अवसर चूक जाता तो स्वामी जी उसे अवश्य ही स्मरण कराते।

इसके साथ-साथ स्वामी जी किसी को मात्र काम करने के लिए कभी प्रोत्साहित नहीं करते थे क्योंकि योग में सबसे प्रमुख बात है व्यवहार। वे सदा युवा कार्यकर्ताओं को सही व्यवहार करना सिखाते थे।

स्वामी परमानन्द जी को स्वामी जी ने उनकी नयी प्रकाशित पुस्तकों को प्राप्त करने के लिए भेजा। परमानन्द जी को तुरन्त मद्रास जाना आवश्यक था। इन दिनों स्वामी जी भिक्षा पर निर्वाह करते थे, इसलिये जो प्रकाशक होता था वही स्वामी जी द्वारा प्रूफ रीडिंग के लिए भेजे गये व्यक्ति का खर्च वहन किया करता था। स्वामी जी द्वारा २९ जनवरी १९३६ को एक प्रकाशक को लिखे गये पत्र से उस समय की स्थिति की स्पष्ट झलक आपको प्राप्त होगी। पत्र निम्नानुसार है—

अमर आत्मन्,

प्रत्येक पत्र में ऊपर सर्वप्रथम १२ बार हरि ॐ लिखिए। काम करते समय निरन्तर भगवान् का स्मरण करते रहना आत्म-साक्षात्कार की सरलतम विधि है।

क्या कारण है? आपने मुझे रेलवे के किराए के लिए धनादेश नहीं भेजा। जब भी धन का प्रश्न आता है हृदय धड़कने लगता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चों की बहुत चिन्ता करता है और दूसरों को भूल जाता है। वह उनकी उपेक्षा कर देता है क्योंकि वह सोचता है कि वे उससे अलग हैं। यही तो माया है, अज्ञान है। यही मृत्यु और कष्ट को लाने वाली है।

कृपया स्वामी परमानन्द जी को मद्रास भेज दें। उन्हें वहाँ कुछ अत्यावश्यक काम है। मैं एक माह के भीतर आपके पास किसी अन्य स्वामी जी को भेजूँगा। यदि आप मेरी सलाह मानें तो उसके लिए तृतीय श्रेणी के रेल टिकट का किराया भेज दें। स्वामी परमानन्द जी को इन्टर क्लास का रेल किराया तथा वहाँ रहने हेतु खर्च के लिए भी कुछ धन दे दें। आप मद्रास के श्री पी.के. विनायगम के समान बुद्धिमान् व्यक्ति हैं। कृपया स्वामी परमानन्द जी को बताये बिना एक थरमस में प्रचुर मात्रा में काफी भरकर दे दें। यही उनके काम हेतु ऊर्जा प्रदान करने वाला आहार है।

संन्यासियों के प्रति समर्पण, आस्था तथा दैवी प्रेम के साथ उनके शरीर का ध्यान रखना, यह भी आपके आध्यात्मिक विकास तथा मुक्ति हेतु एक क्षेत्र है।

आपमें दिव्य ज्योति और प्रखरतर हो!

आपका अपना

शिवानन्द

संन्यासी शिष्य से कितनी महान् सेवा और सहायता की अपेक्षा रखी जाती है, यह स्वामी जी द्वारा दिनाँक २३ फरवरी १९३६ को स्वामी परमानन्द जी को लिखे गये पत्र द्वारा परिलक्षित होती है। पत्र निम्नानुसार है—

कृपया विवेक के लिए पैसा भेजें। वह कुछ पुस्तकें खरीदना चाहता है। स्वामी निर्मलानन्द जी सरस्वती को कृपया शीघ्र ८ रुपये भेज दें। वे आगे अध्ययन हेतु बनारस जाना चाहते हैं। कृपया उन्हें दो या तीन माह में जब सम्भव हो, २० रुपये भेज दें। यदि आप उन्हें एक माह के अन्दर कुछ रुपये भेज देंगे तो वे तत्काल प्रयोग में

आने वाली कुछ पुस्तकें क्रय कर सकेंगे। यह सब कुछ मेरे खाते में जाएगा। मैं आपको बहुत कष्ट दे रहा हूँ, कृपा करके मुझे क्षमा करें, ऐसी आपसे प्रार्थना है। लोग मुझ पर दबाव डाल रहे हैं। मुझे उनकी ओर मुड़ना होगा। क्या किया जाए? हमें अपनी आवश्यकताओं का त्याग करके भी अन्यों की सेवा करनी चाहिये। उनके प्रति दया का भाव रखना चाहिये। श्री साधु के.सी. मेरी सारी पुस्तकें निःशुल्क चाहते हैं। श्री पी.के.वी. पर निःशुल्क उपहार हेतु बहुत अधिक दबाव डालना गलत है, परन्तु वे दानी हैं। अतः अन्यथा नहीं लेंगे और यह कार्य कर देंगे। श्री साधु के.सी. अपने आश्रम के लिए मुझ पर निर्भर हैं। वे वृद्ध हैं, हमें उनकी सेवा करनी चाहिये।

यह शिवानन्द जी का अनोखा तरीका था—आदेश के बाद क्षमा की प्रार्थना, डाँटने के बाद प्रार्थना, छूट देने के बाद उसे तत्काल निरस्त कर देना।

कभी-कभी स्वामी जी अपने शिष्यों से काम करवाने के लिए अनुनय-विनय की विधि अपनाते थे। वे अपने शिष्यों को श्रेष्ठ, महत्वपूर्ण तथा उत्तरदायी होने का अनुभव कराते तथा इस प्रकार उनमें सेवाभाव का विकास करते। एक उदाहरण देखिए—

अमृत जी आश्चर्यजनक रूप से विकास कर रहे हैं। वे आजकल रसोईघर के वरिष्ठ आचार्य हैं। वे एक वरिष्ठ टाइपिस्ट भी हैं। उन्हें मेरे खाते में से एक फाउँटेन पेन दे दें। निजबोध जी को गीता शंकरभाष्य की एक प्रति दे दीजिए। स्वरूपानन्द जी तथा आत्मानन्द जी को उपनिषद् (अनुवाद) का एक सेट दे दीजिए। (१९३५)

हालाँकि स्वामी जी बड़े-बड़े ग्रन्थों के लेखक, गुरु तथा स्वामी थे, वे आदेश सकते थे लेकिन उनके व्यवहार में नम्रता थी तथा उनके भीतर यह महान् गुण था कि वे अपने शिष्यों, भृत्यों आदि के साथ बराबरी का व्यवहार करते थे। उन्हें अपने समान महत्त्व देते थे। स्वामी जी उन्हें समझा-बुझा कर, समझदारी से अपनी आज्ञा का पालन करवाते थे। वे कभी भी निर्देशों या अधिकारिक आदेशों द्वारा किसी से आज्ञा पालन नहीं करवाते थे। नीचे दिया गया पत्र इसका प्रमाण है—

श्री स्वामी नित्यानन्द जी सरस्वती एक नवदीक्षा प्राप्त संन्यासी हैं। वे एक महान् व्यक्ति हैं, तमिल के अच्छे विद्वान् हैं, एक कवि हैं। वे पिछले २० वर्षों से

तिरुनेलवेली में निवास करते हैं और उनका बहुत अधिक प्रभाव है। वे प्रवचनकर्ता हैं और उन्होंने बनारस में दक्षिणी लोगों के लिए क्षेत्र बनवाए हैं। मैंने उन्हें अपनी पुस्तकों का पूरा सेट दिया है। वे उन्हें अपने प्रवचन में प्रयोग करेंगे। उनके शिष्य उनका अनुवाद करेंगे और पढ़ेंगे। कृपया तुरन्त पुस्तक का एक सेट भेज दें। (२३ जून १९३६)

स्वर्गाश्रम का एक युवक जो आपका मित्र है, जो कभी बोलता नहीं था, जो मात्र एक तौलिया लपेटे रहता था, उसने मुझसे कहा कि आपसे मैं उसे १ पौंड नसवार भेजने हेतु कहूँ। यह भी एक प्रकार का वैराग्य है। नसवार के बार-बार प्रयोग से उसकी नाक मशीनगन जैसी हो गई है। उसने इस हेतु बचकाने तर्क दिए हैं। आप हमेशा की तरह उसे एक छोटा टिन भेज दें। एक विरक्त महात्मा के लिए यह आपकी सेवा होगी। (१० जुलाई १९३६)

ऐसी सेवा के लिए स्वामी जी ने कहा कि ''इसका परिणाम कुछ पुण्य और पाप भी होगा। उनके कष्टों को कम करने के लिए पुण्य तथा उनको कष्ट पीड़ित बनाने के लिए पाप। क्या हम उनकी उस वस्तु की इच्छा की पूर्ति नहीं कर रहे हैं जो उन्हें मार डालेगी? लेकिन जो सोचते हैं अहं ब्रह्मास्मि वे पाप और पुण्य से परे होते हैं।'' स्वामी जी का दान किसी भी प्रकार की सीमाओं से परे था। उनके लिए दया के सिवा कोई नियम नहीं था। जहाँ भी कष्ट है उसे दूर करो और अपने कर्म को भगवान् को अर्पण कर दो।

स्वामी जी सभी लोगों का एक ही प्रकार से उपचार नहीं करते थे। वे सभी को एक ही गोली नहीं देते थे। उदाहरण के लिए इस घटना में उन्होंने वास्तव में धूम्रपान हेतु प्रोत्साहन दिया है। ऐसा प्रतीत होता है :

आश्रम में एक स्वामी जी बहुत अधिक सिगरेट पीते थे। एक दिन उसके पास सिगरेट नहीं थी, जिस कारण उसका मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। स्वामी जी ने इस बात पर ध्यान दिया। उन्होंने एक अन्य संन्यासी को ४ आने दिए और सिगरेट लाने के लिए कहा तथा यह भी कहा कि उस स्वामी जी की अनुपस्थिति में उनके तकिए के नीचे सिगरेट का पैकेट रख दें।

कुछ ने ऐसा अनुभव किया जैसे स्वामी जी अपने सिद्धांतों से हटकर इस वृत्ति को बढ़ावा दे रहे हैं। लेकिन ऐसा नहीं था यह स्वामी जी की उन स्वामी जी को सुधारने की एक भिन्न विधि थी। आगे क्या हुआ, देखिए, जब वह स्वामी जी वापस अपने कमरे में आए और उन्हें पता चला कि उनकी इच्छा की पूर्ति स्वयं स्वामी जी ने की है तो उसने बड़ी ही लज्जा का अनुभव किया और धूम्रपान करना छोड़ दिया। इस घटना से यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाना चाहिये कि स्वामी जी इस बात के प्रति जागरुक नहीं थे कि आध्यात्मिक साधक को आत्मसंयम की महान् आवश्यकता होती है। निम्न पत्र से स्वामी जी का आशय स्पष्ट होता है :

'य' ने मुझे एक पोस्टकार्ड भेजा। आपको धनादेश (मनीआर्डर) हेतु स्मरण कराने तथा उसकी परेशानी समझाने के लिए। वह आपको और मुझे दोनों को इस बात से परेशान करता है। संन्यासी लोग थोड़ा सा धन भी वापस लेने हेतु इतने उत्कण्ठित क्यों रहते हैं? संन्यास की भावना कहाँ है? शरीर को थोड़ा कष्ट भोगने देना चाहिये, इसमें हानि ही क्या है? (६ मई १९३६)

स्वामी जी अपने शिष्यों को शिक्षा देने के लिए बुद्धि तथा ज्ञान दोनों को संयुक्त करते थे। निम्न निर्देश देखिए—

साथ दिए हुए लेख को 'योगा इन डेली लाइफ' में शान्तिपूर्वक बिना असन्तोष व्यक्त किए अथवा शिकायत किए जोड़ना है। यही 'योग इन डेली लाइफ' (दैनिक जीवन में योग) है। (२६ जून १९३६)

स्वामी परमानन्द जी अक्सर यह घटना सुनाया करते थे। एक बार की बात है स्वामी जी के साथ रहने वाले एक शिष्य ने विद्रोही रुख ले लिया और पत्रिका हेतु भेजे जाने वाले एक लेख की प्रतिलिपि करने से मना कर दिया। स्वामी जी ने उसे कुछ नहीं कहा और चुपचाप उसके कुटीर से बाहर आ गये। एक-दो दिन बाद स्वाभाविक रूप से वह शिष्य कुछ शान्त हो गया। अब स्वामी जी ने फिर उसको पकड़ा। उन्होंने उसे तमिल की एक कहावत सुनायी ''चाहे कितना भी एक गर्भवती स्त्री रोए, बच्चे को जन्म तो उसे ही देना है'' फिर उसका मनोरंजन करने तथा उसे उपदेश देने के दृष्टिकोण से उसे एक कौपीन की कहानी सुनाई। स्वामी जी बोले—''एक बार एक कौपीन को अपने काम से अरुचि हो गई। इसलिये वह

कपड़े सुखाने की डोरी से भाग गई। उड़ते हुए वह थोड़ी दूर जाकर गिर पड़ी। उसे एक व्यक्ति ने देखा जिसे कौपीन की आवश्यकता थी, उसने तुरन्त उसे पहन लिया और आगे बढ़ गया। अब कौपीन को समझ आया कि अपना काम प्रसन्नता और पूर्ण समर्पण के साथ करने के सिवा उसके पास और कोई रास्ता नहीं है।

इस मनोरंजक उपदेश ने शिष्य पर चमत्कारिक प्रभाव डाला और उसने एक भी शब्द कहे बिना स्वामी जी के हाथ से कागज ले लिया और उसकी प्रतिलिपि तैयार की।

स्वतन्त्रता और अनुशासन

स्वामी जी की शिक्षा विधि में स्वतन्त्रता और अनुशासन दोनों का मिश्रण था। वे इन दोनों को अत्यन्त सुन्दर ढंग से तथा अत्यन्त सूक्ष्म रूप से संयुक्त करते थे, इसलिये यह उनके लिए आश्चर्यजनक ढंग से काम करती थी। स्वतन्त्रता में वे अपने शिष्य को विकसित होने का अवसर प्रदान करते और जब वह विकसित होता तब उसकी छंटाई करते। किसी से भी वे आत्मसमर्पण की माँग नहीं करते वरन् वे स्थितियाँ ऐसी निर्मित करते कि स्वाभाविक रूप से ऐसा अनुभव होता कि वे ही स्वामी हैं और ऐसी कोई बात नहीं है जो वे नहीं जानते। शिष्य स्वयं अनुभव करते कि सारी बातें किस प्रकार होती हैं, और तुलना करते कि स्वामी जी ने उनके साथ जो किया, उसके बदले में उन्होंने स्वामी जी को क्या दिया, और उन्हें यह समझ में आ जाता कि स्वामी जी अत्यन्त बुद्धिमान् और अत्यधिक निपुण हैं। फिर शिष्य स्वयं ही समर्पित हो जाता।

सामान्यतया गुरु साधना बतलाते हैं और शिष्य उसे ग्रहण करता है परन्तु स्वामी जी ऐसा कभी नहीं करते थे। वे मात्र उन शिष्यों को स्वयं साधना देते थे जो उनके साथ पूर्ण लय में होते थे। यहाँ तक कि मन्त्र दीक्षा के समय भी वे नवीन शिष्य से उसके इष्ट देव के बारे में पूछते और उसके अनुरूप मन्त्र देते थे। जब वे शिष्य को संन्यास देते तो भी उससे उसकी पसन्द का नाम पूछते थे।

वे पूर्ण स्वतन्त्रता देते थे परन्तु वे दिशा परिवर्तन हेतु बीज बोने, काँट-छाँट करने, पथ-प्रदर्शन करते तथा प्रशिक्षण देने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करते थे।

उदाहरण के लिए—जैसे ६ माह तक प्रतिदिन प्रातः तीन घण्टे ध्यानाभ्यास करने के बाद कोई शिष्य उनके पास आता और कहता कि कुछ नहीं हो रहा है तो स्वामी जी कहते—"इसके साथ-साथ तुम्हें भजन-कक्ष में थोड़ा हरे राम, हरे राम का कीर्तन भी करना चाहिये, तब ध्यान गहन होगा।" अब इस बात का असर भी होता क्योंकि यही बात यदि स्वामी जी प्रारम्भ में कह देते तो शायद इतनी प्रभावकारी न होती। शायद इसे उतनी गम्भीरता से न लिया जाता। यदि ऐसा लगता कि शिष्य थोड़ा सुस्त हो रहा है तो स्वामी जी कहते—"जाइये, रसोईघर में कुछ घण्टे सब्जियाँ काटिये, कुछ काम कीजिये।" ऐसा कहकर स्वामी जी उसे यह प्रतीत कराते कि यह तुम आश्रम की सेवा के लिए नहीं वरन् आलस्य को दूर करने के लिए कर रहे हो। फिर वे कहते—"आप थोड़ा व्यायाम क्यों नहीं करते? कुछ प्राणायाम और आसन किया कीजिये।" इस प्रकार शिष्य वह करता जो स्वामी जी को सर्वाधिक प्रिय था "सम्पूर्ण योग"। वे मात्र प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन करते थे। वे जो शिष्य से करवाना चाहते थे उसे चुनने की स्वतन्त्रता शिष्य को देते थे।

इस प्रकार स्वामी जी ने अपने शिष्यों पर अपनी इच्छा के लिए दबाव नही डाला। (हालाँकि आश्रम के अपने नियम और सिद्धान्त थे, यह अलग बात थी।) स्वामी जी तथा शिष्यों के बीच पूर्ण स्वतन्त्रता थी लेकिन यह स्वतन्त्रता शिष्य का पथ-प्रदर्शन करती उसे प्रशिक्षित करती और उसको विकसित होने देती, परन्तु यह ऐसी स्वतन्त्रता नहीं थी जो शिष्य का अहित करती।

यदि कभी आवश्यकता होती तो स्वामी जी शिष्य को सावधान करते, उसे जगा देते। उसे सैकड़ों प्रकार से सावधान किया जाता परन्तु स्वामी जी का तरीका हर बार मृदुल ही होता। वे उसे कदापि आहत नहीं करते। यह स्वामी जी का परम अनुग्रह था। परम अनुग्रह मात्र इस दृष्टिकोण से नहीं कि यह दैवी कृपा थी बल्कि इसे अत्यन्त शिष्टता से किया जाता था। इसलिये भी यह उनकी परम अनुकम्पा थी। स्वामी जी माता-पिता, गुरु, स्वामी और सर्वाधिक प्रिय मित्र सभी का सम्मिलित रूप थे। उन्हें विभक्त नहीं किया जा सकता था। यह उनकी विशेषता थी।

स्वामी जी ने अनगिनत बार कहा कि निष्काम सेवा के साथ-साथ जिज्ञासु को पवित्र धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय और ध्यान भी करना चाहिये। एक जिज्ञासु के लिए ६

घण्टे स्वाध्याय, ६ घण्टे ध्यान और ६ घण्टे सेवा, यह आदर्श दिनचर्या है। एक दिन स्वामी जी ने कहा—''मुझे यह देखकर बड़ा ही दुःख होता है कि मैं जब यह कहता हूँ कि निष्काम सेवा हेतु अपना जीवन समर्पित कर दें तो लोग मेरी बात का अर्थ भली प्रकार समझ नहीं पाते। मेरा यह कहने का अर्थ यह नहीं है कि अन्य कार्य करने के नाम पर वे अपनी व्यक्तिगत साधना न करें। एक निश्चित समय पर नित्य प्रातःकाल तथा गोधूलि बेला में की गई व्यवस्थित साधना की तुलना शेष दिन में की गई साधना, परिश्रम से नहीं की जा सकती। मेरा दबाव इस बात पर रहता है कि यदि काम को अकर्ता भाव रखकर, इस भाव के साथ कि मैं उपभोग करने वाला नहीं हूँ अथवा इस भाव से कि मैं सब कुछ भगवान् को अर्पण कर रहा हूँ, मैं भगवान् के हाथों में एक उपकरण मात्र हूँ, से किया जाए तो वह भी आध्यात्मिक साधना बन जाता है। तब आपके दिन-भर के सारे कार्यकलाप भगवान् की पूजा हो जाते हैं। आपका जीवन उस देदीप्यमान प्रकाश से आलोकित हो उठता है जिसे प्रकट दैवी चेतना को अर्पित किया जा रहा है। आप शनैः शनैः किन्तु निश्चित रूप से रूपान्तरित हो जाते हैं। यहाँ तक कि कितने ही धर्मात्मा गृहस्थ अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करते हुए नियमपूर्वक साधना कर रहे हैं। यदि आप विवेकी युवा होकर भी यह नहीं देख पाते कि हमारे मानसिक व्यवहार व भावों का हमारे कर्मों पर कितना सैद्धान्तिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है तो आप यह कैसे अपेक्षा रख सकते हैं कि जनसमूह तथा बुद्धिजीवी लोग कर्मयोग के सिद्धान्त को समझ सकेंगे? साधना क्या है और क्या नहीं, इससे सम्बन्धित सभी पूर्व धारणाओं को त्याग दें। सभी निष्काम कर्म जो आदर भाव से किए जाते हैं, उच्च साधना कहलाते हैं। यदि आप अपने सभी कार्यों को पूजा की तरह करें तो आपको निराश होने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। स्वामी वेंकटेशानन्द जी बताते हैं—

''कभी-कभी हम सभी को रसोईघर में काम करने के लिए कहा जाता था। स्वामी जी हमसे कहते थे, आलू छीलते समय, सब्जियाँ काटते समय हम सब भगवान् के नाम का जप करें। कभी-कभी हम सभी गाते थे—

''हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

और साथ-ही-साथ अपना काम भी करते रहते थे। ऐसा करने से हमें यह स्मरण रहता था कि यह भगवान् के लिए ही किया जा रहा है और इसे करने वाले भी भगवान् ही हैं। कर्म भी ईश्वर है और कर्ता भी ईश्वर और इस प्रकार कार्य स्वयं ही दिव्य हो जाता था।

एक दिन हम सब स्वामी जी के सामने बैठे काम कर रहे थे। हममें से कुछ टाइप कर रहे थे, कुछ लिख रहे थे और कुछ आय-व्यय सम्बन्धी हिसाब-किताब लिख रहे थे। स्वामी जी जब विनोद करने वाले होते तो भी वे अत्यन्त सुन्दर तरीके से करते थे। वे अपना चश्मा अपने सिर पर चढ़ा लेते, दोनों कोहनियों को मेज पर रख लेते और एक आँख बन्द कर लेते और दूसरी आँख से हमारी ओर देखते, उनके मुख पर एक शरारत भरी मुस्कान रहती। फिर वे कहते—"क्या इस प्रकार का काम आप दिल्ली में नही कर सकते थे?" हमने उत्तर दिया—"जी, स्वामी जी।" "फिर आप सब यहाँ क्यों आए हैं? आश्रम में आप मोक्ष प्राप्त करने के लिए जाते हैं परन्तु यहाँ भी आपको वही काम करना पड़ रहा है जो आप किसी सरकारी नौकरी में करते। क्या यह कर्मयोग आपमें से प्रत्येक अपने स्थान पर रहते हुए नहीं कर सकता था? तो फिर आप यहाँ क्यों आए हैं?"

हम सभी शान्त थे। कुछ देर पश्चात् उन्होंने स्वयं ही उत्तर दिया—"आप यहाँ इसलिये आए हैं क्योंकि यहाँ ईश्वर की पवित्र शक्ति जाग्रत है। जब आप जीवन संग्राम में उलझे रहते हैं तो आप भ्रमित रहते हैं, इस कारण वहाँ पर आपके लिए इस शक्ति का विकास करना अत्यधिक कठिन होता है। जब आप गुरु के चरणों में रहते हैं, उनके सान्निध्य में रहते हैं, तभी यह शक्ति अनावृत होती है। जब आप यहाँ से अपने पूर्व के संसार में वापस जाते हैं तो आप वही नहीं रहते जो पूर्व में थे। इसलिये यह संसार भी आपके लिए परिवर्तित हो जाता है। आपको एक नयी दृष्टि मिल जाती है। आपको प्रशिक्षित करना ही आश्रम की सच्ची भूमिका है।

आलस्य

स्वामी शिवानन्द जी चाहे कोई व्यक्ति धीरे-धीरे काम करे, गल्ती करे अथवा अयोग्य हो, उसके साथ अत्यन्त धैर्यपूर्वक व्यवहार करते थे, लेकिन आलसी व्यक्ति को वे बिलकुल सहन नहीं करते थे।

आप अन्य व्यक्ति से काम कैसे करा सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि आपको स्वयं उसके सामने उदाहरण प्रस्तुत करना होगा और स्वामी जी तो स्वयं श्रेष्ठ प्रत्यक्ष उदाहरण थे ही। एक बार स्वामी जी ने कहा कि "मैं स्वयं ही अत्यधिक काम नहीं करता, मैं दूसरों से काम करवाना भी जानता हूँ", और वे दूसरों से भी काम बड़े ही प्रेम से करवाते थे।

स्वामी जी कभी-कभी आराम कुरसी पर बैठ जाते और एक आँख बन्द करके इस प्रकार देखते (संलग्न चित्र) थे और उनके इस प्रकार देखने में कुछ विशेष बात थी जो समाने वाले को मन्त्रमुग्ध कर देती थी। यदि शिष्य आलसी होता और इस पर भी ध्यान नहीं देता तो स्वामी जी उसे कुछ फल, दूध, बिस्किट आदि कोई उपहार आदि देते। जब वह स्वामी जी के पास जाता तो स्वामी जी उसका अभिवादन करते और उसके अच्छे गुणों की प्रशंसा करते, यह उनका अप्रत्यक्ष तरीका था और इसका अर्थ था कि तुम एक अद्भुत सद्गुण सम्पन्न व्यक्ति हो, फिर तुम कुछ करते क्यों नहीं? कभी-कभी शिष्य को समझ में आ जाता और यदि वह नहीं समझता और कहता कि स्वामी जी मैं ६ घण्टे ध्यान करता हूँ तो स्वामी जी कहते—"बहुत अच्छा। तुम्हें ध्यान अवश्य ही करना चाहिये, परन्तु थोड़ा कीर्तन और भजन भी किया करो।" कभी-कभी शिष्य इससे ऐसा समझ लेता कि स्वामी जी उसे ध्यान मात्र करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं, तो वह और अधिक आलसी हो जाता। अब स्वामी जी उसके सामने किसी और के बारे में चर्चा करते हुए कहते कि 'वह कितना कर्मठ है, प्रत्येक उसी के समान बनना चाहता है।' यदि इस बात को भी शिष्य नहीं समझता तो स्वामी जी उससे कहते कि 'जाओ और जाकर कुछ काम करो।' स्वामी जी थोड़ी देर के लिए बिजली की तरह कड़कते ओर फिर उस पर शहद, दूध आदि की वर्षा कर देते। यदि यह उपाय भी असफल हो जाता और आश्रम में आर्थिक परेशानी रहती तो स्वामी जी पहले व्यक्ति होते जो उसे आश्रम से बाहर जाने के लिए कहते।

एक जिज्ञासु था जो स्वप्न देखा करता था, कल्पनाएँ करता था और अकर्मण्य था और अपनी अकर्मण्यता को ही अपनी आन्तरिक आध्यात्मिक श्रेष्ठता को प्रकट करने का माध्यम समझता था। एक दिन स्वामी जी भजन-कक्ष के बरामदे में खड़े

कुछ वार्तालाप कर रहे थे। उसी समय यह युवक आराम से आलस्यपूर्वक चलते हुए आया और वह उसी समय स्वामी जी की दृष्टि में आ गया। स्वामी जी ने उसे बुलाया—"इधर आइये, क्या आपको भोजन नहीं मिला? क्या रसोईघर में कुछ नहीं है या आपके पास खाने के लिए समय नहीं है? अभी तो आपके बाल भी सफेद नहीं हुए हैं, फिर आप आधे भूखे आदमी की तरह आचरण क्यों कर रहे हैं? आपका यौवन और शक्ति कहाँ है? आप फुर्ती से काम क्यों नहीं करते? अब मैं आपकी शक्ति देखना चाहता हूँ। जाइये, और भजन-कक्ष के चक्कर लगाइये। वह युवक दौड़ने लगा। स्वामी जी ने कहा—"मैं इस युवक को सेना के शिविर में देखना चाहता हूँ। मात्र सेना में जाकर ही इस मूर्छित साधुओं में उत्साह पैदा हो सकता है। मैं सोचता हूँ कि यह युवा पैदा ही आलसी हुआ है। इसने सोचा होगा कि संन्यास जीवन और अकर्मण्यता एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। ये लोग ऐसे विचार कहाँ से ले आते हैं? ये तो भगवान् ही जानें। अब तक वह युवक दौड़ना समाप्त करके मुख पर लज्जा का भाव लिए स्वामी जी के पास खड़ा था। अब स्वामी जी उसकी तरफ मुड़े और बोले—"आपको शहर के एक व्यस्त व्यक्ति तथा चिकित्सा महाविद्यालय के युवा छात्र से सबक लेना चाहिये। उसे देखो किस प्रकार वह मंजिल-मंजिल, वार्ड से वार्ड, एक बरामदे से दूसरे बरामदे में दौड़-दौड़ कर जाता है और अस्पताल के काम करता है। संन्यास लेने वाले व्यक्ति को इन सबसे अधिक कर्मठ होना चाहिये क्योंकि वह उन सब कष्टकारक गतिविधियों तथा बाधाओं से पूर्णतया मुक्त रहता है जो एक सांसारिक मनुष्य को घेरे रहती है। कल से तुम एकदम ऊर्जावान बन जाओ। मैं आपको अब हमेशा दौड़ते हुए देखूँ। आप मुझे अब प्रत्येक स्थान पर दिखाई दें। संत समाज का निर्माण अकर्मण्य लोगों से नहीं होता। यदि ऐसा होता तो मेज, कुरसी, स्तम्भ सब संत बन जाते। स्वयं को झकझोरें और एक बहुमुखी कार्यकर्ता में परिवर्तित कर दें।

योग वेदान्त की कक्षा में स्वामी जी सदा ऊँघने वाले विद्यार्थियों को पकड़ते और पूछते—"मैंने इस कक्षा में जो मुख्य बातें बताईं वे आपने लिखीं? स्वाभाविक रूप से उसने उन्हें नहीं लिखा होता था। तो स्वामी जी उससे कहते—"कक्षा समाप्त होने के बाद जब मैं अपने कमरे में वापस जाऊँ तो आप वहाँ आयें। मैं आपको पुनः उन पर व्याख्यान दूँगा। उन बिन्दुओं को बताऊँगा जो मैंने इस कक्षा में बताए हैं। इन

सभी पर गहन ध्यान करने से उससे सम्बन्धित अन्य उत्कृष्ट विचार उत्पन्न होते हैं। मैं इन सबको एक लेख में संग्रहित करके संसार के सामने प्रस्तुत करूँगा।

आश्रम में एक जिज्ञासु था जिसे ध्यान करना बड़ा रुचिकर लगता था। वह गंगा जी के किनारे एक चट्टान पर कम-से-कम दो-तीन घण्टे एकदम स्थिर बैठा रहता था। जो भी उसे देखता, यह सोचता कि वह मात्र ध्यान ही नहीं कर रहा वरन् परम चेतना का आनन्द ले रहा है। पता नहीं कैसे एक दिन स्वामी जी ने उससे पूछा कि 'आप प्रातः की कक्षाओं में क्यों नहीं आते?' वह बोला—"स्वामी जी, मुझे ध्यान करना अच्छा लगता है। मैं प्रतिदिन तीन घण्टे ध्यान करता हूँ।" स्वामी जी का उस समय विनोद करने का विचार था, अतः उससे बोले—"सावधान रहें, कहीं ऐसा न हो गंगा जी में डूब जायें। शायद ध्यान करते हुए आप परम चेतनावस्था में पहुँच जायें और बह जायें।"

थोड़ा रुककर स्वामी जी ने कहा—"परमानन्द की अवस्था में शीघ्र पहुँचने का मार्ग आपको ज्ञात है? मैं बताता हूँ। अच्छा ठण्डा चावल लायें और भैंस के दूध से निर्मित दहीं, दोनों को खा लें। अब एक सुन्दर नर्म बिस्तर बिछायें। उस पर एक नर्म तकिया रखें और पैर फैला कर सो जायें। गहरी साँस लें और घुर्राटे भरें। आप तत्काल परमानन्द की अवस्था में पहुँच जायेंगे। एक शिला पर शिला की भाँति बैठे रहने से यह स्थिति अधिक श्रेष्ठ है। यह सुनकर वह जिज्ञासु उलझन में फंस गया तो स्वामी जी ने से समझाया—"ध्यान का अर्थ है अनन्त को स्पर्श करना। यह उस सर्वज्ञ ईश्वर से संयोग है। क्या आप जानते हैं कि यदि आप सही में पाँच मिनट भी ध्यान कर लें तो आपके भीतर कितनी अद्‌भुत शक्ति आ जाती है? आप संसार को बदल सकते हो। आप इस अन्तरिक्ष को चमड़े के टुकड़े के समान लपेट सकते हैं। कुछ मिनटों के ध्यान द्वारा इतने आश्चर्यजनक काम किए जा सकते हैं और आप तो महीनों से ध्यान कर रहे हैं। आपने क्या प्राप्त किया? कुछ नहीं। इससे तो अधिक अच्छा है कि आप आश्रम में भोजन पकाने के लिए गंगा जी से पानी भर कर लायें। आपका सारा आलस्य भाग खड़ा होगा। कर्मशली बनें। सेवा करें। तब आपको पता चलेगा शुद्धता क्या है? और जब आपका मन शुद्ध हो जाएगा तभी आप ध्यान करने योग्य बन सकोगे।

जब स्वामी जी को किसी शिष्य की गल्ती बताई जाती तो वे तब तक नहीं मानते जब तक वे स्वयं अपनी आँखों से देख नहीं लेते। यदि स्वामी जी को किसी के दुर्गुण बताए जाते तो वे उसके सद्‌गुण गिनाने लग जाते और कुछ दिनों तक उसके प्रति और अधिक स्नेह प्रदर्शित करते। यदि शिकायत फिर भी बनी रहती तो इसका अर्थ यह था कि बात में कुछ सच्चाई है। स्वामी जी गल्ती करने वाले शिष्य से अत्यधिक प्रेम करते। जब उन्हें यह अनुभव हो जाता कि वह उनके प्रेमजाल में फंस गया है, उसके हृदय पर उनका अधिकार हो गया है तब वे उसे सावधान करते परन्तु इस प्रकार से कि उसके हृदय को चोट न पहुँचे। क्योंकि यदि किसी के हृदय को किसी बात से चोट पहुँचती है तो वह इसका विरोध करता है और फिर वह सुधरना नहीं चाहता, स्वामी जी ऐसा कदापि नहीं चाहते थे। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर जो अच्छाई है उसे प्रकट करने के लिए स्वामी जी उसकी बुराई को ढील देकर रखते थे और इस विधि से वे अपने आध्यात्मिक परिवार में एक और भाई प्राप्त कर लेते थे।

स्वामी जी के लिए इस पृथ्वी पर ऐसा कोई मनुष्य नहीं था जिसमें कोई अच्छाई न हो और जिसे सुधारना असम्भव हो। उनकी दृष्टि में जो पक्का दुष्ट होगा वह स्थाई रह ही नहीं सकता। वे सर्वत्र भगवान् और देवत्व के दर्शन किया करते थे और देवत्व उनकी परम ओजस्विता के साथ संयुक्त होकर उनके आत्मबल के साथ एक हो गया था। यह तत्काल सभी में स्थित सद्‌गुणों को जाग्रत करता और उनको शक्ति प्रदान करता था। जबकि इससे लाभान्वित होने वाला साधक इससे अनभिज्ञ रहता था। यही कारण था कि स्वामी जी आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के प्रति अत्यधिक अनुकूलता प्रकट करते थे। स्वामी जी के लिए मनुष्यों को संत में परिवर्तित करने के इस कार्य से महान् और कोई यज्ञ नहीं था।

यदि साधक में कोई सतही दोष होते जैसे भोजन सम्बन्धी कोई बुरी आदत, तो वह यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण में शीघ्र ही उससे मुक्ति पा लेता था। यदि साधक के भीतर अन्य छोटी-छोटी दुर्बलताएँ अथवा आरामदायक वस्तुओं की लालसा आदि होती तो स्वामी जी उसे वे वस्तुएँ स्वयं प्रदान कर देते जिससे उसे तात्कालिक होने वाले पतन से बचाया जा सकता। स्वामी जी को यह विश्वास था कि थोड़ी देर से साधक इन दुर्बलताओं से उबर जाएगा और उन सुविधाओं को त्याग देगा। यदि

उसके भीतर ये दुर्बलताएँ गहरी स्थित हैं तो भी यदि वह स्वामी जी के हाथों में एक उपकरण की भाँति कार्य करे तो वह इतना योग्य बन जाता कि वह हजारों अन्य लोगों का उत्थान करता। यही स्वामी जी का चमत्कार था। जिस व्यक्ति का सारा संसार तिरस्कार करता था स्वामी जी उसे अपनी शरण में ले लेते थे और उसे एक बहु उपयोगी नागरिक में परिवर्तित कर देते थे। किसी मनुष्य के भीतर आपको जो दोष दिखाई दे रहे हैं उनके लिए उसका तिरस्कार करना भयंकर भूल है। स्वामी जी ऐसा कभी नहीं करते थे। वे एक दैत्य से भी बहुत अच्छा काम करवा सकते थे।

स्वामी जी अक्सर निम्न उदाहरण द्वारा धैर्य और सहनशीलता की आवश्यकता को समझाते थे—''यदि आप एक कंटीली झाड़ी के पास से जा रहे हैं, उसी समय एक हवा का झोंका आता है और आपकी शॉल झाड़ी में उलझ जाती है। अब यदि आप इसे खींचकर निकालेंगे तो यह फट जाएगी। आपको उसी समय रुकना होगा और धीरे-धीरे धैर्य पूर्वक एक-एक काँटे को अलग करना होगा। व्यक्ति को अपनी दुष्ट प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए इसी प्रकार धैर्य और सहनशीलतापूर्ण व्यवहार की आवश्यकता होती है। स्वामी जी तो लगभग नित्य ही अपने व्यवहार द्वारा अद्भुत धैर्य और सहनशीलता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करते थे।

स्वामी जी के धैर्य का परीक्षण अक्सर होता रहता था। यदि कोई जिज्ञासु व्यक्तित्व निर्माण हेतु स्वयं को किसी संत को समर्पित कर दे तो वह बड़ा ही भाग्यवान् है, लेकिन कभी-कभी कोई यह सोच लेता कि वह जन्म से ही संत है तो वह स्वामी जी द्वारा उसके व्यक्तित्व परिवर्तन हेतु किए जा रहे प्रयासों का विरोध भी करता और यहाँ तक कि उसके इस व्यवहार से स्वामी जी के स्थान पर स्वयं उसके पिता भी होते तो क्रोधित हो उठते लेकिन स्वामी जी ऐसी परिस्थिति में अपना कार्य रोककर उसे अत्यन्त प्रेम करते, जिससे उसे शायद समझ आ जाए। कभी-कभी वह युवक स्वामी जी की छत्रछाया को छोड़कर चला भी जाता, किन्तु इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात यह होती कि स्वामी जी उस युवक के प्रति बिल्कुल उदासीन रहते। जबकि स्वामी जी ने जिस भवन का निर्माण वर्षों तक धैर्य और परिश्रम से किया था उसे उस जिज्ञासु ने क्षणभर में तहस-नहस कर दिया था, परन्तु स्वामी जी ऐसा प्रदर्शित करते जैसे वे उससे एकदम असम्बद्ध हैं। स्वामी जी को देखकर ऐसा

अनुभव होता जैसे वे इसके बारे में सबकुछ भूल चुके हैं। लेकिन नहीं अब वे एक महान् चमत्कार करते। वे उस जिज्ञासु को शान्तिपूर्वक आश्रम छोड़ कर जाने देने के पहले उसके चारों ओर अप्रत्यक्षरूप से अपनी शुभकामनाओं और आशीर्वाद का मोहिनी अस्त्र डाल देते, जिससे उसे वापस आना ही पड़ता, तथा जब वह आश्रम में वापस आता तो स्वामी जी उसके साथ इस प्रकार व्यवहार करते जैसे वह सदा से आश्रम का अंग है, जैसे वह कभी यहाँ से गया ही न हो।

शिष्यों के साथ निर्वाह करना कितना ही कठिन होता, वे चाहे स्वामी जी द्वारा दिए गये प्रशिक्षण के प्रति कितना ही रूखा व्यवहार करते परन्तु स्वामी जी कदापि आशा नहीं त्यागते। वे अपना काम करते रहते। यदि शिष्य स्वामी जी की इच्छा को न समझ पाता तो स्वामी जी ऐसी स्थिति उत्पन्न करते कि शिष्य उसे समझ सके। यह स्वामी जी का विशिष्ट तरीका था और इसी कारण वे ४० वर्षों तक अथक कार्य कर सके।

बीते चालीसवें दशक में यदि स्वामी जी के पास किसी की शिकायत की जाती तो स्वामी जी उस पर विश्वास ही नहीं करते थे। स्वामी जी के सामने कोई भी झगड़ा नहीं कर सकता था। यदि झगड़ा होता भी तो स्वामी जी की पीठ के पीछे ही होता था। यदि कोई आश्रमवासी स्वामी जी के पास शिकायत लेकर आता तो वे कहते—"ओह, ऐसा है क्या?" लेकिन वे उसकी बात पर तब तक विश्वास नहीं करते थे जब तक वे स्वयं अपनी आँखों से देख नहीं लेते, चाहे यह शिकायत धूम्रपान करने से सम्बन्धित क्यों न हो। मान लीजिए कि उन्हें पता चलता कि अमुक-अमुक धूम्रपान करता है और स्वामी जी को लगता कि इस बात में कुछ सत्यता है तो वे धूम्रपान से होने वाली हानियों पर एक लेख लिखते और जिसकी शिकायत आयी है, यदि वह एक अच्छा टाइपिस्ट है तो उसे ही यह लेख टाइप करने के लिए दे देते।

ऐसा होना आवश्यक तो नहीं था परन्तु ऐसा सम्भव है कि जब वह व्यक्ति इस लेख को टाइप करता तो यह सन्देश धीरे से उसके हृदय में प्रविष्ट हो जाता। यदि वह टाइपिस्ट न होता तो स्वामी जी किसी और से टाइप करवाते और सन्ध्या के सत्संग में लाने के लिए कहते। सन्ध्या के सत्संग में स्वाध्याय के समय शास्त्रों में से उनका

लेख पढ़ा जाता था। उस दिन स्वामी जी कहते (उदाहरण के लिए टाइपिस्ट का नाम मुकुंद है) मुकुंद क्या आपने वह लेख टाइप कर लिया, जरा इन्हें (धूम्रपान करने वाले शिष्य को) पढ़ने के लिए दीजिये। सत्संग में इतने सारे लोगों के सामने वह जोर-जोर से पढ़ता ''धूम्रपान न करें, धूम्रपान करने से शनैः शनैः मृत्यु निकट आती है। इससे आपके फेफड़े विषैलै हो जाते हैं आदि आदि। इसलिये धूम्रपान करना छोड़ दें। सम्भवतः इससे वह कुछ सन्देश ग्रहण करता।

कभी-कभी स्वामी जी जिज्ञासुओं को किसी विषय पर भाषण देने के लिए कहते थे। जैसे यदि कोई बहुत अधिक क्रोध करता है तो उसे क्रोध पर ही बोलने के लिए दिया जाता और चूँकि भाषण देते समय तो वे ऐसा बोल ही नही सकता था कि क्रोध करना अच्छी बात है, वह तो उस समय यही कहेगा कि आध्यात्मिक साधक को पूर्णतः शान्त और धैर्यवान होना चाहिये, और स्वाभाविक रूप से जब वह ऐसा कह रहा होगा तो उसे सुन भी अवश्य ही रहा होगा।

शायद कई लोगों के लिए स्वामी जी एक शिक्षक थे जो उन्हें शिक्षा देते थे। एक अच्छे व्यक्ति थे जो उनकी देखभाल करते थे। बहुत से लोग अपनी निर्धनता के कारण आश्रम आते थे क्योंकि स्वामी जी उनकी देखभाल करते थे। कई निराश होकर स्वामी जी के पास आते और स्वामी जी उनके मन में नयी आशा का संचार करते थे। बहुत से ऐसे लोग थे जो यह नहीं समझ पा रहे थे कि वे क्या करें? उन्हें स्वामी जी काम दे देते। स्वामी जी भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न थे। वे लोगों की सहायता के लिए उनके बराबर के स्तर पर आ जाते थे। ऐसा वे इसलिये नहीं करते थे कि उन्हें इन लोगों का साथ प्रिय था, बल्कि वे उन्हें ऊपर उठाने के लिए ऐसा करते थे। यदि ये लोग ऊपर उठना अस्वीकार कर देते तो स्वामी जी उन्हें जिस आध्यात्मिक स्तर पर वे थे, उसी पर छोड़ देते थे और उनकी जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर उनके साथ निराश्रित जनों की भाँति व्यवहार करते थे।

८ मार्च १९४८ की यह घटना स्वामी जी की विशिष्ट कार्यशैली तथा लोगों के कष्टों को समझने की दैवी दृष्टि की झलक देती है। दो लोगों को आपस में गलतफहमी हो गई। वे स्वामी जी के पास गए। स्वामीजी ने दोनों की बातें ध्यान से सुनीं। यह पंचायत बड़ी ही अद्‌भुत थी। अद्‌भुत से आशय यह है कि इस संसार में

कोई भी ऐसा कानून नहीं है जो वादी तथा प्रतिवादी दोनों में कुछ अच्छाई देखता हो और समस्या की जड़ पर चोट करता हो तथा शाखाओं को काटने के स्थान पर समस्या को ही समूल नष्ट कर देता हो।

अभियुक्त से स्वामी जी ने कहा—"देखो, जब व्यक्ति उद्यम क्षेत्र में अकेला जाता है तो उसका अपने भीतर से सामना होता है। अभी तक यह भीतरी प्रवृत्ति गुप्त रहती है और जब इन्हें अनुकूल परिस्थितयाँ मिलती हैं तब ये छुपी प्रवृत्तियाँ प्रकट होती हैं।

जो कुछ भी अन्य व्यक्ति कह रहा है उसमें कुछ-न-कुछ सच्चाई अवश्य होगी, प्रत्येक साधक को इस ढंग से सोचना चाहिये। फिर बैठकर शान्त चित्त से आपको उस पर मनन करना चाहिये, आत्म विश्लेषण करना चाहिये तथा जिन विशेषताओं की ओर उसने इंगित किया है, उन्हें ढूँढ निकालना चाहिये। कुछ लोगों की प्रकृति अति संवेदनशील होती है। इसे हमें उनका दोष नहीं मानना चाहिये, और न ही उन्हें इसके लिए आहत करना चाहिये। हमें यह ध्यान होना चाहिये कि हम क्या कर रहे हैं। हमें अपनी तरफ से उनकी संवेदनशीलता को समझना चाहिये तथा उनका सम्मान करना चाहिये।

उनकी संवेदनशीलता कभी-कभी हमें आक्रमक लगती है, लेकिन फिर भी हमें उनके प्रति कृतज्ञता का अनुभव करना चाहिये तथा हमारे दोषों के प्रति ध्यान दिलाने के लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहिये। यह वह आधारभूत सद्गुण है जिसका प्रत्येक साधक को विकास करना चाहिये। तभी उनकी उन्नति सम्भव है। दोषारोपण करने वाले व्यक्ति से स्वामी जी ने कहा—

यदि प्रत्येक व्यक्ति एक साधक बनने का प्रयास करे तो न कोई शिकायत होगी, न झगड़ा। साधक का व्यवहार सदा निष्काम्य सेवा का होना चाहिये तथा उसे एक पूर्ण और अच्छा साधु बनने का प्रयास करना चाहिये। फिर बदला लेने की कोई आवश्यकता ही नहीं होगी। भगवान् ने आपको प्रत्येक सुख-सुविधाएँ प्रदान की हैं। आपने कभी थोड़ी भूख का भी सामना नहीं किया, न कभी आपको असुरक्षा का सामना करना पड़ा, न ही आपको कभी प्रकृति की दया पर निर्भर रहना पड़ा। आपको एक वैभवशाली संस्थान मिला जो आपकी देखभाल एक स्नेहमयी माँ के

समान करता है। मैं जानता हूँ भिक्षा के लिए क्षेत्र की ओर भागना क्या होता है? मुझे पता है सड़क के किनारे सोना क्या होता है? ये सभी बातें सदा साधक के मानसिक नेत्रों के सामने होना चाहिये। ये साधु के जीवन के सिद्धान्त हैं। हमें ऋषिकेश के साधुओं से अपने स्तर की तुलना करनी चाहिये। हमें उनसे हजार गुना अधिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। हमें इसके लिए भगवान् के प्रति सदा कृतज्ञ होना चाहिये। इस शिकायत करने की मनोवृत्ति को दूर करना चाहिये। तत्पश्चात् उन्होंने दोनों से कहा—''यह घटना इस तथ्य को उजागर करती है कि कहीं-न-कहीं दिलों में मतभेद अवश्य है। झगड़ा तभी होता है जब कहीं मतभेद होता है अन्यथा दोषारोपण करने वाला कभी दोष ही नहीं लगाता और अपराधी स्वयं अपनी गल्ती स्वीकार कर लेता है, तथा किसी भी प्रकार के कानून की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। सभी लोगों को वसुधैव कुटुम्बकम (यह सारी पृथ्वी हमारा ही परिवार है) की भावना का विकास करना चाहिये, तभी झगड़े रुकेंगे। तब हृदयों में एकता होगी और आपका हृदय सभी के हृदयों के साथ मिलकर धड़केगा। आपको सबसे प्रेम करना चाहिये। यदि एक बार दरार पड़ जाती है तो उसे भरना कठिन होता है। लेकिन ऐसा करना सम्भव है। इसके लिए चाहिये सतत्, लम्बा तथा प्रेमपूर्वक प्रयत्न। जिससे कि अन्य व्यक्ति को अपने ईर्ष्या तथा द्वेष आदि को दूर करने तथा प्रेम के आन्तरिक भाव को और आपके सही स्वभाव को समझने का समय मिल सके।

संन्यास-दीक्षा

स्वामी जी अपने आश्रम में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का स्वागत करते थे। जो भी उनसे मन्त्र-दीक्षा चाहता, उसे दे देते थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया वे युवा और वृद्ध दोनों को बिना किसी भेद के संन्यास-दीक्षा देने लगे। वे पुरुषों-स्त्रियों, भारतीयों अथवा विदेशियों को स्वयं प्रत्यक्ष रूप में अथवा डाक से भी संन्यास-दीक्षा दे देते थे।

संन्यास के बारे में एक प्रवचन में स्वामी जीने कहा उपनिषदों ने विशेष बल देकर कहा है कि संन्यास के बिना मोक्ष सम्भव नहीं है। यह निष्काम्य कर्मों के करने से चाहे वे सत्कर्म ही क्यों न हों या अन्य किसी भी साधन से भी नहीं प्राप्त हो सकता।

संन्यास से आशय यह है कि मेरेपन की भावना का त्याग, अहंकार और मेरेपन के भाव का त्याग करने पर ही मनुष्य अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

निःसन्देह संन्यास का मार्ग काँटों से भरा है। यह तलवार की धार पर चलने के समान है। लेकिन इस पृथ्वी पर सभी कालों में ऐसे संत रहे हैं, ऐसे साहसी पुरुष रहे हैं, जिनके अन्तर में इस संसार से संन्यास लेकर निवृत्ति मार्ग पर चलने और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने की अग्नि प्रज्वलित थी। आपको इस संसार में ऐसे अपूर्व बुद्धि सम्पन्न श्रेष्ठ पुरुष जिनके भीतर प्रबल वैराग्य तथा मुक्ति की ज्वलन्त आकांक्षा विद्यमान है, सदा ही मिलेंगे। वे इस भौतिक जगत् से संन्यास ले लेते हैं। इस जगत् में संन्यासी सदा ही रहे हैं। कोई भी राजनैतिक अथवा सामाजिक तन्त्र लोगों को इस संसार को त्यागकर संन्यास जीवन अपनाने पर पाबन्दी नहीं लगा सकता। संन्यासी आध्यात्मिकजनों तथा आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन के बिना इस संसार में सुख और शान्ति नहीं हो सकती। ये वे सूर्य हैं जो अज्ञानता और दुर्गुणों के अन्धकार को दूर कर सकते हैं। ये ही देश और संसार का मूल आधार हैं।

इस प्रबुद्ध समाज का यह कर्तव्य है कि वे ऐसे संन्यासियों को सहारा दें तथा उनके सत्य की खोज के लक्ष्य में यथासम्भव सहयोग करें। और संन्यासीगणों का कर्तव्य है कि समाज की सेवा करें तथा समाज के स्त्री-पुरुषों को अमूल्य आध्यात्मिक प्रसाद प्रदान करें।

कुछ लोग मुझसे प्रश्न करते हैं कि मैं युवकों को अपने आश्रम में प्रवेश देकर उन्हें संन्यास क्यों दे देता हूँ? वह इसलिये कि संन्यास के लिए वे ही सर्वथा उपयुक्त हैं। केवल युवक ही प्रबल साधना तथा तपस्या कर सकते हैं। एक वृद्ध व्यक्ति क्या कर सकता है? जब वह मृत्यु की कगार पर होता है तब कोई उसके कानों में महावांक्य (तत्-त्वम्-असि) कहता है। इस समय तक तो उसके कान ये शब्द भली-भाँति सुन भी नहीं पाते। उनकी भी शक्ति क्षीण हो गई होती है। ओह! ऐसे संन्यास से क्या लाभ? मुझे ऐसे युवक चाहिये जो साहसी, वैराग्यवान, विवेकी तथा उत्साही हों तथा जो लौह-संकल्पशक्ति से सम्पन्न हों तथा उनका शरीर पुष्ट और सुदृढ़ हो। उनका शरीर तथा नाड़ियाँ दृढ़ हों। जो हिमालय को चूर-चूर कर दें। जो समुद्र को सुखा दें (उसका पानी पी कर), जो मृत्यु को डरा दें, जो पैसीफिक

महासागर को तैर कर पार कर लें। जो माउँट एवरेस्ट को उखाड़ दें, जो अग्नि के गोले को निगल जाएँ। वे युवा संन्यासी धन्य हैं जिन्होंने इस संसार की वासनाओं को त्यागने का साहस किया और संन्यास का आलिंगन किया।

ये जिज्ञासु बाह्य दृष्टि में आपको युवा दिखाई देते हैं। वे शरीर से युवा दिखते हैं लेकिन मन से युवा नहीं हैं। उनका हृदय परिपक्व है। उन्होंने अपने पूर्वजन्म में जो साधना की है उसी के कारण उनके हृदय में वैराग्य का उदय हुआ। ऊपरी तौर पर ऐसा लगता है कि उन्होंने भावावेश में आकर अपने परिवार की उपेक्षा की है अथवा अपने माता-पिता, पत्नी और बच्चों को छोड़ दिया है, किन्तु ऐसा नहीं है। इन युवकों ने भगवान् की खोज में सारे संसार का त्याग कर दिया। उन्होंने अपने परिवार को भगवान् की सुरक्षा में सौप दिया है। भगवान् उनकी देखभाल करेगा। वास्तव में भगवान् ही सबकी देखभाल करते हैं, परन्तु आप भ्रम और मोह के कारण ऐसा सोचते हैं कि आप अपने बच्चों और माता-पिता की देखभाल करते हैं। नहीं, नहीं, मात्र वही आप सबकी रक्षा करते हैं। जब पुत्र इस संसार से संन्याँस लेता है तो माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्यों को ऐसा सोचना चाहिये कि उसने सर्वश्रेष्ठ कार्य किया है तथा इसी क्षण से उन्हें भगवान् में अपना विश्वास पुनः जगाना चाहिये तथा उन्हें अपने स्थान पर रहकर ईश्वर तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिये।

ऐसा नहीं है कि स्वामी जी से दीक्षा प्राप्त सभी संन्यासी अपनी शपथ पर दृढ़ रहे। कुछ ने ऐसा भी व्यवहार किया जो संन्यासी के लिए अपमानजनक था तथा कुछ गृहस्थ बन गए। जब स्वामी जी की उपरोक्त बातों के लिए आलोचना की गई तो उन्होंने कहा—"हाँ, ऐसे कई स्वामियों के उदाहरण हैं जो ऐसे काम करते हैं जो एक संन्यासी से अपेक्षित नहीं हैं तथा कई ऐसे भी संन्यासी हैं जिन्होंने गेरुआ वस्त्र त्याग कर विवाह कर लिया है। लेकिन फिर भी वे आपसे आदर प्राप्त करने योग्य हैं। क्योंकि कम-से-कम एक दिन तो वे संन्यासी थे। उनके भीतर इस बात को कहने का साहस था कि 'मैंने तीनों लोकों के सुखों को त्याग दिया है।' उनमें प्रकृति की महान् शक्तियाँ (आत्म सुरक्षा तथा प्रजनन) जो इस संसार को चलाती है, के विरुद्ध खड़े होने का साहस तो था। यदि एक व्यक्ति संन्यास जीवन में असफल हो गया तो आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि संन्यास युवाओं के लिए अनुकूल नहीं है।

स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ तथा स्वामी दयानन्द जी जैसे महान् संन्यासी जनों के बारे में तो कुछ बताने की आवश्यकता नहीं है। ये सभी युवा ही थे जब उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। वास्तव में आप पाएँगे कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण संन्यासियों ने इस संसार को तभी त्यागा जब वे युवा थे। एक वृद्ध मनुष्य क्या कर सकेगा? यदि वह इस समय संन्यास लेगा तो वह नकली संन्यास होगा।

गुरु और शिष्य

स्वामी जी ने अपनी पुस्तकों में परम्परागत शिक्षाओं का सार दिया है लेकिन इन शिक्षाओं के सिवा इनमें यह गुप्त सन्देश छिपा रहता था कि इस सत्य के सम्पर्क में कैसे रहें और इसे अपने जीवन का अभिन्न अंग कैसे बनाएँ। उनकी सारी शिक्षाएँ उनमें मूर्तिमान् थीं। उदाहरण के लिए हालाँकि उनका सम्पूर्ण जीवन सच्चे अर्थों में कर्मयोग था, परन्तु उनके द्वारा लिखी कर्मयोग साधना जैसी पुस्तक अन्यत्र मिलना कठिन है। हालाँकि वे अधिक भाषण नहीं देते थे किन्तु अत्यन्त थोड़े शब्दों में जो निर्देश वे अपने शिष्यों को देते थे, उन्हें वे कभी भुला नहीं पाते थे। उनके उपदेशों के वे साकार रूप थे। उनके कार्यकलाप एक लाउड स्पीकर से भी अधिक जोर से बोलते थे।

जो गुरु आत्म-साक्षात्कार प्राप्त होते हैं वे अपने अनुभवों को कभी बताते नहीं हैं, क्योंकि उस अनुभव में कुछ बातें ऐसी होती हैं जो बताई नहीं जा सकतीं। जो भी लिखा जाता है, कण्ठस्थ किया जाता है अथवा कहा जाता है, वह किसी ऋषि के अनुभव का अंश मात्र होता है। यहाँ तक कि वे जो बोलते हैं, उसका भी कुछ अंश संप्रेषण में छूट जाता है, क्योंकि शिष्य सतर्क नहीं रहता है। इसी कारण स्वामी जी अपने व्याख्यान के समय शिष्यों को लिखने के लिए कभी प्रोत्साहित नहीं करते थे, बल्कि वे उन्हें बाद में लिखने के लिए कहते थे।

स्वामी जी का संवाद अधिकतर बिना शब्दों से होता था, क्योंकि अधिकतर ऐसा देखा गया है कि कोई प्रेरक बात जब लिखी जाती है तो वह उतनी प्रभावशाली नहीं रह जाती। वास्तव में स्वामी जी की मुस्कान तथा उनके मुख तथा आँखों में आने वाले भाव, उनकी हूँ, हूँ की ध्वनि स्वयं अपने आप में अद्‌भुत प्रभाव तथा अर्थ लिए होते थे और इन्हीं के बीच संवाद स्वयं ही हो जाता था। संवाद तभी हो सकता है जब गुरु और शिष्य एक हो जाते हैं। वे एक ही स्तर पर होते हैं और तब शब्दों की आवश्यकता नहीं होती। कठोपनिषद् में लिखा है—"उत्तिष्ठ जाग्रत

प्राप्यवरान्निबोधत।'' उठो, जागो, जागरुक बनो। उसके बाद एक महान् गुरु के पास जाओ तथा ज्ञान प्राप्त करो।

उठना और जागना, ये शिष्य की समस्याएँ हैं, न कि गुरु की। लेकिन स्वामी जी आश्रम में ऐसे लोगों को भी प्रवेश दे देते थे जिनमें ये गुण नहीं थे। स्वामी जी आध्यात्मिक सत्य को गुप्त नहीं रखते थे। यह वहीं सबको बता दिया जाता था और वे अपने ज्ञान का प्रदर्शन भी नहीं करते थे। यह उनकी असाधारण विशेषता थी। बहुत से स्वामी तथा योगीजन यदि उनसे एक सरल सा प्रश्न पूछा जाए कि क्या कोई ठण्ड में गंगा स्नान कर सकता है, तो उसके प्रत्युत्तर में वेदान्त पर एक लम्बा प्रवचन दे देते हैं कि 'तुम शरीर नहीं हो, तुम मन नहीं हो, तुम तो अमर आत्मा हो। यह अमर आत्मा शीत का अनुभव नहीं करती। यह मन तथा शरीर हैं जिन्हें शीत का अनुभव होता है आदि आदि। परन्तु स्वामी जी ऐसा कभी नहीं करते थे। वे छोटी-छोटी बातों के ऊपर धार्मिक उपदेश देने के स्थान पर वे जिज्ञासु के शारीरिक और बौद्धिक कल्याण में रुचि लेते थे। वे जिज्ञासु द्वारा आध्यात्मिक प्रश्न पूछने की प्रतीक्षा करते थे और जब वह स्वयं यह सब जानने हेतु उत्सुक होता तब स्वामी जी रहस्यमय ढंग से वह ज्ञान उसे सम्प्रेषित करते थे।

उस समय संत जन स्वयं को एक गुफा में छुपाए रहते थे तथा उन शिष्यों के आने की प्रतीक्षा करते जिन्होंने अपने भीतर जाग्रति का अनुभव किया होता तथा जो जागरुक और उत्सुक होते थे, जो उनके पास आकर अत्यधिक समय और ऊर्जा लगा सकते थे तथा स्वयं उनके पास आकर साधना हेतु पथ-प्रदर्शन करने की इच्छा प्रकट करते थे। स्वामी शिवानन्द जी इस विधि को कहते थे 'अपने ज्ञान को एक बड़े से ओवरकोट से ढाँक कर रखना'।

स्वामी जी लोगों के शारीरिक तथा सांसारिक कल्याणार्थ जो कार्य करते थे, उसके लिए उनके पास आने वाले लोग उन्हें सदा स्मरण रखते थे। स्वामी जी का विचार यह था कि 'ज्ञान अथवा आत्म-ज्ञान अपने समय से ही आता है', लेकिन जब शिष्य पूर्ण स्नेह और लगाव के साथ स्वामी जी के साथ एक हो जाता तो बिना शब्दों के ही संवाद होने लगता था। यही स्वामी जी का रहस्य था। लेकिन स्वामी जी जानते थे कि जब तक व्यक्ति में ज्ञान, वैराग्य, सद्गुणों में वृद्धि तथा मुक्ति हेतु स्थाई

उत्कण्ठा नहीं होगी तब तक किसी भी प्रकार के उपदेश की कोई उपयोगिता नहीं है और ऐसे व्यक्ति के साथ बिना शब्दों के संवाद सम्भव ही नहीं है।

शिष्यता

आरम्भिक दिनों में लोग स्वामी जी के पास आते तो स्वामी जी को आनन्द और शान्ति विकरित करते देखकर आश्चर्यचकित हो जाते थे, क्योंकि वहाँ पर आनन्द, शान्ति और समृद्धि हेतु सभी आवश्यक चीजें अनुपस्थित थीं। स्वामी जी में ऐसा क्या था जो वे ऐसा करने में सक्षम थे? स्वामी जी की आँखें स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर दे देती थीं। वे स्पष्ट ही कह देती थीं कि उन्होंने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है। यदि आप उनकी आँखें में झांककर देखते तो आपको यह विश्वास हो जाता कि उन्होंने वह प्राप्त कर लिया है जो आप प्राप्त नहीं कर सके और आपको उनके सामने झुकाने और उनके चरणों में आत्म-समर्पण करने हेतु इतना पर्याप्त था।

सन् १९४७ की बात हैं स्वामी जी अपने कार्यालय में बैठे थे। दक्षिणी अफ्रीका से आया एक युवक २-३ आश्रम में रहा और उस दिन वह वापस जा रहा था। अन्दर आकर उसने स्वामी जी को प्रणाम किया और रोने लगा। स्वामी जी ने बड़े ही प्रेम से उसे देखा। वह स्वामी जी से बोला—"स्वामी जी, मैं आज वापस जा रहा हूँ, लेकिन मैं अफ्रीका में आपके जैसा गुरु कहाँ पाऊँगा?" यह सुनकर अचानक स्वामी जी के मुख का भाव परिवर्तित हो गया। अत्यन्त सुन्दर अर्थपूर्ण तथा विनोदपूर्ण मुस्कान के साथ वे बोले—"अरे! क्या अफ्रीका में आपको एक गुरु भी नहीं मिलेगा ? इसी समय उसका दुःख दूर हो गया, उसके आँसू सूख गए। उसने देखा स्वामी जी हंस रहे हैं। अब स्वामी जी ने आगे कहा—"गुरु को प्राप्त करना बड़ा ही सरल है, लेकिन शिष्य प्राप्त करना बड़ा ही कठिन है। शिष्य बनो, सिर से पैर तक शिष्य, तब आप गुरु स्वयं प्राप्त कर लेंगे।"

स्वामी जी कभी भी यह नहीं कहते थे मैं आपका गुरु हूँ। कभी-कभी वे कहते थे—"आप मेरे शिष्य हैं" अथवा "वह मेरा शिष्य है"। अपने आरम्भिक शिष्यों को उन्होंने लिखा 'मैंने आपको अपना प्रिय शिष्य स्वीकार कर लिया है। मैं आपकी सेवा करूँगा और आपका पथ-प्रदर्शन करूँगा। जब वे कहते कि मैंने आपको अपना प्रिय शिष्य स्वीकार कर लिया है तो शिष्य को ऐसा अनुभव होता जैसे उसका

स्वामी जी पर अधिकार हो गया हो तथा इसी कारण वह उन्हें उन्मुक्ततापूर्वक जो चाहता वह लिख पाता था और यही स्वामी जी चाहते थे। अगला वाक्य 'मैं आपकी सेवा करूँगा', इसके द्वारा वे स्वयं ही गुरु के विचार को निरस्त कर देते थे क्योंकि शिष्य गुरु की सेवा करता है। स्वामी जी ने स्वयं को कभी गुरु नहीं माना। यह भाव शिष्यों का उनके प्रति था परन्तु उनका स्वयं का भाव ऐसा न था।

गुरु की सेवा अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि गुरु की सेवा से ही शिष्य गुरु की ऊँचाई को तथा उस तक कैसे पहुँचा जाए, इसे जान पाता है। किसी भी काम को करने का तरीका और भाव गुरु और शिष्य दोनों का भिन्न-भिन्न होता है। लेकिन जब तक शिष्य किसी कार्य को गुरु के तरीके से नहीं करता तब तक वह स्वयं को गुरु की ऊँचाई तक नहीं उठा पाता। इसलिये गुरु की सेवा करना न्यायोचित है। हालाँकि स्वामी जी अपने शिष्यों को ऐसा आभास कराते जैसे उनके द्वारा की जाने वाली सेवा स्वामी जी के लिए अत्यावश्यक है जबकि वास्तव में स्वामी जी को किसी की सेवा की आवश्यकता नहीं थी। वे तो उनकी प्रतिभा के विकास हेतु अवसर प्रदान किया करते थे, तथा यह करते-करते शिष्य उनकी लय में हो जाता था और उनके साथ तालमेल बैठा लेता था। इस प्रकार वे शिष्य के आन्तरिक विकास में सहयोग करते थे। बाद में शनैः शनैः गुरु और शिष्य के मध्य विचारों का आदान-प्रदान प्रारम्भ हो जाता था। जैसे एक बार कुछ गायकों ने आश्रम में प्रवेश लिया। उनके लिए स्वामी जी ने संगीत-कक्ष तथा वाद्यों की भी व्यवस्था की। इस प्रकार शिष्य स्वयं ही गुरु के साथ जुड़ गए।

स्वामी जी इस बात को बार-बार दोहराते थे और इस पर सदा जोर दिया करते थे कि शिष्य को अपने गुरु के समक्ष स्वयं को समर्पित कर देना चाहिये। स्वामी जी यह भी जानते थे कि यह समर्पण गुरु अथवा शिष्य किसी के भी द्वारा बलपूर्वक नहीं होना चाहिये। यह स्वयमेव होना चाहिये। स्वामी जी इसके लिए कुछ आवश्यक क्षेत्रों का सृजन करते थे, जैसे यदि स्वामी जी किसी से कोई काम करवाना चाहते तो वे उसे वह काम तो बताते ही साथ ही उसके ढेर सारे विकल्प भी बतला देते। होता यह कि शिष्य स्वयं ही उसका चुनाव करता जो स्वामी जी स्वयं चाहते थे और उसके चुनाव से ही स्वामी जी उसे पहचान लेते थे कि वह किस प्रकृति का है। वह उद्दण्ड है

या अभिमानी, साधारण है या उसकी नम्रता मात्र दिखावा है अथवा वह आत्म-समर्पण के भाव से सच्चा विनम्र है। इसी के साथ स्वामी जी उसे यह भी अहसास करा देते कि स्वामी जी किस ऊँचाई पर हैं और वह शिष्य स्वयं कहाँ है तथा उसे आत्म-विश्लेषण का भी अवसर प्रदान करते। इस प्रकार शिष्य को अहंकार तथा उसके खेल का ज्ञान हो जाता । जब वह अहंकार की क्रियाविधि को समझ लेता तो उसके भीतर समर्पण स्वयं ही जन्म ले लेता था।

आश्रम के आरम्भिक दिनों में स्वामी जी जिज्ञासुओं को आश्रम में प्रवेश देने के विषय में बड़े ही सख्त थे। इन जिज्ञासुओं को आश्रम में बड़ा ही कठोर जीवन जीना पड़ता था। आश्रम में प्रवेश के समय ही स्वामी जी उन्हें आश्रम के नियम स्पष्ट बता देते थे। लेकिन बाद में उन्होंने साधकों की सुविधा हेतु सभी चीजों की व्यवस्था की और वे आश्रम में अधिकाधिक लोगों को प्रवेश देने हेतु उत्सुक रहते थे। जिससे सभी अपने आध्यात्मिक विकास हेतु अवसर प्राप्त कर सकें।

स्वामी जी ने संन्यास जीवन के प्रारम्भ में जिन कठिनाइयों का सामना किया, अपनी शरण मेंआने वाले साधकों को उनसे बचाने हेतु वे निरन्तर कार्यरत रहे। साधकों की बहुमूल्य मानसिक शक्ति जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं जैसे रोटी, वस्त्र, आश्रय और चिकित्सा सुविधाओं की चिन्ता में व्यर्थ नष्ट न हो तथा उन्होंने जो मार्ग चुना है उस पर वे सरलतापूर्वक चल सकें, इस हेतु स्वामी जी सदा प्रयत्नशील रहते थे।

स्वामी जी को किसी भी कार्य में अति के जोखिम भरे अनुभव थे। इसलिये वे कहते थे कि 'यह तो अच्छा है कि आप सुविधाओं का परित्याग करें, लेकिन भौतिक शरीर के लिए अत्यावश्यक मूलभूत सुविधाओं को स्वीकार करने में संकोच न करें। यदि आप परिश्रम करते हैं तो पौष्टिक आहार कदापि अस्वीकार न करें। जब आप मानसिक परिश्रम करें तो अपने सिर में ब्राह्मी तेल जैसा ठंडक प्रदान करने वाला तेल लगाएँ। जब मैं आपको फल दूँ तो उन्हें स्वीकार करें। इसी तरह जब साधक अध्ययन और लेखन कार्य में व्यस्त रहते जो स्वामी जी उन्हें अतिरिक्त घी तथा दूध लेने के लिए कहते थे तथा उन्हें बादाम आदि दिया करते थे। यदि वे इन्हें लेने से मना करते तो स्वामी जी की सलाह रहती कि 'यह कोई बुद्धिमानी नहीं है।

क्या आप मधुमेह और नाड़ी दुर्बलता को आमन्त्रण देना चाहते हैं? देखिये, मेरी तपस्या से मेरा क्या हाल हो गया? सूखी रोटी और सादी दाल खाना ही साधुता नहीं है।'

सारे आश्रम में स्वामी जी जितना शारीरिक रूप से दुर्बल कोई और नहीं था, परन्तु उनके बराबर कठिन परिश्रम भी अन्य कोई नहीं करता था। यदि वे देखते कोई अस्वस्थ है, चाहे उसे हल्का सा सिरदर्द ही क्यों न हो तो वे तुरन्त उससे कहते 'कृपया जाकर आराम करें।' तथा उसकी देखभाल हेतु एक चिकित्सक तथा दर्जनों अन्य व्यक्तियों को लगा देते थे। लेकिन जब वे स्वयं बीमार होते तो वे आराम करने के इस नियम को एक ओर झटक देते थे। बस यही एक पहलू था जहाँ स्वामी जी के उपदेश तथा व्यवहार में बहुत बड़ा अन्तर था। उन्होंने स्वयं तो सेवा हेतु आत्म-त्याग किया लेकिन अन्य सभी को यह शिक्षा दी कि 'कृपया अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें'। सच्चे आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के प्रति उनका असीम प्रेम था।

सन् १९४६ में आश्रम में वास्तव में धन की कमी थी। वहाँ बहुत से कमरे तथा अन्य सुविधाएँ नहीं थी। आश्रम में बन्दरों से बचाव हेतु भी कोई साधन नहीं थे। ये बन्दर आश्रम में आक्रमण कर देते थे। आश्रम में कार्यालय हेतु एक छोटा सा कमरा था जिसमें दो दरवाजे थे जो जर्जरावस्था में थे। इसके पास में एक और कमरा था जिसकी छत तथा प्रवेश द्वार अत्यन्त नीचा था। स्वामी जी इसे नम्रता का द्वार कहते थे क्योंकि यदि कोई बिना झुके इसमें से प्रवेश करना चाहता तो उसका सिर फूट जाता। गर्मियों में दोपहर के समय कार्यालय के सभी कार्यकर्ता अत्यधिक गर्मी होने के कारण पास वाले कमरे के दरवाजे बन्द करके अन्दर के कमरे में चले जाते थे। जब स्वामी जी अपना मध्यान्ह का भोजन लेते तो वे एक खाली थाली बुलाते, और भोजन का एक अंश उस थाली में रख देते थे। भोजन समाप्त होने के बाद तुरन्त बिना विश्राम किए स्वामी जी अपने सिर पर पतला कपड़ा डालकर दूसरी प्लेट हाथ में लेकर प्रत्येक कमरे में जाकर अपने शिष्यों को थोड़ा-थोड़ा प्रसाद देते। उन दिनों यह भी एक असामान्य बात थी क्योंकि उन दिनों कई स्वामी लोग अपने शिष्यों तथा अन्य लोगों को अपना भोजन देखने भी नहीं देते थे। स्वामी जी एक ममतामयी माँ की भाँति उन सभी से कहते 'कृपया बाहर न आयें। यहाँ बहुत अधिक गर्मी है। एक

दिन की बात है दोपहर मे एक बजे का समय होगा। स्वामी जी तेज धूप में हाथ में थाली लिए कार्यालय तक आए। उन्होंने देखा सारे दरवाजे बन्द हैं, उन्होंने सोचा कि शायद सब सो रहे होंगे। वे रसोईघर में गये, वहाँ कोई स्वामी थे। स्वामी जी ने उन्हें थाली दी और कहा—"वे तीनों कार्यालय में विश्राम कर रहे हैं। कृपया उन्हें जगाएँ नहीं। लेकिन जब वे उठ जाएँ तो उन्हें यह प्रसाद दे दीजिएगा।"

स्वामी जी ने सारे जीवन स्वयं से अधिक दूसरों की चिन्ता की (शायद इसी कारण उनका शरीर बहुत से रोगों से पीड़ित था)। अपने शिष्यों की देखभाल वे माँ की तरह किया करते थे। उनका यह प्रेम अपने शिष्यों के साथ व्यवहार में परिलक्षित होता था। उनके व्यवहार से अति स्नेही माता-पिता भी सीख ले सकते थे।

एक बार की घटना है, स्वामी जी अपने कुटीर से बाहर जा रहे थे। आश्रम का एक कार्यकर्ता साइकिल से सड़क पर जा रहा था। जैसे ही उसका ध्यान स्वामी जी की ओर गया, वह साइकिल से उतर कर स्वामी जी के साथ पैदल-पैदल चलने लगा। स्वामी जी ने कहा—"ये सब औपचारिकताएँ मेरे लिए आवश्यक नहीं हैं। प्रेम और आदर का स्थान हृदय में हैं। तथा आपके हृदय में बड़ों के प्रति सदा आदर और सम्मान की भावना होनी चाहिये। बाह्य औपचारिकताएँ मेरे लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं। मैं जानता हूँ आप खरीदी करने तथा निर्माण कार्य देखने के लिए ऋषिकेश जा रहे थे। वहाँ आपको जिस भी वस्तु की आवश्यकता हो उसे क्रय करने में बिल्कुल संकोच न करें। आपको अभी कुछ ठण्डा पेय पीना चाहिये तथा आधा घण्टे बाद कुछ गर्म पेय लेना चाहिये। यदि बाजार से आपको फल लेने की आवश्यकता अनुभव हो तो उसे भी निःसंकोच क्रय कर लें। आप अपने शरीर को स्वस्थ रखने हेतु जो आवश्यक हो लेने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र हैं।

स्वामी जी कहा करते थे कि हिमालय पर्वत के चरणों में गंगा नदी के तट पर निवास करना तथा यहाँ कुछ जप, ध्यान और निष्काम सेवा करना बड़ा ही पुण्य का काम है। इसलिये वे सभी के लिए अपने द्वार खुले रखते थे। असंख्य युवक हताशा में स्वामी जी के चरणों में आश्रय लेने के लिए आया करते थे। स्वामी जी उनसे उनके पूर्व जीवन के बारे में कभी नहीं पूछते थे। जिस क्षण वे नवआगन्तुक की आँखों में निराशा देखते वे उस युवक को ऐसा अनुभव कराते जैसे वे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे

तथा वह आश्रम से जुड़कर स्वामी जी की महान् सेवा कर रहा है। इससे उसे कितनी अधिक मनोवैज्ञानिक शक्ति प्राप्त होती इसका अनुमान करना असम्भव है। हताश युवक को ऐसा लगता कि बीता कल एक बुरा स्वप्न था और अब एक यशस्वी भविष्य उसे सामने है।

सन् १९४५ की घटना है। एक स्त्री को उसके पति ने यातना देकर घर से बाहर निकाल दिया था। वह आश्रम में आश्रय लेने के लिए आयी। आश्रम के अधिकारीगण स्वामी जी के अनुशासन के कारण उसे आश्रय देने में संकोच कर रहे थे। स्वामी जी को ऐसा लगा कि यदि इस स्त्री को शरण न दी गई तो वह अपनी इहलीला समाप्त कर लेगी। बस इसी विचार ने उन्हें सारे संसार की अवहेलना करके उसकी एक व्यक्ति के रूप में सेवा करने हेतु बाध्य कर दिया। स्वामी जी ने उस स्त्री की उसके दुःख को भुलाने में, उसे उसके मन पर विजय पाने तथा उसे भारत की स्त्रियों के बीच एक उपदेशक की भाँति अपने पैरों पर खड़े होने का प्रशिक्षण देने के लिए जिन विधियों का प्रयोग किया उन पर कई पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। स्वामी जी ने उसे एक उत्तरदायित्व समझकर उसे समाज का एक उपयोगी अंग बनाया। यह पुनर्वास का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

सन् १९५५ में स्वामी जी ने आश्रम में एक रसोइये का स्वागत किया। वह रसोइया आश्रम में रहने के विचार से नहीं आया था, परन्तु स्वामी जी ने उसे देखते ही कहा—"कृपा करके आप यहाँ रहें और साथ ही आप पास में अपना स्वयं का भोजनालय प्रारम्भ कर सकते हैं। मैं आपकी सहायता करूँगा।" वह स्वामी जी के मुँह से ऐसी बात सुन कर आश्चर्यचकित रह गया। तत्पश्चात् स्वामी जी ने अपने सचिव से उसे एक कमरा तथा व्यवसाय प्रारम्भ करने हेतु आवश्यक बरतन देने के लिए कहा, और उस रसोइये से कहा—"आप आश्रम से भोजन लेकर भी अपना व्यवसाय प्रारम्भ कर सकते हैं।" थोड़े दिनों बांद स्वामी जी ने अपने इस व्यवहार के रहस्य को प्रकट किया। उन्होंने कहा 'ऋषिकेश में गंगा जी के तट पर निवास करना भगवान् की कृपा से ही सम्भव है। कुछ दिनों बाद शायद उसे इस संसार से संन्यास की प्रेरणा मिले। तब तक यह अच्छा होगा कि पहले उसे धन कमाने के लिए यहाँ निवास हेतु प्रोत्साहन दिया जाए, फिर शनैः शनैः उसे साधना की ओर मोड़ा जाए।'

एक और घटना है, एक अन्य स्त्री जो विधवा थी, परेशान थी और वह ऋषिकेश आकर आश्रम के निकट ठहरा करती थी, उसने स्वामी जी से कहा—"मेरे पास ४-५ हजार रुपये के गहने और मकान हैं। मैं आपके पास स्थाई रूप से निवास करना चाहती हूँ। यदि आप मुझे यहाँ रहने की अनुमति दे देंगे तो मैं वह सब आपको दे दूँगी।" स्वामी जी ने कहा—"वे सारे गहने आप अपने पास ही रखिए, आप वृन्दावन में जा कर निवास कर सकती हैं।" स्वामी जी ने उसके परिचय हेतु एक पत्र दिया तथा एक बहुत अच्छे संत का पता उसे बता दिया। स्वामी जी ने से यह भी निर्देश दिया कि वहाँ आसपास के गाँवों में जा कर भगवान् के नाम का प्रचार करो। प्रत्येक घर में कीर्तन करो। बच्चों को पढ़ाओ।

कुछ समय तक तो उसने स्वामी जी के निर्देशों का पालन किया। फिर उसे कुछ मानसिक परेशानी हो गई और वह वापस ऋषिकेश आ गई तथा स्वामी जी के बारे में अनर्गल बातें कहने लगी। वह खिड़की में से स्वामी जी के बिस्तर पर इत्र डाल देती थी। जब स्वामी जी कुटीर का द्वार खोलते तो वह स्वामी जी के एकदम पास में जाकर बैठ जाती। स्वामी जी उसके बारे में बिना कुछ विचार किए अपना काम करते रहते। थोड़ी देर बाद वह उठकर चली जाती। हालाँकि स्वामी जी स्वयं ही उसे जाने के लिए कह सकते थे परन्तु वे कभी किसी का दिल नहीं दुखाते थे। उनके हृदय में सभी के प्रति अथाह प्रेम था।

जब यह परेशानी बहुत अधिक बढ़ गई तो स्वामी जी ने अपने कुटीर के चारों ओर कंटीले तारों की बाड़ लगा ली। उस स्त्री ने जब कंटीले तारों की बाड़ देखी तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गई और जंगली की तरह व्यवहार करने लगी। वह स्वामी जी के कुटीर पर पत्थर फेंकती थी। कुछ दिनों बाद वह चली गई।

कुछ वर्षों बाद वह ऋषिकेश आयी तो उसने भगवा वस्त्र धारण कर रखे थे। अब वह वृद्ध हो गई थी। स्वामी जी कभी भी किसी के प्रति पूर्वाग्रह नहीं रखते थे। उन्होंने कहा—"शायद वह अब बदल गई होगी। प्रत्येक प्रतिक्षण विकास करता रहता है। हम किसी को भी उसके पूर्व के व्यवहार से नहीं जान सकते हैं। यह उनका सिद्धान्त था। स्वामी जी ने उसे आश्रम के पास ही कहीं रहने हेतु स्थान दे दिया। वह लोगों के बीच स्वामी जी को अपशब्द कहती। वह नित्य ऋषिकेश के बाजार जाती

तथा जहाँ-जहाँ भी रुकती स्वामी जी के बारे में उल्टा-सीधा बोलती रहती। सन्ध्या के समय जब वह आती स्वामी जी उसे बादाम, फल आदि देते रहते।

बीजारोपण

बहुत से लोग जो इस जीवन के असामंजस्य, संघर्ष, कलह तथा भय के बीच सुख और शान्ति की इच्छा रखते थे वे आनन्द कुटीर के स्वामी शिवानन्द जी में अपने परिवार से भी अधिक प्रेम करने वाले पिता का रूप देखते थे, जबकि जो धर्मपरायण और आध्यात्मिक प्रकृति के थे तथा जिन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य साधना बना रखा था, वे स्वामी जी में एक आध्यात्मिक प्रकाश और ज्ञान का अनन्त स्रोत पाते थे।

स्वामी जी भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार का सम्बन्ध रखते थे। कुछ जिज्ञासु स्वामी जी के पास वैराग्य और विवेक की ज्वलन्त आकांक्षा लिए आते थे। स्वामी जी उन्हें भिन्न-भिन्न मार्गों पर प्रशिक्षित करते थे। ऐसे लोगों के साथ स्वामी जी बहुत ही कम दिखाई देते थे और वे उनके अधिक निकट भी नहीं रहते थे। इनके साथ स्वामी जी के सम्बन्ध पूर्णतया भिन्न आध्यात्मिक तल पर होते थे और ऐसे लोग अत्यन्त कम होते थे।

ऐसे अधिकंतर लोग जो स्वामी जी के अत्यन्त निकट रहा करते थे, वे अर्द्ध परिपक्व थे। उनमें से कुछ ऐसे थे जिनमें थोड़ा भी आध्यात्मिक भाव न था परन्तु स्वामी जी ने उन्हें अपने पास इसलिये आश्रय दिया था कि 'चूँकि वे संसार से असफल हो कर अपने घर से चले आए थे और यदि उन्हें स्वामी जी का सहारा न मिलता तो वे अपना जीवन समाप्त कर देते' स्वामी जी अक्सर उनके भीतर वैराग्य के बीज रोपित करते रहते थे। मानसिक रूप से विचलित एक युवक को आश्रम में प्रवेश देने के लिए स्वामी जी का कहना था कि 'मैं उसे वापस नहीं लौटा सकता। मैं उसे मानसिक रूप से प्रसन्न तथा एक श्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में विकसित होने का एक अवसर प्रदान करना चाहता हूँ। यदि वह असफल हो जाता है तो कोई बात नहीं हैं। किसी भी प्रकार एक प्रयास तो करना ही चाहिये। इस प्रकार जिज्ञासु के लिए स्वामी जी किसी प्रकार की योग्यता का निर्धारण नहीं करते थे। उस समय यह बात प्रसिद्ध थी कि यदि कोई युवक परीक्षा अथवा व्यापार में असफल हो गया हो तो उसे शिवानन्द

आश्रम में देखो, स्वामी जी सभी को उन्मुक्तता से प्रवेश दे देते हैं और उनके भीतर जाग्रति लाने का प्रयास करते हैं।

स्वामी जी की शरण में आने वाले सभी लोग अच्छे नहीं थे परन्तु स्वामी जी उनके भीतर जो अच्छाई होती उसे ही देखते थे। बुराई की तरफ वे आँखें मूँद लेते थे। यदि कोई गलत व्यवहार भी करता तो वे न तो उसे दण्ड देते और न ही उसके साथ कठोर बनते थे। वे अक्सर कहा करते थे 'यदि कोई व्यक्ति पापी है तो भी उस पर ध्यान न दो। उसे यहाँ ला कर आश्रय देने से मुझे इस बात का निश्चय हो जाता है कि दिल्ली में एक बदमाश कम हो गया। यह स्वामी जी का दर्शन था। सच्ची बात तो यह थी कि यदि वह व्यक्ति यहाँ आकर स्वामी जी से थोड़ा भी खुल जाएगा तो उनका मानव कल्याण का कार्य आसान हो जाएगा। स्वामी जी कहते थे कि उसे यहाँ रहने दो, मैं उसके भीतर बीजारोपण करूँगा। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में, अभी या बरसों बाद कभी तो वह अंकुरित होगा ही।

स्वामी जी का कहना था कि जो व्यक्ति आधुनिक संसार में जीवन व्यतीत कर रहा है तथा जिसके चारों ओर मन बहलाव के साधनों तथा प्रलोभनों की भरमार हो, उससे विवेक और वैराग्य की अपेक्षा करना अतिशयोक्ति होगी। वे कहा करते थे कि जो व्यक्ति असफलता के भय से भागा हो, कभी-कभी उसके भीतर एक वैराग्य की चिंगारी प्रकट होती है जो शायद ज्वाला में बदल सकती है। कभी-कभी यह चिंगारी प्रकट नहीं होती तो स्वामी जी उसे प्रज्वलित करते थे और यही स्वामी शिवानन्द जी की विशेषता थी। वे सद्गुणों के बीज बोते, उनका पोषण करते, उनका सिंचन करते, उन्हें अंकुरित करते। हालाँकि इसमें उन्हें बड़ी कठिनाई होती परन्तु वे उस पर ध्यान नहीं देते थे।

सन् १९४० के प्रारम्भ में आश्रम आने वाले जिज्ञासु कैसा अनुभव करते थे, आज उसे समझ पाना सरल नहीं है। उनमें से अधिकतर जिज्ञासु स्वामी जी के लेख अथवा पुस्तकें पढ़कर आश्रम आए थे। स्वामी जी के शब्द इतने प्रेरक और ज्वलंत थे कि यदि आप उन्हें पढ़ लें तो आपकी इच्छा होगी कि अपने सारे वस्त्र उतार कर फेंक दें और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए तपस्या करने तुरन्त हिमालय पर चले जाएँ। स्वामी जी का यह विशिष्ट तरीका था। कई साधक उनके लेखन से प्रेरित

हो कर आश्रम चले आए। सामान्यतया वे बिना वस्त्र बदले ही आश्रम आ गये क्योंकि उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी की पुस्तक 'हाउ टु गेट वैराग्य' (वैराग्य कैसे प्राप्त करें) पढ़ी थी, जिसमें उन्होंने लिखा था प्रत्येक वस्तु त्याग दो और एकान्त की खोज करो। इसलिये इन जिज्ञासुओं ने प्रत्येक वस्तु त्याग दी तथा एकान्त की खोज में आश्रम आ गए। आश्रम में प्रवेश करने पर कुछ लोग आश्रमवासियों को अच्छा सा कोट पहने देख कर सोचते कि 'ओह! ये सब अपने मार्ग से भटक गये हैं। देखो, मैं कितना वैरागी हूँ। मेरा त्याग इन सबसे ज्यादा गहरा है। ये इतने वर्षों से स्वामी जी के साथ रह रहे हैं परन्तु तपस्या, वैराग्य और ज्वलंत आकांक्षा का अर्थ भी नहीं जानते। मैं तो नित्य प्रति सुबह ४ बजे उठ कर ध्यान करता हूँ, परन्तु इन पुराने आश्रमवासियों को देखो ये क्या कर रहे हैं।' स्वामी जी भी इन नवीन जिज्ञासुओं को देखते और उनकी प्रशंसा करते।

ये जिज्ञासु जो भी प्रयत्न करते स्वामी जी पहले तो उन्हें प्रोत्साहित करते। बाद में बड़े प्यार से उन्हें समझाते—"उत्साह होना तो बहुत ही अच्छा है, आपको आश्चर्यजनक प्रेरणा प्राप्त हुई है। आप श्रेष्ठ हैं। आप शुकदेव की भाँति हैं लेकिन यौवन का जोश अच्छा नहीं होता।" यह स्वामी जी की विशिष्ट विधि थी। पहले ढेर सारा मक्खन, बाद में एक छोटी-सी कड़वी गोली। वे किसी को कभी हतोत्साहित नहीं करते थे, न ही ऐसा अनुभव कराते थे कि वह पूर्णतया गलत है या गलत कर रहा है। स्वामी जी का रुख ऐसा रहता था कि 'नहीं, आप जो कर रहे हैं, वह अद्‌भुत है, इसे करें, परन्तु पहले यह निश्चय कर लें कि यह मात्र यौवन का जोश न हो। किसी-किसी चीज की गलत प्रतिक्रिया भी हो जाती है।'

कुछ शिष्यों का व्यवहार बड़ा ही रूखा होता था। वे तो स्वामी जी द्वारा जागने की प्रेरणा देने पर भी जागने को तैयार नहीं होते थे। कभी-कभी वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जी के पास शिकायत ले कर आते। स्वामी जी उनके सामने इस प्रकार प्रदर्शित करते जैसे वे वास्तव में नाराज हैं और उन्हें सन्तुष्ट कर देते। वे सोचते कि स्वामी जी अवश्य ही उस नवयुवक को दण्ड देंगे। लेकिन स्वामी जी जिसकी शिकायत की गई हो, उसे बुला कर दो केले दे देते। थोड़ी देर बाद आश्रम में काम करने वाला बालक उसके पास सूचना ले कर जाता कि स्वामी जी ने तुम्हें कॉफी देने

के लिए बुलाया है। फिर उसे यह खबर मिलती कि एक घण्टे बाद उसे स्वामी जी ने याद किया है। स्वामी जी के पास जाने पर वे उससे कहते—"आपके मुखमंडल पर बड़ा तेज हैं। आप बड़े ओजस्वी दिखाई दे रहे हैं। क्या आप वेदान्त का अध्ययन करते हैं? आदि आदि। यह सब तो बड़ा ही अच्छा है। स्वामी जी तुम बुरे आदमी हो, यह कहने के स्थान पर वे यह देखते थे कि उनके द्वारा दिया जा रहा प्रोत्साहन कुछ काम कर रहा है या नहीं। यदि आपके भीतर कोई आध्यात्मिक प्रेरणा अथवा समर्पण का भाव नहीं भी है तो भी स्वामी जी ऐसा कह कर कि आप बहुत अच्छा काम करते हैं, वे आपके भीतर स्थित उस सद्‌गुण की ओर संकेत करके आपका ध्यान उस ओर केन्द्रित करते थे। वे कहते—"तुम वास्तव में आश्चर्यजनक काम करते हो। तुम्हारी भाँति कठिन परिश्रम करने वाला यहाँ कोई भी नहीं है। साथ-ही-साथ वे यह भी जोड़ देते कि जब आप काम किया करें, सभी में ईश्वर के दर्शन किया करें। आप रसोईघर में जा कर भोजन बनाने में सहायता क्यों नहीं करते। आप तो एक अद्‌भुत मनुष्य हैं। एक सुन्दर व्यक्तित्व तथा मधुर वाणी के स्वामी हैं। जब आप रोटी परोसे, कहें रोटी भगवान्, रोटी नारायण, रोटी महाराज, आदि और इस प्रकार उसके भीतर आकांक्षा का बीजारोपण किया जाता।

स्वामी जी जिज्ञासु के लिए इतना कुछ करते थे कि शायद अति स्नेही माता-पिता भी न करते। जिस क्षण वे जिज्ञासु में कोई योग्यता छुपी हुई देख लेते उसी समय से वे उस योग्यता को अनावृत्त करने में अपना सर्वस्व समर्पित कर देते थे। वे अपना पूरा ध्यान उस जिज्ञासु को गुणवान बनाने तथा मानव-मात्र के लिए उपयोगी बनाने में लगा देते थे और इस कार्य हेतु दिन-रात एक कर देते थे। इसी कार्य हेतु आनन्द कुटीर में कई नए कार्य क्षेत्रों ने जन्म लिया। सन् १९४८ में एक नवयुवक ने आश्रम में प्रवेश लिया। उसने कहा कि वह कागज बनाना जानता है। इस युवक के पास इस कार्य के अनुभव के कोई प्रमाण-पत्र भी नहीं थे परन्तु फिर भी स्वामी जी ने अगले दिन गड्ढे आदि खोदने तथा जो भी और आवश्यक सामग्री हो, उस नवयुवक को उपलबध कराने का आदेश दिया। बाद में स्वामी जी ने उससे कभी इस प्रयोग के बारे में पूछताछ भी नहीं की।

स्वामी जी ऐसे लघु उद्योगों में बड़ी ही रुचि प्रदर्शित करते थे। इस कारण व्यक्ति को ऐसा अनुभव होता था कि स्वामी जी उसके आने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। वे उसके काम में सहायता भी करते थे। स्वामी जी का उत्साह इतना अधिक था कि वे कुछ समय बाद जिज्ञासु को उस काम के बारे सलाह भी देने लगते कि वह उस काम को और अच्छी तरह कैसे कर सकता है। ऐसा ही आश्रम के फोटोग्राफिक स्टूडियो के समय भी हुआ।

आत्म-शुद्धिकरण

स्वामी जी कहा करते थे आत्मज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त सरल है परन्तु इसके लिए आवश्यक प्रथम योग्यता आत्म-शुद्धि अत्यन्त कठिन है।

जब आत्म-शुद्धिकरण हेतु प्रशिक्षण का समय आता तो स्वामी जी अत्यन्त सरल विधियाँ अपनाते जो प्रभावकारी भी होती थी। यह प्रशिक्षण निरन्तर चलता रहता था। स्वामी जी इसे बार-बार करते थे। स्वामी जी में इतना अधिक धैर्य था कि वे कभी किसी के साथ निराशाजनक व्यवहार नहीं करते थे। यदि कोई साधक स्वामी जी का एक तरीका न समझ पाता तो स्वामी जी कोई अन्य तरीका अपनाते थे। वे बार-बार इस प्रक्रिया को दोहराते इसी आशा के साथ कि एक दिन वह शिष्य जो स्वामी जी उसे सिखाना चाह रहे हैं वह अवश्य ही समझ जायेगा।

यदि आपमें कोई दुर्बलता है तो स्वामी जी उसकी ओर से यह कहते हुए आँखें मूँद लेते थे कि उसमें कुछ कमी अवश्य है, पर उसमें बहुत सी अच्छाइयाँ भी हैं। स्वामी जी जब तक कोई गलती नहीं करता तो उसके दोष को नहीं बताते थे जैसे यदि कोई शिष्य गलती करता और अन्य कोई शिष्य देख लेता तो सारी बात स्वामी जी के सामने लाई जाती और दोनों शिष्य उनके पास जाते। स्वामी जी सबसे पहले तो उस शिष्य की प्रशंसा करते और कहते—"देखिये, आपके भीतर यह अच्छाई है और उससे भी बड़ी बात यह है कि संसार का त्याग कर के यहाँ आना और गंगा स्नान करना अपने आप में बड़े सौभाग्य की बात है और आपको यह सौभाग्य मिला है। अतः आप बड़े भाग्यशाली हैं। आपने पूर्व में हजारों जन्मों तक आध्यात्मिक साधना की है, तभी आपकी इतनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है तथा आपको अवश्य ही हजारों संतों का आशीर्वाद मिला होगा जो आपको आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने हेतु

आश्रम ले कर आया है।'' फिर स्वामी जी उनसे कहते—''आप लोग आपस में झगड़ा क्यों करते हैं? यह तो बहुत छोटी से भूल है। आपको अपना मानसिक सन्तुलन नहीं खोना चाहिये। यदि आप अपना मानसिक सन्तुलन खो देंगे तो आपकी सारी साधना निष्फल हो जाएगी। क्या आपने नाश्ता कर लिया? आप क्या लेंगे, कॉफी या चाय? क्या मैं आपको थोड़ी और (कॉफी या चाय) दूँ? सबसे पहले केले का गुच्छा आता, फिर थोड़ी चोट की जाती। फिर मक्खन और शहद दिया जाता। जब केले पच जाते, सारा मक्खन भी प्रयोग कर लिया जाता, तब अचानक आत्म-साक्षात्कार का प्रारम्भ होता, यही वह बात है जो स्वामी जी कहते थे।''

स्वामी जी अपने शिष्यों को कभी भी तनाव की स्थिति में नहीं रखते थे। वे प्रशिक्षण हेतु शिष्यों को विवश अवश्य करते थे पर जब देखते कि शिष्य हताश हो रहा है तो सारे नियम शिथिल कर दिए जाते।

इन सबके पीछे मुख्य बात यह थी कि स्वामी जी कभी किसी की आलोचना नहीं करते थे। आलोचना से उनके सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते।

शिष्यों के कल्याण की चिन्ता

स्वामी जी के मन में दिन-रात अपने शिष्यों के लौकिक तथा आध्यात्मिक विकास की चिन्ता रहती थी। वे कई बार अपने शिष्यों से अत्यन्त मार्मिक शब्दों में अनुनय किया करते थे। वे अपने शिष्यों से अहंकार को समूल नष्ट करने तथा इस संसार की सेवा के आदर्श हेतु समर्पण करने के लिए उग्र स्वर में मार्मिक निवेदन किया करते थे। स्वामी जी उन्हें अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बताया करते थे कि निष्काम सेवा सर्वशक्तिमान ईश्वर की सबसे बड़ी पूजा है तथा यह सभी योगों में श्रेष्ठ है। सभी जिज्ञासुओं की तरह स्वामी जी के शिष्य भी कभी-कभी मानव जीवन के कष्टों और कठिनाइयों से घबरा जाते थे तो स्वामी जी उन्हें यह विश्वास दिला कर प्रसन्न करते कि विश्व की सेवा में समर्पित जीवन कभी व्यर्थ नहीं जाता है। स्वामी जी उन्हें यह कह कर आन्दोलित कर देते थे कि ''साक्षात्कार हो या न हो, इसकी बिल्कुल चिन्ता न करें। नैतिक उन्नति हेतु प्रयत्न करें ताकि मानव-मात्र की सेवा में स्वयं को पूर्ण समर्पित कर सकें। प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर के दर्शन करें। प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर ही मानें। यदि आपकी यह धारणा है कि ईश्वर सर्वव्यापक है तो फिर उन्हें आप सभी

प्राणियों में क्यों नहीं देखते। आप अपने विचार को कार्यरूप में परिणित करने में संकोच क्यों करते हैं? क्या आपका यह मत है कि ईश्वर केवल बन्द दरवाजों तथा बन्द आँखों के पीछे रहते हैं? जब भी सेवा करें तो प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति में उनकी उपस्थिति का अनुभव करें। फिर देखें वह आपकी हृदय गुहा में प्रकाशित कैसे नहीं होते? जब आपका हृदय सभी दुर्गुणों और निम्न प्रकृति से मुक्त नहीं हुआ है तो आपको आध्यात्मिक अनुभव कैसे प्राप्त होंगे? जब तक आपकी प्रकृति में पूर्णता नहीं आएगी तब तक आप सभी साधनाओं के लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार को कैसे प्राप्त कर सकेंगे? सर्वप्रथम अहंकार, क्रोध, घृणा, लालच और छल-कपट को गहन निष्काम सेवा द्वारा समूल नष्ट कर दें। यदि आप मात्र दस लोगों की थोड़ी भी सहायता करें, यदि आप एक दुर्गुण को पूरी तरह दूर कर दें और एक सद्गुण का विकास करने में सफल हो जाएँ तो ऐसा सोचें कि आपका जीवन व्यर्थ नहीं गया। यह सौभाग्य भी एक करोड़ लोगों में से मुश्किल से दस लोगों को ही प्राप्त होता है। यदि आपको समाधि और आत्म-साक्षात्कार नहीं प्राप्त हुआ, तो क्या हुआ।

स्वयं को प्रसन्न रखें। इस कार्य में अपना हृदय तथा आत्मा को लगा दें। मैं आपको वचन देता हूँ कि आप स्वयं को भाग्यशाली और खुश अनुभव करेंगे। अपनी प्रगति अधिक या कम होने से असन्तुष्ट न हों। मेरे निर्देशों का अनुसरण कीजिए। क्या मुझे आपके आध्यात्मिक कल्याण की चिन्ता नहीं है? यह आप स्वयं ही जानते हैं कि मेरा हृदय दिन-रात आपके कल्याण हेतु ही धड़कता है।

स्वामी जी के शिष्यों, साधकों तथा कार्यकर्ताओं के परिवार के अतिरिक्त विदेशों में भी कई सत्य के खोजी व्यक्ति थे जो स्वामी जी के प्रति अत्यधिक आदर और स्नेह रखते थे। स्वामी जी उनके आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक और गुरु थे। स्वामी जी उनके पत्रों का प्रत्युत्तर अत्यन्त शीघ्रता से देते थे और उनके सभी सन्देहों और प्रश्नों का समाधान तथा पथ-प्रदर्शन किया करते थे।

इस बारे में डरबन के स्वामी सहजानन्द जी ने लिखा है—

"स्वामी जी के प्रत्येक भक्त का यह अनुभव है कि उनकी असीम दया तथा करुणा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता, उसे मांत्र शान्त हृदय द्वारा अनुभूत किया जा सकता है। मैंने कहीं पढ़ा था कि स्वामी जी का दान असीम था परन्तु मुझे

लगता है कि उनकी करुणा उनके दान से भी बढ़ कर थी। यदि एक उच्च साधक गुरु की कृपा प्राप्त कर लेता है तो इसमें कोई विशेष बात नहीं है किन्तु वह व्यक्ति जो आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर चलने का कठिनाई से प्रयत्न कर रहा है, यदि उस पर किसी महान् संत का ध्यान चला जाए तो वह अकस्मात अव्यक्त अनुग्रह की भावना से भर उठता है। दुर्भाग्य से मेरा जन्म ऐसे परिवार में नहीं हुआ था जहाँ मुझे आध्यात्मिक संस्कार प्राप्त होते परन्तु स्वामी जी की कृपा से मुझे इस पथ में शनैः शनैः सफलता मिली। मेरे जैसे निम्नकोटि के जिज्ञासु का स्वामी जी ने जिस प्रकार ध्यान रखा और पथ-प्रदर्शन किया, उससे यह स्पष्ट ही परिलक्षित होता है कि वे संत के रूप में भगवान् के अवतार थे।

हालाँकि हम उनकी भौतिक उपस्थिति से हजारों मील दूर थे लेकिन स्वामी जी हमारा उतना ही ध्यान रखते थे जितना वे अपने आश्रम में रहने वाले शिष्यों का रखते थे। इस हेतु कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

कुछ दिनों पहले मैंने अपनी अस्वस्थता के सम्बन्ध में स्वामी जी को एक पत्र लिखा। स्वामी जी उसी समय सम्पूर्ण भारत-यात्रा से वापस लौटे थे और इस कारण उनके पास ढेरों पत्र थे उत्तर देने के लिए, किन्तु स्वामी जी ने मेरे पत्र का उत्तर तुरन्त दिया। इसके बाद में मैंने उन्हें अपनी दैनिक साधना में परिवर्तन हेतु परामर्श के लिए पत्र लिखा, जिसका उत्तर भी तुरन्त ही स्वयं स्वामी जी की हस्तलिपि में आया। यह उत्तर करीब दो पेज का था। इसमें ध्यान देने वाली बात यह थी कि इस पर पता भी स्वयं स्वामी जी ने ही लिखा था और उसे स्वयं ही पोस्ट किया। यह बात मेरे हृदय में भीतर तक उतर गई कि स्वामी जी ने मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति के लिए इतना कष्ट उठाया। स्वामी जी ने जो स्नेह की वर्षा की तथा उस पत्र में जो सान्त्वना के शब्द थे और उनसे जो मुझे जो शान्ति मिली, उसका अनुमान लगाना कठिन है। हम उनके अमूल्य आशीर्वाद हेतु कितने अयोग्य थे, फिर भी स्वामी जी का हमारे प्रति जो असीम प्रेम था, उनके पत्र के एक-एक शब्द से उसका अनुभव होता था।

स्वामी जी हमें दर्जनों की संख्या में पुस्तकें भेजा करते थे। यदि हम उनसे एक पुस्तक की माँग करते तो वे छह भेज देते थे। यहाँ तक कि हम उनसे यह प्रार्थना करते कि पुस्तकों का मूल्य भेजने पर ही वे हमें पुस्तकें भेजें, परन्तु स्वामी जी हमें पुस्तकें

पहले ही भेज देते थे बिना मूल्य चुकाए। इस देश के कोने-कोने से मात्र पुस्तकों का प्रसाद ही नहीं आता वरन् स्वामी जी द्वारा हमें मिठाइयों का भी प्रसाद भेजा जाता था। यहाँ पर इस बात की चर्चा करना निरर्थक न होगा कि मेरे एक मित्र श्री जी.वी. नायडू जब आश्रम गये तो उन्हें बड़ा ही अच्छा अनुभव हुआ। घटना इस प्रकार है—जैसे ही वे स्वामी जी से मिले स्वामी जी उनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक मिले और उनका आतिथ्य किया तथा जब वे जाने लगे तो स्वामी जी ने उन्हें ढेरों पुस्तकें दीं। इसके बाद की घटना अत्यधिक महत्वपूर्ण है; चलते समय मेरे मित्र ने स्वामी जी के एक चित्र की ओर संकेत करते हुए कहा कि यह चित्र बड़ा सुन्दर है (यह स्वामी जी की तपस्या के दिनों का चित्र था)। स्वामी जी ने वह चित्र खूँटी पर से उतारा और उन्हें दे दिया। स्वामी जी का हृदय कितना विशाल था!

हमारे देश दक्षिणी अफ्रीका में स्वामी जी की रोगहरण क्षमता के प्रत्यक्ष उदाहरण भी हैं। इनमें से दो तो मैंने स्वयं अनुभव किए हैं। मेरे एक मित्र को राज्यक्ष्मा (टी.बी.) रोग था तथा उसे अनिद्रा रोग भी था। मैंने स्वामी जी को इस विषय में पत्र लिखा। स्वामी जी का उत्तर हमें अति शीघ्र प्राप्त हो गया। इस पत्र में स्वामी जी ने मित्र के कष्ट निवारण हेतु निर्देश भी दिए थे। हालाँकि मेरे मित्र ने उन निर्देशों का पालन नहीं किया। फिर भी स्वामी जी की कृपा से उसे भली प्रकार निद्रा आने लगी। अन्य घटना मेरे एक निकटतम मित्र से सम्बन्धित है। मेरे मित्र के सिर में मस्से थे जिनमें असहनीय दर्द होता था। उन्होंने इस रोग का उपचार भी करवाया परन्तु कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। मैंने इस विषय में स्वामी जी को पत्र लिखा। स्वामी जी ने अत्यन्त सरल विधि बताई जिससे मेरे मित्र मस्सों से पूर्णतया मुक्त हो गए। महीनों हो गये हैं इस बात को परन्तु उन्हें वह कष्ट नहीं हुआ।

जो साधक स्वामी जी से प्रत्यक्ष निर्देश नहीं प्रापत कर सकते थे, उनकी समस्याओं को स्वामी जी कैसे हल करते थे। यह कार्य बड़े ही असाधारण तरीके से होता था, जैसे कभी मुझे कोई कठिनाई हुई और मैंने स्वामी जी की पुस्तक का कोई पृष्ठ खोला। मेरी कठिनाई का हल मेरे सामने था। कभी-कभी ध्यान में मुझे स्वामी जी से आन्तरिक प्रेरणा मिलती थी या फिर किसी व्यक्ति अथवा घटना द्वारा हल मिल जाता था। आवश्यकता इस बात की थी कि जो व्यक्ति समस्या का हल चाहता

हो वह स्वामी जी का संकेत ग्रहण करने हेतु, उसे समझने के प्रति जागरुक रहे। अधिकांश विषयों में उनकी पुस्तकें ही सहायता करती थीं। अन्य भक्तों का भी ऐसा ही अनुभव था और ऐसा इतनी बार होता था कि इस बात के प्रति कोई सन्देह नहीं रह जाता था कि स्वामी जी हमारी सभी कठिनाइयों के बारे में जानते हैं और वे चाहे हमसे हजारों मील दूर हैं, वे सदा हमारे साथ हैं। स्वामी जी प्रत्येक के मन और हृदय को भी पूर्णतः जानते थे। कोई भी उनके सामने स्वयं को बनावटी रूप में प्रकट नहीं कर सकता था। एक बार मैंने स्वामी जी को पत्र लिख कर उनसे आध्यात्मिक प्रकृति से सम्बन्धित कुछ प्रश्न पूछे। स्वामी जी को लगा कि यह प्रश्न अवश्य ही मैंने किसी की निन्दा करने के लिए पूछे हैं। इसलिये उन्होंने इनका सीधा उत्तर नहीं दिया। इसके बाद मैंने उनसे कभी कोई बात नहीं छुपाई। हमने यह भी पाया कि स्वामी जी जो कुछ भी कहते थे वह अवश्य ही सत्य होता था। उनकी वाणी अचूक थी।

स्वामी जी का अनुग्रह प्राप्त करने का रहस्य था उनकी पूर्ण हृदय से सेवा करना। रोगियों की थोड़ी सेवा करके, कुछ पर्चों के वितरण द्वारा आप उनके हृदय में स्थान प्राप्त कर सकते थे। स्वामी जी हजारों शिष्यों में से प्रत्येक इस बात से भली भाँति परिचित था। स्वामी जी की सेवा (जिसे मैं शिवयोग कहता हूँ) इस युग का सबसे महान् योग है। जो ईश्वरप्राप्ति के विभिन्न मार्गों का अनुसरण करना चाहें, करें, परन्तु मुझे तो स्वामी जी के सेवा में सबसे अधिक आनन्द आता है, चाहे इससे भगवद्-साक्षात्कार हो या नहीं।

सर्वगुण सम्पन्न श्री स्वामी शिवानन्द

स्वामी जी का ज्ञान, कार्य करने की सामर्थ्य, जीवन के प्रति व्यवहार सर्वश्रेष्ठ था। जो कठिनाइयाँ हमें विचलित कर देती हैं उन्हें वे सरलता से हल कर देते थे। जिन परिस्थितियों में हम डूबने लगते हैं वे उनमें विजय की पताका फहराते थे। जिन घटनाओं से हम टूट जाते हैं उनसे वे प्रभावित ही नहीं होते थे। सभी श्रेष्ठ गुण उनमें स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे।

स्वामी जी अनन्त के साथ पूर्ण एक थे। उनके जीवन में एक लयबद्धता थी। स्वामी जी के जीवन में जो कभी परिवर्तित नहीं हुआ, वह था उनका त्याग, प्रेम, समर्पण और आत्मानुशासन का भाव।

निरासक्ति के भाव के विकास से संन्यास का भाव प्रकट हुआ। स्वामी जी के समान मानव-मात्र से प्रेम करने वाला मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। उनका यह प्रेम उनके अपने शिष्यों के साथ व्यवहार में भी परिलक्षित होता था। वे अपने शिष्यों के लिए जो कुछ सम्भव था, अवश्य करते थे।

आश्रम के एक स्वामी जी अपना काम सम्पूर्ण हृदय से किया करते थे। वे आश्रम के महत्वपूर्ण स्वामी थे। वे अत्यन्त ऊर्जावान थे, स्वामी जी के प्रति समर्पित थे और स्वामी जी उनकी प्रशंसा भी करते थे। एक बार इन स्वामी जी को एक पागल कुत्ते ने काट लिया। ये स्वामी जी इतने शक्तिशाली तथा जीवनशक्ति से परिपूर्ण थे कि यदि इन्हें सिर से पैर तक मोड़ भी दिया जाए तो भी वे २-३ सप्ताह में स्वस्थ हो जाते थे। कुत्ते काटने के बाद उनकी बीमारी के समय स्वामी जी ने उनकी कितनी देखभाल की, इसका शब्दों में वर्णन करना सम्भव नहीं है।

स्वस्थ होने पर वे स्वामी जी पुनः कार्य करने लगे लेकिन अचानक उनके बाँयें हाथ में दर्द होने लगा। जैसे ही स्वामी जी को यह मालूम पड़ा उन्होंने तुरन्त एक किराये की टैक्सी ली और एक चिकित्सक के साथ ऋषिकेश से २०० मील दूर विशेष अस्पताल में उपचार हेतु भेजा और साथ जाने वाले चिकित्सक से कहा कि

जो भी कर सकते हो वह सब कुछ करना, खर्च की चिन्ता मत करना। अगले दिन तार आया 'स्वामी जी स्वस्थ हो रहे हैं।' स्वामी जी यह सुन कर प्रसन्नता से झूम उठे। दो-तीन घण्टे बाद स्वामी जी जैसे ही स्नान कर के आए और मध्यान्ह भोजन हेतु बैठने वाले थे, एक तार और आया। तार लाने वाला व्यक्ति उसे पढ़ भी न सका। उसका गला रूँध गया। स्वामी जी ने ही उसे पढ़ा। उनके चेहरे पर दुःख का भाव था। वे बोले—"ओह! वे नहीं रहे।"

अगले दिन प्रातः जब उन स्वामी जी के शव को टैक्सी ले कर आयी, स्वामी जी कार्यालय के रास्ते में थे लेकिन स्वामी जी ने उसे मुड़ कर देखा भी नहीं। कुछ ही देर बाद वे अपने कार्यालय में सहज भाव से अपना काम कर रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे कुछ हुआ ही न हो। २४ घण्टे पूर्व स्वामी जी उनकी सेवा हेतु सब कुछ छोड़ कर लगे हुए थे और उनकी अच्छी देखभाल हो सके इसलिये उन्हें २०० मील दूर अस्पताल में एक चिकित्सक के साथ उपचार हेतु भेजा। लेकिन जब वे नहीं रहे तो स्वामी जी ने उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा। मात्र सन्ध्या के सत्संग में मृतात्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना की। वे बिना मोह के प्रेम करते थे और बिना उदासीनता के सबसे असम्बद्ध भी थे।

संन्यास का भाव होने से ही सच्ची विनम्रता आती है। स्वामी जी जब सम्पूर्ण भारत और श्रीलंका भ्रमण पर गये तो करोड़ों लोगों ने उनकी पूजा की। इस यात्रा के अन्तिम दिन वे दिल्ली में थे। दिल्ली में वे एक भक्त जो कि सेना में अधिकारी थे, के घर पर ठहरे थे। स्वामी जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था और वे मध्यान्ह भोजन के बाद विश्राम कर रहे थे। स्वामी जी को किसी से ३ बज कर १५ मिनट पर मिलना था। ३ बज कर ५ मिनट पर स्वामी जी ने कहा—"हमारे जाने का समय जो गया है। क्या गाड़ी तैयार है?" हमने कहा—"जी स्वामी जी, कार यहाँ है।" स्वामी जी तुरन्त उठे और अपना बैग लेकर कार में बैठ गए। कार में से उन्होंने देखा कि सेना अधिकारी की पत्नी गृह स्वामिनी बाहर खड़ी है। स्वामी जी ने पूछा—"क्या हम यहाँ वापस आएँगे?" वे बोलीं—"नहीं।" स्वामी जी ने उनकी ओर देखा और दोनों हाथ जोड़ कर उनसे विदा ली। कार चल पड़ी।

दो-तीन मिनट बाद स्वामी जी ने कार चालक से गाड़ी वापस उस सेना अधिकारी के घर ले चलने को कहा। कार आ कर घर के प्रवेश द्वार पर रुकी। स्वामी जी कार से उतरे और घर में चले गए। सेना अधिकारी की पत्नी अन्दर रसोईघर में थी। स्वामी जी बिना किसी को आवाज दिए सीधे रसोईघर में चले गए और दोनों हाथ जोड़ कर उनके सामने झुके और अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ बोले—"कृपया मुझे क्षमा करें।" वह स्त्री कुछ नहीं बोली। उसकी आँखों से अश्रु बहने लगे। स्वामी जी ने आगे कहा—"मुझे आपके पास आकर उचित प्रकार से विदा लेनी चाहिए थी लेकिन मैंने कार में से ही धन्यवाद कहा। कृपा करके मुझे क्षमा करें।" वह कुछ समझ न सकी कि क्या करे। वह स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ी और उन्हें जोर से पकड़ लिया। कुछ देर बाद स्वामी जी वापस कार में जाकर बैठे और बोले—"अब हम चलें।" कार चलने के बाद लगभग पाँच मिनट तक स्वामी जी कुछ नहीं बोले। उसके बाद उन्होंने कहा—"कहीं न कहीं से अहंकार हमारे भीतर प्रवेश करना चाहता है। अतः व्यक्ति को सदैव सतर्क रहना चाहिए।"

न उनके हृदय में और न ही उनके व्यवहार में कोई भीरुता थी। वे अत्यन्त दृढ़ और अटल थे, इस कारण उनके विषय में विनम्रता किसी को अपने जाल में फंसाने अथवा कैद करने के लिए नहीं थी। उनकी विनम्रता, बुद्धिमानी और ज्ञान से परिपूर्ण थी। इस बात को हमने तब देखा जब स्वामी जी का सामना एक जगत् प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु से हुआ। इनके संसार भर में करोड़ों शिष्य थे। इस बात का अन्दाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि जब उनकी मृत्यु हुई तो उन्हें भगवान् की तरह पूजा जाता था। जब ये आध्यात्मिक गुरु आश्रम में आए तो स्वामी जी भयंकर कटिवात से पीड़ित थे और वे बिस्तर से उठने में भी असमर्थ थे। लेकिन उनका मस्तिष्क हमेशा चौकन्ना और कार्यशील था। दुर्भाग्य से इसी समय उन महापुरुष का आगमन हुआ और स्वामी जी ने असमर्थता के कारण उन्हें लेटे-लेटे ही प्रणाम किया परन्तु स्वामी जी को इस बात का बड़ा ही दुःख था कि ऐसे महापुरुष मेरे पास आए और उन्हें मैं उचित प्रकार से प्रणाम न कर सका, और दुःख का यह भाव उनके मुख पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था।

वे आध्यात्मिक गुरु अपने शिष्यों के साथ स्वामी जी के सामने खड़े थे और स्वामी जी बिस्तर पर लेटे थे। स्वामी जी ने अपने हाथ जोड़ कर माथे पर रखे और बोले—''जय भगवान्, जय भगवान्।''

उन महापुरुष ने स्वीकृति में सिर हिलाया और कहा—''मैं यह जानने के लिए आया हूँ कि तुमने अमुक अवसर पर मेरे बारे में अनर्गल बातें कही हैं।''

स्वामी शिवानन्द जी ने उनकी तरफ देखा और वे समझ गये कि यह दो पुण्यात्माओं के मध्य सौजन्यपूर्ण गोष्ठी न हो कर युद्ध हेतु आमन्त्रण है। स्वामी जी ने उनसे कहा—''मुझे बिल्कुल भी स्मरण नहीं है कि मैंने आपके बारे में कभी कुछ गलत कहा हो।''

उन्होंने कहा कि मेरे पास प्रमाण है कि तुमने मेरी लोक निन्दा की है।

स्वामी जी ने उत्तर दिया—''मुझे जरा भी स्मरण नहीं है और सामान्यतया मैं किसी की आलोचना नहीं करता।''

वे आध्यात्मिक गुरु बोले—''संसारभर में मेरे शिष्य हैं और मैं उन सबको बताने जा रहा हूँ कि तुम लोक निन्दक हो।''

अब स्वामी जी का मुख पर कठोरता का भाव आ गया और उन्होंने कहा—''ठीक है। जाइये, आपकी जैसी इच्छा हो कीजिये।''

यह सुन कर स्वामी जी के सहायक सभी भौचक्के रह गए। स्वामी जी के जीवन में ये एकमात्र ऐसे महापुरुष थे जिनका स्वागत और विदाई इतनी असंगत रीति से की गई। इसलिये विनम्रता को भीरुता समझने की भूल नहीं करनी चाहिये। जब पूर्ण त्याग की भावना सभी में ईश्वर है इस भाव के साथ संयुक्त हो जाती है तभी सच्ची विनम्रता आती है।

स्वामी जी अपना जन्मदिवस उत्सव मनाने पर भी बड़े प्रसन्न होते थे। वे इसकी तैयारी अप्रैल माह से ही करने लगते थे। एक दिन सुबह वे कार्यालय में जाते और कहते—''स्वामी वेंकटेशानन्द जी, क्या आपने जन्मदिन विशेषांक के लिए लेख आमन्त्रित करने हेतु सूचना तैयार कर ली है? देखिए, पहली सूचना इस प्रकार होगी... दूसरी सूचना इस प्रकार होगी... कुछ गायकों को आमन्त्रित करिए। ऐसा

करिए... ऐसा करिए... आदि आदि। इस प्रकार वे सारी बातें भली प्रकार समझाते थे। वे स्वयं ही इसका कारण भी बताते थे 'चाहे कोई भी पर्व हो, जन्मदिन, गुरुपूर्णिमा या शिवरात्रि या और कुछ, उसे अच्छी तरह से मनाना चाहिये। जब जनसमूह एकत्र होता है तो अच्छा सत्संग प्राप्त होता है। इस शरीर की पूजा हो न हो, इसमें रुचि ही किसकी है? बाद में स्वामी जी कहते कि जब लोग मुझे महिमामंडित करते हैं, विशेषरूप से जन्मदिन पर, जब मैं अपने कुटीर में वापस जाता हूँ तो मैं जूतों से अपनी खूब पिटाई करता हूँ और अपने आपसे कहता हूँ—''तुम क्या हो? एक माँस, रक्त और मल से निर्मित शरीर हो। क्या तुम्हें मालाएँ चाहियें? क्या तुम फटे कपड़े नहीं पहन सकते? क्या तुम सोचते हो तुम महान् हो? क्या तुम चाहते हो कि तुम्हें साष्टांग प्रणाम किया जाए? ये लो, ये मालाएँ लो।

जन्मदिन पर हम सभी एक बहुत बड़ा थाल लेते, जिसमें स्वामी जी अपने चरण रखते और लगभग २० या ३० भक्तगण चारों और बैठ कर स्वामी जी के ऊपर पुष्प वर्षा करते। जब हम पाद-पूजा कर रहे होते तो स्वामी जी वहाँ बैठे हुए चारों ओर सबको देखते रहते और सबके बारे में पूछ परख करते रहते। स्वामी जी का कहना था यदि जन्मदिन नहीं मनाते तो ये लोग भी आश्रम में न आते और इसलिये उन्हें यहाँ बुलाने का यह एक सुअवसर था।

स्वामी जी अपनी जीवनियाँ छपवाने में भी बड़ी रुचि लेते थे। एक बार एक बड़े राजनेता की पत्नी आश्रम में आयी। जैसा कि सामान्यतया प्रत्येक अतिथि के साथ होता था उनका भी स्वागत किया गया और उनके लिए कॉफी और फल प्रस्तुत किए गए। स्वामी जी प्रत्येक आगन्तुक को जो भी नयी प्रकाशित पुस्तकें होती उनका सेट दिया करते थे। उस समय स्वामी जी के पास विभिन्न लोगों द्वारा लिखी हुई जीवनियाँ थीं। इन सभी जीवनियों में एक भाग शिक्षाओं का रहता था जैसे कि शिक्षाप्रद पुस्तकों में एक भाग जीवनी का होता है। पुस्तकों के शीर्षक थे शिवानन्द : जगत् के मुक्तिदाता, शिवानन्द : ईश्वर के अवतार, सद्गुरु शिवानन्द, जगत् गुरु शिवानन्द आदि आदि। उस महिला ने इन पुस्तकों को देख कर कहा कि आप इन जीवनियों को आश्रम में छापने की अनुमति क्यों देते हैं? ये तो आपका महिमामंडन करती हैं। वह कुछ अप्रसन्न दिखाई दे रही थी।

स्वामी जी ने अत्यन्त सरलता से बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया। अन्य कोई ऐसा उत्तर नहीं दे सकता था। स्वामी जी ने उसकी तरफ इस प्रकार देखा जैसे वह उनकी बेटी हो और फिर धीरे से कहा—''मैं सोचता हूँ ये जीवनियाँ ही आपको यहाँ ले कर आयी हैं।'' और यही सच था।

वह महिला अत्यधिक प्रभावित हुई। ऐसे प्रभावशाली और शक्तिशाली महापुरुष को उसने अत्यन्त नम्रता पूर्वक नमस्कार किया और फिर कोई प्रश्न नहीं किया। स्वामी जी मात्र मुस्कराए और कोई प्रतिक्रिया नहीं की। वहाँ कोई अभिमान नहीं था। वहाँ सिर्फ विनम्रता थी। ऐसे वाक्य में कि 'मैं कितना महान् हूँ। देखो, कई लोगों ने मेरे बारे में लिखा है' एक अभिमान दृष्टिगोचर होता है। एक अन्य प्रकार का अभिमान है 'मैं अपने आश्रम में ऐसी उद्दण्डता सहन नहीं करता। मैं लोगों को अपना महिमामंडन नहीं करने देता। क्या उन्होंने मेरा चित्र छाप दिया। इसे नष्ट कर दो।' स्वामी जी इसे महा अभिमान कहते थे। स्वामी जी में इन दोनों में से कोई नहीं था। आप उनके बारे में जो चाहते, लिख सकते थे।

मद्रास से किसी ने चित्ताकर्षक शीर्षक तथा लुभावने दामों २५ रुपये तथा ४० रुपये की दो पुस्तकें अवलोकनार्थ भेजीं। उन दिनों पुस्तकें बड़ी सस्ती थीं। आश्रम की कोई भी पुस्तक १० रुपये से अधिक मूल्य की नहीं थी। स्वामी जी ने स्वामी वेंकटेशानन्द जी से कहा कि इन पुस्तकों पर कुछ अच्छी समीक्षा लिख कर दिव्य जीवन पत्रिका में प्रकाशित करें। स्वामी वेंकटेशानन्द जी ने अपने कमरे में ले जा कर एक पृष्ठ खोला, पढ़ने पर उन्हें लगा कि जैसे यह कहीं पहले भी पढ़ा हुआ है। उनके पास स्वामी जी द्वारा लिखित समस्त पुस्तकें एक अल्मारी में रखी हुई थीं। उनमें से उन्होंने स्वामी जी की हठयोग पुस्तक निकाली। नवीन पुस्तक स्वामी जी की पुस्तक हठयोग की शब्दशः नकल थी और इसमें बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था 'इस पुस्तक के किसी भी अंश की प्रतिकृति करना मना है। इसके पुनर्मुद्रण के अधिकार लेखक के पास सुरक्षित हैं। स्वामी वेंकटेशानन्द जी पुस्तक को ले कर अगले दिन स्वामी जी के पास गये और सारी बात स्वामी जी को बताई। स्वामी जी ने मात्र इतना ही कहा 'कोई बात नहीं। लेकिन देखो, उसने इसे कितना अच्छा शीर्षक दिया। उसने

अत्यन्त सुन्दर काम किया है। आखिर यह भी तो ज्ञान का प्रसार ही है जो सबसे अच्छा काम है।'

प्रेम क्या होता है, यह जानना हो तो स्वामी जी जैसे व्यक्ति को अवश्य ही देखना चाहिये। स्वामी जी प्रेम का वह साकार रूप थे जो अति दुर्लभ है। स्वामी जी का प्रेम मात्र भावनात्मक नहीं था बल्कि ये दैवी प्रेम था। इसमें प्रेम के वे सभी रूप थे जिनके प्रति हम जागरुक हैं, बल्कि यह उनसे भी कहीं अधिक विस्तृत था।

बाल्यावस्था से ही वे सभी में ईश्वर के दर्शन करते थे और सभी में ईश्वर से प्रेम करते थे। प्रत्येक मुखड़े में ईश्वर का दर्शन करो। सभी में ईश्वर से प्रेम करो। सबमें उसी भगवान् की सेवा करो। इन विचारों को वे प्रकट स्वरूप में व्यक्त भी करते थे। स्वामी जी के भीतर वे आदर्श न हो कर जीवित सत्य थे।

स्वामी जी अपने शिष्यों के आगे हाथ जोड़ कर, झुक कर कहते—"जय भगवान, क्या आप अच्छे हैं?" वे शिष्यों के साथ गुरु के समान व्यवहार नहीं करते थे। स्वामी जी उनके साथ अत्यन्त मधुरता और प्रेम से बात करते थे। स्वामी जी जो कुछ भी कहते वे मात्र शब्द नहीं होते वरन् वे असाधारण भावना से पूरित होते थे।

स्वामी जी को एक बार टायफाइड हो गया तो वे काफी समय तक कमरे से बाहर नहीं जा सके। एक दिन वे गंगा जी तथा हिमालय के दर्शनों के लिए तथा ताजी हवा के लिए अपने दो शिष्यों के कंधों का सहारा लेकर बाहर आए। उन्होंने गंगा जी के तट पर एक वृद्धा पारसी स्त्री जिन्हें हम जाल माता जी कहा करते थे, को बैठे हुए देखा। वे बोले—"उनसे पूछो, वे यहाँ क्यों बैठी हैं। उन्होंने मध्यान्ह भोजन लिया या नहीं। उन्हें कुछ खाने के लिए दो।"

एक वृद्धा जो तपती धूप में बैठी है, उसकी स्वामी जी को कितनी चिन्ता थी? उसके प्रति उनका यह कैसा प्रेमभाव था? स्वामी जी की जो शारीरिक स्थिति थी, उसमें कोई भी कैसे अन्य किसी के हित तथा आराम के बारे में सोच सकता है? उनका यह प्रेम कोई भावुकतावश नहीं था। स्वामी जी तो पूर्ण थे, इसलिये वे मात्र भावनावश कोई कार्य कर ही नहीं सकते थे। उनके प्रत्येक क्रिया-कलाप, प्रत्येक विचार, प्रत्येक शब्द में मात्र मन, हृदय और आत्मा ही नहीं वरन् सम्पूर्ण शरीर एक साथ कार्य करता था। वे सम्पूर्ण हृदय और आत्मा के साथ सदैव लयबद्ध रहते थे।

यदि वे किसी शिष्य को डाँटते भी थे तो इसलिये कि वह उनका अंश और अंग बन गया था। जो शिष्य उनसे सबसे अधिक दूर होता, उसे वे सबसे अधिक प्रेम दर्शाते लेकिन जब वह उनके थोड़ा समीप आता तो वे उसे माँजना चाहते और वे तभी उसके प्रति थोड़ा कठोर दिखाई देते और ऐसा भी कभी-कभी ही होता था। जब भी इस प्रकार की कोई बात होती तो उस शिष्य को स्वयं ही अनुभव होता कि ऐसा स्वामी जी उसके प्रति असीमित प्रेम के कारण कर रहे हैं। एक बार की घटना है एक शिष्य कुछ गल्ती कर रहा था, उसे समझाते हुए स्वामी जी ने कहा—"मैं इस बारे में पिछले तीन दिनों से सोच रहा हूँ। यहाँ तक कि मैं पिछली तीन रातों को सोया भी नहीं हूँ।" स्वामी जी के स्थान पर अन्य कोई होता तो शिष्य से सीधे ही कहता—"ऐसा मत करो।" लेकिन इससे शिष्य को दुःख पहुँचता। इस कारण यदि ऐसी कोई बात कहनी होती तो स्वामी जी देर पर देर करते जाते। स्वामी जी उस पर सोचते, मनन करते कि शायद वह व्यक्ति जाग जाए और अपनी गल्ती समझ ले। यदि अब भी वह नहीं समझता तो स्वामी जी उसे थोड़ा कुछ कहते और उसके बाद उसे भरपूर शहद, बिस्किट, फल आदि देते। ऐसा अनुपम प्रेम जो कि मानवीय न हो कर दैवी था किन्तु इसमें सम्मिलित सभी तत्त्व मानवीय थे। स्वामी जी बड़े ही स्नेही थे और जहाँ दूसरों की भलाई हो रही हो उसमें वे असाधारण थे। और इतना ही नहीं उन्होंने प्रत्येक के आध्यात्मिक विकास हेतु आश्रम का सृजन किया।

स्वामी जी को जो कार्य सर्वाधिक आनन्द प्रदान करता था वह था प्रसाद वितरित करना। सन् १९४७ में हीरक जयन्ती मनाई गई। इसमें बड़ी मात्रा मे लड्डू बनाए गये स्वामी जी बड़े प्रसन्न थे। जो भी उनके पास जाता उसे वे दोनों हाथों से भरकर लड्डू दिया करते थे।

किसी को भी अनुरोध करके थोड़ा और खिलाना स्वामी जी को बड़ा अच्छा लगता था। आश्रम में प्रवेश करने के बाद स्वामी जी अपने ही बनाए बीस आध्यात्मिक नियमों में से थोड़ा खाओ, थोड़ा पियो, जिसे वे गाया भी करते थे, को स्वयं ही तोड़ देते थे। वे कहते थे जब आप अपने घर जाएँ तब ऐसा करें। स्वामी जी जब प्रसाद देते तो अपने दोनों हाथों से भर कर देते (उनके हाथ काफी बड़े थे) और आपको उनके सामने बैठ कर ही खाना पड़ता, क्योंकि यह देख कर उन्हें बड़ी

प्रसन्नता होती थी। सैकड़ों लोग उनके सामने बैठ कर जी भरकर प्रसाद लें, यह देखना उन्हें बड़ा ही आनन्दित तथा उत्साहित कर देता था।

प्रारम्भ में तो वे कुछ विशेष अवसरों पर जैसे एकादशी आदि पर आहार में नियन्त्रण के मामले में बड़े ही सख्त थे। परन्तु बाद में ये सारे नियम शिथिल कर दिए गए। स्वामी जी के कार्यालय में भक्तगण फल तथा मिठाइयाँ आदि लेकर आते और इन्हें उसी समय वहाँ उपस्थित सभी लोगों में वितरित कर दिया जाता था। एक बार इसी कारण बड़ा धोखा हो गया। घटना इस प्रकार है, एक बार आश्रम में मुम्बई से एक दक्षिणी महिला भक्त आईं। वे एक बड़ी ही स्वादिष्ट मिठाई बना कर अपने साथ स्वामी जी के लिए लेकर आयी थीं। उन्हें पता था कि यह मिठाई स्वामी जी बहुत पसन्द करते हैं। इसे बड़े ही परिश्रम से बनाना पड़ता था और वे इसे बनाने में सिद्धहस्त थीं। उन्हें मालूम था कि स्वामी जी को बाँटना पसन्द है। इसलिये वे थोड़ा अधिक बना कर लाई थीं। स्वामी जी ने अपने शिष्य को पूरी की पूरी मिठाई की थाली दे दी और कहा—''सभी में वितरित कर दीजिये। स्वामी जी ने स्वयं उसमें से थोड़ा भी नहीं लिया तो उस स्त्री का दिल बैठने लगा। उसकी आँखों में आँसू आ गए। यह देख कर स्वामी जी वितरण करने वाले शिष्य की ओर मुड़े और बोले—''अरे, एक हिस्सा इन्हें भी दीजिये।'' अचानक स्वामी जी ने उसके भावों को समझा और बोले 'रुकिये। इसे इधर लाइये, शेष मिठाई मेरी है। मैं इसे ग्रहण करूँगा। इसे अब किसी को न दें।' उन्होंने देखा वह प्रसन्न हो गई थीं। उसके मुख पर प्रसन्नता झलकने लगी। स्वामी जी ने थोड़ी सी मिठाई अपने मुँह में रखी और शेष वितरण हेतु आगे भेज दी।

स्वामी वेंकटेशानन्द जी निम्न घटना स्मरण करके कहते हैं—

यह रविवार को मध्यान्ह का समय था। मैं कुछ काम से स्वामी जी के कुटीर में गया। वहाँ मैंने देखा स्वामी जी अपने साथ जो शिष्य था, उससे फलों की टोकरी लाने के लिए कह रहे थे। वह थोड़ा हिचकिचाया क्योंकि उन दिनों फल अत्यन्त दुर्लभ थे और स्वामी जी आज के दिन मात्र फल और दूध ही ग्रहण करते थे। स्वामी जी यह देख कर तेजी से रसोईघर में गये और टोकरी उठा ली। सहयोगी शिष्य उनकी सहायता करने के लिए पीछे-पीछे दौड़ा। अब आगे-आगे स्वामी जी थे और

पीछे-पीछे फलों की टोकरी लिए वह शिष्य। दोनों बाहर आ गए। स्वामी जी ने टोकरी में से एक केला तथा सन्तरा उठा लिया। सहयोगी शिष्य धीरे से बोला—"स्वामी जी, ये सन्तरे आजकल बड़ी कठिनाई से मिलते हैं और आप आजकल कोई अन्य फल नहीं लेते। इस कारण ये मात्र आपके लिए मंगवाए गये हैं। अतः आपसे निवेदन हैं कि कृपया सन्तरे न दें।"

स्वामी जी ने उसकी ओर देखा और एक सन्तरा और ले लिया और मुझे पकड़ा दिया। फिर एक सन्तरा और लिया और दूसरे शिष्य को दे दिया। सहयोगी शिष्य यह देख कर अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठा और बोला—"स्वामी जी, बस अब मात्र चार ही शेष हैं।"

स्वामी जी बोले—"मुझे बहुत नहीं चाहिये। यदि सन्तरा दुर्लभ है तो मछलियों को भी उसका हिस्सा मिलना चाहिये। उन्होंने एक सन्तरा लिया और उसे छील कर गंगा जी के जल में मछलियों के लिए थोड़ा-थोड़ा डालने लगे। उनके मुख पर अत्यन्त आदर और सन्तोष का भाव था। हर टुकड़ा जैसे ही जल की सतह को स्पर्श करता मछली आ कर उसे मुँह में ले लेती। इससे उन्हें जो सुख प्राप्त हुआ वह अवर्णनीय था।

प्रसाद के साथ-साथ उन्हें आध्यात्मिक पुस्तकों के वितरण में भी बड़ा ही आनन्द का अनुभव होता था। वे इन पुस्तकों को संसार भर में निःशुल्क भेजा करते थे। जब पार्सलों की रजिस्ट्री करनी होती उसके पहले स्वामी जी उन्हें स्पर्श करके आशीर्वाद देते तथा एक-एक पार्सल पर लिखे पते को देखते। स्वामी जी कहते थे कि 'यह मैं इसलिये करता हूँ कि इसे पाने वाला व्यक्ति यहाँ से हजारों मील दूर है और इस प्रकार मैं उसे स्वयं दे देता हूँ।'

स्वामी जी सदा दिया करते थे लेकिन इस बात का उन्हें किञ्चित भी अभिमान नहीं था। न ही वे इसके बदले में किसी प्रकार की अपेक्षा रखते थे। यह शुद्ध दिव्य प्रेम था जिसने सेवा का, भोजन प्रदान करने का, ज्ञान प्रदान करने तथा स्वयं को हर प्रकार से देने का रूप ले लिया था।

अहिंसा तो स्वामी जी का स्वभाव था। वे दूसरों की भावनाओं को आहत कभी नहीं कर सकते थे। जो लोग उनसे मिलते थे वे जानते थे कि उनके शब्दों में

बड़ी मिठास थी। उनके मुख से कभी भी कठोर या निष्ठुर शब्द नहीं निकलते थे बल्कि ये कभी उनके हृदय में भी नहीं होते थे। वे किसी के भी प्रति घृणा अथवा बुरी भावना नहीं रखते थे। उनके द्वारा कही गई बात यदि कोई शिष्य गलत समझ लेता और उसके हृदय को चोट पहुँचती तो स्वामी जी को बड़ा दुःख होता, वे बेचैन हो जाते थे। बस, इस एक बात के सिवा उन्हें दुनियाँ की और कोई भी बात बेचैन नहीं कर सकती थी। एक बार स्वामी जी ने एक भक्त को सलाह दी जिससे उसे बड़ी ही ग्लानि का अनुभव हुआ और इसके लिए स्वामी जी उस भक्त के पास स्वयं गए। उसे यह विश्वास दिलाने के लिए कि वे उसके प्रति बड़ी उच्च धारणा रखते हैं और स्वामी जी उसकी सेवा के लिए ही जीवित हैं। स्वामी जी के भावों का वर्णन करना सम्भव नहीं था।

स्वामी जी का लिखा हुआ तथा उनके प्रवचन अवश्य ही चेतावनी भरे होते थे परन्तु वार्तालाप करते समय वे सदा प्रेम से बोलते, प्रशंसा करते तथा प्रोत्साहित किया करते थे।

स्वामी जी का जोर सदा इस बात पर रहता था कि 'कभी किसी की भावनाओं को आहत न करो। सब पर दया करो।' और इस बात को अन्यों की तुलना में शायद वे स्वयं सर्वाधिक व्यवहार में लाते थे। वे कभी गलत बात पर भी क्रोधित नहीं होते थे तथा अन्य विषयों में जहाँ अन्य गुरुजन छड़ी का प्रयोग करते, वे उन्हीं विधियों सेवा, प्रेम, दान, ध्यान का प्रयोग करते थे। जिसे आप सुधारना अथवा जिसका आप पुनर्निमाण करना चाहते हैं उसकी सेवा करो, उससे प्रेम करो, उसके लिए ध्यान और प्रार्थना करो। यही अहिंसा का मार्ग है।

स्वामी जी के भीतर अहिंसा दैवी प्रेम का धनात्मक गुण बन गया था—विचारों, शब्दों और कार्यों में प्रेम, जीवन में प्रतिदिन, प्रतिपल, प्रत्येक श्वाँस में प्रेम। जब वे चलते थे तो भी यह व्यक्त होता था। वे अत्यन्त विशाल शरीर के स्वामी थे लेकिन जब वे चलते थे तो उनके पैर इतने धीरे से मृदुलतापूर्वक भूमि पर पड़ते थे कि कोई आहट भी नही सुन सकता था। जब वे सड़क पर चलते थे तो उन्हें देखना बड़ा ही अच्छा लगता था। उनके कदमों में भी अहिंसा थी, वे चरण भी बड़े ही प्रेम से रखते थे। यदि एक सूखी पत्ती पर भी उनके चरण पड़ते तो वह भी नहीं

टूटती थी। यदि गल्ती से उनका पैर किसी चींटी पर रखा जाता तो उसे भी चोट नहीं लगती थी। उनकी चाल में इतनी कोमलता थी।

वे अहिंसा की कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरे थे। स्वामी जी किसी के कष्ट को क्षण भर के लिए भी सहन नहीं कर सकते थे। वे तुरन्त उस कष्ट के निवारण हेतु दौड़ पड़ते थे। यदि स्वामी जी गंगा स्नान करते समय किसी कीड़े को जल में से बाहर निकलने हेतु संघर्ष करते देखते तो वे उसी क्षण उसे हथेली पर ले कर किनारे पर रख देते थे। एक बार स्वामी जी ने अपने मुख पर बिना कोई घृणा का भाव लाए बतलाया कि यदि विष्ठा के भीतर भी मुझे कोई कीड़ा या केंचुआ जीवन के लिए संघर्षरत दिखाई देता तो उसे भी मैं बाहर निकाल कर उसकी रक्षा करूँगा। वे अन्य किसी को भी किसी भी प्राणाी को हानि पहुँचाने की अनुमति नहीं प्रदान करते थे।

यह घटना सन् १९५५ में ग्रीष्म ऋतु की है। तेज गर्मी पड़ रही थी। कार्यालय के पास में एक पानी का मटका रखा था। एक बन्दर उसमें से पानी लेने का प्रयास कर रहा था। उसे एक आश्रमवासी संन्यासी भगाना चाह रहा था। स्वामी जी ने यह देखा और कहा—"पहले उसे पीने दें।" संन्यासी रुक गया। बन्दर ने पानी पी लिया। स्वामी जी ने कहा—"आप किसी भी मनुष्य के हृदय का उसके द्वारा किए गये बड़े-बड़े दान तथा उसके द्वारा निर्मित बड़े-बड़े अस्पतालों द्वारा अनुमान नहीं लगा सकते। उसे पहचानना है तो उसके छोटे-छोटे कामों पर ध्यान दीजिए। जब आप नदी से जल भर कर लाए हैं और यदि बन्दर उसे गंदा कर देता है तो उसी क्षण आप क्या प्रतिक्रिया करते हैं? आपके मन में पहला विचार क्या आता है? सबसे पहला आवेग क्या आता है? यही निश्चित करता है कि आप संत हैं अथवा नहीं।

स्वामी जी अपनी शिक्षाएँ किसी पर जबरदस्ती थोपते नहीं थे। सन् १९४४ की बात है स्वामी जी ऋषिकेश से मुम्बई जाते समय रेल दिल्ली स्टेशन पर रुकी। उस समय कुछ युवक जो दिल्ली में काम भी करते थे और दिल्ली की दिव्य जीवन संघ शाखा भी संचालित करते थे, रेलवे स्टेशन पर स्वामी जी के दर्शन हेतु आए। स्वामी जी उनसे बातें करने लगे। उस समय स्वामी जी अत्यन्त ऊर्जावान और उत्साहित थे। कर्मठ व्यक्तित्व कैसा होता है, यह स्वामी जी को देख कर जाना जा सकता था।

स्वामी जी ने एक विवाहित युवक से पूछा—"आपकी पत्नी कैसी है?" उसने उत्तर दिया—"स्वामी जी, अभी वह मद्रास गई है अपने मायके।"

स्वामी जी ने कहा—"उसे अब वहीं रहने दें। एकाकी जीवन व्यतीत करो, एक स्वतन्त्र जीवन उसे वहीं निवास करने दें। लेकिन यह युवक अपनी पत्नी से बड़ा प्रेम करता था। इसलिये बोला—"मैं यहाँ कब तक अकेला रहूँ? स्वामी जी मुझे उसके बिना अच्छा नहीं लगता।"

स्वामी जी ने कहा—"ऐसी बात है क्या? यदि ऐसा है तो उसे तुरन्त वापस बुला लीजिये।"

एक अन्य घटना है। एक बार एक युवक जो साधु था, आश्रम में आया। उसके मुख पर अत्यन्त आकर्षक दाढ़ी थी। उसने स्वामी जी से कहा—"मैं यहाँ आपके संन्यासी शिष्यों की तरह रहना चाहता हूँ।"

स्वामी जी ने कहा—"तब आपको दाढ़ी कटानी पड़ेगी।" वह थोड़ा हिचकिचाया। यह देख कर स्वामी जी तुरन्त बोले—"लेकिन आप इसे पुनः बढ़ा सकते हैं।" दाढ़ी कटाना दीक्षा की एक प्रक्रिया हेतु आवश्यक है। स्वामी जी जो कहना चाहते, कह देते लेकिन वे अत्यन्त ध्यान से तथा सावधानीपूर्वक देखते कि सामने वाले पर उनकी बात की कैसी प्रतिक्रिया हुई। वह इसे प्रसन्नता से अथवा दबाव में आ कर स्वीकार कर रहा है। यदि उन्हें लगता कि वह दबाव में आ कर स्वीकार कर रहा है तो वे तत्काल अपनी बात वापस ले लेते। उनका यह व्यवहार अत्यन्त सुन्दर था तथा ध्यान देने योग्य था।

एक बार की बात है स्वामी जी के दो शिष्यों में गलतफहमी हो गई। उनमें से एक कह रहा था कि दूसरे ने उसका अपमान किया है। वे दोनों स्वामी जी के पास शिकायत ले कर आए। स्वामी जी उस समय आराम कुरसी पर विश्राम कर रहे थे। जिस शिष्य ने दूसरे का अपमान किया था वह स्वामी जी के चरणों के पास बैठा था। अचानक वह भावावेश में आ कर अपने दोनों हाथों को उठा कर बोलने लगा—"स्वामी जी मैं शपथ लेता हूँ... (वह कहने वाला था कि अब वह किसी का भी अपमान नहीं करूंगा।) परन्तु स्वामी जी ने उसे रोक दिया। स्वामी जी ने कहा—"रुको, रुको" और उसे बात पूरी नहीं करने दी। "आप अभी एक शपथ

लेंगे और कल यदि आपने इसे तोड़ा तो आपको ऐसा करने की आदत पड़ जाएगी और फिर आप दुःखी हो जायेंगे, क्योंकि आपने अपनी बुरी आदत को फिर से पकड़ने की गल्ती तो की ही, अपनी शपथ को भी तोड़ दिया। इसके स्थान पर कहा—'मैं भगवान् की कृपा से प्रयत्न करूँगा।' सदैव संकल्प लो, शपथ नहीं।''

स्वामी जी को लोगों के द्वारा की जाने वाली आलोचना से कभी भय नहीं लगता था। वे कहते थे कि समाज के नियमों को उद्दण्डतापूर्वक तोड़ना नहीं चाहिये किन्तु जो आप न्यायोचित समझते हों वह करने का साहस होना चाहिए। इस कारण जब भी स्वामी जी कुछ भिन्न करते तो लोगों की धारणा का अनादर करने के लिए नहीं करते थे, बल्कि वे उनकी धारणा से बिना डरे करते थे और जब भी वे कुछ न करते तो इसलिये नहीं कि वे लोगों से डरते थे वरन् इसलिये कि वह करना न्यायोचित नहीं था। और यदि कोई कार्य उचित नहीं है तो दुनियाँ की कोई भी ताकत उनसे वह कार्य नहीं करवा सकती थी। बिना किसी आलोचना के भय के स्वामी जी सदा वही काम करते थे जो वे सही समझते थे।

स्वामी जी कहते थे कि यदि आपको किसी काम को करने से भय लगता हो तो उसे तुरन्त कर डालें और उस भय मुक्ति पा लें। स्वामी जी सदा ही शालीन और सुरुचिपूर्ण तरीके से वस्त्र धारण करते थे, किन्तु ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में वे गंगा जी के तट पर मात्र एक लंगोटी पहने बैठ कर अपने शरीर की मालिश करते। वे इस बात की चिन्ता नहीं करते कि लोग उन पर हंसेंगे। यह लोगों का काम है, उनका नहीं।

एक दिन स्वामी जी ने कहा कुछ लोग सदा चेहरा बनाए बैठे रहते हैं। ऐसा मुझे पसन्द नहीं है। सभी को सदा प्रसन्न रहना चाहिये। खिलखिलाते रहना चाहिये। उनका मुख सदा सूर्य के प्रकाश के समान दीप्तिमान होना चाहिये। एक दिन स्वामी जी ने एक हास्य प्रतियोगिता करने का निश्चय किया। स्वामी जी ने स्वामी वेंकटेशानन्द जी को भी अपने साथ आने को कहा और आश्रम के फोटोग्राफर से चित्र उतारने के लिए कहा। कार्यालय का समय समाप्त हो जाने पर स्वामी जी नीचे घाट पर गए। शीत ऋतु थी, स्वामी जी ने ओवर कोट पहन रखा था। उन्होंने स्वामी वेंकटेशानन्द जी को भी ओवरकोट पहनने के लिए कहा। मेज और कुर्सियाँ मंगाई गईं। फिर स्वामी जी बोले—''चलो, अब हम हंसें।'' स्वामी जी ने एक चुटकुला

सुनाया और दोनों ने हंसना प्रारम्भ कर दिया। आसपास से गुजर रहे तीर्थ यात्रियों को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। स्वामी जी को इस बात की बिल्कुल चिन्ता नहीं थी कि लोग क्या कहेंगे।

आश्रम की स्थापना के पूर्व, अपने प्रारम्भिक दिनों में जब स्वामी जी स्वर्गाश्रम में रहते थे, अन्य स्वामी तथा धर्मात्मा लोग स्वामी जी की आलोचना करते थे। वे कहते थे वह एक गृहस्थ स्वामी है क्योंकि वह रुपये का व्यवहार करता है और साहित्य छापता है। हालाँकि वह गेरुआ वस्त्र धारण करता है। स्वामी को सदा खाली हाथ रहना चाहिये। उसे तो अपना कमंडल भी नहीं उठाना चाहिये। यह तो शिष्य का काम है। उन लोगों ने स्वामी जी की आलोचना करने का नियम बना रखा था। लेकिन स्वामी जी अपने कार्यों में दृढ़ रहे और उन्होंने इन बातों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दर्शाई। उन दिनों कोई भी स्वामी नृत्य और कीर्तन भी नहीं करता था। स्वामी लोग किसी के सामने झुकते भी नहीं थे। ये स्वामी जी ही थे जिन्होंने दूसरों को झुक कर प्रणाम करना प्रारम्भ किया। स्वामी जी की इस बात के लिए आलोचना भी हुई और लोग उन पर हंसते भी थे। वे किसी अन्य पंथ से जुड़े थे। इसलिये वे सोचते थे कि स्वामी जी नाटक करते हैं। उनका सोचना था कि साधु को गहन गम्भीर होना चाहिये और सारे समय ब्रह्म चिन्तन करना चाहिये। लेकिन ब्रह्म चिन्तन के लिए संसार की उपेक्षा कर देनी चाहिये, यह दर्शन स्वामी जी को पसन्द नहीं था। स्वामी जी के एक आलोचक ने बाद में कहा 'उन दिनों हममें से कुछ स्वामी जी की आलोचना करते थे परन्तु अब हमें समझ आया कि वे सही थे।'

स्वामी जी स्वयं को प्रभावहीन बताने के लिए अपने आपको ओवरकोट स्वामी कहा करते थे। लेकिन जब वे अपने नवीन शिष्यों को ओवरकोट देते तो उसे समझाते तुम इस ओवरकोट को कम्बल से भिन्न वस्तु क्यों समझते हो? अन्य लोग स्वयं को गर्म कम्बल में लपेट कर रखते हैं जो दिखने में भी अच्छा नहीं होता और कार्य करने में भी बाधक होता है। आप उसी कम्बल के टुकड़े करके सिलवा कर पहन रहे हैं जिससे आप आराम से चल फिर सकें और काम कर सकें।

एक महान् देश प्रेमी कभी-कभी आश्रम प्रवास हेतु आया करते थे। उन्होंने स्वामी जी से पूछा—"आप विदेशी वस्त्र क्यों पहनते हैं?" स्वामी जी का उत्तर

था—"एक साधु के लिए टाट की बोरी, रेशमी या सूती, भारतीय या विदेशी, इनमें कोई फर्क नहीं है। मैं अपने सच्चे भक्तों द्वारा दी गई इन वस्तुओं का खुशी से प्रयोग करता हूँ। **मात्र खद्दर पहनना ही सच्ची देशभक्ति का चिन्ह नहीं है।** विवेक का सूत कातो, शान्ति का वस्त्र बुनो और ब्रह्मज्ञान का खद्दर पहनो और सच्चे देशभक्त बनो।"

स्वामी जी को संक्रमण का भी बिल्कुल भय नहीं था। चिकित्सक लोग यदि रोगी की ठोढ़ी का भी स्पर्श करते हैं तो लाइसोल से हाथ धोते हैं लेकिन स्वामी जी को कोई डर नहीं था। एक व्यक्ति एक वाइरल प्रकार की छोटी माता (रोग) से पीड़ित था और फिर वह मर भी गया। स्वामी जी हमेशा उसे देखने जाते थे लेकिन उसे देख कर आने के बाद न तो वे कपड़े ही बदलते थे, न ही नहाते थे। स्वामी जी उन लोगों को भी देखने जाते थे जो हैजा और टायफाइड रोग से गम्भीर रूप से पीड़ित रहते थे और बिना किसी डर के वे आराम से उनका परीक्षण करते थे। ऐसे विषयों पर वे कभी भी सोचते नहीं थे।

स्वामी जी को अपना सम्मान घटने की भी कोई चिन्ता न थी। स्वामी जी ने जो किया वह किसी ने नहीं किया। जो स्वामी जी की आलोचना करते थे स्वामी जी उनका पालन-पोषण करते थे। उन्हें आश्रय देते तथा उनकी देखभाल करते थे। यदि आप आध्यात्मिक जिज्ञासु हैं और आपके भीतर की आध्यात्मिक जिज्ञासा को संरक्षित और विकसित किया जा सकता है या आपके भीतर कोई गुण अथवा योग्यता है जो जनकल्याण हेतु उपयोगी सिद्ध हो सकती है तो चाहे आप उनके सामने अथवा पीठ पीछे उनकी आलोचना अथवा निन्दा भी करें तो भी वे आपको अपने आश्रम में रहने की अनुमति दे देते थे। वे तो यहाँ तक कि यह जानने के बाद भी कि आप उनकी निन्दा करते हैं आपकी प्रशंसा भी कर सकते थे।

स्वाजी की कभी भी लोगों की धारणाओं की चिन्ता नहीं करते थे। सन् १९३० में हरिद्वार के कुम्भ मेले में किसी ने यह झूठी खबर फैला दी कि स्वामी शिवानन्द जी विवाह करने वाले हैं। यह समाचार स्वयं स्वामी जी के एक शिष्य द्वारा लाया गया। वह बड़े ही गुस्से में था। जब स्वामी जी को यह बात बताई गई तो स्वामी जी ने कहा—"ठीक है, एक मंच तैयार करें, उसे इस मंच पर खड़े हो कर यह सब कहने

दें। जिन लोगों ने यह सुना है वे सभी इस विवाह के साक्षी होंगे अथवा यह जान लेंगे कि यह सच है यह झूठ और मैं उन्हें बीस आध्यात्मिक उपदेश दूँगा और उनसे भगवान् के नाम का कीर्तन करवाऊँगा।'' सत्य क्या है, इसकी समझ स्वामी जी में स्वाभाविक रूप से थी। इस कारण ही उनके भीतर यह निर्भयता थी। वे अपनी बात को सिद्ध करने के लिए कोई तर्क नहीं देते थे। वे न तो किसी की धमकियों पर कोई प्रतिक्रिया देते थे और न ही अपने विरोधियों को समझाने का प्रयास करते थे। यदि कोई शिष्य कोई काम करने पर यह अनुभव करता कि उसका कार्य करने का तरीका अधिक सही है तो स्वामी जी कहते कि 'ठीक है, इसे अपने तरीके से करो।' बाद में स्वयं वह शिष्य ही इस बात को स्वीकार कर लेता कि स्वामी जी ही सही थे। यह भी एक आश्चर्य की बात थी कि चाहे कोई भी उनसे तर्क करता वे विवाद में नहीं पड़ते थे। वे सामने वाले व्यक्ति की बात को अत्यन्त धैर्य के साथ सुनते और अन्त में उसे एक कप चाय, कुछ फल और पुस्तकें देते, तर्क का क्या हुआ? वे निर्भयता के साथ वही करते जो वे जानते थे कि सही है।

स्वामी जी आत्म-ज्ञान प्राप्त थे इसलिये वे धारणा को धारणा की भाँति ही लेते थे। उसे सच्चाई नहीं समझने लगते थे। उदाहरण के लिए उनका नाम शिवानन्द था लेकिन उन्होंने अपनी आध्यात्मिकता को इसमें ही सीमित नहीं रहने दिया। जब भी उनकी प्रशंसा अथवा निन्दा की जाती तो वे सही बात को अच्छी तरह समझते थे। उनके नाम का इस पर कोई प्रभाव नहीं था। वे इसे एक नाम ही समझते और इससे अधिक सम्बद्ध नहीं रहते थे। इस हेतु दो घटनाएँ दी जा रही हैं—''सन् १९५३ में स्वामी जी ने धर्म संसद का आयोजन किया। विश्वभर से विभिन्न धर्मों के कई प्रतिनिधि इसमें भाग लेने आए और वहाँ इनके सिवा अन्य भी कई लोग थे जो मात्र कार्यक्रम में हिस्सा लेने आए थे। चूँकि यह मात्र स्वामी जी के शिष्यों और भक्तों का कार्यक्रम नहीं था इसलिये श्रोताओं के मन का अनुमान लगाना सरल नहीं था। यह चूँकि एक सार्वभौमिक कार्यक्रम था और इसमें विश्वभर से लोग आए थे इस कारण कार्यक्रम की अधिकांश गतिविधियाँ अंग्रेजी में थीं। वहाँ एक या दो स्वामी लोग अंग्रेजी नहीं बोल सकते थे। वे हिन्दी, तमिल या अन्य कोई भाषा में बात करते थे। उनके सिवा अधिकांश लोग अंग्रेजी समझ सकते थे।

दूसरे दिन एक स्वामी जी जो मंच पर बैठे थे उन्होंने प्रायोजकों को सन्देश भेजा कि मैं बोलना चाहता हूँ।

उन्होंने उत्तर दिया 'समय नहीं है।'

स्वामी जी भी मंच पर बैठे थे। उन्हें बताया गया तो वे बोले—''उन्हें बोलने दीजिए। आज मैं नहीं बोलूँगा।''

वे स्वामी जी उठे और उन्होंने माइक को जोर से पकड़ लिया जैसे कि कहीं कोई छीन न ले और उन्होंने भाषण देना प्रारम्भ किया। लगभग दस मिनट तक उन्होंने स्वामी जी को भला-बुरा कहने के सिवा और कुछ नहीं कहा। उन्होंने कहा—''यह उत्तर भारत में रहता है जहाँ की भाषा हिन्दी है लेकिन फिर भी यह अंग्रेजी में ही लिखता और बोलता है। ऐसा लग रहा था जैसे यह धर्म संसद न हो कर भाषा संसद हो परन्तु उस स्वामी को इससे कोई लेना देना ही नहीं था, वह तो मात्र स्वामी जी पर जनसमूह के समक्ष प्रहार करने के लिए ही आया था। स्वामी जी कहते जा रहे थ, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। सभी में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति बहुत अधिक नाराज था लेकिन स्वामी जी शान्त थे और कह रहे थे... यह आपकी धारणा है, आपका मार्ग है... कहते जाइए। स्वामी जी न तो इस व्यक्ति को समझाना चाहते थे और न ही उसके सामने स्वयं को सही साबित करना चाहते थे कि उन्होंने अपनी पुस्तकों के विश्वव्यापी प्रसारण के लिए ही पुस्तकें अंग्रेजी में लिखीं। स्वामी जी के मुख पर इस समय ध्यान से सुनने तथा मनोरंजन दोनों का मिश्रित भाव था। वे उन बातों को ध्यान से सुन रहे थे तथा स्वामी जी द्वारा व्यक्त तथ्यों को अंकित कर रहे थे परन्तु व्यक्तिगत रूप से उन पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं था क्योंकि उनके लिए शिवानन्द नाम मात्र पहचान हेतु कुछ समय के लिए एक नाम था न कि इससे जुड़ी कोई सच्चाई।

यहाँ तक कि जब उनके शिष्य भी यह कहते कि भोजन असन्तुलित तथा अस्वास्थ्यकर है तो वे बड़े ध्यान से और धैर्यपूर्वक सारी बातें सुनते तथा अन्त में एक आश्रमवासी को उनके लिए विशेष भोजन बनाने के लिए कहते। उनके स्वयं के ऊपर की गई व्यक्तिगत टिप्पणी उनके लिए विशेष महत्त्व नहीं रखती थी। जब कोई स्वामी शिवानन्द की निन्दा करता तो वे कभी विचलित नहीं होते थे तथा स्वामी

शिवानन्द की प्रशंसा करने से वे उत्साहित भी नहीं होते थे। लेकिन वे निन्दा और प्रशंसा में छिपे तथ्यों पर अवश्य ध्यान देते थे।

धार्मिक स्वतन्त्रता

स्वामी शिवानन्द जी के उपदेश तथा उनका दर्शन उनके जीवन से ही उत्पन्न हुआ था। उनका जीवन ही उनका उपदेश था और उनका उपदेश ही उनका जीवन था। स्वामी जी ने परम्पराओं का कभी विरोध नहीं किया। उन्होंने कभी-कभी ही व्याख्यान दिए पर लिखा बहुत और उनका लेखन अधिकांशतः परम्पराओं का ही विस्तार था और इस विस्तार में वे अपने ज्ञान का भी समावेश करते थे। विशेषरूप से वे अत्यन्त कठिन बात को अत्यन्त सरल बना देते थे और जो छिपे हुए तथ्य होते उन्हें वे आकर्षक बना देते थे। उनके जीवन तथा शिक्षाओं दोनों में ही अत्यधिक विनोदप्रियता और सरलता थी।

स्वामी जी एक अद्वैत वेदान्ती थे (ईश्वर पर विश्वास करना अद्वैतवाद का आवश्यक अंग नहीं है) अद्वैतवाद में द्वैत का पूर्ण अभाव होता है। अद्वैत कहता है कि 'एकमात्र भगवान् ही है और वह सर्वव्यापक है।' जब यह बात सुनने में आती है तो स्वयमेव मन में एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'फिर आप मन्दिर, चर्च अथवा किसी अन्य पूजागृह में ईश्वर की पूजा क्यों करते हैं? आप सर्वत्र ईश्वर की पूजा क्यों नही करते?' वास्तव में कठिनाई यह है कि जब आप कागज को देखते हैं तो इसे कागज की तरह देखते हैं न कि भगवान् की तरह। वास्तव में हमारा मन इस बात का अभ्यस्त है इसी कारण वह ऐसा व्यवहार करता है। लेकिन स्वामी जी का व्यवहार इससे भिन्न था और ध्यान देने योग्य था और यह उनके नित्य जीवन में भी दिखाई देता था। स्वामी जी का जीवन भक्ति तथा ज्ञान का विशिष्ट तथा सुन्दर संयोजन था। यदि उनके साथ कोई बहुत अच्छी घटना घटती तो वे कहते 'ओह! यह भगवान् की कृपा है।' यदि वे कोई चमत्कार करते तो कहते 'यह सब भगवान् की कृपा है।' यह था भक्ति का व्यवहार। यदि उनके पैर उनका साथ न देते या कोई दुर्घटना घट जाती तो वे कहते 'ये सभी चीजे स्थाई नहीं हैं।' यह ज्ञान का व्यवहार था।

भक्ति में वे विशेष नियमों और विधानों पर यथासम्भव दृढ़ रहते थे। उदाहरण के लिए—वे कुछ पर्व मनाते थे और इन अवसरों पर वे एक परम्परागत रूढ़िवादी

ब्राह्मण की तरह रहते थे। जिस प्रकार वे स्नान करते, वस्त्र धारण करते और माथे पर तिलक लगाते, उससे ऐसा लगता था कि वे इन नियमों और रीतियों पर दृढ़ हैं। लेकिन उन्होंने कभी नहीं कहा कि वे एक भक्त हैं, इसलिये वे वेदान्त का अध्ययन और ध्यान नहीं करेंगे। उन्होंने मात्र यह या वह नहीं बल्कि सम्पूर्ण योग को महत्त्व दिया। भक्त तथा अद्वैती दोनों ही इनमें से एक अंग की अपेक्षा कर देते हैं। ये दोनों ही अज्ञानता के कारण भ्रमित हैं।

स्वामी जी की यह बुद्धिमत्ता थी कि वे कभी किसी के व्यवहार की आलोचना नहीं करते थे। वे यह जानते थे कि स्वभाव विशेष वाले व्यक्ति के लिए एक विशेष स्थिति में सभी आवश्यक हैं। इसलिये वे सभी बातों को सम्मिलित करते थे। वे जानते थे कि ये सभी चरण एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं और यदि आप मूर्तिपूजा में एक बार भी उन्हें पहचान लेंगे तो आप यह मानने के लिए बाध्य हो जाएँगे कि आप जिसकी पूजा मूर्ति में करते हैं वही आपमें विद्यमान है। उपनिषदों में कहा गया है 'वह जो सूर्य में दीप्तमान है वही है मुझमें दीप्तमान है।' उन्होंने इन परस्पर विरोधी दिखाई दे रहे सिद्धांतों को आपस में संयुक्त किया, यही उनकी श्रेष्ठ बौद्धिक प्रतिभा थी।

जब स्वामी जी ऋषिकेश आए तो वहाँ दो विरोधी दल थे। उनमें से एक का कहना था कि 'अपने सम्पूर्ण वेदान्त, खोज तथा ध्यान को भूल जाओ। ईश्वर के दर्शन करना ही तुम्हारा परम लक्ष्य है और इसके लिए तुम्हें मूर्तिपूजा करनी चाहिये।' दूसरा दल इनको मूर्तिपूजक कहता था। उनके दृष्टिकोण से ये ध्यान के लिए अयोग्य थे और ये उपनिषदों के उच्च तत्त्व ज्ञान को नहीं समझ सकते थे। स्वामी जी से कहा गया कि वे इनमें से एक को श्रेष्ठ तथा दूसरे को तुच्छ बताएँ। स्वामी जी ने यह कार्य अत्यन्त सूक्ष्म तथा सुन्दर तरीके से किया। स्वामी जी ने कभी भी किसी को चुनौती नहीं दी। यदि कोई कहता भगवान् मूर्ति में हैं तो स्वामी जी उससे पूर्ण सहमत हो जाते और कहते 'चलो हम आपकी मूर्ति के लिए एक मन्दिर का निर्माण करते हैं और वहाँ पूजा करते हैं।' यदि कोई उनके पास आ कर कहता कि स्वामी जी मैं अपनी चेतना को सातवें लोक तक ऊपर उठा सकता हूँ। मेरा मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं है। स्वामी जी उससे कभी विवाद नहीं करते। वे हर बात को समझने हेतु उत्सुक रहते थे और

कट्टर धर्मान्ध व्यक्ति को भी बुरा नहीं मानते थे। उनका कहना था कि कट्टर व्यक्ति थोड़ा देखता है परन्तु वह अभी यह देखने हेतु परिपक्व नहीं हुआ है कि यह सम्पूर्ण चित्र नहीं है। उसके भीतर स्वयं ही समय होने पर परिपक्वता आएगी। इसलिये स्वामी जी अक्सर कट्टरवादियों को सन्तुष्ट करने के लिए उनके सामने झुक जाते थे।

किसी की आस्था और विश्वास को ले कर स्वामी जी कभी कुछ नहीं कहते थे और न ही वे ऐसा कोई सुझाव ही देते थे कि एक धर्म सच्चा है और दूसरा झूठा। स्वामी जी के लिए प्रत्येक धर्म अन्य धर्म जितना ही पवित्र था। भगवान् का एक नाम दूसरे नाम के समान ही प्रामाणिक था। स्वामी जी के प्रेम से बंध कर हिन्दू-मुस्लिम, ईसाई और यहूदी, पारसी और बौद्ध एक परिवार की भाँति आश्रम में रहते थे। आश्रम के प्रारम्भिक दिनों में स्वामी जीने कुछ रूढ़िवादी हिन्दू आश्रमवासियों में अलगाववाद के चिन्ह देखे परन्तु अपने स्वयं के उदाहरण से उन्होंने सारी समस्या को शीघ्र ही सुलझा लिया। ऐसी ही एक घटना है—सन् १९३८ को स्वामी जी अपने एक ईसाई मित्र को भोजन-कक्ष में ले कर आए तो हिन्दू अपना भोजन बीच में छोड़ कर चले गए। यह सुन कर स्वामी जी ने स्वयं अपने मित्र के लिए आसन बिछाया और भोजन परोसा।

आपका सर्वश्रेष्ठ धर्म ईश्वर-साक्षात्कार है। स्वामी जी अपने मत, आस्था, विश्वास और यहाँ तक कि अपने साक्षात्कार को भी दूसरों पर लादना (थोपना) नहीं चाहते थे। वे किसी की भी बात को यहाँ तक कि जो उनका घोर विरोधी होता उसकी बात को भी सुनने को तैयार थे। स्वामी जी की शिक्षाओं में से एक अत्यधिक प्रसिद्ध शिक्षा थी **"उन समस्त अवरोधों को तोड़ दो जो मानव से मानव को दूर करते हैं।"** स्वामी जी ने अपने प्रवचनों में भी यही बात सैकड़ों बार कही। स्वामी जी कहते थे जब तक आपके मन में यह भावना है कि आप अन्यों से पूर्णतया भिन्न हैं, आप हिन्दू हैं दूसरा ईसाई अथवा आप भारतीय हैं दूसरा विदेशी अथवा अन्य कोई कारण से ऐसी भावना होगी, घृणा और फूट का खतरा बना ही रहेगा। इस बात को सदा याद रखें कि सर्वप्रथम आप एक मानव हैं। आपका धर्म क्या है, यह आपका व्यक्तिगत मामला है।

हिन्दुओं में कुछ भिन्न-भिन्न पंथ हैं। जो विष्णु भगवान् को मानते हैं उन्हें वैष्णव कहते हैं। जो शिव भगवान् को मानते हैं उन्हें शैव कहते हैं आदि आदि। जो इनमें से कट्टर होते हैं वे वहाँ नहीं जाते जहाँ अन्य जाते हैं। जैसे यदि कोई कट्टर शैव होगा और यदि आपके घर में विष्णु भगवान् का चित्र होगा तो वह आपके घर में प्रवेश नहीं करेगा, इसी प्रकार यदि कोई यहूदी होगा तो वह वहाँ नहीं जाएगा जहाँ मूर्ति होगी।

एक बार एक शैव स्वामी आश्रम में आने वाले थे। स्वामी जी ने कहा 'देखो, कल वे अपने वाले हैं। ध्यान रखना भजन-कक्ष में श्री राम अथवा श्री कृष्ण भगवान् का चित्र न हो। वहाँ शिव जी का चित्र ही रखना। केवल जय गणेश, जय गणेश पाहिमाम, श्री गणेश, श्री गणेश, श्री गणेश रक्षमाम का कीर्तन करना। फिर ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय गाना लेकिन हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे बिल्कुल नहीं गाना।'

एक रूढ़िवादी मुस्लिम व्यक्ति अक्सर आश्रम में आया करता था। वह विद्वान् और समर्पित था। वह पक्का मुस्लिम था। इस कारण उसके अपने रीति-रिवाज थे जिनका वह पालन करता था। स्वामी जी अपने शिष्यों को इस प्रकार समझाते थे कि 'वह नमाज़ अदा कर रहा है, कृपा करके उसमें बाधा मत डालें।' उनको यह वस्तु पसन्द होगी उन्हें यह दें, उनको यह वस्तु पसन्द नहीं आयेगी कृपा करके उन्हें यह न दीजियेगा। उनके कमरे में प्रार्थना के लिए आसन रखिये।' स्वामी जी अन्य सभी धर्मों के प्रति महान् आदर भाव रखते थे।

स्वामी जी की सभी में आस्था थी लेकिन वे स्वयं वही साधना करते थे जो वे चाहते थे। दूसरे क्या कहते हैं इस पर ध्यान दिए बिना उन्होंने अपना स्वयं का जीवनक्रम निर्धारित किया था। स्वामी जी ने न तो कभी किसी को चुनौती दी और न ही किसी को उसके अन्तःकरण के विरुद्ध जाने हेतु विवश किया। आश्रम में उनके स्वयं के शिष्यों के भिन्न सिद्धान्त और दृष्टिकोण थे। लेकिन स्वामी जी सभी को एक समान प्रेम और सम्मान देते थे। यह सब ऐसा लगता था जैसे भगवान् सर्वव्यापक हैं, इसका साक्षात्कार हो रहा हो। कोई शब्द नहीं, धारणा नहीं बल्कि सर्वव्यापक ईश्वर का साक्षात्कार। यह ईश्वर-साक्षात्कार स्वामी शिवानन्द जी के रूप में हो रहा था।

स्वामी जी का धन के प्रति व्यवहार

निस्सन्देह स्वामी जी की असीम उदारता के पीछे उनका कोई स्वार्थ नहीं था। जहाँ भी उन्हें यह अनुभव होता कि देना चाहिये वे दे देते थे।

आश्रम के सचिव तथा कोषाध्यक्ष के लिए स्वामी जी जैसा प्रमुख होना एक सिरदर्द ही था। स्वामी जी बिना जानकारी लिए कि धन कहाँ से आ रहा है और कहाँ जा रहा है, बस देते ही जाते थे। आश्रम के अधिकारियों को ऐसा लगता था कि स्वामी जी कुछ नहीं जानते परन्तु स्वामी जी सब जानते थे। वे सारे समय इस बात के प्रति जागरुक थे कि स्रोत भी ध्येय है। स्वामी जी ने एक बार कहा 'यह उस ईश्वर के पास से आता है और वापस उसी के पास चला जाता है। हम तो मात्र माध्यम हैं। हम सोचते हैं कि हम इस आश्रम तथा इस संस्था को चला रहे हैं लेकिन हम तो मात्र न्यासी हैं।'

वर्ष में एक बार तो आश्रम में आर्थिक तंगी होती ही थी। स्वामी जी ऐसी स्थिति को बड़ी गम्भीरता से लेते और कहते 'हमें अब बड़ी सावधानी से चलना होगा। हम अब किसी भी नये जिज्ञासु को आश्रम में प्रवेश नहीं देंगे। शीघ्र की कोई निर्धन व्यक्ति आश्रम आ जाता जिसके पास एक जोड़ी वस्त्र भी न होते और आश्रम में रहने की अनुमति माँगता। स्वामी जी कहते 'हाँ, हाँ... उसे रहने दो। यही ठीक होगा। वह हमारे सिवा किसके पास जाएगा? खर्च की चिन्ता न करो। प्रत्येक अपना राशन अपने साथ ले कर आता है। भगवान् ने उसे यहाँ भेजने से पहले ही उसके लिए आवश्यक भोजन की आपूर्ति कर दी है।'

यह मात्र शब्द ही नहीं थे। यदि आप उनके मुख और आँखों में देखते तो यह अपने आप जान जाते कि वे सत्य कह रहे हैं। उनके भीतर कोई सन्देह, कोई प्रश्न न था। उनमें सत्यता थी। वे जानते थे कि होगा वही जो भगवान् की इच्छा होगी। यदि हमारा दिवाला निकलने वाला होगा तो हम अवश्य ही दिवालिये होंगे। इसलिये चिन्ता करने की कोई बात नहीं। सचिव भी आत्म-समर्पण कर देते और अन्नक्षेत्र के द्वार पुनः खोल दिए जाते। अन्यथा अगला आर्थिक तंगी का दौर शीघ्र कैसे आता।

एक बार की बात है आश्रम में एक बड़ी दुर्घटना हो गई। एक युवक ने आश्रम में प्रवेश लिया। वह अथक परिश्रमी था और अत्यन्त बुद्धिमान् था। उसने स्वामी जी का हृदय जीत लिया था। स्वामी जी उसे स्नेह करते, उसकी प्रशंसा करते तथा वह उनका विश्वासपात्र बन गया था। स्वामी जी ने उसे लगभग सभी विभाग सौंप दिए। वह युवा पोस्ट मास्टर, कोषाध्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सचिव भी था, और इससे भी अधिक वह स्वामी जी के लिए लेखन कार्य भी करता था। वह कितना कर्मठ था। लेकिन एक दिन वह बिना कुछ कहे आश्रम से चला गया। उसके जाने के आधा-एक घण्टे बाद यह बात खुली कि वह आश्रम का सारा धन बटोर कर चला गया था। हम सब यह भी नहीं जानते थे कि आखिर वह कितना धन ले गया। क्योंकि वही कोषाध्यक्ष तथा वही पोस्ट मास्टर भी था। अतः कोई भी यह ठीक से बताने में सक्षम नहीं था कि आश्रम में कुल कितने धन की लूट हुई। हम सब यही जानते थे कि सारे आश्रम में एक पैसा भी नहीं बचा था।

यह समाचार शीघ्र ही सारे ऋषिकेश में पहुँच गया। एक बार फिर दुकानदारों ने सचिव से बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा कि क्योंकि आश्रम ने पहले ही बहुत उधार ले रखा है। अतः आप जो भी सामान लेना चाहें, थोड़े समय तक नकद ही क्रय करें। आश्रम के इतिहास में यह सबसे बड़ी विपत्ति थी। और इस समय स्वामी जी क्या कर रहे थे? कुछ भी नहीं। वास्तव में वे कुछ भी नहीं कर रहे थे। वे तो सारी बात को बड़े मनोरंजक ढंग से ले रहे थे। वे बोले—"अरे, वह हमें छलने में कैसे सफल हुआ? वह तो बड़ा ही अच्छा व्यक्ति था। वह अवश्य ही बहुत बुद्धिमान् था।" वे दो ही बातें बार-बार दोहरा रहे थे। वह अवश्य ही बड़ा बुद्धिमान् व्यक्ति था और उसने सच में बहुत अधिक काम किया। स्वामी जी ने यह भी कहा कि हमें अवश्य ही उसे कुछ पैसा देना चाहिये था। लेकिन वह मुझसे कह सकता था। मैं उसे अवश्य ही दे देता।

सन् १९४६ में एक व्यापारी दक्षिण भारत से आश्रम में आया। वह जानता था कि स्वामी जी आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार के प्रेमी हैं तथा उनके यहाँ अल्मारियों में पुस्तकें भरी हैं। जो उनके आश्रम में छपती हैं। इसलिये उसने स्वामी जी से कहा 'मैं सारे दक्षिण भारत में आपकी पुस्तकें दुकानों पर ले जा कर दूँगा और इनका प्रचार-प्रसार करूँगा। उसने एक बहुत बड़ा सौदा भी किया। जब आश्रम के

सचिव ने उसके बताए पते पर पत्र भेजा तो वह वापस आ गया और उस पर लिखा था कि 'यहाँ पर ऐसा कोई व्यक्ति नहीं रहता।' सचिव आश्चर्यचकित रह गए। स्वामी जी ने कहा 'यदि आप ऐसा सोचें कि आप उस व्यक्ति की आत्मा हैं जिसने आपको छला है तो आप किञ्चित भी विचलित नहीं होंगे। यदि भगवान् एक और सर्वव्यापक हैं तो चोरी क्या है? यह एक वस्तु का दाँयें हाथ से बाँयें हाथ में हस्तान्तरित होना ही तो है। यदि आप अन्य व्यक्ति में अपनी ही आत्मा का दर्शन करेंगे तो आप कदापि दुःखी नहीं होंगे। इसके विपरीत आप प्रसन्नता का अनुभव करेंगे।' सारे घटनाक्रम के बारे में इससे अधिक कुछ भी नहीं कहा गया।

एक बार रात के समय आश्रम के मन्दिर में चोरी हो गई। उस समय मन्दिर के चारों ओर बने हुए बरामदे में कई लोग सोये हुए थे। मन्दिर के चाँदी के बर्तन आदि चोरी चले गये थे। मन्दिर के पुजारी जी ने स्वामी जी को चोरी की सूचना दी। स्वामी जी इस मामले पर गम्भीर होने के स्थान पर वे यह जानने के लिए उत्सुक थे कि जब चोरी हो रही थी तो मन्दिर के बरामदे में लोग सोये थे या नहीं? जब उन्हें ज्ञात हुआ कि लोग सोये रहे और चोरी हो गई तो वे जोर-जोर से हँसने लगे और बोले—"वह अवश्य ही बड़ा चतुर चोर था। यदि वह मुझे कहीं मिला तो मैं से चोर-शिरोमणि की उपाधि से विभूषित करूँगा।"

एक बार एक अनाथ अन्धा बालक आश्रम में आया। स्वामी जी ने उसे बड़ा ही स्नेह दिया। वह बालक जाने कैसे एक ऐसे व्यक्ति के साथ जिसे दिखाई देता था भाग गया और अपने साथ हारमोनियम भी ले गया। स्वामी जी ने उस घटना पर ध्यान नहीं दिया। उस अन्धे बालक में स्थित भगवान् की सेवा उनका परम धर्म था तथा यह उनके लिए बड़ी प्रसन्नता की बात थी। स्वामी जी ने कहा—"हारमोनियम की हानि मेरा प्रारब्ध था। वास्तव में उस बालक ने मुझे छला नहीं वरन् मेरे कर्मों से मुक्त होने में मेरी सहायता ही।" स्वामी जी ने इसे गुप्त दान कहा जिसमें पाने वाला आपको देने की परेशानी से भी बचा लेता है। स्वामी जी ने कहा—"मैंने उसमें स्थित भगवान् के लिए जो किया, उसके साथ उसने जो मेरे साथ किया उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उसे हारमोनियम की आवश्यकता थी, वह ले

गया। बस इतनी सी तो बात है। स्वामी जी ने इसे ऐसा बना दिया जैसे चोरी हुई ही नहीं।

एक बार हम सबने निश्चय किया कि उन्हें स्वामी शिवानन्द के स्थान पर स्वामी गिवानन्द कहेंगे (गिव=देना, गिवानन्द का अर्थ है जिसे देने में आनन्द आए)। स्वामी जी जानते थे कि जिस स्रोत (ईश्वर) से आपूर्ति होती है वापस वहीं चली जाती है। भौतिकता के हिसाब-किताब की उनको कोई चिन्ता नहीं थी। स्वामी जी ने अपने जीवन में सिद्ध कर दिया था कि दान करने से कोई दिवालिया नहीं होता। स्वामी जी सदा कहते थे कि दान से कोई निर्धन नहीं होता।

एक बार स्वामी जी को एक करोड़पति से मिलना था। वह एक कट्टर हिन्दू था और उसे मात्र एक ही बात सुनना पसन्द थी—सनातन हिन्दू धर्म ही एकमात्र सच्चा धर्म है। स्वामी जी उस करोड़पति से मिलते उससे पहले ही उसके सचिव ने स्वामी जी को बताया कि यह व्यक्ति आपके मिशन में बड़ी सहायता कर सकता है। स्वामी जी का इस धनी व्यक्ति ने बड़ा स्वागत किया और यह प्रश्न किया कि 'स्वामी जी, आप इस्लाम धर्म के बारे में क्या सोचते हैं? क्या यह भी एक धर्म है?'

स्वामी जी का उत्तर था—"हाँ, हाँ, इस्लाम भी धर्म है।"

उस करोड़पति ने पूछा—"क्या कुरान भी ईश्वर के शब्द हैं?"

स्वामी जी का उत्तर था—"हाँ।"

वह व्यक्ति अपनी फलों की प्लेट ले कर वापस चला गया जिसमें से अधिकांश वितरित हो चुके थे। स्वामी शिवानन्द बिकाऊ नहीं थे।

स्वास्थ्य की नवीन परिभाषा

स्वामी जी को लगभग ३५ वर्षों से मधुमेह था। उसके साथ-साथ उन्हें कटिवात तथा अन्य भी कष्ट थे लेकिन फिर भी उनके मुख पर तेज था। उनकी आँखों में शक्ति और विनोदशीलता झलकती थी। स्वामी जी का प्रत्येक कार्यकलाप स्नेह और बुद्धिमत्ता से पूर्ण था। उनका शरीर कमजोर था लेकिन स्वामी जी का मस्तिष्क सदा चैतन्य और सतर्क था।

स्वामी जी तो वैसे ही अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी थे तथा उनका पुष्ट शरीर उनके आकर्षण और तेज में वृद्धि ही करता था। उनकी त्वचा स्वच्छ, चमकदार और स्वस्थ थी। उनके कपड़ों में एक भी दाग नहीं रहता था। वे एकदम स्वच्छ रहते थे। यहाँ तक कि जब उनका शरीर रोगी रहता तो भी उनके मुख पर असाधारण चमक तथा तेज रहता था।

एक बार जब उन्हें टायफाइड हो गया था तो उनका शरीर इतना अधिक दुर्बल हो गया था कि वे बच नहीं पायेंगे। लेकिन उस समय भी उनकी आँखों में चमक और मुख पर तेज था। इस समय वे लगभग तीन सप्ताह से भी अधिक समय से अपने कमरे में ही थे। इस कारण वे बाहर जा कर सूर्य भगवान् तथा गंगा माँ के दर्शन करना चाहते थे। हम उन्हें धीरे-धीरे बाहर ले कर आए और वे अपनी मनपसन्द आराम कुरसी पर लेट गए। स्वामी जी को देखने से ऐसा लग रहा था कि जैसे उन्हें कुछ हुआ ही न हो। स्वामी जी आकर्षक तो दिख ही रहे थे और साथ ही वे सभी के साथ विनोद कर के हंस रहे थे। लगभग आधा घण्टे बाद वे बोले 'ठीक है, अब मैं अन्दर जाऊँगा। मैं स्वयं उठने का प्रयत्न करता हूँ।' उन्होंने दोनों पैर भूमि पर जमा कर के उठने का प्रयास किया लेकिन वे गिर पड़े और हंसने लगे और बोले 'पैरों ने अपनी शक्ति खो दी है। मैंने नहीं पैरों ने।'

उनके शरीर में जो विभिन्न रोग थे उनके प्रति स्वामी जी की जो प्रतिक्रिया थी उसे स्वास्थ्य की नवीन परिभाषा कहा जा सकता था। "स्वास्थ्य मन की स्थिति है यह आपकी आन्तरिक स्वस्थता की स्थिति है जो आपको काम करने योग्य बनाती है। चिकित्सक जिसे रोगमुक्त कह देते हैं उसे ही मात्र स्वस्थ शरीर नहीं कहते हैं।" इसके साथ ही साथ स्वामी जी औषधि लेने से भी परहेज नहीं करते थे। स्वामी जी के लिए दोपहर के भोजन के बाद तश्तरी भर कर दवाइयाँ रखी रहती थीं। स्वामी जी का दर्शन था कि यदि आप इस शरीर के लिए भोजन ले सकते हैं तो आप इसके लिए अन्य वस्तु जिसे औषधि कहते हैं, वह भी ले सकते हैं। स्वामी जी अपनी बीमारी के समय कभी भी कराहते अथवा तड़पते नहीं थे। जब भी चिकित्सक उनके कमरे में आते तो स्वामी जी उनसे पूछते—"और आपका स्वास्थ्य कैसा है?" इसी प्रकार जब आश्रम के कुछ स्वामी उन्हें देखने जाते तो स्वामी जी उनके स्वास्थ्य के बारे में

पूछते तथा उनसे स्वयं की देखभाल करने की प्रार्थना करते। बिस्तर में लेटे-लेटे भी स्वामी जी अपने काम भली प्रकार सम्पन्न करते रहते थे। वे अद्‌भुत रूप से जागरुक थे तथा आन्तरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ थे। यह शरीर कभी-कभी सौ प्रतिशत काम करता है और कभी-कभी अस्सी प्रतिशत या सत्तर प्रतिशत और वे समायोजन हेतु तैयार रहते थे।

स्वामी जी अपनी नेत्र ज्योति की देखभाल हेतु अत्यन्त सावधान थे। उनकी आवाज भी उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण थी। उनकी वाणी सारे जीवन अत्यन्त मधुर रही और वे इसके लिए विशेष व्यायाम भी करते थे। वे अपने दाँतों के प्रति भी विशेष सावधान रहते थे। स्वामी जी कहते थे कि 'यदि आपके दाँत अच्छे नहीं हैं तो आप अच्छी तरह से बात भी नहीं कर सकेंगे और अच्छी तरह से खा भी नहीं सकेंगे।' वे अपने दाँतों को साफ करने के लिए चिकित्सकों द्वारा बताए किसी भी उपाय को अपनाने के लिए तैयार थे। प्रातःकाल दाँतों को साफ करना उनके लिए बहुत बड़ा कार्यक्रम था। वे इस साधन को खोना नहीं चाहते थे जिसकी सहायता से उन्होंने मानव-मात्र की सेवा की।

सन् १९५० में स्वामी जी ने ठण्ड में पहने हुए अपने ओवरकोट की ओर संकेत करते हुए कहा—"निःसन्देह इस परिधान में मैं एक फैशनपरस्त व्यक्ति दिखलाई देता हूँ लेकिन मैं इस बात की बिलकुल चिन्ता नहीं करता कि लोग मेरे बारे में क्या-क्या कहते हैं। आपके शरीर को सही स्थिति में रखने के लिए आवश्यक सभी सावधानियाँ रखनी चाहिये। आपके पास जो भी है उसे इस संसार को अवश्य ही देना चाहिये अन्यथा यह जीवन किसी काम का नहीं है और इस काम के लिए आपके पास शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही क्षमताएँ होनी चाहिये। अभी यदि मैं शीत ऋतु में अपनी पीठ खुली रखूँगा तो क्या होगा? मैं मात्र शीत को आमन्त्रण दूँगा, और जब मेरी पीठ में भयंकर दर्द होगा तो मैं संसार के लिए तथा स्वयं अपने लिए किस काम आ सकूँगा। इसका फायदा मात्र औषधि निर्माता को होगा।"

"जैसे ही मैं कोई नयी चीज सीखता हूँ मानव-मात्र के कल्याणार्थ तुरन्त उसका प्रचार करने लग जाता हूँ। मैं अन्यों को लाभ पहुँचाने में तनिक भी देरी नहीं करता। इसलिये मैं हमेशा दौड़ता रहता हूँ। मैं अपने इस वाहन को पुराने जमाने के

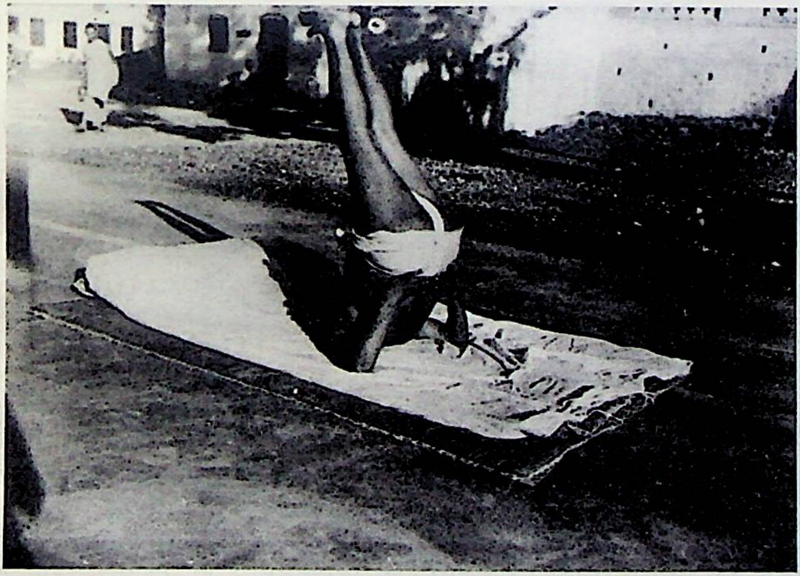
संयम तथा तपस्या के कठोर रूप को अपना कर खतरे में कैसे डाल सकता हूँ? आपको इस शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सभी प्रकार की विलासिताओं और लिप्तताओं से बचने हेतु दृढ़ प्रयत्न करते हुए इस शरीर को सभी प्रकार की अति से बचाना होगा।''

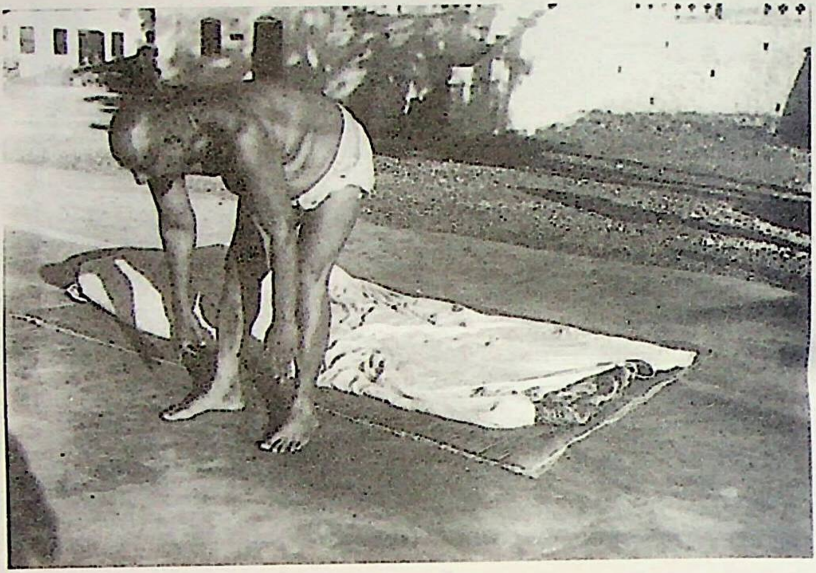
ग्रीष्म ऋतु में स्वामी जी को तैरना बहुत अधिक प्रिय था। स्वामी जी सदा सिर मुंडा कर रखते थे तथा मात्र एक लंगोटी पहने रहते और पहले गंगा-तट पर अपने शरीर और सिर की तेल से अच्छी तरह मालिश करते, फिर गंगा के जल में प्रवेश करते। स्वामी जी के व्यायाम तथा सूर्य स्नान के अपने स्वयं के तरीके थे। वे मात्र शरीर को ही नहीं वरन् जीभ और दाँतों को भी सूर्य स्नान कराते थे। वे खुले आकाश तले बैठ जाते और सूर्य की तरफ दाँत दिखाते, मुस्कुराते, जीभ बाहर निकालते और इनको सूर्य स्नान कराते थे।

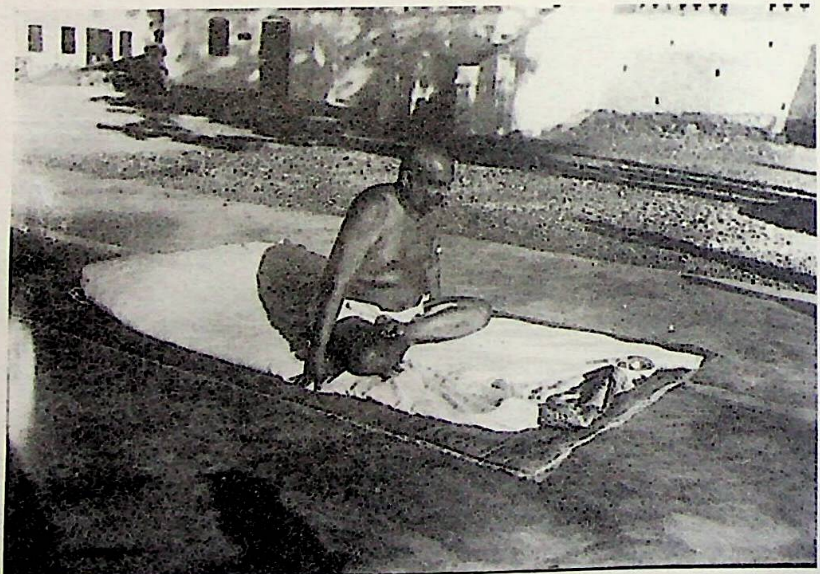
स्वामी जी को व्यायाम, खेल तथा पैदल भ्रमण भी बहुत प्रिय था। वे अपने विद्यालय में भी व्यायाम में इतने कुशल थे कि प्रशिक्षक उन्हें कक्षा लेने के लिए कहा करते थे। आश्रम के आरम्भिक दिनों में वे अपनी धोती ऊपर बाँध कर भजन-कक्ष के चारों ओर दौड़ लगाते थे। एक टेनिस की पुरानी गेंद तथा बल्ला ले कर वे अकेले ही दीवार के सामने खेला करते थे। वे संकोची नहीं थे। स्वामी जी ने एक बार लिखा—''अपने कार्य की व्यस्तता के कारण जो गृहस्थ बैठे-ब्रैठे जीवन व्यतीत करते हैं उनको भी अपने घर के बाहर अथवा कमरे के भीतर पाँच मिनट तक दौड़ लगानी चाहिये।'' दैनिक गतिविधियों के मध्य थोड़ी देर गहरी श्वाँस के व्यायाम द्वारा तथा भारी काम के बीच कुछ मिनटों की शिथलीकरण क्रिया (योगनिद्रा) द्वारा उत्तम स्वास्थ्य तथा नव ऊर्जा को बनाए रखा जा सकता है।

बाद के वर्षों में उन्होंने अनुभव किया और कहा—''हालाँकि मेरी कठोर तपस्या से मेरे शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा किन्तु फिर भी उस आक्रमण से अपने शरीर को मैंने टूटने नहीं दिया। यह व्यायाम ही है जिसने मुझे सम्भाला। आज भी मैं एक दिन भी चूके बिना नित्य व्यायाम करता हूँ। हालाँकि कभी-कभी शीर्षासन आदि में जब-जब मैं पैर ऊपर करता हूँ तो मेरा सिर घूमने लगता है लेकिन फिर भी मैं इस पर नियन्त्रण कर के शीर्षासन करता हूँ और पहाड़ी पर दौड़ लगाता हूँ और पुनः









काम में लग जाता हूँ। मैं सारे बन्धनों को तोड़कर स्वाभाविक रूप से तथा बलपूर्वक अपने भाषण देता हूँ और तभी रुकता हूँ जब मैं थक कर चूर हो जाता हूँ। बीच में तो मैं रुक ही नहीं सकता। मुझे स्वयं ही बड़ा आश्चर्य होता है कि मैं ऐसा कैसे कर पाता हूँ। जब मैं इतना दुर्बल रहता हूँ कि खड़े होने में भी असमर्थ रहता हूँ तभी अचानक मेरे भीतर अत्यधिक ऊर्जा का संचार होता है। एकमात्र ईश्वर ही जानते हैं कि यह ऊर्जा कहाँ से आती है। वह ऊर्जा मेरी नहीं है। मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं एक उपकरण मात्र हूँ। लेकिन मैं इतना जानता हूँ कि मेरे नियमित व्यायाम के कारण मैं इस शरीर रूपी उपकरण को इस अचानक आने वाले ऊर्जा प्रवाह से जोड़ने में समर्थ हो पाता हूँ।''

स्वामी जी का मन सदा सतर्क, जागरुक, ऊर्जावान तथा शक्तिशाली था। स्वामी जी इस शरीर की लहर में कभी नहीं फँसे। जब वे गठिया और कटिवात के कारण मुश्किल से चल पाते थे तब भी कहते थे 'मैं बाहर आऊँगा। मैं कार्यालय में काम करूँगा।'

स्वामी जी को कार्यालय जाने के लिए सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती थीं। जब शरीर स्वस्थ हो तो इसमें कोई कठिनाई नहीं होती थी लेकिन जब स्वामी जी को कटिवात के कारण कष्ट होता तो वे छड़ी के सहारे कार्यालय जाते। लेकिन जब छड़ी का सहारा भी कम पड़ता तो वे किसी के हाथ का सहारा ले लेते थे। लेकिन शरीर को बहाना बनाने नहीं दिया जाता था। ज़ो करना आवश्यक है उसे करना ही चाहिये। एक दिन स्वामी जी के पास कोई नहीं था तो वे झुक कर रेंगते हुए कार्यालय गये और इस समय भी वे न दुःखी थे, न ही वे रुके, न कराहे, न ही उन्हें अपना ध्यान था।

मन की वह कौन सी स्थिति है जो शरीर को रोगों से उबारती है? मन की वह कौन सी स्थिति है जो यह देखती है कि शरीर दुर्बल हो रहा है लेकिन फिर भी यह शरीर कुछ कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक सम्पूर्ण हृदय से तथा बुद्धिमत्तापूर्वक कर सकता है यह स्थिति स्वास्थ्य कहलाती है अर्थात् वह स्थिति जहाँ शरीर की वृद्धावस्था के कारण भी आन्तरिक स्वास्थ्य की भावना कभी समाप्त अथवा निर्बल नहीं होती। स्वामी जी में यह आन्तरिक आध्यात्मिक स्वास्थ्य की भावना जीवन पर्यन्त बनी रही। कोई भी स्पष्ट रूप से कह सकता है कि उनकी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत थी। इस

बात पर तर्क की कोई गुंजाईश न थी। इसी से उनके भीतर प्रचुर ऊर्जा आती थी जो उन्हें आपूरित कर देती थी तथा यह उनसे लगातार प्रवाहित होती रहती थी।

सन् १९५३ में आश्रम में धर्म संसद का आयोजन हुआ, सैकड़ों अतिथि आए। तीन दिनों तक आश्रम गतिविधियों का केन्द्र बना रहा। अन्तिम दिन कार्यक्रम का समापन स्वामी शिवानन्द जी ने किया और यह मध्य रात्रि के बाद समाप्त हुआ। स्वामी जी जब विश्राम हेतु जाने लगे तो एक अतिथि जो भारतीय संसद के प्रवक्ता थे, वे अगले दिन प्रातः शीघ्र निकलने वाले थे, उन्होंने स्वामी जी से पूछा 'क्या ऐसा सम्भव है कि मैं वापस जाने के पहले आपके दर्शन कर सकूँ? स्वामी जी ने अपनी स्वीकृति दे दी। वे स्वामी जी से प्रातः ५ बजे मिलना चाहते थे। हमारे लिए तो इतनी सुबह आँखें खोलना भी कठिन था परन्तु स्वामी जी जो मुश्किल से २-३ घण्टे सोये थे आराम से घूम-फिर रहे थे, और बातचीत कर रहे थे। उनके मुख पर थकावट का चिन्ह भी नहीं था। साठ वर्ष की आयु में भी वे कितना अधिक काम करते थे किन्तु फिर भी स्वामी जी सदा मानसिक ऊर्जा, उल्लास तथा जीवनी शक्ति से परिपूर्ण रहते थे। यह उनमें से सदा प्रस्फुटित होती रहती थी और अन्य लोगों को भी उत्साह से पूर्ण कर देती थी। एक बार स्वामी परमानन्द जी ने कहा—''यदि वे कहीं भी सड़क के किनारे मात्र भ्रमण करने चले जाएँ तो भी उनके चारों ओर लोग एकत्र हो जाएँगे। स्वामी जी को किसी प्रकार के प्रचार की आवश्यकता नहीं थी। उन्हें लन्दन में भी सड़क पर घूमने दो, वे वहाँ भी भीड़ को आकृष्ट कर लेंगे।

स्वामी जी ने इस निरन्तर निकल रही ऊर्जा का कारण आसन, प्राणायाम तथा ध्यान का नियमित अभ्यास तथा भगवान् के नाम का निरन्तर जप बताया। परन्तु उन्होंने इसमें से प्राणायाम को सर्वाधिक महत्त्व दिया। स्वामी जी ने कहा कि प्राणायाम नाड़ी तन्त्र तथा मन पर सीधे प्रभाव डालता है। यह हमारे स्वास्थ्य पर भिन्न प्रकार से हमारी आन्तरिक स्थिति में सुधार करता है।

इसके द्वारा वे असाधारण स्मृति शक्ति के धनी तथा अष्टावधानी बन गये थे। प्राणायाम नाड़ियों और नाड़ी तन्त्र को शुद्ध करता है तथा मन को शुद्ध करता है। उनका शक्तिशाली मस्तिष्क एक साथ एक ही समय में सैकड़ों व्यक्तियों को एक साथ निर्देशन दे सकता था। स्वामी जी के कमरे में आने वाला हर अतिथि यह

जानता था कि वह स्वामी जी के मस्तिष्क में पंजीकृत हो चुका है और दशकों बाद भी उससे मिलने पर स्वामी जी उसे पहचान लेते थे। वे मुखाकृति में परिवर्तन आ जाने पर भी ३०-४० वर्ष बाद भी किसी को भी पहचान सकते थे। यदि स्वामी जी ने किसी स्त्री को बालिका के रूप देखा होता और ३० वर्ष बाद वह बालिका स्वामी जी से मिलती तो स्वामी जी उससे कहते कि मैंने आपको अमुक स्थान पर देखा था जब आप छोटी बालिका थीं...।'' और वह कहती—''हाँ, स्वामी जी, मैं वही हूँ।'

ऐसी बहुत सी घटनाएँ हैं—जैसे सम्पूर्ण भारत भ्रमण के समय स्वामी जी मैसूर के मुख्य मन्त्री श्री के.सी. रेड्डी से बैंगलोर हवाई अड्डे पर मिले तथा उनसे मात्र कुछ मिनट बात की। दो वर्ष बाद जब वे आश्रम आए तो उन्होंने भिन्न प्रकार की वेषभूषा पहन रखी थी लेकिन फिर भी स्वामी जी ने उन्हें देखते ही पहचान लिया। साधु मुरुगदास सन् १९४० में आश्रम आए थे और उन्होंने सुन्दर भजन सुनाए थे। आठ वर्ष बाद जब वे आश्रम में पुनः आए और उन्होंने पुनः भजन का अद्भुत कार्यक्रम प्रस्तुत किया। जब वे कार्यक्रम समाप्त करने लगे तो स्वामी जी ने उन्हें स्मरण कराया कि पिछली बार आपने जिस सुन्दर प्रार्थना 'असतो मा सद्गमय' के साथ समापन किया था, इस बार वह नहीं सुनायी।

स्वामी जी स्वयं एक चिकित्सक थे इस कारण वे इस शरीर की अत्यधिक साज-सज्जा की निरर्थकता से भली-भाँति परिचित थे। उनके मन में मानव-जीवन से सम्बन्धित कसी प्रकार का भ्रम न था। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि भौतिक ऊर्जा की आपूर्ति सीमित है तथा एक समय आता है जब यह शरीर वृद्ध होता है और ऊर्जा का स्तर नीचे गिर जाता है।

एक बार स्वामी जी मन्दिर जाने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। रास्ते में एक सीढ़ी पर बैठ गए। उसी समय आश्रमवासी एक युवक सीढ़ियों पर दौड़ते हुए जा रहा था। स्वामी जी ने उसे प्रशंसापूर्ण दृष्टि से देखा और बोले—''यह ऊर्जा से परिपूर्ण है। कभी मैं भी ऐसा ही था परन्तु अब इस शरीर के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं है।''

स्वामी जी ने एक बार कहा— ''यदि मुझे मलाया (मलेशिया) में यह ज्ञात होता कि मैं भविष्य में वह काम करूँगा जो एक रोगी, एक पड़ोस ही नहीं वरन् संसार में प्रत्येक को लाभ पहुँचाएगा तो मैं कुछ और ऊर्जा संचित करके रखता। मैं स्वयं की और अधिक देखभाल करता और इतनी अधिक ऊर्जा व्यय नहीं करता। स्वामी जी जानते थे कि ऊर्जा की आपूर्ति सीमित है इस कारण उसे बुद्धिमानी से परिणामजनक कार्यों में व्यय किया जाना चाहिये तथा वे यह भी भली प्रकार जानते थे कि आप कितना भी लम्बा जिएँ, मृत्यु तो अनिवार्य है। इस कारण वे अपने स्वार्थ के लिए स्वास्थ्य से प्रेम नहीं करते थे। जो शरीर अन्य लोगों की सेवा करने योग्य न रहा हो, वे उसमें नहीं जीना चाहते थे। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण मन बहलाव में नहीं बल्कि सेवा में लगाया गया था। इस शरीर की देखभाल भी की जाती थी और इससे अच्छा काम भी लिया जाता था।

भक्ति

सत्संग

अधिकांश महत्वपूर्ण साधनाओं में से एक साधना है सत्संग। सन् १९२४ में जब स्वामी जी ऋषिकेश पहुँचे तो वे मात्र एक स्वामी बनना चाहते थे। वे एक भिक्षुक थे और उन्हें कोई नहीं जानता था। स्वामी जी की आयु उस समय चालीस वर्ष के आसपास थी तथा वे स्वर्गाश्रम में निवास करने वाले महात्माओं से कनिष्ठ थे, लेकिन साहसी तथा व्यवहारिक आदर्शवादी होने के कारण उस समय भी उन्होंने यह अनुभव किया कि **'सत्संग वह पंखा है जो आध्यात्मिक साधक के हृदय में भगवद्प्रेम की अग्नि को प्रज्वलित रखता है।'** इसलिये स्वामी जी ने उन सभी महात्माओं को सत्संग में एक साथ जोड़ने का काम किया। स्वामी जी ने उनसे कहा कि 'आप सभी एक ही मंच पर एक साथ एकत्रित क्यों नहीं होते, जिससे लोग आपको देख सकें तथा आपकी बातें सुन सकें।' स्वामी जी ने स्वयं एक जगह निश्चित की। मंच का निर्माण किया। सभी महात्माओं के लिए आसन बिछाए, तकिये लगाए, लेकिन स्वयं परदे के पीछे ही रहे।

जब स्वामी जी इस वर्तमान आश्रम में आए तो उन्होंने सबसे पहला काम यह किया कि चाहे ग्रीष्म ऋतु, शीत ऋतु अथवा वर्षा ऋतु हो, प्रतिदिन रात्रि के समय आश्रम में सत्संग होना अनिवार्य है। शीत ऋतु में सत्संग पहाड़ी पर होता था क्योंकि वहाँ शीत अपेक्षाकृत कम रहती थी और ग्रीष्म ऋतु में यह गंगा तट पर होता था जो कि तुलनात्मक रूप से ठण्डा स्थान था।

स्वामी जी सत्संग में विद्यमान 'सत' अथवा वह देवत्व थे जिनकी उपस्थिति सत्संग में एकत्रित लोगों द्वारा चाही जाती थी। स्वामी जी स्वयं महात्मा थे और उन्हें किसी के साथ ही आवश्यकता नहीं थी परन्तु फिर भी लकड़ी के सहारे नित्य सत्संग में आते थे। जब स्वामी जी का शरीर चलने में असमर्थ रहता तो वे दो लोगों के कन्धों का सहारा ले लेते और पैदल चल कर सत्संग में आते। सत्संग में आने से उन्हें कोई

नहीं रोक सकता था। बाद में जब उन्हें ऐसा लगने लगा कि पता नहीं उनके पैर उनके शरीर को सम्भाल पाएँगे अथवा नहीं तो वे कहते—"ओह! मेरे पैर थोड़े लड़खड़ा रहे हैं। मेरे लिए एक व्हील चेयर (पहिये वाली कुरसी) ले कर आओ।" जो कुछ वर्ष पूर्व अपूर्व स्वास्थ्य के धनी थे, वे सत्संग के लिए व्हील चेयर पर भी जाने को तैयार थे। जब स्वामी जी से भूमि पर अधिक देर तक बैठते नहीं बनता तो वे आराम कुरसी पर बैठ जाते। जब उनका शरीर रोगी और दुर्बल होता और वे बैठने में भी समर्थ नहीं होते तो वे भूमि पर लेट जाते परन्तु वे कभी भी सत्संग में आने से रुकते नहीं थे।

एक बार एक अतिथि दूसरे या तीसरे दिन सत्संग में नही आया तो स्वामी जी ने उससे प्रश्न किया—"आप सत्संग में क्यों नहीं आए?" उसने उत्तर दिया—"स्वामी जी, मैं अस्वस्थ था।" स्वामी जी का कहना था कि 'यही कारण है आपको सत्संग अवश्य ही आना चाहिए था। यदि आप अस्वस्थ हैं तो आपको सत्संग में निश्चय ही आना चाहिए। आप सत्संग में आ कर स्वस्थ हो जाएँगे।'

स्वामी जी का सत्संग कई प्रकार से विशिष्ट था। यह भगवान् की प्रार्थना, भगवान् के नामों का कीर्तन, संगीत, धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय तथा प्रवचन का सम्मिलित रूप था। प्रारम्भ में इसमें झांझ, मंजीरे आदि बजाने की अनुमति नहीं थी। सत्संग में विद्युत प्रकाश तो था ही नहीं, दीपक आदि का प्रकाश भी थोड़ा ही था। वेदी पर एक दीपक तथा पढ़ने के लिए एक मिट्टी के तेल की लालटेन के अतिरिक्त प्रकाश की कोई व्यवस्था नहीं थी। स्वामी जी सदा प्रेम और भक्ति की गम्भीरता को देखते थे। वे दिखावे को प्रोत्साहन कभी नहीं देते थे। स्वामी जी कहते थे कि जब आप कीर्तन करें तो आँखें बन्द करके बैठें और यह अनुभव करें कि जैसे श्रोताओं के मनोरंजन के लिए नहीं भगवान् को सुनाने के लिए गा रहे हैं। जब भी आप गाएँ अपनी आवाज, गले की स्थिति अथवा गाने में प्रवीणता के बारे में न सोचते हुए भक्ति के साथ गाएँ।

प्रारम्भ में आश्रम में लगभग पन्द्रह आश्रमवासी तथा मात्र १० अतिथि होते थे। वे सभी दो पंक्तियों में बैठते थे। सत्संग का प्रारम्भ प्रार्थना से होता था। फिर लालटेन को स्वामी जी के बाँयें तरफ बैठे व्यक्ति के पास रख दिया जाता था। वह

गीता का एक अध्याय अर्थ सहित अथवा बिना अर्थ के पढ़ता था, इसके समाप्त होने के तुरन्त बाद वह कीर्तन प्रारम्भ कर देता था और लालटेन अगले व्यक्ति के पास भेज दी जाती थी जो किसी धर्मग्रन्थ का पाठ करता और अन्त में अगला कीर्तन प्रारम्भ कर देता था और इस प्रकार चक्र चलता जाता था।

सामूहिक रूप से गाना पर्याप्त नहीं होता था। हर व्यक्ति को अकेले कीर्तन का नायकत्व करना पड़ता था। स्वामी जी कोई भी बहाना या सफाई नहीं मानते थे। वे कहा करते थे कि लज्जा आध्यात्मिक प्रगति में बाधक होती है। एक युवती दक्षिणी अफ्रीका से आयी थी। वह यह कह कर कि 'आज मेरा गला ठीक नहीं है' गाने से बचना चाहती थी लेकिन स्वामी जी ने उसे तुरन्त कोई कड़वा कफ चूर्ण लेने के लिए भेज दिया। अब उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह इसे ले या नहीं।

किसी को भी छोड़ा नहीं जाता था क्योंकि सत्संग में ही पता चलता था कि वह योग में कितना गहरा है और यदि वह सोता हुआ पकड़ा जाता तो इससे उसकी योग में स्थिरता पता चल जाती थी।

जब प्रत्येक व्यक्ति कीर्तन कर लेता तो स्वामी जी महामृत्युंजय मन्त्र से समाप्त करते। आरती तथा निम्न मन्त्रों के साथ सत्संग की समाप्ति होती—

ॐ सर्वेषाम् स्वस्ति भवतु,
सर्वेषाम् शान्तिर्भवतु,
सर्वेषाम पूर्णं भवतु,
सर्वेषाम मंगलम् भवतु,
सर्वे भवन्तु सुखिनः। सर्वे संतु निरामया।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुःखभाग्भवेत्।।

ॐ असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतम्गमय।।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णामादाय पूर्ण मेवाशिष्यते।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

सभी उत्तम स्वास्थ्य, सौभाग्य, शान्ति और पूर्णता को प्राप्त करें। सभी प्रसन्न हों और सभी रोगों से मुक्त हों। सभी चारों ओर अच्छाई देखें और कभी किसी के साथ बुरा न हो।

हे भगवान्! मुझे असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चलें।

वह (परब्रह्म) पूर्ण है, और यह सृष्टि भी पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति होती है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर वह पूर्ण ही शेष बचता है। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

इसके पश्चात् स्वामी जी शान्तिपूर्वक अपने कुटीर की ओर चले जाते थे। जिससे कि सत्संग में सम्मिलित लोगों के हृदय और मन में शास्त्रों के विचार और आदर्श बिस्तर में जाने पर भी गूँजते रहें।

उनके सत्संग की यही मूल भावना थी।

स्वामी जी सभी को अपने घरों में भी सत्संग करने के लिए कहते थे तथा वे यह भी कहते थे कि वे सत्संग में अपने पड़ोसियों को भी बुलायें और अपनी रुचि के अनुसार अपने किसी ग्रन्थ का भी अध्ययन करें।

गायन

स्वामी जी ने एक बार कहा कि जब वे ऋषिकेश आए तो उनकी एक ही इच्छा थी। एक वृक्ष के नीचे बैठ कर भगवान् का नाम गाना और जप करना। स्वामी जी को कीर्तन करना इतना प्रिय था कि उनका कोई भी कार्यक्रम कीर्तन के बिना हो ही नहीं सकता था। चाहे कोई रोगी हो, किसी की मृत्यु हो गयी हो, जन्म हुआ हो अथवा विवाह का अवसर हो, शिलान्यास हो अथवा किसी भवन को गिराना हो, वे महामन्त्र गाते थे।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

महामन्त्र स्वामी जी को अत्यधिक प्रिय था। स्वामी जी महामन्त्र के प्रति इतने अत्यानुरागी थे कि उन्होंने ३ दिसम्बर १९४३ के दिन आश्रम में महामन्त्र का

अखण्ड कीर्तन प्रारम्भ किया जो उस दिन से आज तक भी भजनं-कक्ष में अहर्निश (निरन्तर) चल रहा है। यह तब से उस सर्वशक्तिमान ईश्वर का आध्यात्मिक प्रवाह बनाए हुए है जो अदृश्य रूप से सभी जिज्ञासुओं के आध्यात्मिक प्रयासों में सहायता करते हैं।

स्वामी जी सम्मेलनों तथा अन्य कार्यक्रमों एवं आयोजनों के सभी आयोजनकर्ताओं को महामन्त्र के अखण्ड कीर्तन हेतु प्रोत्साहित करते थे और इसके महत्त्व को उदाहरण सहित समझाते थे और यह कहते थे कि इससे आपको अपने कार्य में अवश्य ही सफलता मिलेगी।

हालाँकि आश्रम के सभी कार्यक्रमों में महामन्त्र तो महत्वपूर्ण था ही लेकिन सप्ताह में प्रतिदिन विभिन्न देवताओं के आह्वान हेतु स्वामी जी के स्वरचित गीत भी गाए जाते थे।

स्वामी जी ने बहुत से गीत लिखे जो दार्शनिक रूप से प्रेरक थे। उनमें उनके उपदेशों का सार सन्निहित था। स्वामी जी के गीतों में विशेष बात यह थी कि वे मूल रूप से अद्वैतिक थे। इन गीतों में अन्तिम लक्ष्य भगवद्-साक्षात्कार तथा स्वामी जी के इस दृष्टिकोण का जीवन्त चित्रण था कि विभिन्न प्रकृति के लोगों द्वारा विभिन्न आध्यात्मिक साधनों तथा विभिन्न और अनन्त मार्गों द्वारा भगवान् की पूजा की जाती है और उनका ध्यान किया जाता है।

उनके गीतों में से एक इस प्रकार है—

सुना जा सुना जा सुना जा कृष्णा,
तू गीता वाला ज्ञान सुना जा कृष्णा।
सेवा करो, प्रेम करो, दान करो, पवित्र बनो,
ध्यान करो और साक्षात्कार करो।
भले बनो, भला करो, दयालु बनो, करुणाशील बनो।।
कौन हूँ मैं विचार कर आत्मा को जानो और मोक्ष को प्राप्त करो।
दूसरों को स्वीकार करो, उनके साथ सामंजस्य करो
और उनकी सहायता करो।।
अपमान सहो, निष्कपट बनो, सत्यवादी बनो।।

धैर्यवान बनो, आज्ञाकारी बनो, सहनशील बनो।
सभ्य बनो, नम्र बनो, और श्रेष्ठ बनो।।
साहसी बनो, पवित्र बनो, ज्ञानी बनो, सद्गुणसम्पन्न बनो,
स्थिर बनो, शान्त बनो, आत्म-ज्ञान प्राप्त करो।
खोजो, खोजो, प्रवेश करो और विश्राम करो,
खोज करो, अनुभव करो और पुनः प्राप्त करो।
यही मार्ग है, यही सत्य है, यही दिव्य जीवन है।
सुना जा, सुना जा...

प्रार्थना

स्वामी जी एक अन्य सेवा के बारे में बहुत अधिक जोर देते थे, वह थी प्रार्थना। यह प्रार्थना मात्र आपके स्वयं के लिए ही नहीं थी (चाहे यह मुक्ति हेतु ही क्यों न हो) वरन् वे इसे एक सेवा के रूप में, दान के रूप में करने के लिए कहते थे। इसलिये सामान्य रूप से सभी के लिए मात्र प्रार्थना करना नहीं वरन् विशेष भाव से प्रार्थना करना उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग था।

स्वामी जी अपने सभी शिष्यों से निष्काम भाव से प्रार्थना करने के लिए कहते थे। सत्स में तथा अन्य समय में जैसे कोई बीमार हो, किसी की मृत्यु हो गयी हो, उसकी आत्मा की शान्ति के लिए अथवा किसी का जन्म दिवस हो, स्वामी जी प्रार्थना करने के लिए कहते थे। ऐसे समय में स्वामी जी स्वयं भगवान् के नाम का सामूहिक कीर्तन करते थे तथा दो मिनट आँखें बन्द कर ध्यान करते तथा अन्त में प्रार्थना के बाद इसका समापन करते थे। यह प्रार्थना वास्तव में चमत्कार करती थी।

आश्रम द्वारा प्रारम्भिक दिनों में एक अन्य प्रकार की सेवा भी की जाती थी, वह थी 'महामृत्युंजय मन्त्र जप'। स्वामी जी की महामृत्युंजय मन्त्र में महान् आस्था थी। महामृत्युंजय मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिम् पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

हम स्वास्थ्य तथा शक्ति के दाता की पूजा करते हैं। वह हमें मृत्यु से बचाएँ।

यह मन्त्र हमारी सभी प्रकार की दुर्घटनाओं से रक्षा करता है। यह हमें उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करता है। यह हमें अमरता प्रदान करता है। यह प्रार्थना स्वामी जी मात्र मानव-जाति के लिए ही नहीं करते थे, एक घायल कुत्ता अथवा बन्दर सभी के लिए वे महामृत्युंजय मन्त्र का जप करते थे। स्वामी जी को यदि रास्ते में कोई मृत छिपकली भी दिख जाती तो स्वामी जी उसकी आत्मा की शान्ति के लिए पहले महामृत्युंजय मन्त्र पढ़ते, फिर आगे बढ़ते थे। स्वामी जी के लिए सभी जीव एक समान थे और प्रार्थना सार्वभौमिक।

यदि किसी भक्त के घर का कोई सदस्य बीमार होता तो वे स्वामी जी को पत्र लिख कर उनसे निवेदन करते थे कि वे उनके लिए महामृत्युंजय मन्त्र का जप करें। स्वामी जी के सभी शिष्यों (जो उस समय लगभग दस रहे होंगे) को भी इसमें सम्मिलित होना पड़ता था। सभी को मालाओं की संख्या बता दी जाती थी। सचिव इसका हिसाब-किताब रखते थे। ये लोग जिसके लिए मन्त्र जप किया जा रहा है, उसका नाम ध्यान में रख कर उसके कल्याण के लिए गंगा तट पर जप करते थे।

यह सेवा का एक अन्य ही रूप था जिसे स्वामी जी प्रोत्साहन देते थे। इसमें साधना के सभी आवश्यक तत्त्व सम्मिलित थे। गंगा जी के तट पर एक घण्टे बैठ कर जप करना स्वयं ही एक साधना है और चूँकि यह अन्य व्यक्ति के लिए निःस्वार्थ भाव से की जा रही है, इसलिये यह निष्काम सेवा भी है। अतः स्वामी जी द्वारा प्रोत्साहित किया जाने वाला महामृत्युंजय मन्त्र जप निष्काम्य सेवा के साथ साधना का सुन्दर सम्मिश्रण था।

यह बड़े ही व्यवस्थित ढंग से किया जाता था। जब नियत मन्त्रों का जप पूर्ण हो जाता तो हवन किया जाता था। उसके पश्चात् निर्धनों को भोजन कराया जाता। फिर इसका समापन हो जाता था और इसी समय कोई अन्य व्यक्ति महामृत्युंजय मन्त्र जप के लिए कहता और यह पुनः प्रारम्भ हो जाता था।

स्वामी जी कहते थे—"जब आप अन्य लोगों के उत्तम स्वास्थ्य, सुख तथा शान्ति के लिए प्रार्थना करते हैं, तो आप दैवी अनुग्रह के माध्यम बन जाते हैं। जैसे यदि पानी तालाब में एकत्रित रहता है तो वह कुछ दिनों बाद गंदला हो जाता है लेकिन जो पानी पाइप लाइन से बहता रहता है, वह कभी गंदा नहीं होता, क्योंकि

वह सारे समय बहता रहता है और यदि कोई दिव्य अनुग्रह के प्रवाह का माध्यम निरन्तर बना रहे तो उसका हृदय सदा शुद्ध और ईश्वर की कृपा से पूर्ण रहता है। इसलिये यह महामृत्युंजय मन्त्र जप से प्राप्त होने वाला अन्य लाभ था।

हालाँकि इसमें कोई नयी बात नहीं है। लोग हजारों वर्षों से भगवान् से प्रार्थना करते आए हैं लेकिन स्वामी जी ने इस प्रार्थना के साथ अपनी बुद्धिमानी का प्रयोग करके निष्काम्य सेवा के साथ भक्ति को संयुक्त कर दिया और इस अनूठे सम्मिश्रण से चमत्कार किए। स्वामी जी के अनुसार जप और प्रार्थना व्यक्तित्व के विकास के लिए ही नहीं वरन् मानव-मात्र की सेवा के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

हालाँकि भक्तियोग की साधना से स्वामी जी को भगवान् तथा ऋषि-मुनियों के दर्शन हुए, रोगियों के लिए उनके द्वारा की गयी प्रार्थनाओं ने उन्हें स्वस्थ, रोगमुक्त कर दिया, उनकी प्रार्थनाओं ने दुखियों के दुःख दूर कर दिए और यहाँ तक कि भक्तों के भाग्यों को भी बदल दिया, लेकिन उनमें जो निःस्वार्थ भाव था, वह भक्ति की परम अभिव्यक्ति थी।

स्वामी जी ने हमें भगवत्साक्षात्कार तथा मानव-मात्र की सेवा के लिए जीवन को समर्पित करने के लिए कहा, जिससे हमारा सम्पूर्ण जीवन एक लम्बी प्रार्थना बन जाए। स्वामी जी जब तक प्रार्थना आदत न बन जाए, तब तक हमें उपलब्ध प्रतीकों जैसे मन्दिर, मूर्ति, चित्रों, संतों तथा पवित्र धर्मग्रन्थों से सहायता लेने के लिए प्रोत्साहित करते थे। प्रार्थना के निरन्तर प्रवाह को प्रवाह को बनाए रखने के लिए सभी उपाय किए जाते थे, कार्यालय तथा प्रार्थना-कक्ष में देवी-देवताओं के चित्र लगाए हुए थे। स्वामी जी कभी भी ऐसा नहीं करते थे कि किसी श्रेष्ठ उद्देश्य हेतु कोई चित्र लगाया और फिर उसके बारे में सब कुछ भूल गये जैसा कि अधिकतर लोग करते हैं। स्वामी जी अपने दैनिक जीवन में भी उनकी उपस्थिति का अनुभव करते थे। जैसे ही स्वामी जी कार्यालय में प्रवेश करते वे उन सब चित्रों पर एक दृष्टि डालते तथा कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व कुछ देर प्रार्थना करते थे। जब एक कार्य समाप्त हो जाता तथा वे दूसरा प्रारम्भ करने वाले होते अथवा एक अतिथि जाता और दूसरा आने वाला होता तब तक वे अपनी कुर्सी पर पीठ टिका कर बैठ जाते और एक

आँख बन्द करके दूसरी आँख से भगवान् के किसी चित्र को ध्यान से देखते रहते। इस प्रकार परमात्मा के साथ उनका सम्पर्क सतत बना रहता।

वे इस साधना के प्रति इतने गम्भीर थे कि यदि कोई चित्र अपनी जगह से हटाया जाता तो वे उस चित्र को तुरन्त उसी जगह लगवाते थे। ध्यान देने वाली बात यह है कि स्वामी जी को ऐसा करने की क्या आवश्यकता थी? जो स्वयं ब्रह्म चेतना में स्थित हो उसे भक्ति के प्रतीकों का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता थी? सत्य यह है कि वे तो अन्य लोगों को अनुकरण करने के लिए उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए ऐसा करते थे।

यहाँ वह विश्व-प्रार्थना दी जा रही है जो स्वामी जी ने लिखी थी। यह बड़ी ही सुन्दर तथा आत्मोत्थान करने वाली है—

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व
प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर
मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और
द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की
सेवा करें।

सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे
अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

पूजा

स्वर्गाश्रम के दिनों में जब वे एक तपस्वी साधु थे तब से ले कर अपने भौतिक जीवन के अन्तिम क्षणों तक स्वामी जी मात्र आस्थावान् ही नहीं थे, वरन् नियमित मूर्तिपूजा भी करते थे। कभी-कभी वे शिवजी के चित्र की पूजा करते थे लेकिन अक्सर वे भगवान् कृष्ण के मुरली मनोहर (हाथ में मुरली लिए) रूप की पूजा करते थे।

स्वामी जी जिस चित्र की पूजा करते थे उसके बारे में एक बार उन्होंने कहा था कि 'जिस चित्रकार ने यह चित्र बनाया है उसने अवश्य ही भगवान् कृष्ण के दर्शन किए होंगे। यह अत्यन्त प्रेरणाप्रद है।' यह चित्र सदा उनके पूजा के कमरे में रखा रहता था। जब तक उनका शरीर चलने-फिरने योग्य था, एक दिन भी ऐसा नहीं हुआ जब उन्होंने इसकी विधिपूर्वक पूजा न की हो। जब स्वामी जी भूमि पर नहीं बैठ सकते थे तो मन्दिर को थोड़ा ऊँचा कर दिया गया। प्रतिदिन स्नान करने के बाद स्वामी जी भगवान् कृष्ण के चरणों में पुष्प अर्पित करते, दीप जलाते और आरती करते थे। एक बार स्वामी जी ने कहा—"मुझे बहुत सारे मन्त्र तो नहीं आते हैं, लेकिन जो भी मुझे आते हैं उन सभी का मैं अपनी पूजा में प्रयोग करता हूँ।"

श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश स्वामी जी के जीवन में साकार होते थे। गीता में एक श्लोक है, जिसका अर्थ है—"मेरे भक्त जो भी मुझे प्रेमपूर्वक अर्पित करते हैं, चाहे वह एक पत्र, पुष्प या थोड़ा जल ही हो, मैं उसे बड़े प्रेम से स्वीकार करता हूँ।" स्वामी जी जब भी कुछ दान करते अथवा अपने शिष्यों को फल, रुपया, वस्त्र आदि देते तो वे इस श्लोक के प्रथम दो शब्द पत्र, पुष्प कहा करते थे, जिससे उनका यह आशय था कि 'मैं भक्त हूँ। आप मेरे भगवान् हैं। मैं आपको यह पत्र, पुष्प अर्पित कर

रहा हूँ। कृपा करके स्वीकार करें।' पूजा के तीन प्रकार हैं—मूर्ति की पूजा (मूर्तिपूजा), प्रत्येक के हृदय में स्थित भगवान् की पूजा (मानसिक पूजा) तथा सर्वव्यापक ईश्वर जो सभी में स्थित है उसकी पूजा (परा पूजा) और स्वामी जी इनमें से किसी की उपेक्षा नहीं करते थे। यह सम्पूर्ण जगत् उनके लिए भगवान् का प्रकट स्वरूप था और वे प्रतिक्षण इसी चेतना के साथ रहते थे। सूर्य भगवान् के उदित होते ही वे उन्हें प्रणाम कर मानसिक रूप से 'ॐ सूर्याय नमः' मन्त्र के साथ धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प आदि जिस भी क्रम में उनके मन में आते, सूर्यदेव को अर्पित करते जाते थे। वे गंगा जी के तट पर बैठ कर उनके झिलमिलाते दिव्य जल की ओर देखते हुए दूध, पुष्प आदि से गंगा जी की मानसिक पूजा करते थे।

स्वामी जी जब तक अपने कुटीर में स्थित छोटे से मन्दिर में भगवान् की विधिपूर्वक पूजा नहीं कर लेते, मध्याह्न भोजन ग्रहण नहीं करते थे। एकमात्र इसी कार्य में वे गोपनीयता चाहते थे और सभी को भी ऐसा करने के लिए कहा करते थे। शायद वे इसे अन्य सभी के लिए उदाहरण प्रस्तुत करने हेतु गोपनीय रखते थे। उनका कहना था कि 'प्रभु की कृपा प्राप्त करने के लिए आपको प्रभु से अकेले में प्रार्थना करनी चाहिए। अन्य लोगों को आकृष्ट करने तथा अपनी श्रेष्ठ भक्ति के लिए प्रशंसा प्राप्त करने के लिए घण्टी, शंख आदि नहीं बजाने चाहिए। वे आडम्बर बिलकुल पसन्द नहीं करते थे। मात्र एक बार उनके व्यक्तिगत सहयोगी ने दैवयोग से उन्हें भगवान् के सामने कुटीर में पूजा के पश्चात् पूरी तरह लेट कर साष्टांग प्रणाम करते देखा। स्वामी जी की पूजा और प्रणाम अत्यन्त स्वाभाविक और सहज था। यह पूर्ण आत्म-समर्पण को दर्शाता था और स्वामी जी द्वारा सच्चे तथा सम्पूर्ण हृदय से किया गया था।

स्वामी जी जिस भगवान् की पूजा मानसिक अथवा शारीरिक रूप से किया करते थे, वे स्वामी जी के लिए उन वस्तुओं से भी अधिक सत्य थे, जिनको हम अपनी आँखों के समाने प्रत्यक्ष देखते हैं। स्वामी जी आश्रम के विश्वनाथ मन्दिर में अक्सर पूजा करने के लिए जाते थे। जब वे शिवलिंग को बेलपत्र अर्पित करते तथा शिवलिंग और छोटे से नंदी की तरफ देखते तो स्पष्ट ही ऐसा अनुभव होता था कि वे मूर्ति को नहीं, स्वयं भगवान् को देख रहे हैं। जब स्वामी जी कृष्ण भगवान् की मूर्ति

की ओर देखते तो उनके मुख का भाव ऐसा रहता था जैसे कि वे अपने अत्यन्त प्रिय मित्र की ओर देख रहे हों। आप इसे उनकी आँखों में स्पष्ट देख सकते थे। यह वास्तव में अत्यन्त सुन्दर तथा अवर्णनीय दृश्य था। स्वामी जी कहते थे कि जब आप मूर्ति की पूजा करते हैं तो मूर्ति तो मूर्ति ही रहती है परन्तु भक्ति ईश्वर तक जाती है। उनके लिए मन्दिर में मूर्ति नहीं स्वयं भगवान् उपस्थित थे।

स्वामी जी हमें भक्ति और प्रार्थना मात्र मन्दिर तक ही सीमित रखने के लिए नहीं कहते थे। वे कहते थे कि मन्दिर में पूजा निश्चित रूप से प्रारम्भिक प्रशिक्षण हेतु अत्यावश्यक है लेकिन इसका ध्येय सारे संसार के साथ भगवान् के मन्दिर की तरह तथा प्रत्येक प्राणी के साथ भगवान् की तरह व्यवहार करने की शिक्षा देना है।

स्वामी जी के आग्रह पर आश्रम में विशेष प्रकार के विभिन्न त्योहार मनाए जाते थे और विशेष पूजा की जाती थी। उदाहरण के लिए, नवरात्रि में कन्याओं का पूजन, २ अक्तूबर को गाँधी जी के जन्मदिन पर हरिजनों का पूजन तथा पवित्र गुरुपूर्णिमा के दिन श्री व्यास भगवान् की पूजा की जाती थी। (श्री व्यास भगवान् ने इसी दिन से ब्रह्मसूत्र लिखना प्रारम्भ किया था)

जब स्वामी जी के शिष्य उनकी पाद-पूजा करते थे तो स्वामी जी भी पुष्प हाथ में ले कर उन सभी शिष्यों की पूजा करते थे। जिनकी स्वामी जी में सच्ची निष्ठा थी, वे इस समय स्वामी जी के मुख पर दृष्टिगोचर हो रहे भावों को तथा उनकी आँखों में झलक रहे भक्ति के भावों का अनुभव कर सकते थे तथा वे यह भी समझ सकते थे कि उस समय जो भक्त उनके समक्ष खड़े थे, वे स्वामी जी के लिए भगवान् के भिन्न-भिन्न रूप थे।

स्वामी जी शिवरात्रि के दिन कुछ भी नहीं लेते थे और रात में जब पूजा होती तो वे सारी रात जागते रहते थे। वे मन्दिर के पास जो स्तम्भ था, उसके बाद वाले स्तम्भ के पास बैठे रहते थे। जब अन्य सभी जोर-जोर से चिल्लाते वे अत्यन्त शान्तिपूर्वक आँखें बन्द करके बैठे हुए बड़ी शान्ति से 'ॐ नमः शिवाय' का जप करते रहते थे। एकमात्र स्वामी जी जप करते रहते और शेष अन्य सो जाते थे। अकेले स्वामी जी वहाँ पर रात्रि ९ बजे से लगातार बैठे रहते थे और सुबह ३ बजे अपने स्थान पर से उठते थे। सम्पूर्ण रात्रि में चार बार पूजा होती थी और भक्तगण इसमें भाग

लेते थे। मन्दिर के बरामदे में **'ॐ नमः शिवाय'** का अखण्ड जप चलता रहता था। अन्तिम बार जब पूजा होती तो भक्तगण पुष्पांजलि के लिए गर्भगृह में एकत्र हो जाते थे तथा शिवजी को भक्तिपूर्वक बेलपत्र अर्पित करते थे।

कुछ लोग शिवलिंग के ऊपर बेलपत्र फेंक देते थे और कुछ गहरी निद्रा में रहते थे तो उनके हाथ से बेलपत्र फिसल कर गिर जाते थे। सबसे अन्त में स्वामी जी बेलपत्र लेकर आते, उनके मुख पर एक अपूर्व तेज रहता, वे सर्वप्रथम थोड़े से बेलपत्र पवित्र नंदी के चरणों में अर्पित करते जैसे उनसे भगवान् की पूजा करने की अनुमति ले रहे हों। स्वामी जी इस समय न तो कोई स्तुति करते और न ही जोर-जोर से भगवान् का नाम बोलते। वे शिवलिंग पर मात्र एक दृष्टि डालते। उनके प्रत्येक क्रियाकलाप से ऐसा आभास होता था जैसे भगवान् वहाँ स्वयं उपस्थित हैं और वे उनसे आँखों से ही बातें कर रहें हों। इसके बाद पलक झपकते ही स्वामी जी पीछे घूम जाते और कोई कुछ समझ पता इससे पहले ही स्वामी जी वहाँ उपस्थित जनों पर पुष्पों की वर्षा कर देते, जैसे कह रहे हों—भगवान् मात्र वहाँ ही नहीं है, वे सर्वत्र हैं।

स्वामी जी विभूति योग के महानतम तथा शायद एकमात्र आदर्श थे। (विभूति योग अर्थात् वह योग जिसमें भगवान् की महिमा तथा विभूतियों का वर्णन है। यह गीता का दसवाँ अध्याय है)। जिन्होंने भी स्वामी जी के सम्पूर्ण भारत भ्रमण के समय तथा आश्रम में महत्वपूर्ण अवसरों पर उनके प्रवचनों को सुना है, वे अच्छी तरह जानते हैं कि स्वामी जी इस योग के व्यवहार पर बड़ा बल देते थे। स्वामी जी ने भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा राजयोग के साथ-साथ इसे भी समान महत्त्व दिया है। यह एक गत्यात्मक ज्ञानभक्तियोग है। गीता में भगवान् कृष्ण ने विभूतियों की जो सूची दी है, स्वामी जी ने उसमें कुछ अपनी भी जोड़ दी थीं। स्वामी जी विभूतियोग का गीत गाते थे, जो इस प्रकार है—

सोऽहं, सोऽहं, सोऽहं, सोऽहं
ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, ॐ,

मैं न मन हूँ, न शरीर हूँ, मैं अमर आत्मा हूँ।
मैं तीनों कालों का साक्षी, मैं परम ज्ञान हूँ।
मैं चमेली में सुगन्ध और पुष्पों का सौन्दर्य हूँ।

मैं बर्फ में ठण्डक और कॉफी में सुगन्ध हूँ।
मैं पत्तियों में हरियाली और इन्द्रधनुष में रंग हूँ।
मैं जिह्वा में स्वाद कलिका तथा संतरे में रस हूँ।
मैं सब मनों का मन तथा सब प्राणों का प्राण हूँ।
मैं आत्माओं की आत्मा हूँ।
मैं सभी प्राणियों में आत्मा और आँखों में पुतली हूँ।
मैं सूर्यों का सूर्य तथा ज्योतियों की ज्योति हूँ।
मैं वह हूँ, मैं वह हूँ, मैं वह हूँ, मैं वह हूँ।

अब देखिए, स्वामी जी विभूति योग को व्यवहार में कैसे लाते थे? प्रत्येक वस्तु उन्हें ईश्वर का स्मरण कराती थी। जब वे अपने कमरे से बाहर आते थे तो गंगा जी को देख कर भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करते थे। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—"मैं नदियों में गंगा हूँ।" तथा हिमालय को देख कर वे स्मरण करते "सभी अचलों में मैं हिमालय हूँ"। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पीपल का वृक्ष, शक्तिशाली पहलवान, मुक्केबाज, व्यायामी सभी भगवान् की विभूति हैं। जब आप उन्हें देखते हैं तो आपको लगता है कि उनमें कुछ-न-कुछ दैवी शक्ति अवश्य है। कई बार ऐसा लगता था जैसे स्वामी जी बुद्धिमान् तथा धनवान लोगों को महत्त्व देते हैं लेकिन स्वामी जी के लिए मनुष्य का प्रभाव भगवान् की अन्य विभूति थी—समृद्धि या बुद्धि की तीक्ष्णता भी ईश्वरीय विभूति है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—"मैं बुद्धिमानों में बुद्धि हूँ।" स्वामी जी सभी में भगवान् की विभूति के दर्शन करते थे।

कभी-कभी स्वामी जी एक संतरा छीलते और उसे मछलियों के लिए जल में डालते जाते थे। यदि इसी समय वहाँ पर कोई बन्दर बैठा होता तो उसे भी अपना हिस्सा मिलता था। उन दिनों फल बहुत मुश्किल से मिलते थे लेकिन स्वामी जी को ऐसा लगता था कि यदि उनके पास फल हैं तो ये बन्दर को भी प्राप्त होना चाहिए।

स्वामी जी तो यहाँ तक कि चश्मे के घर, जूतों और अन्य प्रत्येक वस्तु के साथ इस प्रकार व्यवहार करते थे जैसे उसमें भगवान् उपस्थित हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के मन्दिर से लेकर प्रत्येक छोटी-से-छोटी वस्तु के प्रति उनका यही भाव रहता था। वे चश्मे के घर को बड़े धीरे से बन्द करते तथा फाउंटेन पेन तथा चश्मे का प्रयोग इस प्रकार करते जैसे किसी नवजात शिशु को उठा रहे हों। स्वामी जी से अपने सम्पूर्ण

जीवन में एक वस्तु भी नहीं टूटी। यहाँ तक कि वे जब अपनी शॉल को उठा कर ओढ़ते तो इतनी सुन्दरता, कोमलता तथा कलात्मकता के साथ कि ऐसा अनुभव होता जैसे यदि वे सावधानी से काम नहीं करेंगे तो वे शॉल में स्थित भगवान् को आहत कर देंगे। जब वे मन्दिर में आते तो बेलपत्र भी बड़े ही धीरे से भक्तिपूर्वक अर्पित करते थे।

यहाँ तक कि वे वस्तुएँ जो इन्द्रियों का पोषण करती हैं वे भी स्वामी जी के लिए भिन्न प्रकाश में प्रकट होती थीं। स्वादिष्ट भोजन उनकी जिह्वा की नाड़ियों को मात्र उत्तेजित ही नहीं करता वरन् यह उन्हें उस ईश्वर का स्मरण भी कराता था जो समस्त व्यंजनों में स्थित मधुरता है। संगीत उनकी चेतना को बहिर्मुखी करने तथा मन को विचलित करने के स्थान पर उनकी परम चेतनावस्था जो निरन्तर और स्वाभाविक हो गयी थी, उसमें सहायक बन गया था। वन का एकान्त उन्हें भयावना नहीं लगता था। वे उसमें मात्र भगवान् की शक्ति को देखा करते थे।

स्वामी जी ने कहा कि यदि आध्यात्मिक जिज्ञासु को सर्वत्र दैवी उपस्थिति, ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करने की आदत का विकास करना है, तो सर्वप्रथम सभी विशेष दैवी विभूतियों में ईश्वर के दर्शन करो। अनन्त नीले आकाश को देखें, क्या यह आपको ईश्वर का स्मरण नहीं कराता। देदीप्यमान सूर्य तथा स्वप्रकाश्य आत्मा को ध्यान से देखें। गंगा जी के पवित्र जल की ओर देखते रहें। इन सभी विभूतियों को मानसिक प्रणाम करें। धीरे-धीरे आपकी दृष्टि विस्तृत हो जाएगी। यहाँ तक कि मूर्खों और गधों में भी ईश्वर को देखें। अपने मन से पाप के विचार को समूल नष्ट कर दें। जब भी आप किसी ऐसे व्यक्ति को देखें जिसे आप दुश्चरित्र समझते हों तो मानसिक रूप से दोहराएँ 'छल में भगवान् द्यूत हैं।' और उसमें भगवान् के दर्शन करें। सारी घृणा दूर हो जाएगी। आपको एक डकैत से न तो घृणा करनी चाहिए और न ही भयभीत होना चाहिए क्योंकि भगवान् तो इनके मुखिया हैं।

जप

स्वामी जी को सभी से मन्त्र जप करवाना आश्चर्यजनक रूप से प्रिय था। प्रतिदिन स्वामी जी के पास युवक तथा वृद्धजन आते और एक अत्यन्त सरल प्रश्न करते—"स्वामी जी, मैं योगाभ्यास करना चाहता हूँ। एक आध्यात्मिक जीवन

व्यतीत करना चाहता हूँ। आप मुझे बताइए कि मुझे सर्वप्रथम क्या करना चाहिए? व्यक्ति को भगवान् तथा आत्मा और अनात्मा के सिद्धान्तों को समझाने के स्थान पर स्वामी जी कहते—"राम नाम का जप करो।" भगवान् के नाम का जप करो। उनके शिष्य बनने हेतु आने वाले लोग विभिन्न प्रकृति तथा विभिन्न धर्मों को मानने वाले थे। लेकिन स्वामी जी उन सभी से एक ही बात कहते थे—"मैं आपको एक मन्त्र दूँगा। आप दिन-रात उस मन्त्र का जप करें। जब आप इसका निरन्तर जप करते रहेंगे तो यह आपके विचारों की पृष्ठभूमि बन जाएगा।" इसके बाद वे कोई भी प्रश्न जैसे भगवान् क्या है? भगवान् के प्रति धारणा आदि नहीं करते देते। वे तुरन्त पूछते—"आप क्या पसन्द करेंगे, चाय अथवा कॉफी।"

स्वामी जी सभी प्रकार के अव्यवहारिक प्रश्नों की उपेक्षा करते थे। एक बार सन् १९४७ में एक अति बुद्धिमान् व्यक्ति प्रातः ८ बजे कार्यालय में आया। उसने कहा कि आप मुझे सविकल्प तथा निर्विकल्प समाधि के अन्तर को व्याख्या सहित समझाएं। कार्यालय में उपस्थित सभी शिष्य उस प्रश्न का उत्तर सुनने के लिए उत्सुकता से स्वामी जी की ओर देखने लगे जिसे स्वामी जी से पूछने का उन्होंने आज तक साहस भी नहीं किया था। स्वामी जी उस समय कुछ काम कर रहे थे। उन्होंने अपना पेन नीचे रख दिया और आगन्तुक अतिथि की ओर देखा। कुछ समय के लिए पूर्ण शान्ति छा गयी, फिर स्वामी जी ने उससे पूछा—"ओ जी, आप क्या पसन्द करेंगे, थोड़ा दूध, चाय अथवा कॉफी?"

यदि स्वामी जी कोई प्रश्न करते तो आप उत्तर देने हेतु विवश हो जाते थे। अतः उस प्रोफेसर ने उत्तर दिया—"स्वामी जी, मैं थोड़ी कॉफी लूँगा।"

स्वामी जी ने फिर पूछा—"थोड़े फल या इडली?"

उसने कहा—"जी, स्वामी जी।"

स्वामी जी ने एक शिष्य से सब चीजें लाने के लिए कहा और एक अन्य व्यक्ति से कहा मुझे इनके लिए कुछ पुस्तकें ला कर दें। इस प्रकार दस मिनट व्यतीत हो गए। इसी बीच नाश्ता आ गया था। स्वामी जी नाश्ता लाने वाले शिष्य को समझाने लगे कि नाश्ते को किस प्रकार अतिथि को दिया जाए।

इसी समय उस प्रोफेसर की पत्नी उसे ढूँढती हुई आयी। कुछ देर बाद वह अन्दर आयी और उसकी तरफ गुस्से से देखा और बोली—"तुम यहाँ कितनी देर रुकोगे? उठो, चलो।" वह प्रोफेसर चुपचाप उठा और चला गया।

उसके जाने के बाद स्वामी जी जोर-जोर से हंसने लगे। वे हंसे और हंसते ही गये, इतना हंसे कि हंसते-हंसते उनका पेट ऐंठने लगा और उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। फिर वे बोले—"वह निर्विकल्प और सविकल्प समाधि में अन्तर जानना चाहते थे, उसकी पत्नी ने उसे मात्र एक बार देखा और कहा उठो चलो। और वह उठ कर उसके पीछे-पीछे शान्तिपूर्वक चला गया।

स्वामी जी को निरर्थक विवाद पसन्द नहीं था। उनका सन्देश था "राम नाम का जप करो, भगवान् का नाम लो। आप सारे प्रश्नों के उत्तर अपने भीतर से ही प्राप्त कर लेंगे।"

एक अन्य रुचिकर घटना देखिए—

"एक प्रसिद्ध राजनेता आश्रम में आए। स्वामी जी के सामने उन्होंने भारत का चित्र रखा और संसार भर में भारत की स्थिति को बताया (जैसी वे समझते थे) वे लगभग ४५ मिनट तक बोलते रहे और सुनने वाले एकमात्र श्रोता थे—स्वामी शिवानन्द जी। वे अपनी कोहनियाँ मेज पर रखे हुए अतिथि की आँखों में आँखें डाल कर उनकी बातें ध्यान से सुन रहे थे। स्वामी जी के धैर्य की प्रशंसा करनी होगी। उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। उस राजनेता ने संसार की स्थिति का अत्यन्त सुन्दर और सजीव चित्रण प्रस्तुत किया। अपनी बात समाप्त करने के बाद वे स्वामी जी की ओर इस प्रकार देखने लगे जैसे पूछना चाहते हों कि आपकी क्या सलाह है। इन समस्याओं का आपके पास क्या हल है? भुखमरी, गरीबी, जनसंख्या वृद्धि, उत्पीड़न, दमन, हताशा, इन सबका क्या हल है? अब गेंद स्वामी जी के पाले में थी और स्वामी जी का अत्यन्त सुन्दर उत्तर था—"मात्र भगवान् का नाम ही इन सभी समस्याओं का हल है।" बेचारे राजनेता के पैरों तले जमीन खिसक गयी। उन्होंने सोचा था कि स्वामी जी कहेंगे कि आप अवश्य ही प्रधानमन्त्री बनेंगे अथवा परिवर्तन के लिए कोई नया दल का गठन कर लें आदि।

स्वामी जी को विचारों की पृष्ठभूमि के मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक प्रभाव में अत्यधिक विश्वास था तथा वे इसे जीवन की समस्याओं के हल हेतु प्रयोग करने का सुझाव दिया करते थे।

जब स्वामी जी कहते कि 'रात-दिन मन्त्र का जप करो'। तो वास्तव में उनका इससे यह आशय था कि मन्त्र को अपने जीवन की प्रत्येक गतिविधि के साथ जपते रहना है। स्वामी जी इसे अत्यन्त सुन्दर तरीके से समझाते थे। वे कहते थे—"जैसे आप रोटी बेल रही हैं तो 'श्रीराम जय राम जय जय राम' गायें। इस प्रकार दोनों काम एक ही समय में साथ-साथ हो जाएंगे।"

स्वामी जी प्रत्येक शिष्य को एक मन्त्र और माला देते थे। कुछ दिन बाद यदि वह शिष्य कहता—"मैं और कोई काम नहीं करता। बस सुबह, मध्यान्ह और सन्ध्या को तीन-तीन घण्टे जप करता हूँ। तो स्वामी जी उससे कहते—"अपनी जप माला फेंक दो और जा कर कुछ काम करो। वह व्यक्ति जो निरन्तर माला घुमाता रहता है, प्यासे व्यक्ति को एक गिलास पानी भी नहीं देता, वह ढोंगी है। मैंने तुम्हें एक जगह बैठ कर नाक को देखते हुए जप करने के लिए नहीं कहा, वरन् मन्त्र जप दिन-रात चलता रहना चाहिए।"

कुछ शिष्य ऐसा सोचते थे कि वे दिन-रात कठिन परिश्रम करके स्वामी जी को प्रसन्न कर सकते हैं, परन्तु ऐसा नहीं था। सन् १९४६ की बात है, एक दिन स्वामी जी एक स्वामी पर बिजली की तरह कड़के—"आपने आज कितना ध्यान किया? कितना जप किया? आप अपना टाइप राइटर और सारी चीजें भी गंगा में फेंक दें, और जाकर थोड़ा जप और ध्यान करें।" सारा काम और पूजा बिलकुल नहीं, यह ठीक नहीं है। वास्तव में लक्ष्य है काम ही पूजा है लेकिन व्यवहार में इसका अर्थ है 'काम और पूजा'। वे संतुलन के साथ काम करने के लिए कहते थे जिससे कोई भी चीज उपेक्षित न रहे।

स्वामी जी विचारों की पृष्ठभूमि को युद्धक्षेत्र में प्रत्याहार कहते थे अर्थात् संकल्पशक्ति के अनुसार मन पर नियन्त्रण करना तथा इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करना। स्वामी जी कहते थे—"यदि आपके भीतर लालच, भय, झुंझलाहट, चिड़चिड़ापन की भावना होगी तो यदि आपसे कोई व्यक्ति तर्क करेगा तो उसी समय आप आपे से

बाहर हो जाएंगे, किन्तु आपका मन्त्र जप ऐसी स्थिति में आपकी रक्षा करता है। स्वामी जी ऐसी स्थिति में बड़ी बुद्धिमानी से काम लेते थे। यहाँ तक कि यदि दो आश्रमवासी उनके सामने तर्क करते तो ऐसा लगता जैसे स्वामी जी उसमें भाग ले रहे हैं लेकिन कुछ देर बार स्वामी जी कहते—**'ॐ नमः शिवाय'** और वहीं बात समाप्त हो जाती। इस बात से उनको कोई मतलब नहीं था कि बात कहाँ से प्रारम्भ हुई और कितनी बढ़ी और कौन हारा। स्वामी जी किसी भी समय बात को समाप्त कर देते थे। यहाँ तक कि कोई स्वयं उनसे ही तर्क कर रहा होता तो भी वे कहते **'ॐ नमः शिवाय'**, जिसका अर्थ था बस बहुत हो गया।

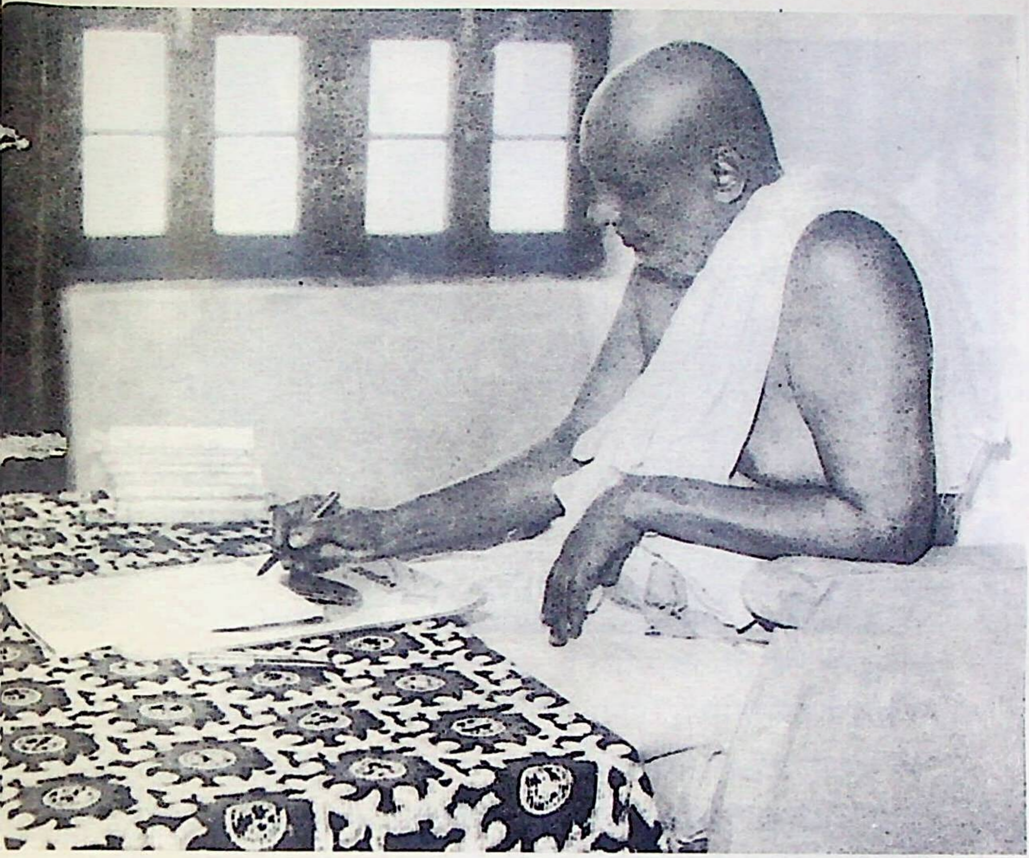
स्वामी जी यह नहीं मानते थे कि ध्यान मात्र तभी हो सकता है जब हम कुछ न कर रहे हों। वे कहते थे आप तब भी ध्यान कर सकते हैं जब आप झगड़ रहे हों लेकिन पहले कोई बाधा या विरोध है उसके बारे में सोचने के स्थान पर कीर्तन अथवा भजन करते समय ध्यान करना सीखें। शरीर जो भी कर रहा हो प्रत्येक स्थिति में ध्यान की स्थिति बनाए रखनी सम्भव है।

स्वामी जी के लिए जप स्वयं ध्यान था। इसलिये उन्होंने कभी ध्यान का वर्णन नहीं किया। उन्होंने कहा—''यदि आप ध्यान करने का प्रयास करेंगे तो आप मानसिक परेशानियों को आमन्त्रण देंगे क्योंकि आप उस समय ध्यान नहीं करते मात्र प्रयास कर रहे होते हैं लेकिन जब आप जप करते हैं तो बिना किसी प्रयत्न के आप स्वयं ध्यान में चले जाते हैं।''

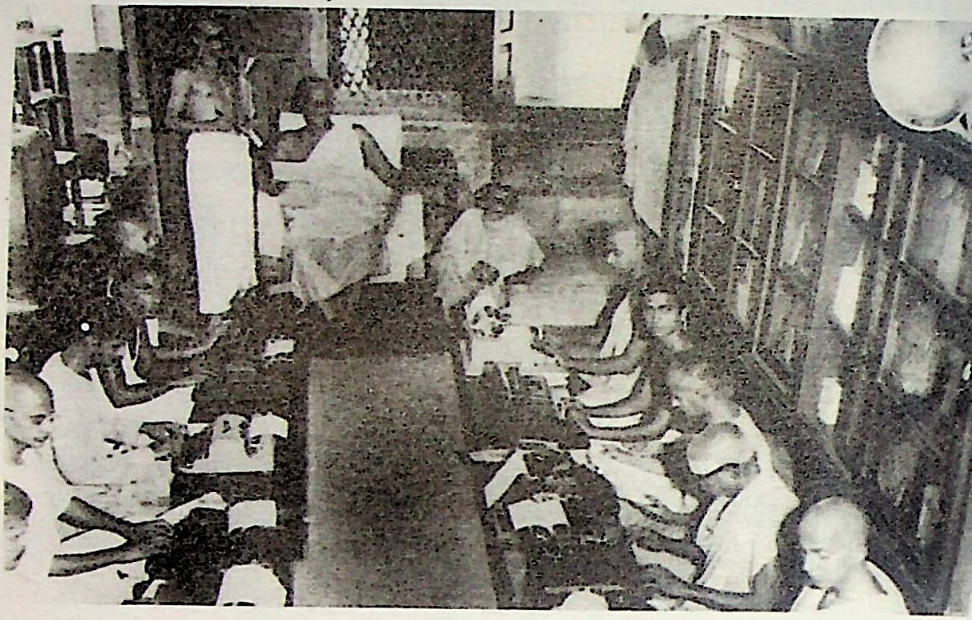
स्वामी शिवानन्द जी की दिनचर्या

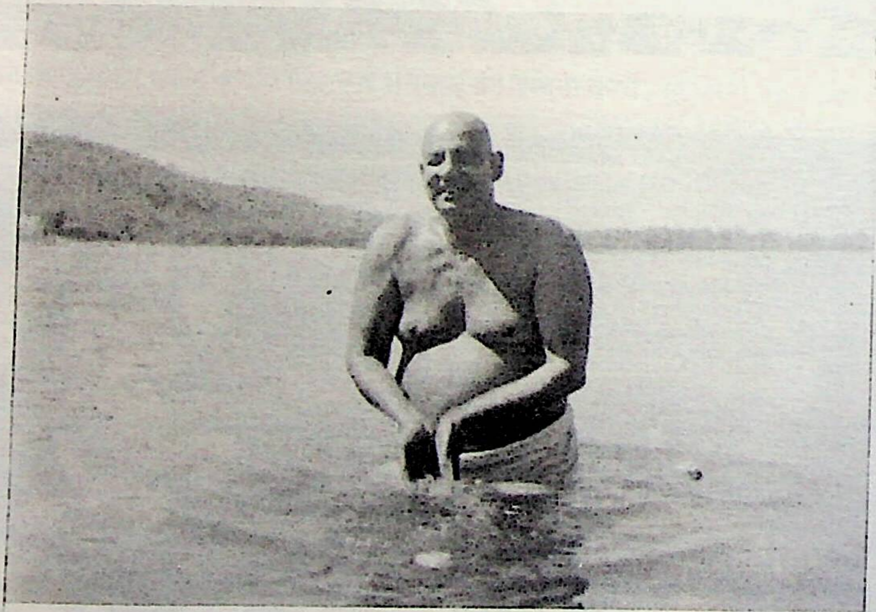
सम्पूर्ण भारत भ्रमण में स्वामी शिवानन्द जी ने सारे भारत और श्रीलंका के निवासियों को कहा—"चार बजे प्रातः उठो और ध्यान करो। यह ब्रह्ममुहूर्त है और ध्यान के लिए सर्वश्रेष्ठ समय है। लेकिन इस नियम का जो दृढ़ता से पालन करते थे, वे स्वामी शिवानन्द जी स्वयं थे। वे सामान्यतया प्रातः ३ बजे उठ जाते थे। प्रातः बिस्तर से उठ कर वे वहीं पर सर्वप्रथम प्रार्थना करते थे। इसके बाद मुँह धोना, शौच आदि क्रियाएं वे अत्यन्त शीघ्रता से समाप्त कर लेते थे। इसमें १५ मिनट से अधिक नहीं व्यय करते थे। तत्पश्चात् वे ध्यान के पूर्व आवश्यक क्रियायें जैसे भस्त्रिका प्राणायाम, गुरु स्त्रोत तथा अन्य स्तुतियाँ आदि करते थे। फिर लम्बे समय तक ध्यान करते थे।

सूर्योदय होते ही स्वामी जी अपने कुटीर से बाहर आते और गंगा जी और हिमालय को नमन करते थे। इसके बाद वे गंगा जी के जल में घुटनों तक खड़े रह कर अपने ऊपर गंगा जल छिड़कते। यदि गर्मी के दिन होते तो इस समय स्वामी जी गंगा तट पर कुछ देर ध्यान करते। फिर सूर्य भगवान् की वन्दना करते, सूर्य मन्त्र पढ़ते और सूर्य भगवान् को प्रंणाम करते। तत्पश्चात् वे अपने कुटीर में वापस चले जाते। वहाँ आधा घण्टे आसन और प्राणायाम करते। स्वामी जी ने एक बार अपने एक शिष्य (जिसे व्यायाम करना पसन्द नहीं था) को बताया—"शरीर की कैसी भी स्थिति हो, चाहे मुझे गम्भीर कटिवात अथवा गठिया का दर्द हो, सर्दी, खाँसी अथवा ज्वर हो, मैं आसन, प्राणायाम किए बिना रह ही नहीं सकता। मुझे नहीं मालूम कि आप बिना आसन और प्राणायाम किए कैसे जी लेते हैं। वे प्राणायाम में एक घण्टे से भी अधिक समय देते थे। वे शीत ऋतु में कुछ चक्र भस्त्रिका प्राणायाम तथा ग्रीष्म ऋतु में कुछ चक्र शीतली प्राणायाम करते। सन्ध्या में वे पुनः प्राणायाम करते तथा प्राणायाम का अन्तिम चक्र राम में सोते समय करते थे। इस प्रकार वे अपने व्यस्ततम समय में लगभग ४ घण्टे इस महत्वपूर्ण अभ्यास में व्यय करते थे।









इसके बाद वे प्रातः दो घण्टे तक लेखन करते थे। उनके मन में जो नये विचार जन्म लेते उन्हें वे तुरन्त लिख लेते थे। इन्हीं विचारों ने बाद में सारे संसार के करोड़ों जिज्ञासुओं के जीवन और भाग्य का निर्माण किया।

स्वामी जी अपनी सारी चीजों को इस प्रकार व्यवस्थित जमा कर रखते थे कि वे बिना अपने स्थान पर से उठे विभिन्न विषयों पर जो उनके विचार थे उन्हें इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण घण्टे में लिख लेते थे। इनके सन्दर्भ हेतु जिन पुस्तकों की आवश्यकता होती थी उन्हें स्वामी जी अपने पास में रखते थे। 'कम-से-कम ऊर्जा को व्यय करके कम समय में अधिक-से-अधिक कार्य करना' यही उनका ध्येय था।

कम-से-कम १ दर्जन कापियाँ और तीन फाउंटेन पेन और दो जोड़ी चश्मे हमेशा तैयार रहते थे जिससे यदि एक पेन की स्याही समाप्त हो जाए अथवा चश्मा टूट जाए तो उनके मन में आ रहे विचारों को लिखने में कोई रुकावट न आए। कुछ कापियाँ कुछ विशेष बातों को चिन्हित की हुई रखी रहती थीं, जैसे स्प्रिचुअल लेसन्स एण्ड मेडिकल नोट्स तथा अन्य सामान्य पुस्तकों से सम्बन्धित कापियाँ।

लगभग तीन घण्टे बाद नौ बजे वे नाश्ता लेते थे जिसमें एक गिलास दूध तथा अन्य अवसर के अनुरूप वस्तु रहती थी। स्वामी जी के नाश्ते में बहुत से लोग उनके हिस्सेदार थे। सबसे पहले यह गंगा जी की मछलियों और आसपास रहने वाले बन्दरों को दिया जाता। फिर यदि थोड़ा नाश्ता और होता तो उसे पहले वहाँ रहने वाले कुछ आश्रमवासियों में वितरित किया जाता, इसके बाद ही स्वामी जी स्वयं ग्रहण करते थे।

इसके बाद स्वामी जी का स्थान परिवर्तन हो जाता परन्तु काम सतत चलता रहता। सभी प्रकार की डाक तथा लेखों आदि के ढेरों थैलों को साथ लेकर स्वामीजी कार्यालय चले जाते जो डायमंड जुबली हॉल में लगता था। तात्कालिक पत्र, सामान्य पत्र, लेख, पत्रिकाएँ आदि सभी के लिए अलग-अलग थैले थे। मिठाइयाँ, मेवे आदि (जिन्हें स्वामी जी मार्ग में मिलने वाले बच्चों, अतिथियों तथा जिज्ञासुओं को देते थे) के लिए पृथक् थैले थे। स्वामी जी प्रत्येक आश्रमवासी को जो उन्हें मार्ग में मिलता उसे पहले प्रसाद देते। फिर उसे निर्दिष्ट कार्य बताते। पत्रों और लेखों को मार्ग में आने वाले विभिन्न स्थानों पर दे दिया जाता। स्वामी जी अपने कुटीर से लेकर

कार्यालय तक 'ॐ नमो नारायणाय', 'तत् त्वम् असि' अथवा कोई अन्य मन्त्र का कम-से-कम १०८ बार जप करते थे। वे प्रत्येक मिलने वाले का हाथ जोड़ कर अभिवादन करते थे। उनके इस अनुकरणीय अभ्यास में अभिवादन, शिष्टाचार, सम्मान, दया तथा जप सभी सम्मिलित थे।

अब स्वामी जी इस बात की जानकारी लेते कि कोई विशेष पार्सल अथवा पत्र भेजा गया अथवा नहीं। वे कोषागार में कोषाध्यक्ष को निर्देश देते। रसोईघर के प्रबन्धक को मालूम था कि स्वामी जी उससे सर्वप्रथम आश्रम में अतिथियों की उपस्थिति तथा रोगियों के बारे में जानकारी लेंगे। हालाँकि स्वामी जी इस पृथ्वी पर किसी भी व्यक्ति से अधिक कार्य करते थे परन्तु वे प्रत्येक काम के बारे में छोटी-से-छोटी जानकारी भी रखते थे जिसके कारण सैकड़ों निष्काम कर्म करने वाले सारे समय व्यस्त रहते थे। रसोईघर के प्रबन्धक यह देख कर सदा चकित रह जाते थे कि स्वामी जी का ध्यान उस ओर अवश्य जाता था जहाँ कोई गल्ती होती थी। पारमार्थिक अस्पताल के चिकित्सक को भी स्वामी अपना निर्देशन दिया करते थे तथा अस्पताल का निरीक्षण किया करते थे।

स्वामी जी का कार्यालय में प्रवेश प्रातःकालीन प्रार्थना के प्रारम्भ का सूचक था। कार्यालय में कार्य करने वाले सभी साधक तथा उपस्थित अतिथि सभी इसमें सम्मिलित होते थे। स्वामी जी के पास एक पत्रक का डिब्बा तथा भगवान् के प्रसाद के दो पात्र रखे रहते थे। स्वामी जी प्रत्येक पत्र (चाहे यह व्यवसायिक अथवा भिन्न प्रकार का हो) के साथ बीस आध्यात्मिक सूत्र का एक पत्रक तथा भगवान् का प्रसाद दिया करते थे। स्वामी जी को साधकों की आध्यात्मिक दैनन्दिनी अत्यन्त प्रिय थी। स्वामी जी उसे ध्यान से पढ़ते थे और उन्हें आगे निर्देश दिया करते थे। इसी प्रकार संकल्प पत्र के साथ भी स्वामी जी का यही व्यवहार रहता था। दैनन्दिनी और संकल्प-पत्र साधक को जीवन के लक्ष्य के प्रति निरन्तर जगाए रखने के लिए स्वामी जी के शक्तिशाली अस्त्र थे। असाधारण रूप से श्रेष्ठ दैनन्दिनी की स्वामी जी मुक्त हृदय से प्रशंसा करते थे, और विशिष्ट बिन्दुओं पर अपने विचारों के साथ स्वामी जी इसे संसार के अन्य लोगों के लाभार्थ प्रकाशन हेतु तत्काल दिव्य जीवन पत्रिका के सम्पादक को दे देते थे।

स्वामी जी के पास ढेरों काम थे। आश्रम के मुनीम आश्रम के आय-व्यय का प्रतिवेदन स्वामी जी के अवलोकन हेतु लाने की अनुमति माँगते, तो प्रेस के प्रबन्धक कागज अथवा नयी मशीन के लिए धन की माँग करते, या कोई वरिष्ठ स्वामी जी जो निर्माण कार्य के प्रभारी होते वे बड़ी प्रसन्नता से नयी इमारत के शुभारम्भ हेतु स्वामी जी को आमन्त्रित करने आते। कोषाध्यक्ष चेक तथा पोस्टल आर्डरों का बंडल लेकर स्वामीजी के हस्ताक्षर के लिए प्रतीक्षारत रहते। योग वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस के प्रभारी स्वयं आकर प्रेस में चल रहे काम की सूचना नित्य स्वामी जी को देते थे। संसार भर के समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में भेजे जाने वाले लेखों तथा व्यक्तियों, संस्थानों तथा सभी प्रकार के धार्मिक और अन्य कार्यक्रमों के लिए भेजे जाने वाले शुभकामना सन्देशों पर भी स्वामी जी के हस्ताक्षर होते थे। माह में एक बार दिव्य जीवन संघ की शाखाओं के प्रतिवेदनों का अनुरीक्षण किया जाता तथा मुख्यालय से सम्बद्धता के प्रमाण-पत्रों पर स्वामी जी हस्ताक्षर करते थे तथा उन शाखाओं के विकास के लिए निर्देश देते थे। इसी बीच स्वामी जी किसी भक्त से भजन गाने के लिए तथा किसी विश्वविद्यालय के व्याख्याता से व्याख्यान देने के लिए कह देते थे। जिस प्रकार एक भीड़-भाड़ भरे व्यस्त बाजार में लोग इधर से उधर दौड़ते रहते हैं, उसी प्रकार समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के लिए लेख तैयार करने के लिए टाइपराइटर बिना रुके लगातार काम करते रहते थे तथा युवा ऊर्जावान ब्रह्मचारी वहाँ उपस्थित अतिथियों को चाय, दूध, फल तथा बिस्किट आदि वितरित करते रहते। इसके साथ ही साथ प्रवेश-द्वार पर बड़ी संख्या में कुत्ते, पिल्ले और बन्दर अक्सर झगड़ते और बहुत अधिक आवाज करते थे।

अनेकों विभागों को शीघ्रता से निर्देशन देकर स्वामी जी दिन के एक महत्वपूर्ण काम के लिए जाते थे, एक बहुत बड़ा सा 'कौन-क्या-कहाँ' रजिस्टर मेज पर लाकर रख दिया जाता। सारी रात यह ताले में बन्द रहता था। यह स्वामी जी का कोष था। इस १० पौंड वजन के रजिस्टर में उन सभी के नाम तथा पते लिखे हुए थे, जो स्वामी जी के सम्पर्क में थे, जैसे साधक, शिष्य, दान-दाता, अधिकारी, यूरोपियन, अमेरिकी, सम्पादक और समाचार-पत्र, योगीजन, दार्शनिक लोग, मन्त्रीगण, मठ, आश्रम, शिष्यों की तरह के लोग आदि। एक नया पता तुरन्त ही इसमें लिख दिया जाता था। यह वह रजिस्टर था जिससे स्वामी जी दुनियाँ भर के लोगों के साथ

सम्पर्क कर सकते थे तथा प्रभावकारी ढंग से उनकी सेवा कर सकते थे। स्वामी जी इसके प्रति अत्यधिक सजग थे क्योंकि यह उनके लिए महान् सहायक था।

निःशुल्क विभाग के प्रभारी स्वामी लगभग १०० पुस्तकों के भारी बंडल के साथ स्वामी जी के पास जाते। कौन-क्या-कहाँ रजिस्टर तथा निःशुल्क विभाग का रजिस्टर उन्हें स्मरण कराने का काम करता तथा स्वामी जी स्वयं पुस्तकों पर हस्ताक्षर करते तथा अपने हाथों से भक्त का नाम तथा आशीर्वाद लिखते। यह कार्यक्रम लगभग १ घण्टे तक चलता। इसके बाद जो बाहर जाने वाला पार्सल होती उनके पतों का स्वामी जी स्वयं निरीक्षण करते। निःशुल्क विभाग के स्वामी पार्सलों को हाथ में पकड़े रहते, जिससे स्वामी जी उन पर लिखे पते पढ़ लें। जब स्वामी जी पढ़ कर संतुष्ट हो जाते तो कहते ॐ तत् सत्। यह इस बात का संकेत था कि स्वामी जी उस पार्सल से संतुष्ट हैं। जितने पार्सल होते स्वामी जी उतनी बार ॐ तत् सत् कहते थे।

स्वामी जी के कार्यालय में कार्यकर्ता गण दो पंक्तियों में बैठते थे। स्वामी जी सबके अन्त में बैठते थे। स्वामी जी की कुरसी बड़ी थी और वे कभी-कभी पीछे पीठ टिका कर अपना चश्मा माथे के ऊपर रख लेते और फिर अपने विशिष्ट प्रकार से देखते थे... और इस दृष्टि में कुछ ऐसा था जो मन्त्र मुग्ध कर देता था। उन्हें ऐसे समय देखना एक प्रेरणा प्रदान करता था।

सर्वाधिक सरलता से उपलब्ध होने वाले व्यक्ति थे स्वामी जी। स्वामी जी ने स्वयं को ऐसा बना रखा था कि प्रत्येक उनसे सरलता से मिल सके। कार्यालय खुलने के बाद कोई भी भीतर आ सकता था। यहाँ तक कि बच्चे भी दौड़ कर अन्दर आ जाते और स्वामी जी से पूछते—"स्वामी जी, अभी क्या समय हुआ?" और वे सबको उत्तर देते थे।

आश्रम में सदा कुछ अतिथि रहते ही थे। जैसे ही कोई अतिथि प्रवेश करता, स्वामी जी का अतिथ्य यन्त्र प्रारम्भ हो जाता। यदि वह स्वयं कुछ फल अथवा अन्य भेंट लेकर आता तो स्वामी जी उन्हें उसी समय वहाँ उपस्थित लोगों में वितरित कर देते। यदि वह अतिथि इस परम्परा का निर्वाह करना भूल जाता तो स्वामी जी स्वयं चाय, दूध, फल आदि से उसका आतिथ्य करते।

स्वामी जी न तो अतिथि के समय का अपव्यय होने देते, न ही स्वयं का। स्वामी जी उसकी आध्यात्मिक साधना तथा उसमें आने वाली कठिनाइयों को धैर्यपूर्वक सुनते तथा तुरन्त ही उत्तर देते। यदि जिज्ञासु निरर्थक अथवा विद्वतापूर्ण तर्क-वितर्क करता तो स्वामी जी मौन ले लेते। इस समय वे किसी को मन्त्र-दीक्षा देते तो दूसरे किसी को किसी रोग की औषधि बताते, तीसरे को भक्ति अथवा कर्म योग पर उपदेश देते, चौथे को साधना के उलझे बिन्दुओं को समझाते तथा अन्य किसी को उसकी पारिवारिक समस्याओं तथा संसार के कष्टों से मुक्ति देते। इस सत्र में आश्रमवासियों को भी आध्यात्मिक ज्ञान रूपी औषधि प्राप्त होती रहती थी।

यदि कोई गम्भीर मामला होता तो स्वामी जी की पूर्ण सहानुभूति रहती। ईमानदार, निर्धन तथा अनपढ़ जिज्ञासु स्वामी जी के साथ १ घण्टे से भी अधिक बातचीत करते रहते लेकिन निरर्थक बाते करने वाले पंडित स्वामी जी का ध्यान मेज पर रखे पत्रों से हटाने में असमर्थ रहते अथवा उन्हें यह संकेत मिल जाता कि स्वामी जी ने उनकी बात सुन ली है।

सभी अतिथियों ने अपना भोजन ग्रहण कर लिया, उन्होंने आश्रम भ्रमण कर लिया तथा उनका आतिथ्य सत्कार उचित प्रकार से हो गया, यह सब जानने के बाद ही स्वामी जी मध्याह्न में अपने कुटीर में वापस जाते थे। इसके बाद कुछ मिनट तक शिथलीकरण करते जिसका मुख्य ध्येय था कार्यालय, संस्था, संसार सबकी तरफ से अपना ध्यान हटाना। यह एक साधना थी जिसे वे वास्तविक विश्राम के लिए नित्यप्रति बिना चूके कई बार करते थे।

ग्रीष्म ऋतु में स्वामी जी नाश्ते के पूर्व स्नान करते थे, जबकि शीत ऋतु में मध्याह्न भोजन के पूर्व। स्नान के पूर्व वे दुग्ध तथा पुष्पों से गंगा माँ की पूजा करते। इसके पश्चात् प्रार्थना करते। तत्पश्चात् वे जल में प्रवेश करते। पहले वे कुछ डुबकियाँ लगाते, उसके बाद सभी देवताओं, मृतजनों की आत्माओं आदि के लिए प्रार्थना करते। इसके बाद वे महावाक्यों तथा परमहंस मन्त्र का उच्चारण करते। तत्पश्चात् वे उन लोगों के लिए डुबकियाँ लगाते जो गंगा स्नान करना चाहते हैं परन्तु तीर्थ यात्रा पर आ सकने में असमर्थ हैं। इसके बाद वे अपने कुटीर में स्थित मन्दिर में पूजा करते।

स्वामी जी जब सभी अतिथि और आश्रमवासी अपना भोजन समाप्त कर लेते, उसके बहुत देर बाद अपना भोजन लेते थे। वे शीत ऋतु में मध्याह्न में २ बजे तथा ग्रीष्म ऋतु में १२ बजे भोजन ग्रहण करते थे। जब भी स्वामी जी कुछ ग्रहण करते उसके पूर्व सभी भागीदारों को उनका अंश दे दिया जाता था। भोजन करने के पूर्व गीता के कुछ चुने हुए श्लोकों का पाठ किया जाता था।

मध्याह्न का प्रथम भाग अधिकतर अध्ययन में व्यय होता था। जब असहनीय गर्मी होती तो स्वामी जी एक घण्टे विश्राम करते थे।

स्वामी जी ३.३० बजे शाम से अपना काम पुनः प्रारम्भ कर देते थे। इस समय स्वामी जी एक गिलास दूध लेने के बाद कुटीर से निकलते और फिर योग वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी में कक्षा लेते थे (ग्रीष्म ऋतु में यह प्रातःकाल लगती थी)। इसके बाद दिन भर की डाक मेज पर रख दी जाती। स्वामी जी शीघ्रता से पत्रों का अवलोकन करते। उन्हें छाँट कर अपने बैग में रख लेते। जो कार्यालय के किसी भी विभाग से सम्बन्धित नहीं होते और जिनका शीघ्र उत्तर देना आवश्यक होता, उन्हें वे अपने साथ कुटीर में ले जाते।

स्वामी जी अतिथियों के स्वागत तथा उनके साथ व्यवहार में समय के बड़े पाबन्द थे। यदि उनसे कोई सन्ध्या ५ बजे मिलने आने वाला होता तो वे उसके लिए ४.४५ बजे ही बरामदे में पहुँच जाते थे। स्वामी जी का सिद्धान्त था कि अतिथि को कभी भी प्रतीक्षा नहीं करानी चाहिए। प्रातःकाल की अपेक्षा सायंकाल अतिथियों की अधिक भीड़ रहती थी। कभी-कभी स्वामी जी स्वेच्छा से स्वयं ही उन्हें आश्रम दर्शन कराने हेतु ले जाया करते थे। स्वामी जी कार्यालय के विभिन्न विभागों से प्रारम्भ करते उसके बाद वे अतिथि को अस्पताल, आयुर्वेदिक फार्मेसी, डाकघर तथा रसोईघर तक ले जाते। इसके बाद वे उसे पहाड़ी के ऊपर स्टूडियो में ले जाते (जहाँ उसे योग पर आधारित चलचित्र दिखाया जाता)। फिर उसे योग संग्रहालय में ले जाते (यहाँ एकाडेमी के व्याख्याता उसे संग्रहालय के बारे में समझाते)। इसके बाद वे उसे गुहा, भजन-कक्ष, मन्दिर, प्रेस, प्राथमिक विद्यालय आदि दिखाने ले जाते। इसमें लगभग एक घण्टा लगता था। यदि वे अतिथि अभी कुछ जल्दी में होते तो इस एक घण्टे से उनके भीतर भविष्य में आश्रम में आकर कुछ दिन निवास करने

की इच्छा जाग जाती और सदैव ऐसे अतिथि यह संकल्प लेकर जाते कि वे भविष्य में आश्रम में आकर कुछ दिन रहेंगे।

सन्ध्या के समय स्वामी जी कुटीर में वापस आ जाते। आश्रम का कोई अतिथि यदि दैवयोग से स्वामी जी को इस समय कुटीर के आँगन में दौड़ते देखता तो उसे बड़ा ही आनन्द आता। स्वामी जी ॐ के उच्चारण के साथ कूदना प्रारम्भ करते। इस समय यदि कोई उनके पास आकर उनकी आँखों में झांकता तो उसे ऐसा लगता कि जैसे वे उसे पहचानते ही नहीं हैं, वे कहीं और देख रहे हैं। इसके बाद वे दौड़ना प्रारम्भ कर देते। यह उनका सन्ध्या का व्यायाम था।

सन्ध्या के समय ग्रीष्म ऋतु में स्वामी जी गंगा जी के किनारे ध्यान करते थे और शीत ऋतु में वे अपने कुटीर में ध्यान करते थे।

जब आश्रम की बत्तियाँ जलतीं तो गीता का एक श्लोक पढ़ कर स्वामी जी उन्हें प्रणाम करते थे। अपने चारों ओर स्थित दृश्यमान जगत् को दैवी स्पर्श प्रदान करने की यह उनकी प्रिय विधि थी।

एक गिलास दूध के साथ एक ब्रेड ग्रहण करने के बाद स्वामी जी रात्रि सत्संग में चले जाते थे। सत्संग में मुख्य रूप से श्रीमद्भगवद्गीता तथा रामायण का पाठ तथा किसी एक विषय पर प्रवचन होता था किन्तु इनसे भी अधिक रुचिकर सदा स्वामी जी के गीत होते थे।

कभी-कभी आश्रम में नाटकों का मंचन भी होता था तथा इसमें कभी-कभी स्वामी जी स्वयं भूमिका भी अदा करते थे। हीरक जयन्ती पर स्वामी जी ने सभी का मनोरंजन करने के लिए दैवी सन्देशवाहक की भूमिका अदा की थी। एक बार उन्होंने संत नन्दनार की कहानी सुनायी थी तथा एक बार उन्होंने बीसवें और तीसवें दशक के कुछ प्रसिद्ध भजन हाथों में करताल लेकर उसे बजाते हुए गाए। उपस्थित सभी श्रोतागण इन्हें सुन कर मन्त्रमुग्ध हो गए।

पर्वों तथा कार्यक्रमों में सम्पूर्ण भारतवर्ष से प्रसिद्ध संगीतज्ञ, गायक, गायिकाएँ आदि स्वामी जी के दर्शन के लिए आते थे तथा वे अपनी प्रस्तुति द्वारा सबका मनोरंजन करते थे।

नीचे एक सत्संग का वर्णन किया जा रहा है जो किसी अतिथि के संस्मरण हैं—

यह २३ मई बुधवार सन् १९६२ का दिन था। सूर्यास्त हो चुका था परन्तु चन्द्रमा अभी आकाश में उदित नहीं हुआ था। स्वामी शिवानन्द जी जो अत्यन्त सरल थे, रात्रि सत्संग में जाने के लिए अपने कुटीर से बाहर निकल रहे थे। स्वामी जी के मुख पर शिशु के समान प्यारी मुस्कान थी। भक्तों का बृहत समूह सड़क के किनारे खड़ा था तथा सभी स्वामी जी को प्रणाम कर रहे थे। गुरु में भगवान् के दर्शन कर रहे थे और गुरु भी भक्तों में भगवान् के दर्शन कर रहे थे। सम्पूर्ण वातावरण भक्ति से सराबोर था। शिवानन्द आश्रम के डायमंड जुबली हॉल के बाहर खुली छत पर संगीत वाद्यों के साथ कीर्तन चल रहा था। सम्पूर्ण स्थान प्रकाश से जगमगा रहा था। अतिथियों, आश्रमवासियों तथा स्थानीय लोगों से सारी जगह भरी हुई थी। एक तरफ स्त्रियाँ बैठी थीं और दूसरी ओर पुरुष बैठे थे। अन्धेरा हो गया था। आकाश में अनगिनत तारे चमक रहे थे।

आनन्द कुटीर की शान (वैभव), मुनि की रेती के मुनि, ऋषिकेश के ऋषि स्वामी शिवानन्द जी अत्यन्त धीरे-धीरे चलते हुए रास्ते में मिलने वाले भक्तों का अभिवादन करते हुए, किसी को कुछ कहते हुए किसी को देख कर मुस्कुराते हुए, सबको आशीर्वाद देते हुए कई आत्माओं को पलक झपकते ही प्रसन्न करते हुए सत्संग के लिए जा रहे थे। स्वामी जी एक कोने में आराम कुरसी पर बैठ गये जहाँ से सभी को भली प्रकार देख सकें और सभी उन्हें आराम से देख सकें। स्वामी जी के सामने वाले कोने में एक सुसज्जित वेदी पर भगवान् श्रीकृष्ण का चित्र प्रतिष्ठित था।

एक आश्रमवासी संन्यासी श्री सूक्त का पाठ करने लगा भक्तगण आकर स्वामी जी को प्रणाम करते, उन्हें रुपये भेंट करते और वापस अपनी जगह पर चले जाते। इतना अधिक धन चढ़ाया गया था कि पैसा पानी की तरह बह रहा था।

श्री सूक्त के बाद स्वामी जी ने श्री सुब्बा राव जी को बुलाया (जो गीता के विद्वान् थे तथा उनकी नेत्र ज्योति चली गयी थी) तथा उनसे प्रवचन करने के लिए कहा। उन्होंने गीता के कुछ श्लोकों की व्याख्या की।

अब स्वामी जी ने श्री पाल से एक भजन गाने के लिए कहा। पाल ने अत्यन्त मधुर वाणी में श्री तुलसीदास जी का भजन सुनाया। भजन चल रहा था कि इसी बीच एक भक्त ने बड़े ही संकोच से स्वामी जी के चरण स्पर्श की अनुमति माँगी। इसके बाद एक विदेशी आया। स्वामी जी ने उसका अभिवादन किया। 'ॐ नमो नारायणाय'। स्वामी जी ने पूछा 'कहाँ से आए हैं?'

उसने उत्तर दिया—''विएना से। मेरा नाम जार्ज है। मैंने आपको पूर्व में तीन पत्र लिखे हैं।''

स्वामी जी ने उसे भेंट करने के लिए पुस्तकें और पत्रिकाएँ मंगाई और उसे आने के लिए धन्यवाद दिया। अब श्री पाल का गायन समाप्त हो गया था। तत्पश्चात् कीर्तन, आरती और प्रसाद वितरण हुआ। बहुत से भक्त स्वामी जी के हाथों से सीधे प्रसाद प्राप्त करने के लिए स्वामी जी के चारों आरे से घेर कर खड़े थे। उनमें से एक दर्शनशास्त्र के व्याख्याता थे। स्वामी जी ने उनसे प्रश्न किया कि क्या कोई पश्चिमी दार्शनिक श्री शंकराचार्य जी के समान है? क्या वहाँ पर ऐसा एक भी नहीं है? स्वामी जी ने फिर स्वयं ही कहा—''मैं सोचता हूँ वहाँ कुछ ईसाई दार्शनिक संत अवश्य ही होंगे।''

एक व्यक्ति आया। उसने स्वामी जी को बताया कि जब वह कोरियन युद्ध के लिए विदेश जा रहा था तब उसने स्वामी जी से आशीर्वाद लिया था और अब स्वामी जी के पुनः दर्शन करने से उसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई।

स्वामी जी ने उससे पूछा कि 'क्या आप दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी हैं ?'

उसका उत्तर था—''मैं इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा हूँ।''

स्वामी जी ने फिर पूछा कि 'इंजीनियरिंग में कौन सी—मेकेनिकल, केमिकल अथवा एटॉमिक इंजीनियरिंग?'

उसने कहा—''मेकेनिकल इंजीनियरिंग।''

स्वामी जी ने (सत्संग के समय बार-बार जा रही बिजली की ओर संकेत करते हुए) कहा—''आजकल यह बहुत जरूरी है। देखें, अभी-अभी बिजली चली गयी।''

इसी समय एक आश्रमवासी ने स्वामी जी को एक पत्र दिया। इसे आश्रम के सचिव ने नोटिस दिया था। पत्र में स्वामी जी से अनुनय-विनय की गयी थी कि 'आप मेरे आश्रय हैं, आपके सिवा मैं कहाँ जाऊँगा?' आदि। स्वामी जी सामान्यतया बड़े उदार रहते थे लेकिन उन्होंने यह कहते हुए कि 'वह आलसी व्यक्ति है' इस आवेदन को निरस्त कर दिया। (स्वामी जी को आलसी व्यक्तियों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी।)

अब स्वामी जी के पास जो व्यक्ति आए, वे ग्वालियर में संस्कृत व्याख्याता थे। उन्होंने स्वामी जी को बताया कि उन्होंने स्वामी जी की पुस्तक **'ब्रह्मचर्य साधना'** पढ़ी और उससे बड़े लाभान्वित हुए। इसके बाद उन्होंने नवीन प्रकाशित पुस्तक **'कांकेस्ट ऑफ माइंड'** पढ़ी है तथा यह उनको रिसर्च कर रहे विद्यार्थी का निर्देशन करने में बड़ी सहायक सिद्ध होगी। स्वामी जी ने उन्हें इस पुस्तक की एक प्रति प्रदान की। और उनसे प्रश्न किया 'आप मेरे व्याख्याता हैं अथवा विद्यार्थी?' उन्होंने उत्तर दिया कि 'आप मेरे व्याख्याता हैं और मैं आपका विद्यार्थी हूँ।'

अब स्वामी जी अपने कुटीर की ओर वापस जा रहे थे। वे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। भक्त उनके मार्ग से अलग हटते जा रहे थे। एक दर्शनार्थी तमिल की इन पंक्तियों के साथ फूट पड़ा "हे भगवान्, मुझे वह अवस्था प्रदान करें। जहाँ मन द्रवित हो जाता है, जहाँ काम रुक जाते हैं... जहाँ सब शान्त होते हैं।"

स्वामी जी ने कहा—"हाँ, मौन रहें, शान्त रहें, लेकिन हाथों को काम करने दो। मन को, भगवान् को और हाथों को काम के प्रति समर्पित कर दें।"

(निरर्थक बातों में जो समय व्यर्थ गँवाया, उसकी पूर्ति करने के लिए) धीमे स्वर में कुछ मन्त्र पढ़ते हुए स्वामी जी अपने कुटीर की ओर मुड़ गए।

अपने कुटीर के प्रवेश द्वार पर उन्होंने विभिन्न धर्मों की संक्षिप्त प्रार्थनाओं के साथ हाथ जोड़ कर अपने भक्तों से विदा ली। जब वे भीतर जा रहे थे तो कोई भी उनके मुख के भावों को पढ़ कर, समझ सकता था कि अब वे भक्तों से, भजनों से, प्रवचनों से, पूजा से, प्रसाद से दूर हो चुके हैं और परमात्मा के साथ नितान्त अकेले हैं।

स्वामी शिवानन्द जी के अलौकिक कृत्य

स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि चमत्कार अथवा दिव्य अलौकिक शक्तियाँ आध्यात्मिक साधक के पथ की महानतम बाधाएँ हैं। इसलिये वे साधकों को इसके प्रति सदा सावधान किया करते थे। वे स्वयं निस्सन्देह उच्च दिव्य शक्ति सम्पन्न थे लेकिन उन्होंने कभी इस बात को स्वीकार नहीं किया। जब भी उन्हें किसी ऐसे चमत्कार के विषय में बताया जाता तो वे कहते थे 'भगवान् लोगों में उनके प्रति आस्था जगाने के लिए ऐसे चमत्कार करते हैं।' वे अति भौतिक शक्तियों को पसन्द नहीं करते थे और किसी को भी उनकी प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित नहीं करते थे।

यदि कोई स्वामी जी को बताता कि 'आप ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिए और मेरे पेट पर हाथ रखा जिससे मेरा कैंसर ठीक हो गया', तो स्वामी जी का उत्तर होता—"अरे! यह सब भगवान् की कृपा है।" स्वामी जी ने कभी नहीं कहा कि 'उन्होंने ऐसा किया है।' यदि उनसे कोई कहता 'मैंने आपको स्वप्न में देखा और आपने मेरे जीवन की रक्षा की', तो स्वामी जी का यही उत्तर होता 'हाँ, हाँ, भगवान् ने ऐसा किया।' यहाँ तक कि यदि कोई बात उनके अनुमान से विपरीत चली जाती जैसे आश्रम में चोरी हो जाती या कुछ नुकसान हो जाता तो भी स्वामी जी कहते 'भगवान् ही सब करते हैं।'

स्वामी जी वास्तव में इस बात के प्रति सजग नहीं थे कि वे कुछ आश्चर्यजनक काम कर रहे हैं। जब वे आपसे मिलते तो आपका सम्पूर्ण आन्तरिक व्यक्तित्व उनके सामने इस प्रकार स्पष्ट हो जाता जैसे आप किसी कागज को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। वे किसी प्रकार की विशेष शक्तियों का प्रयोग भी नहीं करते थे। आपका हृदय और मन उनके सामने खुली किताब की भाँति था, जो विचार आपके हृदय में आता वह उसी समय उन्हें भी पता चल जाता और जो इच्छा आपके हृदय में उत्पन्न होती उसे वे बड़ी सरलता से समझ जाते थे। हो सकता है यदि आप उन्हें कुछ बताते तो वे यह कहते 'मैंने भी ऐसा ही सोचा था।' या फिर जिस काम को आप मानसिक रूप से

करने को तैयार होते और वे आपसे कहते 'मैं सोचता हूँ आप इसे पसन्द करेंगे।' तो आप आश्चर्यचकित रह जाते, परन्तु वे नहीं क्योंकि उनके लिए यह स्वाभाविक था।

स्वामी जी भविष्य दृष्टा थे। वे अन्यों के विचारों में परिवर्तन ला देते थे। वे दूर से ही रोगों को उपचार कर देते थे लेकिन वे इन बातों को स्वीकार नहीं करते थे। स्वामी जी ने इस बात का भी कभी प्रचार नहीं किया कि उन्हें भगवद् साक्षात्कार हुआ है। स्वामी जी स्वयं अपने ऊपर तथा अन्य सभी पर जो दर्शन लागू करते थे, वह था 'किसी को भी उसके कर्मों से जानो।'

जब स्वामी जी स्वर्गाश्रम में रहते थे उनके पास में एक स्वामी जी रहते थे। उनका नाम था, स्वामी राजराजेश्वरानन्द जी। वे एक देवी पूजक थे। वे देवी की आराधना, जप तथा ध्यान के साथ कठोर साधना कर रहे थे। उन्हें यह साधना करते हुए लगभग १२ वर्ष हो गये थे लेकिन उन्हें किसी प्रकार की प्रगति अथवा आध्यात्मिक शक्ति का अभी तक कोई संकेत नहीं मिला था। यह घटना उस समय की है जब दुर्गा पूजा का अवसर आने वाला था। स्वामी राजराजेश्वरानन्द जी देवी की पूजा रेशमी वस्त्रों, आभूषणों तथा अन्य पूजा की सामग्री से करना चाहते थे लेकिन उनके पास धन नहीं था।

नवरात्रि के एक दिन पूर्व किसी ने उनका द्वार खटखटाया। स्वामी राजराजेश्वरानन्द जी ने दरवाजा खोला, देखा कि सामने कुछ पंजाबी कन्याएँ खड़ी हैं और प्रत्येक कन्या के हाथ में एक थाली थी, जिसमें रेशमी वस्त्र, फल, धन, आभूषण आदि थे। वे कन्याएँ स्वामी स्वामी जी से बोलीं—"हमें आपके पास में रहने वाले स्वामी शिवानन्द जी ने भेजा है, यह सब समान आपको देने के लिए।" स्वामी जी को लगा कि मैंने स्वामी शिवानन्द जी को इन सभी वस्तुओं के साथ देवी की नवरात्रि में पूजा करने की इच्छा बताई थी। इसलिये उन्होंने ये सभी वस्तुएँ भेजी होंगी और ये कन्याएँ अवश्य ही स्वामी शिवानन्द जी की भक्त होंगी। इसलिये उन्होंने बालिकाओं की बात पर विश्वास करके सारी सामग्री स्वीकार कर ली। अब स्वामी जी ने उनसे पूछा—"ये थालियाँ किसकी हैं?" उन बालिकाओं ने उत्तर दिया—"क्षेत्र की" तथा वे थालियाँ लेकर चली गईं।

स्वामी राजराजेश्वरानन्द जी से रहा न गया। वे सीधे स्वामी जी के कुटीर गये, जो सदा की तरह भीतर से बन्द था। उन्होंने द्वारा खटखटाया। स्वामी शिवानन्द जी द्वार खोल कर बाहर आए। उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी से पूछा—''वे बालिकाएँ कौन थीं?'' स्वामी जी ने कहा—''कौन सी बालिकाएँ?''

''वे जिन्हें आपने नवरात्रि पूजा के लिए गहने, वस्त्र आदि लेकर भेजा था।''

स्वामी जी ने कहा—''मैंने तो किसी को नहीं भेजा।''

स्वामी राजराजेश्वरानन्द जी यह सुन कर आश्चर्यचकित रह गए। वे क्षेत्र के कार्यालय भी गये परन्तु वे बालिकाएँ वहाँ भी नहीं थीं।

बाद में स्वामी राजराजेश्वरानन्द जी ने हमें यह कहते हुए इस घटना सुनायी कि मैं कई वर्षों से देवी के दर्शन हेतु तपस्या कर रहा था। हम सभी जानते हैं कि स्वामी शिवानन्द जी कोई तांत्रिक साधना नहीं जानते थे लेकिन मात्र शिवानन्द जी की प्रार्थना के कारण ही माता ने मुझे दर्शन दिए। माँ ने मुझे अलंकार और रेशमी वस्त्र दिए तथा स्वामी शिवानन्द जी को आत्म-साक्षात्कार दिया।

स्वामी शिवानन्द जी द्वारा की जाने वाली प्रार्थनाएँ चमत्कार करती थीं। जिनको विश्वास था वे स्वामी जी के सामने अपना हृदय खोल कर रख देते थे और अपनी इच्छा उनके सामने व्यक्त कर देते थे। वे स्वामी जी से प्रार्थना करते। उनकी भक्तिपूर्वक सेवा करते और अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त कर लेते थे। स्वामी जी का मन बड़ा ही शक्तिशाली तथा असाधारण दैवी शक्तियों से युक्त था। इस कारण जब स्वामी जी किसी विशेष व्यक्ति को पुस्तक भेजने के बारे में विचार करते अथवा ऐसी कोई इच्छा करते तो उनके तथा उस व्यक्ति के मध्य आध्यात्मिक सम्पर्क स्थापित हो जाता और यह विचार तत्क्षण वहीं स्थापित हो जाता था। इस प्रक्रिया द्वारा स्वामी जी की चेतना की शक्तिशाली तरंगें प्रवाहित होती थीं और वे शिष्यों की आवश्यकताओं को समझ लेते थे और इसके द्वारा शिष्यों को अद्‌भुत स्वप्न तथा सन्देश प्राप्त होते थे। यह उनके साथ परावर्ती क्रिया की तरह होता था और यह पूर्णरूपेण स्वाभाविक था।

प्रोफेसर एन.के. श्रीवास्तव (एम.ए., एल.एल.बी.) ने लिखा—

सितम्बर सन् १९४८ की घटना है। मैं स्वामी जी के सान्निध्य में रह कर उनके निर्देशन में साधना कर रहा था। मैं स्वामी जी को बताए बिना शीर्षासन में ध्यान करता था। जब मेरा यह अभ्यास ४५ मिनट का हो गया तो मैंने एक दिन ध्यान करते समय स्वामी जी को देखा। स्वामी जी ने जो वस्त्र पहन रखे थे, मैंने उन्हें पहले कभी इन वस्त्रों में नहीं देखा था। ध्यान के बाद मैं भजन-कक्ष की ओर जा रहा था। उसी समय स्वामी जी मुझे उनके कुटीर से ऊपर सीढ़ियों पर आते हुए दिखायी दिए। उन्हें देख कर मैं आश्चर्यचकित रह गया क्योंकि स्वामी जी ने वही वस्त्र धारण कर रखे थे, जिनमें मैंने उन्हें ध्यान में देखा था। स्वामी जी मुझे देख कर मुस्कुराए और बोले—"आप शीर्षासन बड़ी अच्छी तरह करते हैं।"

सन् १९४१ की घटना है मेरे पिता गम्भीर रूप से बीमार थे। हम सभी इस समय ऋषिकेश में गोपाल कुटीर में ठहरे थे और पिता जी की स्थिति इतनी गम्भीर हो गयी थी कि हम सब उनके जीवन की आशा छोड़ चुके थे। मैं दौड़ा-दौड़ा स्वामी जी के पास गया और उनसे औषधि देने की प्रार्थना की, बीमारी की कोई जानकारी लिए बिना ही स्वामी जी ने चूर्ण की तीन पुड़ियाँ दीं, और कहा कि मैं पिता जी के बारे में निश्चिन्त हो जाऊँ और प्रसन्नता से भगवान् का प्रसाद लूँ।। ये चूर्ण उन्हें स्वस्थ कर देंगे। तीसरी पुड़िया लेने के बाद पिता जी स्वस्थ हो गए।

मेरी एक बहन श्यामा पर स्वामी जी की बड़ी कृपा थी। वह पटना में स्वामी जी की शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर रही थी। उसके पास एक स्त्री आयी और प्रार्थना करने लगी कि मैं एक पुत्र चाहती हूँ। अतः आप मुझे आशीर्वाद दें। भावावेश में श्यामा ने उसे एक मन्त्र तथा स्वामी जी के नाम पर आशीर्वाद दे दिया। बाद में श्यामा को लगा कि उससे गलती हो गयी और उसने उसी समय स्वामी जी को पत्र लिखा कि वे उसे दुःसाहसपूर्ण कृत्य की सफलता हेतु सहयोग प्रदान करें। स्वामी जी ने उसे प्रत्युत्तर में लिखा कि उसका आशीर्वाद पूर्व में ही स्वीकृत हो चुका है तथा समय पूरा होने पर उस स्त्री ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया।

मेरी छोटी बहन कु. मीरा श्रीवास्तव (अब श्रीमती सिन्हा) को एक विशेष प्रकार का चेहरे का एग्जिमा था। इसका जितना उपचार कराया; यह उतना ही बढ़ता जाता। डाक्टरों ने अपने सारे प्रयास कर लिए थे, परन्तु कोई लाभ न हुआ। अन्त में

हम उसे स्वामी जी के पास लेकर आए। स्वामी जी ने पहले तो हमें बड़े चिकित्सकों के पास जाने का सुझाव दिया, लेकिन मेरी माता और बहनें स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ीं और प्रार्थना करने लगीं। स्वामी जी ने राम नाम का उच्चारण किया और मेरी बहन को एक मल्हम लगाने के लिए दिया। कुछ ही दिनों में उसकी बीमारी जड़ से चली गयी। मेरी बहन के मुख की सुन्दरता तथा सुखी वैवाहिक जीवन के लिए स्वामी जी ने जो किया उसके लिए वह सदा उनकी ऋणी रहेगी तथा यह ऋण उसके पति तथा हम सभी कभी न चुका सकेंगे।

१३ सितम्बर १९५२ को मेरी पत्नी के वस्त्रों में आग लग गयी। उसकी हालत गम्भीर थी। १४ तारीख को मुझे स्वामी जी का पत्र मिला जिसमें उन्होंने मेरी पत्नी की स्थिति के बारे में पूछा था जबकि मैंने स्वामी जी को १९५१ के बाद से कभी पत्र भी नहीं लिखा था। परन्तु स्वामी जी को मेरी पत्नी का ध्यान कैसे आया, यह एक चमत्कार ही था। चिकित्सकों ने उसके जीवन की आशा त्याग दी थी क्योंकि उसके घाव बुरी तरह पक गये थे। इसी बीच हमें स्वामी जी का एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने मेरी पत्नी को साधना सप्ताह में भाग लेने हेतु आमन्त्रित किया था और इस पत्र के मिलने पर हमें यह विश्वास हो गया था कि वह अब बच जाएगी और वह बच गयी तथा पूर्ण स्वस्थ हो गयी।

वेदान्ती लोग समाधि के अनुभव के सिवा अन्य किसी बात पर मुश्किल से ही विश्वास करते हैं। स्वामी कृष्णानन्द जी वेदान्ती थे तथा महान् विद्वान् और व्यहारिक बुद्धि के धनी थे। एक बार वे बहुत गम्भीर रूप से रोगी हो गए। उन्हें तीव्र ज्वर था और मितली जैसी आ रही थी और उनकी स्थिति बड़ी गम्भीर थी। अतः उन्होंने सोचा कि अब विश्राम के अलावा और कोई हल नहीं है। दवा, उपवास तथा अन्य कोई उपचार करने से कोई लाभ नहीं हो रहा था। कुछ क्षणों बाद उन्हें सामने एक धुंधला सा चेहरा दिखायी दिया। यह धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा और उन्हें धीरे-धीरे अपने भीतर एक ऊर्जा के प्रवाह का अनुभव हुआ। उन्होंने अपनी आँखें मलीं और बिस्तर से उठ कर बैठ गये और सोचने लगे "क्या मैं सपना देख रहा हूँ अथवा मैंने पी रखी है?" उन्होंने चारों ओर देखा। चारों और शिवानन्द जी दिखायी दे रहे थे। दीवार पर शिवानन्द जी, कुरसी पर शिवानन्द जी, पानी का पात्र शिवानन्द जी,

दरवाजा शिवानन्द जी, पैरपोश पर भी वही, बिस्तर भी और कपड़े सभी स्वामी जी बन गये थे। चारों ओर स्वामी जी और स्वामी जी थे। कुछ पलों बाद ज्वर अदृश्य हो गया और मितली भी दूर हो गयी। कुछ देर बाद में स्वामी कृष्णानन्द जी स्नान कर रहे थे।

दिल्ली के व्याख्याता श्री ओ.पी. शर्मा द्वारा

सन् १९४२ में मेरे माता-पिता ऋषिकेश गए। स्वामी शिवानन्द जी को जब मेरे पिता जी ने प्रथम बार देखा तो वे सम्मोहित हो गये और माता जी उन्हें देख कर मोहित हो गईं। स्वामी जी के सिर के चारों ओर एक बहुत बड़ा आभा मंडल था जो उनके स्वयं के द्वारा नियन्त्रित था। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में एक प्रसन्नता और मुख पर मुस्कान थी।

मेरी माँ अपने भविष्य के लिए बड़ी ही चिन्तित थी क्योंकि मेरे भाई श्री आर.सी. कुमार इजिप्ट की सेना की ओर से युद्ध कर रहे थे और उनके बारे में हमें लम्बे समय से कोई सूचना नहीं थी। हम सभी को ऐसा कहा जा रहा था कि वे शायद युद्ध में मृत हो गये हैं, इसलिये मेरी माता जी बड़ी दुःखी थीं। श्री स्वामी शिवानन्द जी जो एक महान् व्यक्तित्व के स्वामी थे, उन्होंने मुस्कुराते हुए बस इतना कहा—''माता जी आप निराश न हों, आपका पुत्र अच्छी तरह से है और वह शीघ्र ही वापस आ जाएगा।'' उनका इतना कहना ही पर्याप्त था। हम सभी को तब बड़ा ही आश्चर्य हुआ जब मेरे भैया २१ सितम्बर १९४२ को घर वापस आ गए। एक अन्य घटना है—यह अगस्त १९४७ की बात है। भारत-पाकिस्तान का विभाजन हो गया था और हमने सियालकोट में रुकने का निर्णय लिया। हमारा ऐसा सोचना था कि सरकारें बदलने के बाद भी लोग वहीं रहेंगे। ८ अगस्त को मध्य रात्रि के समय मेरी माता जी को स्वामी शिवानन्द जी ने स्वप्न में आदेश दिया कि 'इस स्थान को तत्काल छोड़ दो और हरिद्वार चले आओ।' हालाँकि हमारी उस स्थान को छोड़ने की बिलकुल इच्छा नहीं थी लेकिन फिर भी हमने गुरु आदेश का पालन किया। हम भारतीय सीमा तक पहुँचे ही थे कि हमें सूचना मिली कि हमारे बाद जो अगली गाड़ी आ रही थी उसे मुस्लिम लोगों ने तहस-नहस कर दिया।

हाजीपुर के मुख्य न्यायाधीश श्री उमाकान्त शुक्ला द्वारा

जुलाई सन् १९५१ में बद्री-केदार यात्रा से वापस आते समय जब मैं स्वामी जी के दर्शन हेतु आनन्द कुटीर गया तो वहाँ मुझे घर से एक पत्र आया, जिसमें कुछ घरेलू कठिनाइयों तथा जटिल समस्याओं के बारे में बताया गया था। जैसे ही मैंने वह पत्र पढ़ा मैं तुरन्त दौड़ कर स्वामी जी के पास गया और उनसे कष्ट दूर करने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने मुस्कुराते हुए मेरी ओर देखा लेकिन कहा कुछ नहीं। आश्चर्य की बात यह थी कि जब एक सप्ताह पश्चात् मैं घर वापस पहुँचा तो घर वालों ने बताया कि वे सभी परेशानियाँ मात्र कुछ ही दिनों में अदृश्य हो गईं। यह सब स्वामी जी की कृपा थी।

स्वामी तुरीयानन्द द्वारा

मैंने घर त्याग दिया था और बनारस में एक घुमक्कड़ साधु की भाँति रहता था। मैं अपना अधिकांश समय माँ अन्नपूर्णा देवी के मन्दिर में बिताया करता था। एक रात को स्वप्न में मैंने एक पुष्ट देह स्वामी जी को उनके तीन शिष्यों के साथ देखा। इसके बाद मैं बद्रीनाथ यात्रा पर निकला। वहाँ रास्ते में मैं शिवानन्द आश्रम गया। यहाँ पर मैंने स्वामी शिवानन्द जी को देखा। मुझे ध्यान आया कि ये तो वही स्वामी जी हैं जिनको मैंने स्वप्न में देखा था। जब मैंने कार्यालय में प्रवेश किया तो मुझे एक और अद्भुत दृश्य दिखायी दिया, मैंने देखा स्वामी शिवानन्द जी ने सारा स्थान घेर रखा है और वे फैलते जा रहे हैं। स्वामी जी ने मुझ पर दृष्टि डाली और कहा—"यही आपका बद्रीनाथ है, यहीं रहिए।" मैंने आज्ञा का पालन किया।

स्वामी ज्योतिर्मयानन्द, ऋषिकेश

मुझे एपेंडिसाइटिस का भयंकर दर्द था। मैं स्वामी जी के दर्शन के लिए आश्रम गया और मैंने उन्हें अपनी स्थिति बतलाई और कहा कि मैं आपरेशन नहीं करवाना चाहता हूँ। मुझे विश्वास हैं कि यदि आप मुझे आशीर्वाद देंगे तो मैं अवश्य ही स्वस्थ हो जाऊँगा। स्वामीजी ने कुछ क्षण तक मुझे देखा और मेरा दर्द दूर हो गया और अभी तक पुनः कभी वह तकलीफ नहीं हुई।

जो लोग स्वामी जी से बहुत दूर रहते थे। वे भी स्वामी जी की ओर खिंचे चले आते थे तथा वे स्वप्न में भी स्वामी जी के दर्शन करते थे। उन्हें स्वामी जी के सेवा की आवश्यकता थी। स्वामी जी भी इस मूल बात को जानते थे कि सभी शरीर एक ही दैवी शक्ति से सम्बद्ध हैं तथा सभी मन मिल कर एक दैवी मन का निर्माण करते हैं। इसलिये वे उनकी सेवा हेतु सदैव तत्पर रहते थे। नीचे की घटनाएँ जो लोग विदेशों में यहाँ से हजारों मील दूर रह रहे हैं, उन आत्माओं का स्वयं भारत में ही रह कर किस प्रकार उत्थान किया, इससे सम्बन्धित हैं। एक पत्रिका के लेख से उद्धृत—

श्रीमती फ्रू वालिंस्की से पत्रकार एक साक्षात्कार ले रहे थे तो उन्होंने कहा कि सन् १९५१ में क्रिसमस के दिन उन्होंने एक महान् योगी स्वामी शिवानन्द जी के दर्शन किए। यह एक ऐसा रहस्यमय अनुभव था जिसने उसके जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया तथा उसे दैवी कार्य हेतु समर्पण के लिए विवश कर दिया।

हालाँकि श्रीमती वालिंस्की का लालन-पालन व शिक्षा पश्चिमी वातावरण में हुई थी, लेकिन उनकी दृढ़ आस्था थी कि ये योगी यदि स्वयं भगवान् नहीं हैं तो उनके अवतार अवश्य हैं।

श्रीमती वालिंस्की के पति पुलिस में अधिकारी थे तथा उनके दो पुत्र थे। श्रीमती वालिंस्की ने अपना पूरा जीवन पवित्र कैथोलिक की भाँति व्यतीत किया था। वह एक सुशिक्षित और बुद्धिमती स्त्री थी तथा एक प्रकाशन विभाग में अधिकारी के पद पर कार्यरत थी। उनके दोनों बच्चे भी अपनी माँ को पिछले दो वर्षों से होने वाले आध्यात्मिक अनुभवों से बड़े ही प्रभावित थे। इस धर्मपरायण परिवार का जीवन स्वामी शिवानन्द जी द्वारा रहस्यमय ढंग से निर्देशित हो रहा था। श्रीमती वालिंस्की का कहना था कि प्रतिदिन प्रातः श्री स्वामी शिवानन्द जी मुझे जगाते थे तथा उन्होंने हमारे जीवन की बहुत सी समस्याओं को हल किया तथा मुझे यह विश्वास है कि वे भविष्य में भी मेरे द्वारा कार्य करेंगे और मानव-मात्र की सेवा करने में मेरी सहायता करेंगे।

वे बताती हैं कि इस सम्पूर्ण घटना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है 'वह आवाज'। स्वामी जी ने स्वयं अपने पत्रों में इस बात का समर्थन किया था। यह आवाज श्रीमती वालिंस्की को काम करने के लिए नित्य प्रेरणा प्रदान करती थी। उनका आदेश था

कि घर पर पत्नी तथा माँ की तरह काम करो, ऑफिस में काम करो और अपना कर्तव्य निभाओ तथा मानव-मात्र की भी जितनी सेवा हो सके, करो। श्रीमती फ्रू वालिंस्की ने बिना कोई प्रतिरोध के उनकी आज्ञा का पालन किया। वह सारे दिन घर और कार्यालय में काम करती तथा देर रात तक अपनी स्वयं की पुस्तकों तथा स्वामी जी की पुस्तकों का जर्मन भाषा में अनुवाद करने के लिए कार्य करती।

इस वर्ष के अगस्त माह में स्वामी जी ने स्वप्न में आ कर श्रीमती फ्रू वालिंस्की से प्रश्न किया—''क्या तुम एक अच्छी शिष्या बनना चाहती हो?'' इसके बाद उस आवाज ने उसे भारत आने का आदेश दिया। यह स्वप्न ७ अगस्त को आया था १८ सितम्बर को उसे स्वामी जी का पत्र मिला जिसमें वही बातें थीं जिन्हें उसने स्वप्न में देखा था। अब श्रीमती फ्रू वालिंस्की के मन से आवाज, स्वप्न तथा स्थान आदि के बारे में जो भी सन्देह थे, दूर हो गये और उसे विश्वास हो गया कि ये सब सच्चे हैं। उनको ध्यान के समय ऐसा लगा कि सम्पूर्ण मानव-जाति एक परिवार है और यह सम्पूर्ण जगत् उसी परम सत्ता के ताने-बाने से बुना हुआ है तथा आध्यात्मिक चेतना सम्पन्न व्यक्ति द्वीपों से पार स्थित व्यक्ति से भी उतनी ही सरलता से बात कर सकता है, जैसे हम अपने पास के कमरे में रहने वाले व्यक्ति से करत हैं।

श्रीमती वालिंस्की ने जब भारत आने का निश्चय किया तो उनके सामने धन तथा पति की सहमति का प्रश्न था। लेकिन उनका कहना था कि स्वामी शिवानन्द जी ने कहा कि 'प्रत्येक समस्या स्वयं ही हल हो जाएगी' और हुआ भी ऐसा ही। कुछ दिनों बाद उनके एक अच्छे मित्र ने कहा कि आपकी भारत यात्रा हेतु धन व्यवस्था वे करेंगे तथा उनके पति ने भी स्वेच्छा से कहा कि तुम्हारी आध्यात्मिक आकांक्षा को मूर्तरूप देने के लिए मैं सब कुछ करने के लिए तैयार हूँ।

इस प्रकार वे अपने गुरु के चरणों में भारत पहुँच गईं। उनके भारत पहुँचने के बाद स्वामी जी ने शीघ्र की मन्त्र-दीक्षा दे दी।

दक्षिणी अफ्रीका से भी श्री धानम

मेरे श्वसुर स्वामी कुड्डप्पा सच्चिदानन्द जी के अनुयायी थे। मैं उन्हें प्रार्थना तथा योगाभ्यास करते देखता था। मैं भी गुरु की खोज में था।

यह सन् १९४७ की घटना है। मैं बहुत दुःखी था और एक रात को मैं बहुत रो रहा था कि रात्रि में मैंने एक स्वप्न देखा कि कुड्डप्पा स्वामी जी मेरे सामने खड़े थे और कह रहे थे—"मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। तुम्हारे गुरु कुछ समय बाद तुम्हारे जीवन में आएँगे। तुम अपने श्वसुर जी की अल्मारी की दराज को खोल कर देखो। वहाँ तुम्हारे लिए क्या प्रतीक्षा कर रहा है?"

अगले दिन प्रातः मैंने स्वप्न में जिसे देखा था, वह दराज खोली तो देखा, उसमें एक शिवानन्द हीरक जयन्ती विशेषांक रखा हुआ था। मैंने बड़ी प्रसन्नता से वह पुस्तक ली और उसे खोल कर देखा। उस पत्रिका में मुझे स्वामी शिवानन्द जी का जीवन्त चेहरा दिखायी दिया।

इस चमत्कारिक अनुभव के बाद मैंने शीघ्र ही स्वामी शिवानन्द महाराज को पत्र लिखा। दो सप्ताह बाद मुझे पुनः स्वप्न में स्वामी जी के दर्शन हुए, उनका स्वरूप बड़ा ही तेजस्वी था। उनके वस्त्र लहरा रहे थे, स्वप्न में स्वामी जी ने मुझे एक पुस्तक दी और आश्चर्य की बात यह थी कि अगले दिन सुबह डाकिये ने मुझे वही पुस्तक ला कर दी और यह स्वामी जी ने भेजी थी।

इसके अगले दिन पुनः मुझे स्वप्न में स्वामी जी के दर्शन हुए। बहती हुई गंगा नदी, ऊँचा विशाल हिमालय, आश्रम तथा उसके चारों ओर का शान्त वातावरण, यह सब मैंने स्वप्न में देखा। मैंने स्वयं को आश्रम में देखा। मैं स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा और उनसे प्रार्थना की "आप इस जीवन में नहीं वरन् प्रत्येक जीवन में मेरे गुरु रहे हैं। हे प्रभु! आप मेरे गुरु बनना स्वीकार करें। स्वामी जी ने मुझे मन्त्र-दीक्षा दी तथा यह विश्वास दिलाया कि "वे मेरे गुरु हैं और सदा मेरे साथ हैं।" वे मेरी संकटों से सदा रक्षा करते हैं और लक्ष्य हेतु मेरा पथ-प्रदर्शन करते हैं। मेरे जीवन में प्रतिदिन एक नवीन चमत्कारिक अनुभव होता है। इन अनुभवों में से कुछ मैं नीचे लिख रहा हूँ।

स्वप्न में मैंने एक बार पुनः अपने आपको एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए देखा। इस समय स्वामी जी ने दक्षिणी अफ्रीका के लोगों के लिए एक सन्देश दिया और दो शब्द कहे "डिअटैच—अटैच" (मन को सांसारिक विषयों से अलग

करो तथा इसे ईश्वर के साथ जोड़ो)। ये शब्द मैंने कभी भी किसी के मुख से नहीं सुने थे। इस स्वप्न के एक सप्ताह बाद मुझे आश्रम से एक पर्चा मिला जिसमें ये दोनों शब्द थे (डिअटैच—अटैच)। (डिअटैच का अर्थ है अगल करो और अटैच का अर्थ है जोड़ो)

एक बार की बात है, मैंने उपवास रखा था। सन्ध्या के समय मुझे थोड़ी कमजोरी लगने लगी तो मैंने थोड़ा सा कुछ खा लिया। कुछ ही क्षणों में एक नीले चमकदार प्रकाश से घिरे स्वामी जी मेरी आँखों के सामने थे। उस समय घर की छत अदृश्य हो गयी थी और स्वामी जी उसमें से नीचे उतर रहे थे। मैं अत्यन्त प्रसन्नता से चीख पड़ा। मेरी आवाज सुन कर मेरी माता जी कमरे के भीतर आ गईं और उन्होंने भी वह नीला प्रकाश देखा लेकिन वे स्वामी जी को नहीं देख सकीं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह मेरी कल्पना नहीं थी। यह एकदम सच्चा दृश्य था।

डाक्टर शिवानन्द सुन्दरी के संस्मरण

मेरी माँ मेरे साथ ही रहती थीं और सौभाग्य से उनके स्वर्गवास के बाद भगवान् की कृपा से मेरी नियुक्ति शहर के एक अस्पताल में हो गयी, चिकित्सा अधिकारी के पद पर। इस कारण मैं सदा व्यस्त रहता था और मुझे रात्रि में मात्र कुछ घण्टे सोने के लिए मिलते थे। इसलिये मुझे कभी अकेलेपन का अनुभव ही नहीं होने पाया। इसी बीच किसी ने मुझे स्वामी शिवानन्द जी की कुछ पुस्तकें भेंट कीं, जिससे मैंने उनके बारे में जाना। मैं उनके दर्शन हेतु आश्रम भी गया और उनसे दीक्षा ले ली।

इस अस्पताल में साढ़े तीन वर्ष काम करने के पश्चात् मुझे स्थानान्तरण का आदेश प्राप्त हुआ। मुझे बड़ी चिन्ता हो गयी क्योंकि जिस जगह मेरा स्थानान्तरण हुआ था, वहाँ अस्पताल के आसपास कोई घर नहीं थे। इसलिये मुझे कहीं अलग मकान लेना पड़ता और अकेले रहना पड़ता। शाम के समय मैं स्वामी जी के चित्र को देखते हुए अपने स्थानान्तरण के बारे में विचार कर रहा था। अचानक मुझे बरामदे में से कोई चिर परिचित आवाज सुनायी दी—'डॉक्टर, डॉक्टर'। मैं सामने वाले कमरे

में गया और द्वार खोला। मैंने देखा स्वामी जी हाथ में छड़ी लिए प्रसन्नतापूर्वक अन्दर आ रहे हैं। उनके मुख पर दिव्य मुस्कान थी। मैंने बड़े ही आदर तथा प्रसन्नता से उनके पवित्र चरण कमलों में प्रणाम किया, लेकिन जब मैं उठा तो देखा कि वहाँ कोई भी नहीं है। मैंने उन्हें पास वाले कमरे में देखा वहाँ भी कोई नहीं था, तो मैं पुनः अपने स्थान पर बैठ कर स्वामी जी का ध्यान करने लगा। उसी क्षण से मेरे भीतर साहस का संचार हो गया और मैं तब से सदैव अपने आसपास स्वामी जी की उपस्थिति अनुभव करता हूँ।

शिवानन्द आश्रम की मेरी प्रथम यात्रा के लगभग ६ वर्ष पश्चात् मैं पुनः आश्रम गया। काम की अधिकता के कारण मुझे अधिक लम्बी छुट्टियाँ नहीं मिलती थी। इस कारण मेरी दूसरी बार आश्रम जाना इतने लम्बे अन्तराल के बाद हो सका। हमारे यहाँ से आश्रम बहुत अधिक दूर था। कुल ७ दिनों तक रेल तथा बस की यात्रा द्वारा मैं आश्रम पहुँच गया और वहाँ पहुँच कर मुझे मूलम हुआ कि स्वामी जी लम्बी बीमारी के बाद परिवर्तन के लिए रुड़की गये हैं। अतः कल ही दर्शन हो सकेंगे। मैं बहुत ही व्यथित तथा निराश था। अतः मैं कुटीर में बैठ गया और मैंने यह निश्चय किया कि जब तक स्वामी जी के दर्शन नहीं होंगे न तो मैं स्नान करूँगा और न ही भोजन करूँगा। मेरे साथ मेरी बहन भी थी। मेरी आँखों में आँसू आ रहे थे, कहीं मेरी बहन मुझे रोते हुए देख न ले, इस कारण मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। कुछ क्षणों बाद मुझे कुटीर के भीतर चमकता हुआ नीला प्रकाश दिखायी दिया और मेरे सामने स्वामी जी खड़े थे। मैं तुरन्त खड़ा हो गया और उनके चरणों में प्रणाम किया। मैं अपनी बहन को आवाज देता, उससे पहले ही स्वामी जी अदृश्य हो गए। मैं उन्हें कुटीर के बाहर खोजने भी गया तथा अपनी बहन से पूछा कि क्या उसने स्वामी जी को अन्दर अथवा बाहर देखा? उसने उत्तर दिया 'नहीं'। सही बात तो यह थी कि स्वामी जी रुड़की में थे और अगले दिन प्रातः आने वाले थे। ऐसे अनुभवों ने मेरे सामने महान् संतों के उस रहस्यमय स्वरूप को मेरे सामने प्रकट किया जिन्हें मैं बचपन से चमत्कार कहा करता था। हमारे स्वामी जी इस युग के सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्ण थे और भगवद्गीता के चलते-फिरते जाग्रत स्वरूप थे। उनके चरण कमलों में मेरे विनम्र प्रणाम! ईश्वर करे उनका आशीर्वाद हम सभी के ऊपर सदा बना रहे।

शिवानन्द शारदा के संस्मरण

एक अदृश्य स्रोत द्वारा मुझे अपने कमरे में एक आवाज सुनायी दी। इस आवाज के साथ ही मेरा सम्पर्क हिमालय के महान् योगी से हुआ। और इतना ही नहीं सन् १९५१ के क्रिसमस के दिन मुझे उनके जीवन्त दर्शन भी हुए। मैं उन्हें स्पष्ट देख सकती थी और यहाँ तक कि स्पर्श भी कर सकती थी, ठीक उसी प्रकार जैसे आज मैं अपनी मेज पर रखे उनके चित्र को देखती हूँ। इस अनुभव के १५ दिनों के बाद मेरे पति ने मुझे योग वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी का पत्रक दिया।

इस पत्रक के साथ स्वामी शिवानन्द जी का एक छोटा-सा चित्र भी था, जिस पर स्वामी जी ने हस्ताक्षर किए थे। यह चित्र मेरा जीवन भर का साथी बन गया। जहाँ भी मैं जाती यह मेरे साथ जाता था। बाद में मैंने स्वामी जी को पत्र लिखे और स्वामी जी ने उत्तर भी दिए और इस प्रकार पत्रों के आदान-प्रदान से स्वामी जी के साथ मेरा विचारों में और भावनात्मक सम्बन्ध अधिक प्रगाढ़ हो गया। जब तक मैंने स्वामी जी के आश्रम में आ कर दर्शन नहीं कर लिए, स्वामी जी मुझे यहाँ पूरे पाँच हजार मील की दूरी से अदृश्य रूप में प्रशिक्षित करते रहे। फिर मैं आश्रम आ गयी, जहाँ मैंने उनके इस भौतिक शरीर में दर्शन किए तथा उनके चरण स्पर्श किए। आश्रम का प्रत्येक व्यक्ति साथ ही मैं बड़ी प्रसन्न थी। मैं स्वामी जी के समीप ही बैठा करती थी और उनको ध्यान से देखा करती थी कि वे कितनी गहन समाधि में रहते थे और साथ ही साथ दर्जनों काम एकसाथ निबटाते रहते थे। उनकी आँखें, हाथ आदि सभी कार्यरत रहते थे। फिर भी वे अपनी अन्तरात्मा पर ध्यान में लीन रहते थे। स्वामी जी के साथ मेरे स्वयं के अनुभवों ने यह सिद्ध किया कि वे एक महान् संत.एवं योगी, सदा ईश्वर के ध्यान में लीन संत तथा नवीन युग में ईश्वर के अवतार हैं।

पी.बी. माथुर गाजियाबाद से

स्वामी जी के निर्देश प्राप्त करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके पत्र ने मुझे बड़ी शान्ति प्रदान की। स्वामी जी की पुस्तकें तथा पत्र पढ़ कर मैंने स्वयं के भीतर अचानक परिवर्तन का अनुभव किया। जब भी कभी मेरा मन विचलित हो जाता मैं उनके उपदेशों का स्मरण करता और मुझे बड़ी शान्ति प्राप्त होती।

श्री ए.के. सिन्हा (निवृत्तमान पुलिस अधीक्षक, बिहार)

मेरी बीमारी के समय मेरी सेवा करते समय मेरी पत्नी को लकवे का आक्रमण हुआ। प्रसिद्ध चिकित्सकों का कहना था कि ७२ घण्टों के पूर्व यह बता सकना कठिन है कि रोग कैसा रूप लेगा। मेरी पत्नी को ऐसा अनुभव हुआ जैसे स्वामी शिवानन्द जी उस लकवाग्रस्त अंग पर अपने हाथ से स्पर्श करके प्राणशक्ति का संचार कर रहे हैं और इसका प्रभाव डाक्टरों को बाद में पता चला। वह उनके अनुमान से पूर्व स्वस्थ हो गयी। मेरा छोटा बेटा महाविद्यालय की परीक्षा दे रहा था और उसने पर्चा देखा तो उसमें से एक भी प्रश्न से नहीं आता था, तो वह बहुत हताश हो गया और खाली उत्तर पुस्तिका देने के लिए खड़ा हो गया। अचानक उसे ऐसा लगा कि स्वामी शिवानन्द जी ने उसके सिर पर हाथ रखा और उसे सख्ती से बैठने के लिए कहा और उसे ऐसा लगा कि उसे सारे प्रश्नों के उत्तर मालूम हैं। उसने आज्ञा का पालन किया और सारे प्रश्नों को हल कर दिया। उसकी सफलता का समाचार समाचार पत्रों के छपा।

श्री सच्चिदानन्द प्रसाद सिन्हा द्वारा

सन् १९५८ की फरवरी की बात है। शीत ऋतु थी। सुबह का समय था। मेरे एक मित्र मेरे घर के पास ही रहते थे। उनका पोता जो कि मात्र ढ़ाई माह का था। उसे अत्यधिक तेज ज्वर (१०५ डिग्री) था। उस बच्चे की स्थिति गम्भीर थी। मैंने उन्हें कहा कि मैं डाक्टर के पास जा रहा हूँ। मैं माला लेकर आँखें बन्द करके बैठ गया और महामृत्युंजय मन्त्र का जप करने लगा। मैं स्वामी शिवानन्द जी का ध्यान करने लगा जो सभी चिकित्सकों के भी चिकित्सक हैं। मैं उनसे दया और आशीर्वाद की प्रार्थना करने लगा।

इसी समय मैंने देखा स्वामी जी एक लम्बा सा ओवरकोट पहले हाथ में छड़ी लिए हुए चले आ रहे हैं। स्वामी जी ने बच्चे को गोद में लिया और मुझसे बोले कि यह बच्चा अतिशीघ्र स्वस्थ हो जाएगा और वे वापस चले गए। मैंने जब अपनी आँखें खोलीं तो देखा कि मुझे यहाँ बैठे क़रीब आधा घण्टा हो गया था। मैंने पुनः तापमान लिया तो पाया कि १०३ डिग्री था और बच्चा सामान्य हो गया था। शाम के

समय बच्चा पूर्ण स्वस्थ था। यह गुरु-कृपा थी। स्वामी जी अपने शिष्यों को कष्ट में नहीं देख सकते थे। स्वामी जी सदा उनकी सहायता करते थे जो उनमें पूर्ण समर्पण कर देते थे।

श्री उमाकान्त शुक्ला, मुख्य न्यायाधीश, हाजीपुर

मई सन् १९५० की घटना है। मेरे बड़े भाई श्री लक्ष्मीकान्त शुक्ला ही को किडनी रोग था। वे बिस्तर पर ही रहते थे (वे उठ सकने में असमर्थ थे)। एक दिन उनकी स्थिति बड़ी गम्भीर हो गयी वे अचेत हो गए। यहाँ पर उनका सही उपचार न होने के कारण उनकी हालत गिरती चली जा रही थी। चिकित्सकों ने उनके रोग को असाध्य बता दिया था तथा हम सभी ने उनके जीवन की आशा त्याग दी थी। इस समय मैंने स्वामी शिवानन्द जी को याद किया और उनसे बड़े भैया को बचाने की प्रार्थना की। सौभाग्य से मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली गयी। पटना से हमने डा. साहब को बुलवाया था परन्तु उनके आने के एक घण्टे पूर्व भाई साहब होश में आ गए। चेतनावस्था में आने के बाद भाई साहब ने बताया कि उन्होंने स्वप्न में देखा कि स्वामी शिवानन्द जी उनके सिरहाने खड़े हैं और उन्होंने भाई साहब के सिर पर अपना हाथ रखा और इस स्वप्न के बाद वे उठ बैठे और उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता का अनुभव हुआ। इस प्रकार स्वामी शिवानन्द जी की कृपा से मेरे भाई साहब पूर्ण स्वस्थ हो गए।

रमणीक लाल पारेख (बड़ौदा)

१५ सितम्बर सन् १९५६ की घटना है। मेरी बेटी प्रमिला को सायं ५.३० मिनट पर स्वामी जी ने दर्शन दिए। उसने स्वामी जी को कुछ पकाई हुई सब्जियाँ तथा मूँगफली के दो लड्डुओं का भोग लगाया। स्वामी जी ने इसमें से तीन चौथाई लड्डू ग्रहण किया तथा एक टुकड़ा सब्जी का लिया। इसके बाद गुरु जी ने एक सफेद कपड़े पर अपने पद्चिह्न प्रदान किए तथा इनके ऊपर ॐ लिखा और अन्त में श्री लिखा। गुरुदेव ने प्रमिला को आनन्द कुटीर आने तथा दर्शन-लाभ लेने के लिए कहा। अपने कमण्डल में से थोड़ा जल प्रदान करने के बाद स्वामी जी अदृश्य हो गए।

श्रीमती स्योरनेगल सेदित डज़ेल डार्फ, जर्मनी

आपका कृपा पत्र पढ़ कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपको बहुत धन्यवाद। मैं भारत आऊँगी। परन्तु सर्वप्रथम मुझे धारा प्रवाह अंग्रेजी सीखनी पड़ेगी। आपकी कृपा के लिए धन्यवाद। मैं अपनी शनैः शनैः हो रही प्रगति हेतु धैर्यवान और आस्थावान हूँ। मुझे स्मरण है कि मैंने सन् १९३८/४९ में रात्रि में एक स्वप्न देखा था। आप एक बड़े से कक्ष में लोगों को पढ़ा रहे थे। अब मैं आपका चित्र देख रही हूँ। यह बिलकुल वही है जो मैंने स्वप्न में देखा था।

श्री लोकनाथ द्वारा

मैं मेरी पत्नी तथा मेरा नन्हा बेटा एक बस में यात्रा कर रहे थे। इसमें करीब एक दर्जन और यात्री थे। हमारी बस पौड़ी से ऊपर की ओर चढ़ रही थी। अचानक बस चालक के नियन्त्रण में नहीं रही और एक जोर का झटका लगा और बस पहाड़ी से लुढ़कते हुए नीचे जाने लगी। इसी समय मेरा बेटा जोर से चीखा—सद्गुरु महाराज की जय! और हम सभी अपने गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का स्मरण करने लगे। गुरुदेव हमारी रक्षा कर रहे थे। बस का पिछला दरवाजा खुल गया जिससे हमारे अलावा सभी यात्री बाहर गिर गये और बाद में भी उनका कुछ पता नहीं चला। हम सभी सीटों के बीच फंसे रह गये थे। हम सभी बस के साथ लुढ़कते हुए करीब १०० फीट नीचे तक चले गए। बस टुकड़े-टुकड़े हो गयी थी लेकिन हमें बस थोड़ी चोट लगी और हम अगले दिन स्वस्थ हो गए।

अगली बस जो हमारे पीछे आ रही थी, वह यह दुर्घटना देख कर रुक गयी और उन्होंने हमें तुरन्त अस्पताल पहुँचा दिया।

इस भयंकर दुर्घटना में मात्र हम तीनों सुरक्षित बच गये थे तथा यह सब स्वामी जी की कृपा से हुआ था।

श्री स्वामी सच्चिदानन्द प्रसाद, गर्दानीबाग, पटना

आन्ध्र प्रदेश में भयंकर बाढ़ के कारण रेलवे लाइनें क्षतिग्रस्त हो गयी थीं। एक स्थान पर मुझे नदी को जो कि पूर पर थी पैदल-पैदल चलते हुए पार करना पड़ा। मेरे

साथ मेरी पत्नी भी थी। मैं अपना इष्टमन्त्र जपते हुए नदी को पार कर रहा था। मुझे इस समय ऐसा लग रहा था जैसे मेरे सिर पर मेरे गुरु स्वामी शिवानन्द जी हैं और उनके साथ भवसागर पार कर रहा हूँ। मै एक गढ्ढे में गिरने ही वाला था कि दूसरे किनारे पर मुझे मेरे गुरुदेव शिवानन्द जी दिखायी दिए। उन्होंने मुझे चिल्ला कर सावधान किया और मुझे दाईं ओर मुड़ने के लिए कहा। मैंने उसी समय उनकी आज्ञा का पालन किया और उनकी कृपा से मेरा जीवन बच गया लेकिन मैं जब नदी के पार पहुँचा तो मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ क्योंकि मुझे राह दिखाने वाला व्यक्ति वहाँ था ही नहीं।

श्री चेला रामानी द्वारा

सन् १९४८ में मैं बद्रीनाथ-केदारनाथ की यात्रा पर गया था। रास्ते में मेरा दायाँ पैर सूज गया और भयंकर रूप से दर्द करने लग गया। इस समय हम आधी दूरी तक पहुँच गये थे (पहले यह यात्रा करीब २०० मील की थी और पैदल ही करनी पड़ती थी)। इस कारण मैं जोशीमठ के सिविल अस्पताल में भर्ती हो गया। मेरा वहाँ एक सप्ताह तक उपचार हुआ परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। डाक्टरों ने कहा कि आपरेशन करना पड़ेगा। मैं बहुत परेशानी में फंस गया। मैंने मेरे सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी का ध्यान किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए एक पत्र भेजा। मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि जिस दिन मेरा पत्र स्वामी जी को मिला उसी दिन से पैर की स्थिति में सुधार आने लगा और जल्दी ही मैं बद्रीनाथ यात्रा पैदल करने में समर्थ हो गया। बिना आपरेशन कराए मैंने अपनी तीर्थयात्रा गुरुदेव की कृपा से पूर्ण की।

सन् १९५० की घटना है। मैं अपनी पत्नी तथा पुत्र को लेकर महाकुम्भ मेले में गया था। अन्तिम दिन गंगा स्नान के बाद हर की पौड़ी में अचानक तीर्थ यात्रियों की भीड़ अनियन्त्रित हो गयी, भगदड़ मच गयी। मैंने अपनी आँखों के सामने लगभग तीस लोगों को कुचलकर मरते देखा। हम भी वहीं फंसे हुए थे। हम सभी व्याकुलता से स्वामी शिवानन्द जी को याद कर रहे थे। अचानक आसपास स्थित इमारतों के दयालु लोगों ने ऊपर से रस्सियाँ फेंकी और हम ऊपर पहुँच गए। इस प्रकार स्वामी जी की कृपा से हम अपना जीवन बचाने में सफल हुए।

श्रीमती वी.एस. राम, लखनऊ से

रात्रि के समय की घटना है एक बार मैं अपने घर की छत पर बैठी अपना नियमित जप कर रही थी। मेरी आँखें बन्द थीं और मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे मेरे मुख पर कोई प्रकाश फेंक रहा हो। मैं थोड़ा घबरा गयी। मैंने आँखें खोल दीं परन्तु वहाँ पर कोई भी नहीं था। मैंने पुनः आँखें बन्द कर लीं और जप करने लगी। मुझे स्वयं पर हंसी आ रही थी कि मैं भी कितनी डरपोक हूँ। पुनः वही प्रकाश मेरी आँखें के सामने चमका परन्तु इस बार मैंने निश्चय कर लिया था कि अब मैं आँखें नहीं खोलूँगी। धीरे-धीरे वह प्रकाश अदृश्य हो गया। अब मेरे सामने मेरे गुरुदेव स्वामी शिवानन्द ही खड़े थे। उनके माथे पर एक सिक्के के आकार का लाल कुमकुम का टीका था। मैं इस दिव्य स्वरूप को प्रणाम करने के लिए नीचे झुकी परन्तु मैं पृथ्वी को ही स्पर्श कर सकी। मुझे बड़ा ही दुःख हुआ कि मैं स्वामी जी के चरण स्पर्श नहीं कर पाई। कुछ देर ध्यान करने के पश्चात् मैं सोने चली गयी। मैं बड़ी प्रसन्न थी और गहरी नींद सोई। सुबह पाँच बजे उठ कर, स्नान आदि करने के के बाद जब मैंने हीटर पर चाय का पानी गर्म होने के लिए रखा और मैं पुनः ध्यान करने बैठ गयी। मुझे उसी तेजस्वी स्वरूप के पुनः दर्शन हुए। मेरे आनन्द की अब कोई सीमा न थी।

श्री शिवानन्द वाणी, ऑल इण्डिया रेडियो से

कई बार मुझे ऐसा अनुभव हुआ। हालाँकि मैं कोई गायक नहीं हूँ। सामान्य ढंग से भजन आदि गा लेता हूँ। जब मैं अकेला होता हूँ, भगवान् का ध्यान करके भगवान् के नाम गाता रहता हूँ। एक दिन मैंने देखा कि पास में जो खाली पड़ी कुरसी थी, उस पर स्वामी शिवानन्द जी बैठे हुए हैं और बड़े ध्यान से मुझे गाते हुए सुन रहे थे। वे बड़ी ही प्रसन्नता से सुन रहे थे और प्रशंसा में अपना सिर हिला रहे थे और हाथ से ताल दे रहे थे। मैं चकित रह गया। मैंने आँखें खुली रख कर गाना चालू रखा और स्वामी जी की तरफ देखता रहा जो कि मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति का गायन सुनने आए थे। गाना पूरा होने के बाद मैंने अपना तानपूरा एक ओर रख दिया और स्वामी जी के चरण स्पर्श करने के लिए सिर झुकाया। लेकिन जब मैंने अपना सिर ऊपर उठाया तो देखा वहाँ कोई नहीं है, दरवाजे उसी तरह बन्द थे जैसे मैंने किए थे। स्वामी जी के

चमत्कार को मैं समझ गया था। मेरी प्रसन्नता की सीमा न थी। जब मैं लखनऊ में था तब भी ऐसा ही दो-एक बार हुआ। उस समय श्री स्वामी ज़ी ऋषिकेश में थे। फिर ऐसा कैसे हुआ, यह सब उन्हीं का चमत्कार था। मैंने स्वामी जी को भी इस बारे में पत्र लिखा, हालाँकि प्रकट रूप में स्वामी जी ने कोई टिप्पणी नहीं की लेकिन वे तो अन्तर्यामी हैं, सब जानते हैं।

स्वामी जी सबकी सेवा करने तथा सभी को कष्टों से मुक्त करने के लिए सदा तत्पर रहते थे और इसीलिए उन्होंने सभी के हृदय पर विजय पा ली थी। वे सभी के साथ आध्यात्मिक रूप से एक हो गये थे तथा निरन्तर, परम सुख, शान्ति, जीवन और ज्ञान के प्रकाश का विकिरण करते रहते थे। उनका दर्शन मात्र आत्मोत्थान तथा रूपान्तरण करने वाला था और सामने आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उत्कृष्ट बना देता था। उनके चारों ओर देवत्व का अनुभव होता था तथा जिसके ऊपर उनकी कृपा होती उसके हृदय से नास्तिकता, सांसारिकता तथा दुष्टता नष्ट हो जाती थी। उनकी ध्यान साधना के कारण उनके मुख पर अपूर्व तेज, आँखों में शक्ति तथा सम्पूर्ण व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक तथा प्रभावशाली था। उनका आभामंडल ऐसा था कि जो उनके पास सैकड़ों शिकायतें ले कर आता था, वह उनके पास आने के बाद स्वयं ही शान्त हो जाता था। स्वामी जी की उपस्थिति में दुष्टता भय से भाग जाती थी।

स्वामी जी ने अपने प्रेरणाप्रद, आत्मोत्थानकारक गीतों द्वारा अनेकों चमत्कार किए। उन दिनों पढ़े-लिखे बड़े लोग भगवान् का नाम लेने में लज्जा का अनुभव करते थे तथा उस समय ऐसे भी लोग थे जो भगवान् के अवतारों राम, कृष्ण आदि के नाम का कीर्तन करने के विरोधी थे, क्योंकि उनका दृष्टिकोण था कि भगवान् निराकार और निर्गुण है। ऐसे लोगों का इलाज स्वामी जी को कुछ देर सुनने मात्र से ही हो जाता था और इन लोगों ने भी स्वामी जी के साथ दिव्य नाम कीर्तन किया और मंच पर नृत्य किया। इससे बड़ी बात और क्या हो सकती थी? स्वामी जी ईश्वर भक्ति के मूर्तिमान स्वरूप थे तथा जो भी उनके सम्पर्क में आया उसे अपने स्थान पर ही भक्ति की तरंगें प्राप्त हुईं।

स्वामी जी ने जिस प्रकार बिना किसी बजट, बिना किसी सुरक्षित निधि, बैंक में भी भी कोई जमा धन नहीं, कोई नियमित आय का स्रोत भी न होते हुए दिव्य

जीवन संघ संस्था का इतने बृहत रूप में संचालन किया, वह भी एक चमत्कार ही था।

स्वामी जी अत्यल्प रुचि एवं योग्यता वाले व्यक्तियों को भी आश्रम में प्रवेश दे देते थे तथा उन्हें बिना किसी कठोर संयम तथा साधना के संत व्यक्तित्व में रूपान्तरित करते थे। यह उनका श्रेष्ठतम चमत्कार था। गंगा तट पर हिमालय के कोने पर एक छोटे से कुटीर में निवास करते हुए उन्होंने दिव्य ज्ञान की ज्योति को संसार के कोने-कोने में रहने वाले लोगों के हृदय में जगाया तथा उनका जीवन को रूपान्तरित करने वाला सन्देश संसार के हर देश में प्रतिध्वनित हुआ। यह भी उनका ही अलौकिक कृत्य था।

वह आक्रमणकारी

यह ८ जनवरी सन् १९५० की घटना है। भजन-कक्ष में रात्रि सत्संग चल रहा था। कक्ष में थोड़ा अन्धेरा था क्योंकि गीता-पाठ के समय जलाई गयी लालटेन थोड़ी मद्धिम हो गयी थी तथा उसे एक ओर रख दिया गया था। वेदी के आसपास रखे गये दिये अपनी क्षमता के अनुरूप प्रकाश विकरित कर रहे थे, जिससे कक्ष का एक तिहाई भाग ही प्रकाशित हो रहा था, किन्तु प्रवेश-द्वार पर अन्धेरा था।

स्वामी जी ने गोविंदन नामक युवक को कुछ दिन पूर्व ही आश्रम में प्रवेश दिया था। गोविंदन प्रवेश द्वार के अन्धेरे का लाभ उठाते हुए हाथ में कुल्हाड़ी लेकर स्वामी जी के पास गया और उनके सिर पर कुल्हाड़ी से वार किया, किन्तु उसका निशाना चूक गया। वह दरवाजे पर लगी। अब गोविंदन घबरा गया। उसने स्वामी जी पर वार करने का पुनः प्रयास किया, इस समय कुल्हाड़ी दीवार पर टंगी तस्वीर पर लगी। मात्र उसका हत्था स्वामी जी की पगड़ी पर लगा। स्वामी जी को लगा कि वह छड़ी से प्रहार कर रहा है। अतः उन्होंने उसके आक्रमण को रोकने के लिए हाथ उठा दिया जिससे उसमें थोड़ी खरोंच आ गयी। सामान्यतया स्वामी जी कुटीर से आने के बाद पगड़ी उतार के रख देते थे और जब वापस जाते थे तभी पहनते थे। परन्तु पता नहीं कैसे उस दिन स्वामी जी पगड़ी उतारना भूल गये थे। और इसी कारण वे गोविंदन के वार से बच गए।

समीप बैठी एक महिला ने स्वामी विष्णुदेवानन्द जी का ध्यान आक्रमणकारी की ओर दिलाया। उन्होंने तुरन्त उठ कर गोविंदन को जोर से पकड़ लिया, जिससे वह और कोई वार न कर सके, और उसे खींचकर बाहर ले गए। भजन-कक्ष में लोग एकदम खड़े हो गये यह जानने के लिए कि क्या हो गया। इनमें से दो लोगों ने गोविंदन के हाथ-पैर बाँध दिए और उसे मारने लगे। स्वामी जी यह देख कर पूरा जोर लगा कर चिल्लाए 'उसे मत मारो। उसे मत मारो।' यह सुन कर लोगों ने उसे छोड़ दिया और पास वाले कमरे में उसे बन्द कर ताला लगा दिया।

स्वामीजी ने कहा कीर्तन प्रारम्भ करो। कीर्तन, आरती तथा शान्ति पाठ आदि हुआ तथा सत्संग समाप्त हो गया। इसी बीच एक स्वामी हीरक जयन्ती कक्ष में गया और वहाँ जो स्वामी थे, उन्हें सारी घटना बताई। वे सभी दौड़ कर पुलिस थाने गये और दो पुलिस वालों को साथ ले कर दौड़ते हुए भजन-कक्ष की ओर गये जहाँ गोविंदन को बन्द किया गया था। गोविंदन के हाथ-पैर खोल दिए गए। वह खड़ा हो गया। उसके आसपास पुलिस वाले खड़े थे। भीड़ में सभी इस घटना को देख रहे थे। स्वामी जी सीधे गोविंदन के पास गये और दोनों हाथ जोड़ कर उसे प्रणाम किया तथा उससे कहा कि 'गोविंदन, क्या आप मुझ पर और वार करना चाहते थे? मैं आपके समक्ष प्रस्तुत हूँ। आप अपने आपको संतुष्ट करें।' (पुलिस इंस्पेक्टर इस सारे दृश्य को बड़े ही आश्चर्य से देख रहा था) गोविंदन ने कहा—''नहीं, मैं आपको और नहीं मारना चाहता। मैं संतुष्ट हूँ।'' वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को गोविंदन के ऊपर क्रोध आ रहा था और गोविंदन के शब्दों ने उस आग में घी का काम किया, परन्तु फिर भी वे सभी स्वयं पर नियन्त्रण रखे हुए थे। स्वामी जी ने उससे पूछा—''मैंने आपके साथ क्या गलत किया था? आप मुझसे क्यों नाराज हो गये?'' इसके लिए उसके पास कोई उत्तर नहीं था।

इसके बाद सभी लोग भजन-कक्ष से अपने कुटीर को जाने लगे। पुलिस इंस्पेक्टर ने स्वामीजी से पूछा कि हम क्या करें। इसके विरुद्ध रिपोर्ट दर्ज करें या नहीं ? स्वामी जी ने कहा—''नहीं, नहीं, आप इसे मुनि की रेती से बाहर भेज दें। बस, इतना पर्याप्त होगा'' और स्वामी जी अपने कुटीर में चले गए। वहाँ पर दर्शनार्थियों का तांता लगा हुआ था। वे सब स्वामी जी के दर्शन के लिए आए थे। ढेरों स्थानीय निवासी स्त्री-पुरुष यह घटना को सुन कर देर रात हो जाने पर भी स्वामी जी के दर्शनों के लिए आए। उनकी आँखों में आँसू थे। स्वामी जी वहीं बैठे हुए थे और मुस्कुरा कर ऐसे सबका स्वागत कर रहे थे जैसे कुछ हुआ ही न हो। ऐसा लगता है कि निःसन्देह स्वामी जी को भगवान् का संरक्षण प्राप्त था। निम्नलिखित तथ्य इस बात को प्रमाणित करते हैं—

बाद में मालूम हुआ कि गोविंदन सुबह से ही स्वामी जी पर आक्रमण हेतु प्रतीक्षारत था। उसे पता था कि सुबह स्वामी जी अपने कुटीर से भजन-कक्ष तक

अकेले जाते हैं। इसलिये उस समय स्वामी जी का बचना मुश्किल रहता। लेकिन ईश्वर की दया से स्वामी जी उस दिन सुबह की कक्षाओं के लिए गये ही नहीं। स्वामी जी बताते हैं पता नहीं कैसे उस दिन मुझे इतनी गहरी नींद आयी कि मैं प्रातः ३.३० बजे उठ ही न सका। गोविंदन स्वामी जी की व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा था और उसने भजन-कक्ष के कई चक्कर लगाए। सामान्यतया गोविंदन अपने कमरे से प्रातः ९ बजे से पहले अपने कमरे से बाहर नहीं आता था, लेकिन अपने जीवन में उस एकमात्र दिन वह प्रातःकालीन सत्संग में सम्मिलत हुआ और उसने कीर्तन किया। स्वामी जी की आदत थी कि वे रात्रि सत्संग में आकर अपनी पगड़ी उतार देते थे लेकिन पता नहीं कैसे उस दिन स्वामी जी ने इसे नहीं उतारा।

गोविंदन ने स्वामी जी और दरवाजे के बीच की दूरी का अन्दाज लगा लिया था लेकिन भजन-कक्ष का दरवाजा थोड़ा आगे की ओर है, वह उसका अन्दाजा लगाना भूल गया था। इसलिये उसका पहला वार चूक गया। इसके बाद वह इस हेतु सतर्क हो गया लेकिन दूसरी बार वह कुल्हाड़ी को फिर से सही ढंग से लेना भूल गया इसलिये उसका वार चूक गया। इन सभी बातों से ऐसा लगता है कि स्वामी जी की रक्षा स्वयं भगवान् ने की।

अगले दिन स्वामी जी ने यह निर्णय लिया कि गोविंदन को आश्रम के दो सुरक्षा कर्मियों के साथ ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस से उसके घर से सेलम भेज दिया जाए।

गोविंदन पर किसी प्रकार का मुकदमा चलाने हेतु स्वामी जी ने मना कर दिया और कहा—"नहीं, नहीं, हम उसे दण्ड नहीं देंगे। उसने जो भी किया वह मेरे प्रारब्ध कर्मों से वशीभूत हो कर किया। क्या आप यह कहना चाहते थे कि ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ हो सकता है? नहीं, स्वयं भगवान् ने गोविंदन को ऐसा करने के लिए प्रेरित किया। **द्यूतं छलयतामस्मि** (मैं छल में द्यूत हूँ, गीता अध्याय १० श्लोक ३६) ये मात्र शब्द ही नहीं हैं। क्या लुटेरे, डकैत, हत्यारे तथा कसाई में उसी सर्वव्यापक ईश्वर का वास नहीं है? नहीं, मैं पुलिस को गोविंदन को दण्ड देने नहीं दूँगा। हमें तो उसे धन्यवाद देना चाहिए कि उसने हमें हमारे प्रारब्द्ध कर्मों से इतनी सरलता से मुक्त कर दिया। इस घटना से मुझे यह संकेत मिलता है कि भगवान् ने मेरे प्राणों की इसलिये रक्षा की कि वे इस शरीर द्वारा कुछ और सेवा कराना चाहते थे।

अगले दिन स्वामी जी प्रातः ११ बजे फल, पुस्तकें, कपड़े, नया कम्बल और जपमाला लेकर पुलिस थाने गए। स्वयं अपने हाथों से उन्होंने उसके माथे पर कुमकुम और विभूति का टीका लगाया और उसके सामने साष्टांग दण्वत किया। स्वामी जी ने उसे इस आशीर्वाद के साथ कि "भगवान् आपको उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु, शान्ति, समृद्धि, भक्ति, ज्ञान तथा कैवल्य प्रदान करें।" स्वयं हस्ताक्षर करके पुस्तकें दीं। उन्होंने गोविंदन को अष्टाक्षरी मन्त्र 'ॐ नमो नारायणाय' की दीक्षा दी और वस्त्र आदि प्रदान किए। और यह सलाह दी कि कृपया भगवान् के नाम का नियमित जप करते रहें। जो कुछ हुआ उसे भूल जाएँ, बस इतनी बात का ध्यान रहे कि मन पुरानी दुष्ट वृत्तियों की ओर न भागें जिससे आप पुनः वही गलती न दोहराएँ। कृपा करके अच्छी आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ें। गलत लोगों के साथ मेलजोल न रखें। आध्यात्मिकता अभी आपके भीतर छिपी हुई है। साधना से यह गुप्त आध्यात्मिकता दृढ़ होगी। यदि आपके भीतर यह आध्यात्मिकता न होती तो आप यहाँ आते ही नहीं। मैं स्वामी शास्वत जी तथा पुरुषोत्तम जी को आपके साथ भेज रहा हूँ। ये आपका यात्रा के समय ध्यान रखेंगे। आगरा से आपको सेलम का टिकट मिल जाएगा। घर पहुँचने के बाद मुझे अपनी साधना तथा कुशलता की सूचना पत्र देते रहिए। भगवान् की कृपा सदा आपके ऊपर बनी रहे। इसके बाद स्वामी जी ने कई बार 'ॐ नमो नारायणाय' का उच्चारण किया तथा गोविंदन से भी यह मन्त्र दोहराने को कहा।

गोविंदन को जाने से पहले विशेष व्यंजन भी बना कर दिए गए। इसके बाद स्वामी जी ने पुलिस इंस्पेक्टर को एक पत्र भेजा कि 'मैं गोविंदन के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करना चाहता और पुलिस भी इस बात को अपने दिमाग से निकाल दे।"

सन्ध्या के समय भजन-कक्ष में स्वामी जी की दीर्घायु के लिए विशेष प्रार्थना की गयी। सत्संग में उपस्थित सभी लोगों ने दीर्घ स्वर में महामृत्युंजय मन्त्र का सामूहिक कीर्तन किया जिससे वहाँ का सम्पूर्ण वातावरण महामृत्युंजय मन्त्र की तरंगों से आवेशित हो गया। अन्त में स्वामी जी ने अपने हाथों से प्रसाद का वितरण किया।

स्वामी जी के पास १९ फरवरी को गोविंदन का पत्र पहुँचा जिसमें उसने लिखा था कि वह सेलम आराम से पहुँच गया है। स्वामी जी के व्यवहार के लिए वह उनका सदा कृतज्ञ रहेगा तथा उसकी स्वामी जी से प्रार्थना है कि आगे भविष्य में भी उसके जीवन में जो भी कष्ट, बाधाएँ आएँ उन्हें भी वे दूर करें। और पत्र में उसने स्वयं को स्वामी जी का शिष्य संबोधित किया। जब उसका पत्र आया तो स्वामी जी मुस्कुराए और बोले—''मुरुगानन्द जी, गोविंदन का नाम निःशुल्क पत्रिका हेतु लिख लें। उसका पता प्रसाद के रजिस्टर में भी लिख लें। उसे सारा निःशुल्क साहित्य भेजा जाए। मैं उसे पुस्तकें भी भेजूँगा। मैं उसे पुनः आने के लिए लिखूँगा।''

ऐसी बहुत सी लेकिन इससे खतरनाक घटनाएँ हैं जिनका वर्णन श्री स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा में किया है, जैसे ''बीते समय में कुछ विद्यार्थियों ने इन्द्रियों की लालसाओं के वशीभूत होकर मेरी आलोचना की तथा आश्रम और पूरे हिमालय के बारे में अपशब्द कहे और क्रोध में आकर आश्रम छोड़ कर चले गये लेकिन वास्तव में वे परिवर्तित हृदय के साथ पुनः वापस आने के लिए ही आश्रम से गए थे। मैं वापस लौटने पर उनका स्वागत बड़े ही स्नेह के साथ करता था। मैं अत्यन्त शीघ्र पिछला भूल जाता हूँ। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति सौ बार भी बाहर जाता और वापस आता तो मेरा प्रेम उसके प्रति और बढ़ता ही, कम नहीं होता। किसी के साथ जबरदस्ती करने से अथवा नियमों-कानूनों से किसी व्यक्ति को देवपुरुष में नहीं बदला जा सकता। वे सभी स्वयं अपने अनुभव से ही समझते हैं।

स्वामी जी ने स्वामी परमानन्द जी को प्रारम्भ में जो पत्र लिखे थे, उनमें से एक पत्र में लिखा था—''मैं अपने चारों ओर ऐसे अनेकों व्यक्ति चाहता हूँ जो मेरी निन्दा करें, मेरा अपमान करें, मुझ पर कलंक लगाएँ तथा मुझे आहत करें। मैं उन सबकी सेवा करना चाहता हूँ। उनको शिक्षा देना चाहता हूँ तथा उन्हें रूपान्तरित करना चाहता हूँ।'' स्वामी जी भीड़ में भी सबसे दुश्चरित्र व्यक्ति को (चाहे वह श्वेत वस्त्र में हो या गेरुए वस्त्र में) सर्वप्रथम खोज लेते थे। वे उनको प्रणाम करते तथा उन्हें बड़े ही आदरसूचक शब्दों से संबोधित करते थे। स्वामी जी का इस बारे में कहना था कि डाकू को संत कहो, सबके सामने उसका सम्मान करो, इससे वह बुरा काम करने में लज्जा अनुभव करेगा। एक क्रोध करने वाले अर्थात् गुस्सैल व्यक्ति को सदा यह

कहो कि वह तो शान्ति की मूर्ति है तो उसे गुस्सा करने में शर्म आएगी। आलसी व्यक्ति को कर्मठ कार्यकर्ता कहो, वह सेवा करने लगेगा। लेकिन मात्र ऐसा कहना ही नहीं है। ऐसा आपका उसके प्रति भीतर से भाव होना चाहिए। ऐसी भीतर से प्रार्थना करनी चाहिए। आपको प्रत्येक शब्द में अपना आत्मबल उड़ेलना होगा।

मील के पत्थर

सम्पूर्ण भारत भ्रमण

मुझे अपने भीतर से एक आवाज़ सुनायी दी ''शिवा जागो और इस अमृत से अपने जीवन का प्याला भर लो और इसे सबको बाँटो। मैं तुम्हें प्रभुत्व, ऊर्जा और ज्ञान दूँगा।'' मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया। उन्होंने प्याला भरा और मैंने इसे सबके साथ मिलकर पिया।

स्वामी शिवानन्द

सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा गोविंदन की घटना का स्पष्ट परिणाम था। उस समय स्वामी परमानन्द जी मद्रास में थे और इस घटना के बाद वे शीघ्र ही आश्रम वापस आ गये तथा उन्होंने निर्णय लिया कि वे अब आश्रम में ही रहेंगे। 'उन बीते दिनों का स्मरण करके जब स्वामी जी ने अपने प्रवचनों और कीर्तनों से हजारों लोगों के हृदयों को आन्दोलित कर दिया था और जहाँ भी वे गये एक हलचल सी पैदा कर दी थी', स्वामी परमानन्द जी ने रेल द्वारा सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा का आयोजन करने का विचार किया। स्वामी परमानन्द जी ने इस यात्रा के आयोजन में अपनी सारी शक्ति लगा दी। किसी समय पर उन्होंने एक भिन्न-भिन्न स्थानों पर कार्यक्रम करने वाले यात्री सर्कस में काम किया था, जिसका अनुभव उन्हें भारतीय रेलवे के साथ इस यात्रा को सफलतापूर्वक आयोजित करने में बड़ा सहायक रहा। उन्होंने विभिन्न केन्द्रों को पत्र लिखे और सभी ने बड़ी ही उत्साहजनक प्रतिक्रिया दी।

भ्रमण की सारी रूपरेखा तैयार कर ली गयी और एक प्रथम श्रेणी की यात्री बोगी किराए पर ले ली गयी। ८ सितम्बर के जन्म दिवस उत्सव के दूसरे दिन ९ सितम्बर १९५० को स्वामी जी तथा उनके १३ शिष्यों के दल ने सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा का प्रारम्भ किया। स्वामी जी के साथ थे स्वामी परमानन्द जी, स्वामी चिदानन्द जी, स्वामीनारायणानन्द जी, स्वामी पूर्णबोधानन्द जी, स्वामी गोविन्दानन्द जी, स्वामी ओंकारानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी, स्वामी

सास्वतानन्द जी, स्वामी वेंकटेशानन्द जी, स्वामी दयानन्द जी, श्री शिवप्रेम, श्री पद्मनाभन जी (जो बाद में स्वामी सारदानन्द जी) और श्री पुरुषोत्तम जी।

आश्रम से निकलने के ठीक पहले स्वामी जी ने अपने अगले मिशन की रूपरेखा तैयार की। उन्होंने कहा—"प्रत्येक रेलवे स्टेशन पर हम सब कीर्तन करेंगे। करोड़ों जनों को दिव्य जीवन का सच्चा महत्त्व तथा अर्थ बताना हमारा धर्म है। जहाँ भी हम जाएँ हमें जनसमूह के हृदय में प्रविष्ट हो जाना चाहिए। हजारों की संख्या में पर्चे और पत्रक बाँटे जाएँगे। हमें सभी जगह भगवान् के नाम का प्रचार करना है। इससे करोड़ों जन कीर्तन और राम-नाम के महत्त्व को जानेंगे।

हरिद्वार में स्वामी जी ने मिशन के लक्ष्य और कार्यों को और अधिक विस्तृत रूप में समझाया। स्वामी परमानन्द जी का विचार था कि स्वामी जी को गंगा नदी के किनारे-किनारे कार से लेकर चलें। रास्ते में स्वामी जी ने देखा कि निःशुल्क वितरण के लिए साथ में कोई पुस्तकें नहीं ली हैं तो उन्होंने कहा यह यात्रा मेरे भ्रमण अथवा सुख के लिए नहीं है। मुझे तो सेवा में ही सुख मिलता है।

स्वामी जी की यह भावना सम्पूर्ण यात्रा अवधि में बनी रही। जैसे यात्रा के समय जब रेल लखनऊ की ओर मुड़ी और जब स्वामी जी अचानक डिब्बे में आए तो देखा उनके सहयोगी चाय पी रहे थे। स्वामी जी ने एक-एक से अलग-अलग पूछा कि वे आराम से सोए या नहीं। स्वामी परमानन्द जी ने स्वामी जी से पूछा कि आपको नींद में विघ्न तो नहीं पड़ा। स्वामी जी का उत्तर बड़ा आश्चर्यजनक और रहस्य प्रकट करने वाला था। उन्होंने कहा—"मैं तो पिछली रात मुश्किल से १५ मिनट ही सोया हूँ। मुझे इस बात की चिन्ता थी कि जो रात के समय मेरे दर्शन की इच्छा से आए होंगे, वे निराश हो जाएँगे।"

स्वामी परमानन्द जी ने कहा कि स्वामी जी आपको रात में थोड़ा विश्राम तो मिलना ही चाहिए। इसलिये हमने निश्चय किया है कि दिन में और रात १० बजे तक तो हम सभी को आपके पास भेजेंगे किन्तु १० से ४ बजे प्रातः तक किसी को भी आपको परेशान नहीं करने देंगे।

स्वामी जी ने उन्हें हल्के से झिड़कते हुए कहा—"अरे, मैं तो स्वयं ही उन सभी को देखने के लिए उत्कंठित हूँ। जो मुझे देखने आते हैं क्या वे मुझसे मिलने

आने के लिए अपने आराम का त्याग नहीं करते? मैं उन्हें उस सुख को प्राप्त करने से कैसे रोक सकता हूँ।''

जब रेल हरदोई में रुकी तो इतनी अधिक भीड़ थी कि उसे नियन्त्रण में लाना कठिन था। लोग डिब्बे में घुस आए। जब स्वामी जी डिब्बे से बाहर आए तभी लोग उनके साथ बाहर आए और उन सबने आकर स्वामी जी के पैर पकड़ लिए। तब स्वामी जी ने अनुशासन पर एक छोटा सा व्याख्यान दिया। थोड़ी देर में यह सूचना प्रसारित हुई कि रेल चलने वाली है। स्वामी जी अपने डिब्बे में चढ़ गये लेकिन वे संतुष्ट नहीं थे। वे लोगों को कुछ और देना चाहते थे। स्वामी जी खिड़की में से बाहर झांक कर बोले ''हरि ॐ, आप सब मेरे साथ भगवान् का नाम दोहराएं। भगवान् के नाम में अनन्त शक्ति है। यह आपको शान्ति, समृद्धि तथा सुख प्रदान करेगा। इसके बाद उन्होंने कहा 'राम राम राम राम'।'' सम्पूर्ण जनसमूह ने जोर-जोर से दोहराया। रेल के चलने में कुछ समय शेष था। स्वामी जी ने कहा—''क्या आप अपनी सही प्रकृति जानते हैं? सुनिए, चिदानन्द, चिदानन्द, चिदानन्द हूँ। हर हाल में अलमस्त सच्चिदानन्द हूँ। यही आपकी अनवार्य प्रकृति है। आपकी प्रकृति ज्ञान तथा आनन्द है। आप अविनाशी आत्मा हैं। इस सूत्र को बारबार दोहराइए और अपनी मूल प्रकृति को पहचानिए।

रेल चलने लगी थी। स्वामी जी खिड़की से ही पूरा जोर लगाकर बोले ''ॐ ॐ ॐ''। उस बृहत जनसमूह ने अश्रुभरे नेत्रों सहित दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

रास्ते में पड़ने वाले प्रत्येक स्टेशन पर सैकड़ों लोग उनके दर्शन के लिए आए और जहाँ भी रेल रुकी स्वामी जी ने प्रत्येक प्लेटफार्म पर कीर्तन किया। जैसे ही रेल स्टेशन पर प्रवेश करती बोगी पर लगा लाउड स्पीकर पहले से रिकार्ड किए हुए गीतों और कीर्तनों से उस स्थान को आपूरित कर देता था, जिससे भीड़ आकर्षित हो जाती थी। यहाँ पर पर्चे और पत्रक भी बाँटे जाते थे।

लखनऊ प्लेटफार्म पर बृहत जनसमूह द्वारा अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक स्वामी जी का स्वागत किया गया और प्लेटफार्म स्वयं ही सत्संग हॉल मे परिवर्तित हो गया था। स्वामी जी ने स्वागत करने वालों पर आध्यात्मिक ज्ञान की वर्षा की और फिर यह निर्देशों से पूर्ण गीत गाया।

भजो राधे गोविंद
राधे गोविंद भजो राधे गोविंद
राधे गोविंद भजो सीता राम
हरि बोलो बोलो भाई राधे गोविंद
हरे कृष्णा हरे राम राधे गोविंद।

४ बजे सुबह उठो, ब्रह्ममुहूर्त में
४ बजे सुबह उठो, जपो राम राम
४ बजे सुबह जागो, करो ब्रह्म विचार
४ बजे सुबह जागो, सोचो ''मैं कौन हूँ''
४ बजे सुबह जागो, योगाभ्यास करो।

नित्य मौन रखो २ घण्टे का
एकादशी का व्रत करो, फल-दूध लो
नित्य पढ़ो एक अध्याय गीता का
नित्य दान करो आय का दसवाँ भाग
अपने आप पर निर्भर रहो, नौकरों को त्याग दो
रात्रि में कीर्तन करो और करो सत्संग।

सदा सत्य बोलो, करो वीर्य का संरक्षण
सत्यं वद धर्मं चर, पालन करो ब्रह्मचर्य का
अहिंसा परमो धर्म, प्रत्येक को प्रेम करो
किसी की भावना को आहत कभी न करो, और करो दया
क्षमा से क्रोध पर नियन्त्रण करो, विकसित करो विश्व प्रेम
नित्य आध्यात्मिक दैनन्दिनी भरो, आपका जल्दी विकास होगा।

हरे कृष्ण, हरे राम...

श्रोताओं ने इसे उत्साह से दोहराया। इसके बाद स्वामी जी ने कहा—''यह गीत मात्र दोहराने के लिए नहीं है। जब आप इन निर्देशों को व्यवहार में लाएँगे तभी आपको लाभ होगा।''

उन्हें कई लोग माला पहनाना चाहते थे परन्तु भीड़ के कारण वे स्वामी जी तक पहुँच नहीं पाते थे। ऐसी स्थिति में स्वामी जी का स्नेहपूर्ण हाथ इन सबसे परे पहुँच जाता और उनसे मालाएँ ले लेता और वे इसे स्वयं ही पहन लेते थे। वे भक्तों के साथ एक हो जाते थे और भक्त प्रसन्न हो जाते थे। स्वामी जी भी प्रसन्नता में सहभागी बन जाते थे।

सम्पूर्ण भारत भ्रमण का सर्वप्रथम आयोजन का केन्द्र था फैज़ाबाद। यहाँ पर स्वामी जी ने टाउन हाल में जनसमूह को तथा विक्टोरिया बायज हाई स्कूल तथा गवर्नमेंट इंटर कालेज फॉर वूमन के विद्यार्थियों को संबोधित किया। हाई स्कूल में उन्होंने अपना थोड़ा खाओ, थोड़ा पियो वाला गीता सुनाया। गीत निम्नलिखित है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
थोड़ा खाओ, थोड़ा पियो, थोड़ा बोलो, थोड़ा सोओ
थोड़ा मिलो, थोड़ा चलो, थोड़ी सेवा, थोड़ा सोच विचार
थोड़ी सहायता करो, थोड़ा दान करो, थोड़ा पढ़ो,
थोड़ी पूजा करो
थोड़ा जप करो, थोड़ा कीर्तन करो, थोड़ा मन्त्र लिखो,
थोड़ा ध्यान करो
थोड़े आसन करो, थोड़ा प्राणायाम करो, थोड़ा ध्यान करो,
थोड़ा विचार करो

बालकों में से एक ने कहा—"स्वामी शिवानन्द जी ने कहा है कि थोड़ा पी सकते हैं। इसलिये हम मात्र थोड़ा एल्कोहल पिएँगे।" तो स्वामी जी ने इसे संशोधित करके कहा—"थोड़ा पानी पियो।"

स्वामी जी अयोध्या में राम भगवान् के वास्तविक जन्म स्थल के दर्शन हेतु भी गये जहाँ उन्होंने भक्तों के बृहत जनसमूह को संबोधित किया।

टाउन हॉल में स्वामी जी ने देखा कि भीड़ में स्त्रियाँ अधिक हैं तो उन्होंने तुरन्त उनको संबोधित करके कहा—"जब आप घर का काम करें तो हाथों को काम करने

दें लेकिन मन को भगवान् के चरणों में लगाएं। जब आप रोटियाँ बेलें तो गाएं 'जय सीता राम जय जय सीता राम, जय सीताराम जय जय सीताराम। यह एक अत्यन्त सरल साधना है जिससे आपको आन्तरिक आनन्द प्राप्त होगा और आप अपने घर को सही में वैकुण्ठ में बदल देंगी। यह कोई आवश्यक नहीं है कि योग द्वारा कुण्डलिनी को जगाया जाए तभी आन्तरिक आनन्द प्राप्त होगा। यह आपके लिए अत्यन्त सरल साधना है।

सत्संग स्थल के मार्ग में जहाँ यात्री बोगी खड़ी थी, उस यार्ड के पास स्वामी जी ने देखा कुछ बच्चे खड़े थे। स्वामी जी केले की एक टोकरी लेकर वहाँ गये और उन बच्चों से मधुर राग में भगवान् का नाम गाने के लिए कहा। उन्होंने स्वयं गाया और बच्चों ने दोहराया। इसके बाद स्वामी जी ने उन्हें केले वितरित किए।

बनारस में स्वामी जी ने थीयोसोफिकल सोसाइटी तथा थीयोसोफिकल यात्री निवास पर जनसमूह को संबोधित किया तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, केन्द्रीय हिन्दू विद्यालय तथा केन्द्रीय बालिका विद्यालय के विद्यार्थियों, बालकों तथा बालिकाओं को संबोधित किया तथा सारनाथ, बौद्ध विहार और विश्वनाथ मन्दिर के भी दर्शन किए और वहाँ प्रार्थना भी की। बनारस में स्वामी जी डा. किचलू के घर पर रुके थे। जब तक स्वामी जी वहाँ रुके उतने दिनों वहाँ अखण्ड कीर्तन चलता रहा और यात्रा के प्रत्येक केन्द्र पर इसी भाँति अखण्ड कीर्तन होता रहा।

बनारस में एक जगह व्याख्यान की समाप्ति पर एक बुद्धिमान् से दिखायी देने वाले महाविद्यालय के छात्र ने स्वामी जी से पूछा—"स्वामी जी, यदि हम आत्म-साक्षात्कार के लिए निवृत्ति-मार्ग का अनुकरण करते हैं तो क्या हम अपने कर्तव्य-पालन से पीछे नहीं हट रहे हैं? क्या यह हमारे माता-पिता तथा सगे-सम्बन्धियों के साथ अन्याय नहीं है?"

स्वामी जी ने उससे कहा कि 'नहीं, जो यह सोचते हैं कि वे अपनी आत्म-साक्षात्कार की आकांक्षा की पूर्ति करके संसार के साथ अन्याय कर रहे हैं उनमें अभी अपरिपक्वता है। उन्हें अभी यह नहीं मालूम है कि परमात्मा ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को समाविष्ट किया हुआ है और इसके परे भी वही सबमें समाविष्ट है। यह करके कोई अपने उत्तरदायित्वों से पीछे नहीं हटता है। एक आकांक्षी के लिए इस

जगत् में सभी में जिस आत्मा का वास है वही आत्मा उसके स्वयं के सम्बन्धियों के भीतर भी वास करती है और सम्पूर्ण मानव-जाति की सेवा उसके माता-पिता अथवा सम्बन्धियों की सेवा से भिन्न नहीं है। वास्तव में जो चाहिए वह है दृष्टिकोण का परिवर्तन मेरेपन और मोह का संन्यास।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में स्वामी जी ने विद्यार्थियों को शिक्षा दी। यहाँ पर उन्होंने कार्यक्रम का समापन बिलकुल शिवानन्द शैली में किया।

अब मैं कुछ गीत गाऊँगा। आपको भी मेरे साथ इन्हें दोहराना है। आप सब मेरे भाई हैं। आप मेरी अपनी आत्मा हैं। हम सबमें एक ही चेतना है। ये गीत आपके भीतर प्रबल आध्यात्मिक संस्कार का निर्माण करेंगे। आपमें से जो प्रबल धार्मिक संस्कार वाले होंगे मात्र वे ही मेरे साथ जुड़ेंगे।

चिदानन्द चिदानन्द चिदानन्द हूँ
हर हाल में अलमस्त सच्चिदानन्द हूँ।

आप इस कीर्तन को अभी दोहराना नहीं चाहते हैं लेकिन मैंने बीज बो दिया है और आपके भीतर संस्कार निर्मित कर दिए हैं। जब समय आएगा, यह अंकुरित होगा और आप इस मन्त्र को दोहराने लगेंगे। आप अभी इसे अस्वीकार कर रहे हैं लेकिन इसकी छाप आपके मन की फोटोग्राफिक प्लेट पर अंकित हो गयी है।

जब स्वामी जी अपनी यात्री बोगी की ओर वापस जा रहे थे तो उन्हें एक भक्त के घर पर ले जाया गया जहाँ एक बालक मेरुदण्ड के रोग से गम्भीर रूप से पीड़ित था। स्वामी जी ने उस युवक को कुछ प्राकृतिक उपचार तथा मालिश आदि के बारे में बताया और कहा—"इस बालक की दीर्घायु और उत्तम स्वास्थ्य के लिए अब मैं महामृत्युंजय मन्त्र पढ़ूँगा। मैं यह मन्त्र आपको लिख कर भी दूँगा। आप भी कृपा करके इस मन्त्र का जप करें तथा इस बच्चे को भी कृपा करके मन्त्र जप करने के लिए कहें। इससे उसे स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति होगी और मोक्ष भी मिलेगा।

इसके बाद उन्होंने बालक से कहा—"मेरे बच्चे निराश मत हो, वास्तव में आप अमर, निरोग आत्मा हैं। इसे पहचानिये और स्वीकार कीजिये। ऐसा अनुभव कीजिये कि आप सदा स्वस्थ आत्मा हैं। आप यह रोगी शरीर नहीं हैं। इससे आप प्रचुर शक्ति प्राप्त करेंगे। व्याकुल न हों। धैर्य रखो। आप अति शीघ्र स्वस्थ हो

जायेंगे। निरन्तर राम-नाम का मानसिक जप कीजिये। भगवान् आपको स्वास्थ्य, दीर्घायु, शान्ति, समृद्धि और आन्तरिक आनन्द प्रदान करें।''

स्वामी जी ने महामृत्युंजय मन्त्र पढ़ते हुए अपने हाथों से उस बालक की रीढ़ ही हड्डी पर मालिश की। बालक को स्वामी जी के दयालु व्यवहार के कारण अपने भीतर ऊर्जा तथा शक्ति में वृद्धि का अनुभव हुआ। जब स्वामी जी उसके घर से विदा ले रहे थे तो बालक की माँ की आँखों में आँसू आ गए।

इस व्यस्त दिन की समाप्ति अर्धरात्रि के समय हुई और स्वामी जी तथा उनके शिष्य वापस स्टेशन गए। रास्ते में स्वामी जी ने कहा—''मैं दोपहर ३ बजे से अर्धरात्रि तक चलने वाले तनावपूर्ण कार्यों के बाद भी थकता नहीं हूँ। जब मैं भगवान् के नाम गाता हूँ तो मुझे नयी ऊर्जा मिलती है। जब मैं भगवान् के बारे में बोलता हूँ तो मुझे एक दिव्य शक्ति के अंतरप्रवाह का अनुभव होता है। इन सबसे मुझे थकान के स्थान पर भगवान् के नाम के प्रचार के लिए बड़ी ही प्रसन्नता का अनुभव होता है।

इसके अगले दिन स्वामी जी एक पत्रकार वार्ता में सम्मिलित हुए। उनमें से एक ने प्रश्न किया—''क्या आप सोचते हैं कि पश्चिमी लोग वेदान्त का सन्देश समझ सकते हैं? क्या आप सोचते हैं कि वे योग के लिए तैयार हैं?''

स्वामी जी ने तत्काल उत्तर दिया—''हाँ, हाँ, वे केवल तैयार ही नहीं हैं बल्कि वे तो हमारे सिद्धान्तों की प्रशंसा करते हैं। वास्तव में आज भारत में जितने ज्ञानी और योगी हैं उससे कहीं अधिक पश्चिम में हैं। हम स्वयं जितनी प्रशंसा करते हैं उससे कहीं अधिक वे हमारे सन्देश की प्रशंसा करते हैं। वे लोग हमसे कहीं अधिक योग और वेदान्त के बारे में जानने के लिए उत्सुक हैं। यूरोप में बहुत से लोग हैं जो योगाभ्यास करते हैं और वे उच्च स्तर के साधक हैं। लैटेविटा के हैरी डिकमैन, रूस के बोरिस सैचारो, डेनमार्क के लुइस ब्रिंकफोर्ट, ब्रिटेन के जी.सी. निक्सान तथा अन्य अनेक ऐसे लोग हैं जो योग में निपुण हैं। एलेक्जेंडर तथा निक्सान को योग तथा वेदान्त में ऐसी अन्तःप्रेरणा मिली कि उन्होंने संन्यास ले लिया और स्थाई रूप से भारत में रहने लगे। हम अब उनसे अपना ही योग वेदान्त को सीखने की प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं।

इस प्रश्न के उत्तर में कि 'क्या संसार की एकता सम्भव है? क्या युद्धों का कभी अन्त होगा?' स्वामी जी ने कहा कि 'यह द्वन्द्वता का संसार है। यहाँ अच्छाई और बुराई, शान्ति और युद्ध, सुख और दुःख सदा विद्यमान हैं। आप इस अपूर्ण जगत् में पूर्णता कभी प्राप्त नहीं कर सकते। आप जो भी प्रयत्न करते हैं तथा भगवान् के अवतारों, संतों और ऋषियों ने जो भी कुछ किया, वह मात्र इस संसार में पुण्यात्मा लोगों की संख्या में वृद्धि करने के लिए किया। सतयुग में ऐसे लोगों का प्रतिशत अधिक था और कलियुग में कम है। बस इतना ही अन्तर है। सतयुग में भी बहुत से दुष्ट असुर थे और झगड़े हुआ करते थे। इसका हल बस यही है कि जीव परमात्मा का साक्षात्कार करे तथा यही परम शान्ति और स्थाई सुख है। इसके बाद ही आपको यह ज्ञात होगा कि द्वन्द्वता का संसार स्थाई नहीं है।

पटना में स्वामी जी ने बिहार नेशनल कालेज, पटना युनिवर्सिटी सीनेट हॉल तथा शहर के कुछ अन्य स्थानों में बृहत जनसमूह को संबोधित किया। उन्होंने ऑल इण्डिया रेडियो के पटना केन्द्र से यात्रा की प्रथम रेडियो वार्ता भी प्रसारित की। स्वामी जी ने सीनेट हॉल में प्रत्यक्ष चमत्कार भी किया। ''स्वामी जी ध्यान की महत्ता पर प्रवचन दे रहे थे। फिर स्वामी जी ने 'ॐ 'का नाद किया और दो मिनट जनसमूह को ध्यान कराया। हॉल के बाहर लगभग बीस हजार लोग रहे होंगे। वे स्वामी जी की शान्ति की किरणों से वशीभूत होकर जहाँ भी खड़े अथवा बैठे थे, एकदम शान्त हो गए। वहाँ ऐसा सन्नाटा हो गया कि यदि सुई भी गिरती तो आवाज सुनायी पड़ जाती।

पटना में स्वामी जी भक्त स्त्री, पुरुषों तथा बच्चों के समूह से बातें कर रहे थे। एक नेत्रहीन धनाढ्य व्यक्ति आया और स्वामी जी से बोला—''स्वामी जी, अब मैं कुछ भी नहीं देख सकता। अब मेरी आँखें कभी अच्छी नहीं होंगी।''

स्वामी जी ने कहा—''यह तो और भी अच्छा है। इस संसार का १/५ भाग आपके लिए नष्ट हो गया। आपको शीघ्र ही आध्यात्मिक आन्तरिक दृष्टि प्राप्त होगी। भगवान् के नाम का जप कीजिए, अपना ध्यान उनके चरण-कमलों में लगाइए। ऐसी आशा न करें कि आपकी प्रार्थना तत्काल स्वीकृत हो जाएगी। बुद्ध ने कई वर्षों तक घोर तपस्या की लेकिन उन्हें ज्ञान-प्राप्ति का कोई संकेत नहीं मिला। वे हताश होकर अपनी साधना छोड़ने ही वाले थे कि कुछ घण्टों बाद उन्हें बोधित्व प्राप्त हो गया।

इसी प्रकार चाहे आपको भगवान् की कृपा का संकेत मिले अथवा नहीं, अपनी साधना, जप, प्रार्थना, कीर्तन आदि को नहीं छोड़ना है। ऐसा समझिए कि भगवान् आपको छोटी-छोटी ऋद्धि तथा सिद्धियाँ न देकर एक ही बार में परम ज्ञान प्रदान करना चाहते हैं। इसलिये सदा प्रसन्न रहें। भगवान् आपके ऊपर अवश्य ही कृपा करेंगे।''

अगले दिन प्रातः एक युवा भक्त स्वामी जी के पास आया और उसने स्वामी जी से पूछा—''स्वामी जी, मुझे अपनी साधना में घरवालों का सहयोग नहीं मिलता। वे सदा मेरे मार्ग में विघ्न डालते हैं। मैं क्या करूँ?''

स्वामी जी ने कहा—''आप एक घोर संसारिक व्यक्ति की तरह व्यवहार करें। अपनी ईश्वर भक्ति, मन के आध्यात्मिक झुकाव तथा ईश्वर के प्रति अपने समर्पण को प्रकट न करें। ऐसा व्यवहार करें जैसे आप पूर्ण सांसारिक मनुष्य हैं। तब आपको अपने माता-पिता से कोई विरोध नहीं मिलेगा। लेकिन आपको अपने भीतर ईश्वर प्राप्ति की आकांक्षा जाग्रत रखनी चाहिए। आपको अपनी साधना नियमित रूप से करनी चाहिए। भगवान् के लिए एकान्त में रोना चाहिए। धीरे-धीरे सारी बाधाएँ, परेशानियाँ अदृश्य हो जाएँगी।''

पटना से स्वामी जी एक विशेष जहाज से हाजीपुर गए। यहाँ पर उनके स्वागत के लिए बीस हजार से भी अधिक लोग एकत्रित थे। यहाँ पर लगभग दो मील लम्बी शोभा यात्रा निकाली गयी जिसमें आगे हाथी और हजारों भक्त चल रहे थे। स्वामी जी ने एक स्थानीय विद्यालय के मैदान में विशेष रूप से सजाए गये पंडाल में हजारों लोगों की विशाल भीड़ को संबोधित किया तथा यहाँ पर उन्होंने एक दिव्य जीवन ग्रन्थालय के शुभारम्भ की घोषणा भी की।

स्वामी जी ने संस्कृत विद्यालय, गंगा मंडल तथा जवाहरलाल हॉल में जनसभा को संबोधित किया। यहाँ उन्होंने गया महाविद्यालय के विद्यार्थियों को भी संबोधित किया। स्वामी जी ने बोध-गया (जहाँ भगवान् बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था) तथा विष्णुपाद के भी दर्शन किए। स्वामी जी ने स्थानीय दिव्य जीवन संघ शाखा में एक मन्दिर का लोकार्पण भी किया।

कलकत्ता में स्वामी जी तीन दिन रहे। उनके कीर्तनों और व्याख्यानों से सारा नगर दिव्य विचारों से प्रतिध्वनित हो गया। कलकत्ता शहर के अन्य लोगों के साथ-साथ वहाँ के यूरोपी अरबपति व्यवसायीगण भी स्वामी जी के समान दिव्य, व्यवहारिक तथा जिन्होंने वेदान्त को सारे संसार का धर्म बताया तथा वेदान्त की नये ढंग से और सटीक व्याख्या की, ऐसे संत से प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर बड़े प्रसन्न थे। स्वामी जी के प्रवचन जिसने भी सुने उस पर स्वामी जी ने अपनी अमिट छाप छोड़ी।

दिव्य जीवन संघ की उत्तरी कलकत्ता की शाखा में संगोष्ठी के समय एक बच्चा रोने लगा, कुछ लोग उसे चुप करने का प्रयास करने लगे, ताकि श्रोताओं को विघ्न न पड़े लेकिन बच्चा और जोर से रोने लगा। स्वामी जी ने उन्हें रोका और कहा—''बच्चे को रोने दें। यह भी ॐ का नाद ही है। उसे ॐ का गान करने दें। हम हमारा काम करते हैं।''

यहाँ स्वामी जी ने कलकत्ता महाविद्यालय के आशुतोष हॉल, विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, सीता राम मन्दिर, भारती तमिल संघम तथा दिव्य जीवन संघ शाखा (उत्तर कलकत्ता) में जनसमूह को संबोधित किया। वे पुरी के परम पूज्य शंकराचार्य जी से भी मिले।

ऑल इण्डिया रेडियो के कलकत्ता केन्द्र ने स्वामी जी के वेदान्तिक गीतों का भी प्रसारण किया।

२५ सितम्बर को रेल वाल्टेयर पहुँची। इसी दिन स्वामी जी ने टाउन हॉल और प्रेमसमाजन में जनसमूह को तथा आँध्र विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को संबोधित किया। स्वामी जी जब विद्यार्थियों से बातचीत कर रहे थे तो उन्होंने योगासनों के प्रदर्शन तथा आश्रम से लाए गये चलचित्र को देखने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी ने तुरन्त ही आसनों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन प्रारम्भ करवाया और किसी को स्टेशन से प्रोजेक्टर आदि लाने के लिए भेजा। इतने में किसी ने कहा कि अब हमें अगली सभा के लिए टाउन हॉल चलना चाहिए। तो सभी यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गये कि स्वामी जी कह रहे हैं मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। ये सब विद्यार्थी और मैं मित्र बन गये हैं। टाउन हॉल के लोगों को प्रतीक्षा करने दें। इससे विद्यार्थियों पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ा। वे सभी धैर्यपूर्वक और अनुशासनात्मक तरीके से तब तक प्रतीक्षारत रहे जब

तक प्रोजेक्टर नहीं आ गया और वे स्वामी जी तथा उनके उपदेशों को जीवन में कभी नहीं भूल पाए।

अगले स्थान राजामुन्दरी में स्वामी जी ने शासकीय कला महाविद्यालय, रामकृष्ण सेवा समिति, द सेवा सदन संस्कृत बालिका विद्यालय तथा राजामुन्दरी नगर पालिका निगम कार्यालय में जनसमूह को संबोधित किया। राजामुन्दरी नगर पालिका निगम कार्यालय पर इस यात्रा का सर्वप्रथम नागरिक सम्मान स्वामी जी को प्रदान किया गया। यात्रा का यह प्रथम केन्द्र था जहाँ पर सबसे बड़ी परम्परागत शोभा यात्रा निकाली गयी। यहाँ स्वामी जी ने गोदावरी में स्नान किया तथा गौतमी जीव करुणा आश्रम के दर्शन किए।

राजामुन्दरी से स्वामी जी और उनके दल के सदस्य एक जहाज द्वारा गोदावरी नदी को पारकर कोव्वुर गए। कोव्वुर में सारे जिले के करीब १०००० हजार लोगों ने एकत्र होकर वहाँ एक उत्सव जैसा वातावरण निर्मित कर दिया था। एक फूलों से सजी कार की अगली सीट पर खड़े होकर स्वामी जीने लोगों को दर्शन दिए। यह कार रेंगती हुई नगर के सर्वाधिक लम्बे रास्ते से गयी जिससे लोग अपने घरों के द्वार से ही स्वामी जी के दर्शन प्राप्त कर सकें। कोव्वुर में सभी कार्यक्रमों में श्रेष्ठ पादपूजा थी जो दर्शनीय थी। इसमें हजारों भक्तों ने एक ऋषि के चरणों में अपना हृदय तथा आत्मा समर्पित करते हुए प्रतीक स्वरूप फल और पुष्प अर्पित किए। स्वामी जी के साथ उन्होंने भगवान् के नाम का कीर्तन किया और उनसे दीक्षा ली। यात्रा के सभी केन्द्रों पर स्वामी जी (जो कि भारत की आध्यात्मिक विरासतों के प्रतीकों में से एक थे और भगवद् साक्षात्कार प्राप्त संत थे) की पूजा का भव्य दृश्य स्वयमेव यह दर्शा रहा था कि भारतीयों की भगवान् में आस्था अमर है।

विजयवाड़ा में स्वामी जी एक दिन रुके और उनका यहाँ का प्रवास सच कहा जाए तो स्वामी जी की परम आत्मसमर्पण भाव से की जाने वाली सेवा का प्रत्यक्ष उदाहरण था। स्वामीजी की शारीरिक स्थिति गम्भीर थी। उनकी स्थिति ऐसी थी कि स्वामी जी को छोड़कर बाकी सभी चिन्तित थे। लेकिन स्वामी जी की महान् संकल्पशक्ति ने उनसे विश्राम हेतु की जाने वाली सभी प्रार्थनाओं को शान्त कर दिया था। जहाँ स्वामी जी ठहरे थे वहाँ भी अनेक लोगों ने उनके सत्संग का लाभ लिया।

यहाँ पर उन्होंने स्थानीय महाविद्यालय, कोथकुड़ी मन्दिर तथा राम मोहन पुस्तकालय में जनसभाओं को संबोधित किया। यहाँ पर ऑल इण्डिया रेडियो के स्थानीय केन्द्र से स्वामी जी की एक वार्ता का प्रसारण हुआ तथा स्वामी जी संस्कृत विद्यापीठ देखने के लिए गए।

स्वामी जी मद्रास सेंट्रल रेलवे स्टेशन पर प्रातः ७.३० बजे पहुँचे। हजारों भक्तों ने रेलवे स्टेशन पर बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक स्वामी जी का स्वागत किया। वे वहाँ बड़ी सुबह से ही एकत्रित थे। माल्यार्पण के बाद उन्हें सुसज्जित कार में नागस्वरम तथा बैंड के साथ जुलूस के लिए ले जाया गया।

स्वामी जी सर्वप्रथम पार्थसारथी मन्दिर में गये जहाँ उन्होंने पूजा की। इसके बाद स्वामी जी दिव्य जीवन संघ की जार्ज टाउन शाखा में गए। फिर वे रिपोन बिल्डिंग गये जहाँ उनके सम्मान में भण्डारा दिया गया था। इसी दिन सन्ध्या को स्वामी जी ने साउदर्न इण्डियन जर्नलिस्ट फेडरेशन के सदस्यों को संबोधित किया।

प्रातः तथा मध्याह्न के पूर्व हजारों लोगों ने स्वामी जी के दर्शन किए। इस अति व्यस्त दिवस की समाप्ति पर जब उनसे कट्टुपक्कम शिवानन्द सेवाश्रम की सहायतार्थ आयोजित कार्यक्रम में आने के लिए प्रार्थना की गयी तो स्वामी जी ने उन्हें निराश नहीं किया। वे मात्र स्वामी जी की उपस्थिति चाहते थे परन्तु स्वामी जी ने उन्हें अपने ज्ञान का अमृत भी प्रदान किया। स्वामी जी के शब्दों का प्रवाह एक बार प्रारम्भ हो जाता तो उनके लिए इसे रोकना कठिन था। इसके बारे में एक बार स्वामी जी ने कहा—''जब मैं जनसमूह को संबोधित करने के लिए खड़ा होता हूँ तो मैं स्वयं को सबके साथ एक समझता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि मैं उन्हें अपना हृदय और सभी कुछ निःसंकोच प्रदान कर दूँ। जब तक मुझे यह संतोष नहीं हो जाता कि मैंने संतोषजनक ढंग से उनकी सेवा नहीं कर दी मैं रुक ही नही सकता।''

अगले दिन १ अक्तूबर को स्वामी जी ने प्रातः माथलापुर के भगवान् केशव पेरुमल तथा भगवान् कपिलेश्वर के मन्दिरों में दर्शन किए और पूजा की। यहाँ से वे दिव्य जीवन संघ की ट्रिप्लीकेन शाखा गए। जहाँ हजारों लोगों ने उनकी पाद-पूजा की। इसके बाद वे दिव्य जीवन संघ की पार्क टाउन शाखा में तथा श्री निवास गाँधी

निलायम गए। इसके बाद स्वामी जी मद्रास इन्टरनेशन फेलोशिप गये जहाँ उन्होंने सदस्यों को संबोधित किया।

यदि यह पूर्व निश्चित रहता कि स्वामी जी को विभिन्न जगहों पर जाना है और वे अपने ठहरने के स्थान प: बीच में वापस नहीं आएँगे तो सेबफल के रस तथा सन्तरे के रस से भरे दो फलास्क स्वामी जी की कार में सदा रखे रहते थे जिससे वे सभा के पूर्व तथा बाद में कुछ हल्का पेय पदार्थ ले सकें। अभी स्वामी जी को म्यूजियम थियेटर नामक स्थान पर जाना था और दोनों फलास्क खाली थे। साथ चल रहे शिष्यों ने कहा कि हम इन्हें उस समय भरकर रख लेंगे जब आप मंच पर पहुँचेंगे। इस समय ८ बज रहे थे। स्वामी जी ने कार चालक से कहा—"रुको, पहले हम कुछ पेय लेंगे। शरीर को थोड़ा ईंधन चाहिए।" ड्राइवर पास में स्थित दुकान पर गया और लेमनेड ले आया। स्वामी जी ने दो बोतल लेमनेड पिया और संगोष्ठी में गए। सर्वप्रथम सभापति ने अभिनन्दन पत्र पढ़ा तथा इसे एक चाँदी की पत्र पेटिका बन्द करके स्वामी जी को भेंट किया। फिर प्रसिद्ध लोगों द्वारा भेजे गये सैकड़ों सन्देशों में से कुछ पढ़े गए। स्वामी जी ने आत्मा को आन्दोलित करने वाला भाषण दिया। ऐसा भाषण महात्मा गाँधी की अन्तिम मद्रास यात्रा के बाद आज तक किसी ने नहीं दिया था इस सभा के बाद स्वामी जी ने मायलापुर के ऑल इण्डिया साईं समाज के तत्त्वाधान में लगभग १०.३० बजे तक कीर्तन किया।

२ अक्तूबर सोमवार का दिन भी कार्यक्रमों से भरा रहा। प्रातः ७.३० बजे स्वामी जी ने शिवाजी व्यायाम मण्डल के सदस्यों को संबोधित किया। ९.३० बजे वे हिन्दू थियोसोफिकल महाविद्यालय गये राष्ट्रीय बालिका विद्यालय में गये तथा सन्ध्या ४ बजे उन्होंने गाँधी जी के जन्मदिन पर जार्ज टाउन में जनसमूह को संबोधित किया। सन्ध्या ६ बजे मद्रास फिलोसोफिकल एसोसिएशन में स्वामी जी के प्रवचन का विषय था आधुनिक जगत् के लिए वेदान्त का सन्देश, जिसे हजारों लोगों ने मग्न होकर सुना। सन्ध्या ७.४५ बजे स्वामी जी ने गाँधीनगर अदयार में श्री के.एस. रामास्वामी शास्त्री जी के प्रवचन के कार्यक्रम में अध्यक्षता की।

मद्रास में अन्तिम दिन मंगलवार को स्वामी जी अदयार में कलाक्षेत्र देखने गए, जहाँ उन्होंने शान्ति और आनन्द के साथ दो घण्टे व्यतीत किए। इसके बाद

स्वामी जी थियोसोफिकल सोसाइटी गए। यहाँ से वे अव्वाई होम गए। मध्याह्न में वे माई मैग्जीन के कार्यालय में गए जहाँ माई मैग्जीन के सम्पादक तथा सदस्यों ने स्वामी जी के स्वागत में भाषण दिया। स्वामी जी का प्रथम लेख सन् १९३१ में माई मैग्जीन में प्रकाशित हुआ था और तभी से स्वामी जी के इस पत्रिका से सम्बन्ध थे और आज बीस वर्षों तक भी ये सम्बन्ध बने हुए थे।

निरन्तर बातचीत, प्रवचन तथा गाने से स्वामी जी के कान, नाक तथा गले में अत्यधिक तकलीफ हो गयी। अन्तिम दिन बात करना भी असम्भव हो गया था। प्रति दस मिनट में स्वामी जी को अत्यधिक खाँसी आती और दर्द होता। यह खाँसी इतनी तेज थी कि आसपास बैठे लोग घबरा जाते। लेकिन जैसे ही स्वामी जी को यह समाचार मिला कि वाणी महल पर बृहत जनसमूह उनकी प्रतीक्षा कर रहा है, स्वामी जी ने कहा कि मुझे तत्काल वहाँ ले चलिए। किसी ने कहा—"कृपया आप कुछ देर विश्राम कर लें।" स्वामी जी का उत्तर था—"नहीं, नहीं, अभी मेरे लिए कोई विश्राम नहीं है। जब लोग मेरे लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं, विश्राम के बारे में कौन सोच सकता है?"

जब स्वामी जी वाणी महल पहुँचे तो उनके स्वागत के लिए एक बृहत जनसमूह प्रतीक्षरत था। वहाँ कक्ष में मात्र कुछ हजार लोग आ सकते थे और करीब १०००० लोगों की भीड़ बाहर खड़ी थी।

मंच पर कई महत्वपूर्ण हस्तियाँ विद्यमान थीं। आयोजकों को स्वामी जी के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी थी, इस कारण वे इसे और अधिक बिगड़ने से बचाना चाहते थे। अतः वे स्वामी जी को अधिक श्रम करने से रोकना चाहते थे। लेकिन यदि स्वामी जी एक बार देख लेते कि सामने भीड़ एकत्रित है तो फिर उन्हें कोई नहीं रोक सकता था। करीब ५० मिनट तक स्वामी जी ने प्रवचन दिया जिसमें उन्होंने श्रोताओं के सामने अपना हृदय खोल कर रख दिया। सम्पूर्ण यात्रा में यहाँ पर प्रथम बार स्वामी जी को माइक्रोफोन की आवश्यकता पड़ी क्योंकि उनका गला इतना खराब था कि उनके आसपास बैठे लोग भी उनकी बात कठिनाई से सुन पा रहे थे। स्वामी जी माइक्रोफोन को कसकर पकड़े थे। यह उनकी आवाज को तो बढ़ा ही रहा था, साथ ही यह उनकी खड़े रहने में भी सहायता कर रहा था। आयोजकों ने देखा कि इस

सहारे से भी स्वामी जी पर जोर पड़ रहा था। इसलिये उन्होंने स्वामी जी से निवेदन किया कि वे बैठकर बोलें परन्तु स्वामी जी ने कहा कि यदि मैं बैठकर बोलूँगा तो उतनी भावना के साथ बात नहीं कर पाऊँगा जितनी मैं खड़े रहकर करता हूँ। अभी मैं उन्हें देख सकता हूँ और वे मुझे देख सकते हैं।

व्याख्यान के पश्चात् योगासन तथा आनन्द कुटीर की गतिविधियों का चलचित्र दिखाया गया। इसके बाद स्वामी जी ने थोड़ा विश्राम किया। फिर सभी एग्मोर रेलवे स्टेशन गये जहाँ हजारों लोग एकत्र थे। रात्रि १०.२५ बजे स्वामी जी रेल में बैठ गए।

मद्रास के लोगों के ऊपर स्वामी जी की स्मरणीय यात्रा का जो प्रभाव पड़ा, उसका अनुमान लगाना कठिन था। इसने उस प्रचलित भय को झुठला दिया कि भारत में शहरों से धर्म अदृश्य हो गया है। स्वामी जी चार दिनों तक मद्रास में रहे, वहाँ प्रत्येक के होठों पर शिवानन्द नाम था और प्रत्येक के हृदय में दिव्य जीवन सन्देश था। बच्चा-बच्चा ''ईट अ लिटिल'' (थोड़ा खाओ, थोड़ा पियो) गीता गा रहा था और गरीब और अनाथ लोग भी ऐसा अनुभव कर रहे थे कि वे भी धन्य हैं और उनका भी कोई मित्र है।

''मनुष्य को मनुष्य का आदर करना चाहिए और सभी प्रकार के भेदों को भुला देना चाहिए तथा बन्धनों को तोड़ देना चाहिए। सभी को एक ही अर्थात् समदृष्टि से देखना चाहिए'' स्वामी जी के इस आह्वान ने मद्रास के निवासियों के व्यवहार पर चमत्कारिक रूप से प्रभाव डाला।

मद्रास के बाद स्वामी जी विल्लापुरम गये और वहाँ पहुँचने पर ही स्वामी जी को मद्रास में हुई शारीरिक थकान का पता चला। यहाँ आयोजकों ने स्वामी जी का स्वास्थ्य ठीक न देखकर उन्हें पर्याप्त विश्राम प्रदान किया तथा रेलवे स्टेशन से स्वामी जी के लिए एक बड़ी शोभायात्रा निकाली गयी और लोगों ने उनके दर्शन किए।

अगले दिन स्वामी जी चिदम्बरम गये जहाँ उन्होंने शणमुग विलास में अन्नामलई विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को तथा चिदम्बरम के निवासियों को संबोधित किया। वहाँ वे भगवान् नटराज के मन्दिर में महर्षि शुद्धानन्द भर्तियार से भी मिले।

५ से ७ अक्तूबर तक स्वामी जी मयूरम में रहे। यहाँ धरमपुरम आश्रम के परम पूज्य महसन्निधनम जी द्वारा स्वामी जी की अत्यन्त स्नेह से की गयी देखभाल तथा धरमपुरम आश्रम में रुकने से स्वामी जी के रोगी शरीर में नयी ऊर्जा तथा शक्ति का पुनः प्रवेश हुआ, जिससे वे अपनी निष्काम्य सेवा के लिए पुनः तैयार हो गए।

मयूरम रेवले स्टेशन से धरमपुरम आश्रम तक निकाली गयी शोभा यात्रा इतनी अद्‌भुत तथा दर्शनीय थी जैसे किसी देवता की सवारी निकल रही है।

स्वामी जी ने मयूरम में नगरपालिका के कार्यालय (जहाँ पर भण्डारे का भी आयोजन था) तथा धरमपुरम आश्रम में जनसमूह को संबोधित किया। यहीं पर प्रथम बार उनका प्रवचन रिकार्ड किया गया और इसे अगले दिन महर्षि शुद्धानन्द भर्तियार के सम्मान में आयोजित सभा में सुनाया गया। महर्षि शुद्धानन्द भर्तियार चिदम्बरम में स्वामी जी से पुनः मिलने आए। स्वामी जी ने यहाँ बहुत से मन्दिरों के दर्शन भी किए, जहाँ उनका बड़े सम्मान के साथ स्वागत किया गया।

७ अक्तूबर को स्वामी जी तंजोर गए। यहाँ भी उनके खराब स्वास्थ्य तथा थकावट के कारण तंजोर की तरह एक दर्शनीय शोभा यात्रा शहर की मुख्य सड़कों पर निकाली गयी और इसके बाद पाद-पूजा की गयी। आयोजकों ने जिस प्रकार स्वामी जी की अत्यन्त प्रेमपूर्वक देखभाल की, वह प्रशंसनीय थी।

शंकर आश्रम में जहाँ पाद-पूजा की गयी थी, स्वामी जी ने भक्तों को दर्शन दिए। स्वामी जी की अस्वस्थता के कारण तंजोर नगरपालिका द्वारा दिया जाने वाला नागरिक भोज का कार्यक्रम निरस्त कर दिया गया।

तंजोर में मात्र दो घण्टे रुकने के बाद स्वामी जी त्रिचनापोली चले गये और इस प्रकार वे अपने नियत कार्यक्रम से एक दिन पूर्व पहुँच गये थे। इस कार्यक्रम के बारे में कुछ लोगों को ही मालूम था। लेकिन भक्तगण बहुत चतुर थे। वे रेलवे के कर्मचारियों से निरन्तर सम्पर्क बनाए हुए थे, इसलिये उन्हें इस परिवर्तित कार्यक्रम की जानकारी मिल गयी। वे त्रिचनापोली रेलवे स्टेशन पर तथा रास्ते में स्वामी जी के स्वागत के लिए प्रतीक्षारत थे। त्रिचनापोली में ही स्वामी जी ने एस.पी.जी. कालेज में पढ़ाई की थी। स्वामी   को उनके रुकने वाले स्थान पर ले जाया जा रहा था तो

रास्ते में स्वामी जी ने जानी-पहचानी जगहों और घटनाओं (युवावस्था की) का स्मरण किया। उनका यह प्रक्रम उनके जन्म-स्थान पहुँचने तक चलता रहा।

स्वामी जी ने अगले दिन सुबह तक पूर्ण विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः ४ बजे से कार्यक्रम का प्रारमभ हुआ। ९ बजे त्रिचनापोली के मुख्य मार्गों पर लगभग दो मील लम्बी शोभायात्रा निकली। स्वामी जी एक सुसज्जित कार में बैठे थे। जुलूस के आगे-आगे तीन हाथी, नागस्वरम, बैंड तथा गायक लोगों का दल चल रहा था। जुलूस सैकड़ों स्थानों पर रुका और लोगों ने स्वामी जी को मालाएँ पहनाईं। एक विद्यालय में भण्डारे का आयोजन था। जब जुलूस उस विद्यालय में पहुँचा तो हजारों की संख्या में लोगों ने माल्यार्पण किया। इतनी अधिक भीड़ थी कि लोगों को स्वामी जी की ओर दौड़ने से रोकना असम्भव हो गया था।

त्रिचनापोली में कई बड़ी-बड़ी जनसभाएँ हुईं किन्तु नेशनल कालेज में लोगों की उपस्थिति ने सबको अचम्भित कर दिया। वहाँ पर स्वामी जी के प्रवचन सुनने के लिए खुले स्थान में लगभग ५०००० लोग एकत्र हुए थे, जबकि तेज बारिश होने का भय था। जब आयोजकों ने विभिन्न संस्थानों से आए १२ स्वागत सम्बोधनों को पढ़ना प्रारम्भ किया तो भीड़ नियन्त्रण से बाहर हो गयी। वे सभी स्वामी जी को सीधे ही सुनना चाहते थे। जैसे ही स्वामी जी ने बोलना प्रारम्भ किया, वर्षा प्रारम्भ हो गयी लेकिन भीड़ एकदम स्थिर खड़ी थी। वहाँ पूर्ण शान्ति थी। वे स्वामी जी के प्रवचन को सुनने में इतने मग्न थे कि उन्हें यह ध्यान ही न रहा कि वर्षा में पूरी तरह से भीग चुके हैं।

त्रिचनापोली में चिकित्सकों ने उनका परीक्षण किया और सभी चिकित्सकों की यह सलाह थी कि स्वामी जी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए क्योंकि उन्हें कार्डियक हायपर ट्रॉफी (जिसमें हृदय बड़ा हो जाता है) हो गया है। स्वामी जी को उनकी सलाह नहीं भाई, वे ऐसा कैसे कर सकते थे और उन्होंने इस सलाह को नहीं माना।

अगले दिन जब स्वामी जी अपने दल के साथ त्रिचनापोली से विदा ले रहे थे तो उन्हें प्लेटफार्म के नीचे से ले जाया गया। यदि ऐसा न किया जाता तो स्वामी जी का भीड़ के कारण डिब्बे तक पहुँचना कठिन था। जब रेल स्टेशन छोड़ने वाली थी

तो रेल पथ निरीक्षक ने आदेश दिया कि रेल को धीरे-धीरे आगे बढ़ाया जाए ताकि जो हजारों लोग वहाँ एकत्रित हैं वे स्वामी जी के दर्शन कर सकें।

पुटुकोट्टई में स्वामी जी के सम्मान में नगरपालिका ने भोज दिया और वहाँ स्वामी जी ने जनसमूह को संबोधित किया। यहाँ भी १०००० से अधिक लोगों ने उनके दर्शन किए। चेट्टिनाड के रास्ते में वे एरीमालम में रुके और वहाँ उन्होंने अपने पूर्वज संत श्री स्वामिगल को श्रद्धांजलि अर्पित की (उनकी यहाँ पर समाधि है)।

चेट्टिनाड में स्वामी जी ने जनसमूह को संबोधित किया तथा एक पत्रकार वार्ता भी दी। यहाँ से वे रामेश्वरम गए। ११ अक्तूबर को महालया अमावस्या का पवित्र दिन था, इस दिन स्वामी जी ने भगवान् रामेश्वरम की पूजा की और फिर उन्होंने शिवलिंग का गंगोत्री से लाए गंगाजल से अभिषेक किया। (गंगोत्री यहाँ से २००० मील दूर है और इसे इसी उद्देश्य से लाया गया था।)

यहाँ पर स्वामी जी की विनम्रता तथा लोगों की भक्ति के मध्य द्वन्द्व युद्ध हो गया। स्वामी जी को मन्दिर ले जाने के लिए यहाँ एक पालकी लाई गयी थी परन्तु वे किसी अन्य व्यक्ति के कन्धों पर चढ़ना नहीं चाहते थे। आयोजकों ने स्वामी जी से अत्यन्त भावपूर्ण निवेदन किया और प्रार्थना की तो स्वामी जी उनकी भावनाओं का ख्याल करके कुछ कदम तक पालकी में बैठे। उसके पश्चात स्वामी जी के विनम्र निवेदन पर वे उन्हें बैलगाड़ी में बैठाकर मन्दिर ले गए। (स्वामी परमानन्द जी ने इस यात्रा को इस प्रकार समायोजित किया था कि स्वामी जी परिवहन के साधनों का अनुभव करें जैसे रेल, नाव, हवाई जहाज, कार और अब इस सूची में बैलगाड़ी का भी नाम जुड़ गया।)

यहाँ से फिर स्वामी जी कुछ देर धनुषकोटि में रुके और दिव्य जीवन संघ की शाखा में एक जनसभा को संबोधित किया। धनुषकोटि से स्वामी जी जहाज से श्रीलंका गए। इस जहाज का नाम था एस.एस.गोरो। श्रीलंका में स्वामी जी का राजकीय सम्मान के साथ स्वागत हुआ क्योंकि वे एक विदेशी अतिथि थे। स्वामी जी के साथ में वहाँ के लोग शीघ्र ही राष्ट्र तथा मानव-निर्मित बन्धनों को भूल गये और उन्होंने स्वामी जी को अपने हृदय-सिंहासन पर विराजमान कर दिया और उनसे प्रेम की परम भावना के साथ जुड़ गए।

स्वामी जी के श्रीलंका पहुँचने पर उनके स्वागत के लिए तालाई मन्नार वाइर में बृहत जनसमूह प्रतीक्षारत था। ये सभी लोग उनके श्रीलंका आगमन पर स्वागत के लिए ट्रिंकोमेली, जाफना, कोलम्बो आदि बहुत दूर स्थित जगहों से आए थे।

दिनांक १२ अक्तूबर १९५० को प्रातः ८ बज कर ५० मिनट पर स्वामी जी कोलम्बो फोर्ट रेलवे स्टेशन पहुँचे, जिसे एक मन्दिर की भाँति सजाया गया था और वहाँ पर स्वामी जी के भक्त तथा प्रशंसक बड़ी सुबह से ही एकत्रित थे। स्वामी जी के जैसे ही रेल में से दर्शन हुए, हरोहरा तथा गुरु नामावली का गायन किया गया। वहाँ पारम्परिक विधि से स्वामी जी का स्वागत किया गया तथा नगर के महापौर तथा स्वागत समिति के सभापति महोदय ने माल्यार्पण किया। स्वामी जी कुछ समय तक एक विशेष रूप से निर्मित मंच पर खड़े हुए जिससे बृहत जनसमूह उनके दर्शन कर सके। इसके बाद स्वामी जी मुख्य द्वार तक पैदल चलते हुए आए जिससे वहाँ एकत्रित हजारों अन्य लोग उनके दर्शन कर सकें। कोलम्बो रेलवे स्टेशन पर महापौर की कार प्रतीक्षारत थी। उसमें स्वामी जी को बैठाया गया, पुलिस ने भीड़ को कार की ओर दौड़ने से रोका। इस सम्पूर्ण समारोह की श्रीलंका सरकार द्वारा फिल्म बनाई गयी स्वामी जी की कार के आगे एक पायलेट कार चल रही थी जिसमें लोगों को रास्ते से हटाने के लिए लाउड स्पीकर लगे थे। महापौर की कार में स्वामी जी के साथ श्री कांतिनाथ वैथियानाथन थे और कार के पीछे मोटर साइकिल पर सवार दो पुलिस वाले चल रहे थे। महापौर की कार के चालक ने बताया कि अतिरिक्त पुलिस पायलेट एस्कॉर्ट की सुविधा मात्र राज्यपाल तथा विदेशी सरकार के उच्च अधिकारियों तथा विश्व के प्रतिनिधियों को प्रदान की जाती है।

स्वामी जी ने टाउन हॉल, नगर निगम, विश्वविद्यालय रामकृष्ण मिशन, थाम्बिया, मुदालार छत्रम, शैव मंगयार कलागम तथा श्री विवेकानन्द सोसाइटी में लोगों को संबोधित किया।

नगर पालिका द्वारा स्वामी जी के सम्मान में एक भण्डारे का आयोजन भी किया गया जिसमें श्रीलंका के प्रधानमन्त्री माननीय श्री डी.एस. सेनानायके भी सम्मिलित हुए। इसमें स्वामी जी को ताड़ के पत्तों पर लिखा एक अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया तथा स्वामी जी द्वारा टाउन हॉल में दिया गया सम्बोधन भी रेडियो

श्रीलंका से प्रसारित किया गया। स्वामी जी स्थानीय मन्दिर तथा केलानिया बौद्ध विहार भी देखने गए।

बाद में श्रीमती शिवानन्दम ताम्बिया के घर पर स्वामी जी ने कई स्त्री तथा पुरुषों को साक्षात्कार भी दिया। उनमें से एक समूह से स्वामी जी ने कहा—

"मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—कर्मशील, भावुक, योगी और ज्ञानी। इसलिये ऋषियों ने भी इन चार प्रकार के स्वभाव (प्रकृति) वाले लोगों के लिए आत्म-ज्ञान के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए चार मार्ग कर्म योग, भक्तियोग, राजयोग तथा ज्ञानयोग बताए हैं।"

"प्रत्येक व्यक्ति में ये चारों ही प्रतिभाएँ होती हैं किन्तु इनमें से किसी एक की अधिकता मुख्य रूप से होती है। इसलिये इनमें से किसी एक पर विशेष ध्यान देते हुए मिश्रयोग का व्यवहार करना वर्तमान युग में सर्वाधिक अनुकूल है। यह मिश्रयोग आपका संतुलित विकास करता है।"

"निम्काम्य सेवा का फल है ज्ञान। इसलिये निष्काम्य सेवा सबसे अधिक आवश्यक है।"

"आपको दिन के एक निश्चित समय पर ध्यान अवश्य करना चाहिए। धीरे-धीरे उस निश्चित समय पर स्वयमेव ध्यान लगने लगता है। इसके साथ-साथ आपको धीरे-धीरे इस समय में वृद्धि करके इस ध्यानावस्था को सारे दिन बनाए रखना है। तभी आप निश्चल, शान्तिपूर्ण, प्रसन्न और संतुलित रहेंगे। आप अधिक से अधिक काम कर सकेंगे और पूर्ण दक्षता के साथ भी। विचारों की दृढ़ पृष्ठभूमि रखें। यह आपको सारे दिन ध्यानावस्था में रहने में सहायक होगी। आपको शीघ्र ही ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होगा।"

तांबैया चेतीराम में सत्संग के बाद स्वामी जी को डाक्टर कुमारन के चिकित्सालय में ले जाया गया। यहाँ पर उनका एक विशेषज्ञ द्वारा परीक्षण किया गया। मूत्र-परीक्षण से ज्ञात हुआ कि शक्कर का प्रतिशत २.५ है। डा. कुमारन और उनके भाई यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि शक्कर का प्रतिशत इतना अधिक होने के बाद भी स्वामी जी यात्रा के तनाव को झेलने में समर्थ कैसे हैं। साथ ही यह उनके लिए भी आश्चर्य का विषय था जो उन्हें अभी तक आनन्द कुटीर में देखते

आए हैं। आनन्द कुटीर में स्वामी जी पहाड़ी पर ऊपर जाने में भी कभी-कभी चक्कर आने की शिकायत करते थे तथा उनके कुटीर से मात्र १०० फीट दूर स्थित कार्यालय जाने मे वे थक जाते थे और आजकल तो उन्हें कभी-कभी चक्कर आने के कारण छड़ी का सहारा लेना पड़ता था। सबको आश्चर्य में डालकर स्वामी जी पिछले एक माह से यात्रा पर थे तथा ढेरों-ढेर कार्यक्रम भी दे रहे थे। जब यह बात स्वामी जी के ध्यान में लाई गयी तो स्वामी जी का कहना था—"यह सब भगवान् की कृपा है।"

श्रीलंका में प्रतिदिन सन्ध्या के समय विद्यार्थी, अधिकारीगण, महापौर, मन्त्रीगण, हिन्दू, बौद्ध, धनाढ्य वर्ग तथा कृषक वर्ग सभी स्वामी जी की सभा में मन्त्र मुग्ध होकर सुनते थे। इस यात्रा में कोलम्बो शीर्ष पर था। श्रीलंका के लोगों ने अपना हृदय स्वामी जी को समर्पित कर दिया तथा उनकी भक्ति, उनके ईश्वर और दिव्य जीवन के प्रति प्रेम तथा ईश्वर भक्ति ने स्वामी जी के हृदय पर अमिट छाप छोड़ी।

स्वामी जी के प्रस्थान के समय भीड़ को रोके रखने तथा उनकी कार को प्लेटफार्म तक जाने के लिए मार्ग को खाली रखने के लिए रेलवे स्टेशन पर एक बड़ा पुलिस दल खड़ा था। वहाँ एकत्रित भीड़ से विदा लेने के समय का दृश्य बड़ा ही मार्मिक था। रेल के चलने के समय स्वामी जी द्वार पर खड़े थे और कई लोग फूट-फूट कर रो पड़े।

अगले दिन प्रातः ५ बजे रेल कुरुनेगला स्टेशन पहुँची। थकावट भरी यात्रा तथा पूर्व दिवस के व्यस्त कार्यक्रम के कारण कुछ सदस्य गहरी नींद में सोए हुए थे। यहाँ प्लेटफार्म पर मधुर स्वरों में भजन तथा कीर्तन हुआ। स्वयं श्रीमती नित्यलक्ष्मी ताम्बीराजा एवं उनकी पुत्रियाँ भी इसमें सम्मिलित थीं। स्वामी जी ने भक्तों को प्रणाम किया और श्रीमती ताम्बीराजा को पहचान कर बोले—"आजकल आप मुझे पत्र नहीं लिखतीं। पहले तो आपनी साधना के बारे में मुझे नियमित पत्र लिखती थीं।" श्रीमती ताम्बीराजा ने स्वामी जी को वचन दिया कि अब वे भविष्य में और अधिक नियमित रहेंगी। श्रीमती ताम्बीराजा ने बोगी के भीतर सभी लोगों के लिए प्रचुर मात्रा में चांय, बिस्किट, दूध, टोस्ट, फल आदि भिजवाए।

भारत वापसी पर स्वामी जी ने धनुषकोटि में पुनः जनसभा को संबोधित किया। उस रात वहाँ चार वर्षों पश्चात् पहली बार वर्षा हुई।

मदुरै में जो शोभायात्रा निकली वह अत्यन्त दर्शनीय थी। इसमें एक नागस्वरम का दल था तथा स्वामी जी को एक चार पहियों वाली बग्घी में ले जाया गया, जिसके दोनों और दो हाथी के बच्चे थे जिनके सिर पर स्वर्ण का चन्दोबा था। इसके बाद स्वामी जी के क्रमबद्ध दर्शन का कार्यक्रम था। तीन घण्टों तक स्वामी जी बैठे रहे जिससे भक्तगण संतोषपूर्वक उनके दर्शन कर सकें।

यहाँ स्वामी जी ने सौराष्ट्र माध्यमिक विद्यालय, सेथुपथी माध्यमिक विद्यालय तथा मीनाक्षी मन्दिर में जनसमूह को संबोधित किया। मीनाक्षी मन्दिर में सुनने वालों की संख्या लगभग पचास हजार होगी।

विरुधु नगर में स्वामी जी के पास मात्र इतना ही समय था कि वे कार से मुख्य मार्गों पर जा सकते थे। इसलिये एक सुन्दर जुलूस निकाला गया। उनकी बग्घी लगभग २५ स्थानों पर रुकी जहाँ उन्हें कई संस्थानों ने उन्हें अभिनन्दन पत्र दिए। स्वामी जी कुछ देर के लिए वहाँ के एक स्थानीय मन्दिर में दर्शन करने गये तथा वहाँ जनसमूह को संबोधित किया।

लगभग ३० वर्षों पश्चात् स्वामी जी ने अपने गृहनगर तिरुनेलवेली के दर्शन किए और दो दिन अपने सम्बन्धियों के साथ व्यतीत किए। यहाँ प्रेम तथा आदर का भाव बड़ा ही मर्मस्पर्शी था। स्वामी जी ने यहाँ हिन्दू महाविद्यालय तथा सेन्टेनरी हॉल में जनसमूह को संबोधित किया तथा सेन्टेनी हॉली में उन्हें एक मुसलमान भक्त ने अभिनन्दन पत्र भेंट किया।

तिरुनेलवेली से नागरकोइल होते हुए स्वामी जी पत्तमडै गये जो कि स्वामी जी का जन्म स्थान है। यहाँ पर बड़े ही प्रेम तथा उत्साह के साथ उनका स्वागत किया गया। यहाँ माध्यमिक विद्यालय में स्वामी जी ने जनसमूह को संबोधित किया।

नागरकोइल के मार्गों पर स्वामी जी को एक बत्तियों से सुसज्जित रथ में ले जाया गया जिसके साथ-साथ नागस्वरम तथा कीर्तनकारियों का दल भी था। अगले दिन प्रातः स्वामी जी कन्याकुमारी गये जहाँ स्वामी जी ने कन्याकुमारी का पूजन किया तथा जहाँ तीनों समुद्रों का संगम होता है, वहाँ स्वामी जी ने स्नान भी किया।

यहाँ उन्होंने सुचिन्दरम मन्दिर तथा महादनपुरम के दर्शन भी किए। दोपहर में वे नागरकोइल वापस आए तथा यहाँ उन्होंने एक बृहत जनसमूह को संबोधित किया। इस सभा में कुछ गलतफहमी हो गयी और आयोजकों ने घोषणा कर दी थी कि यदि आप अच्छी तरह व्यवहार करेंगे तो स्वामी जी प्रसन्न होंगे।

स्वामी जी ने कहा कि 'मैं आपके व्यवहार पर ध्यान न देते हुए आपसे सदा प्रसन्न हूँ तथा नागरकोइल की यात्रा की अद्भुत छाप अपने साथ लेकर जा रहा हूँ।' उनकी इन बातों से भीड़ पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ा।

त्रिवेन्द्रम में जिन्होंने भी ट्रावनकोर कोचीन के महामहिम राजप्रमुख को ऋषि शिवानन्द का महल में स्वागत करते हुए देखा, वे एक अन्य ही युग में प्रविष्ट हो गए। यह उसी प्रकार था जैसे राजा जनक ऋषि याज्ञवल्क्य का अपने महल में स्वागत कर रहे हों। १८ अक्तूबर को स्वामी जी ने टाउन हॉल में एक जनसभा को संबोधित किया। १९ तारीख को स्वामी जी प्रसिद्ध पद्मनाभा स्वामी मन्दिर में दर्शन करने के लिए गए। महल में उन्होंने दोपहर का भोजन लिया तथा वहाँ कीर्तन का संचालन किया। जब स्वामी जी ने राज परिवार से विदा ली उस समय राजमहल स्वामी जी के कीर्तन तथा दार्शनिक गीतों से प्रतिध्वनित हो रहा था।

त्रिवेन्द्रम से स्वामी जी हवाई जहाज से बैंगलोर गए। रास्ते में कोयम्बटूर हवाई अड्डे पर स्वामी जी का प्रभावशाली ढंग से स्वागत किया गया।

१९ अक्तूबर को बैंगलोर हवाई अड्डे पर स्वामी जी के स्वागत के लिए बड़ी भीड़ थी। यहाँ स्वामी जी ने लगभग ८००० भक्तों को संबोधित किया। बैंगलोर हवाई अड्डे से स्वामी जी मैसूर गये जहाँ वे संस्कृत महाविद्यालय में रुके। यहाँ से वे मैसूर महाराज के महल गये और शाम को तथा अगले दिन वहीं रहे। बैंगलोर वापस जाकर वे राजा बन्धु महल में रुके। स्वामी जी को सुनने के लिए बैंगलोर में हजारों-हजार लोग खिंचे चले आए। जनसभा में लगभग १०००० लोग उपस्थित थे। इतनी अधिक भीड़ होने के बाद भी कार्यक्रम अत्यन्त सुगमतापूर्वक और सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इसके लिए आर.बी.ए.एन.एम.हाई स्कूल, एस.एस. सातक मण्डली (जिन्होंने स्वामी के सम्मान में अम्बरीश के जीवन पर आधारित नाटक का मंचन किया था), राम मन्दिर, ई.एम.ई. सेन्टर जालाहालीत्र, बैंगलोर

नगरपालिका (जहाँ पर सामूहिक भोज (भण्डारा) था), और दिव्य जीवन संघ की कई शाखाओं ने कठोर श्रम किया और इसके लिए उन्हें कोटिशः धन्यवाद।

जलाहल्ली में स्वामी जी ने सेना के जवानों तथा अधिकारियों की बहुत बड़ी सभा को संबोधित किया। इसका आयोजन कर्नल आर.एम.न्यूटन किंग ने किया था। अपने ९० मिनट के इस प्रेरणाप्रद प्रवचन में स्वामी जी ने उनसे सम्पूर्ण हृदय से निवेदन किया कि ''आप सभी शक्तिशाली हैं तथा उत्साह, पौरुष तथा स्फूर्ति से परिपूर्ण हैं।'' आपके द्वारा किया जाने वाला प्रणवोच्चार भी शक्तिशाली होना चाहिए। ॐ महान् शुद्धिकारक है। प्रणवोच्चार आपके भीतर शक्ति को अनुप्राणित (प्रवेश) करेगा और आपके मन को शान्त करेगा। ॐ का बड़ा ही अद्‌भुत प्रभाव है। समस्त जनसमूह ने जोर से प्रणवोच्चार किया। महामन्त्र कीर्तन करने के बाद स्वामी जी ने आगे कहा—''यह संसार आपको संतुष्टि नहीं प्रदान कर सकता। आप इसके साथ कामनाओं के मजबूत बन्धनों से बंधे हुए हैं। कामना ही आपकी वास्तविक शत्रु है। कामना ने आपकी सच्ची स्वतन्त्रता को चुरा लिया है। कामना ने आपको अपना दास बना लिया है। आपको स्वयं को विवेक और वैराग्य के अस्त्रों से सुसज्जित करना होगा। मुक्ति की प्रबल इच्छा रखें तथा अपने भीतर स्थित भयंकर शत्रुओं के साथ युद्ध करें... एक विश्व युद्ध को समाप्त होने में कुछ वर्ष लगते हैं लेकिन अज्ञानता, कामनाओं तथा अन्य दुर्गुणों के साथ चलने वाला यह आन्तरिक युद्ध समाप्त होने में कई जीवन लग जाएँगे। प्रयत्न, दृढ़ अध्यवसाय तथा गहन ध्यान द्वारा आप सरलता से सफलता प्राप्त करेंगे और इसी क्षण भगवद् साक्षात्कार प्राप्त करेंगे। आन्तरिक शत्रु बड़ा शक्तिशाली है। आपको इस पर विजय प्राप्त करने के लिए विभिन्न विधियाँ अपनानी होंगी। इसके लिए व्यक्ति को जप, कीर्तन, ध्यान, धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, सतसंग, आत्मनिरीक्षण, निष्काम्य सेवा इन सभी की संयुक्त विधि की आवश्यकता होती है। ये सभी आपके भीतर छिपे हुए दुर्गुणों के निराकरण तथा सद्‌गुणों के अर्जन में सहायता करेंगी।

२३ अक्तूबर को स्वामी जी जब हैदराबाद हवाई अड्डे पर पहुँचे तो स्वामी जी के स्वागत के लिए वहाँ लगभग ५००० लोग एकत्र थे। मध्याह्न में उन्होंने

ओसमानिया विश्वविद्यालय, मेहबूब महाविद्यालय तथा निज़ाम महाविद्यालय के विद्यार्थियों को संबोधित किया। इन सभाओं में जन प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे।

महाविद्यालय में प्रवचन के बाद स्वामी जी के लिए आसपास एकत्रित उत्साही जनों से बचना कठिन हो गया था। इसके बाद शिव मन्दिर में जहाँ अगली जनसभा थी, वहाँ भी स्वामी जी को बाहर आने में बड़ी कठिनाई हुई। मुख्य प्रवेशद्वार पर बहुत अधिक भीड़ थी। इस कारण स्वामी जी को पास के प्रवेशद्वार से निकाल कर ले जाना पड़ा। जब स्वामी जी जा रहे थे तो भीड़ को नियन्त्रित करना कठिन हो रहा था। इस कारण उन्हें चुपचाप गलियारे से ले जाया गया। जैसे ही लोगों को इसका भान हुआ वे स्वामी जी से आधे रास्ते पर मिलने के लिए दौड़ पड़े। इतनी अधिक भीड़ में भी जिनको स्वामी जी के चरण-स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया उनकी खुशी का कोई ठिकाना न था। उनकी खुशी का अनुमान उनके आँसुओं से भीगे मुख से लगाया जा सकता था। उनके लिए स्वामी जी के चरण-स्पर्श करना महान् सौभाग्य की बात थी।

इस अति व्यस्त कार्यक्रम के बाद स्वामी जी तथा अन्य सभी प्रतापगिरि कोठी गये, जहाँ पर प्रतापगिरी के राजा जी ने स्वामी जी के ठहरने की व्यवस्था की थी। स्वामी जी अत्यन्त थक गये थे। उन्हें सीढ़ियों पर चढ़ने में बड़ी तकलीफ हो रही थी तथा सांस लेने में कष्ट हो रहा था और उन्हें थोड़ी-थोड़ी सीढ़ियों के बाद विश्राम लेना पड़ रहा था। आज मध्याह्न के कार्यक्रमों में स्वामी जी की सारी ऊर्जा खर्च हो गयी थी। कोई भी व्यक्ति जिसने स्वामी जी को मंच पर नृत्य करते देखा हो, वह यह विश्वास ही नहीं कर सकता कि थोड़ी सी सीढ़ियाँ चढ़ने के लिए उन्हें सहारा लेना पड़ रहा होगा। स्वामी जी परमानन्द जी से बोले—"अब मैं यहाँ से एक इंच भी नहीं हिल सकता। कृपया मुझे अभी ऋषिकेश ले चलिए। आगे के सारे कार्यक्रम निरस्त कर दें।" इसके बाद वे सीढ़ियों के ऊपर स्थित कमरे में चले गए।

इसके आधा घण्टे बाद एक आमन्त्रण-पत्र में छपे हुए कार्यक्रम के अनुसार सन्ध्या का संकीर्तन प्रतापगिरि कोठी के लॉन में प्रारम्भ हो गया। स्वामी परमानन्द जी ने स्वामी जी से अनुरोध किया कि आप इस कार्यक्रम में न जाएँ और पूर्ण विश्राम करें तथा उन्हें यह भी विश्वास दिलाया कि हमारे साथ के अन्य सदस्य कीर्तन

संचालित करेंगे। लेकिन नहीं, स्वामी जी कहाँ मानने वाले थे। उनको तो सबसे पहले जाना था और सम्पूर्ण कार्यक्रम में स्वामी जी का संकीर्तन तथा संकीर्तन पर उनका प्रवचन था।

जिस किसी ने भी स्वामी जी को थोड़ी देर पहले सीढ़ियाँ ऊपर चढ़कर जाते देखा था और यह कहते सुना था कि ''मुझे अभी ऋषिकेश ले चलो'' वह स्वामी जी को इस सभा में देखकर आश्चर्यचकित हो गया था।

यह स्वामी जी की अपनी ही लीला (दिव्यलीला) थी। स्वामी जी अक्सर उपदेश देने के स्थान पर उदाहरण द्वारा सिखाते थे। अपनी इस महान् इच्छाशक्ति के परम प्राकट्य द्वारा उन्होंने इस बात का प्रत्यक्ष प्रदर्शन किया कि साधक किस प्रकार अपने मन को अपने पूर्ण नियन्त्रण में रख सकता है। यदि मन विश्राम और अवकाश की माँग करे, यदि वह अन्यों की सेवा में, कीर्तन में, स्वाध्याय अथवा साधना में रुचि न ले तो इसके सामने झुकना अस्वीकार कर दें। इसे अपना आज्ञाकारी दास बनायें।

मात्र चार घण्टों की निद्रा के पश्चात् अगले दिन स्वामी जी ने ऑल इण्डिया रेडियो के हैदराबाद केन्द्र से दुर्गा पूजा के महत्त्व पर एक वार्ता प्रसारित की तथा वे दिव्य जीवन संघ की गोवलीपुरा शाखा गये और वहाँ एक पारमार्थिक औषधालय के शुभारम्भ की घोषणा की।

स्वामी जी तथा अन्य २५ दिसम्बर को रेल से पूना गए। हालाँकि पूना पहले यात्रा में सम्मिलित नहीं था परन्तु फिर भी अल्प समयावधि में ही सफलतापूर्वक सम्पूर्ण कार्यक्रम का आयोजन किया गया और रेलवे स्टेशन पर बहुत बड़ी भीड़ एकत्रित हो गयी। स्वामी जी यहाँ बहुत सी जनसभाओं में गये, जैसे सरस्वती विद्यालय, मलेरिया संस्थान, सेंट मीरा माध्यामिक विद्यालय, डा. विश्वनाथन के निवास, दिव्य जीवन संघ किरकी शाखा, तिलक मन्दिर, साईं दास मण्डल आदि। स्वामी जी ने आलन्दी में संत ज्ञानेश्वर की समाधि के भी दर्शन किए।

स्वामी जी २६ अक्तूबर को अपने साथी सदस्यों के साथ मुम्बई पहुँचे। माधव बाग में स्वामी जी ने बृहत जनसमूह को संबोधित किया। स्वामी जी ने लक्ष्मी बाग, साउथ इण्डियन एजुकेशन सोसाइटी, आस्तीक समाज, वनिता विशराम गर्ल्स

स्कूल, सुनीता गर्ल्स स्कूल, बाम्बे स्प्रिचुअल सेन्टर (ब्लावात्स्की लॉज), संन्यास आश्रम, दैविक जीवन चैतन्य प्रभा मण्डली, सांता क्रुज में री पी.जी. पुरोहित के निवास स्थल तथा भारतीय विद्या भवन भी लोगों को संबोधित किया। स्वामी जी ने ऑल इण्डिया रेडियों के मुम्बई केन्द्र से एक वार्ता भी प्रसारित की।

भारतीय विद्याभवन में न्यायाधीश भगवती द्वारा दिया गया स्वामी जी का परिचय हृदय को द्रवित करने वाला था। उन्होंने कहा—"यहाँ जो श्रोताओं का बृहत समूह मैं देख रहा हूँ वह इस बात का प्रमाण है कि आप सभी स्वामी जी से भली-भाँति परिचित हैं। जब उनकी प्रसिद्धि सारे भारत में फैली हुई है और आप सब उनके मुख से ज्ञान के शब्द सुनने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं तो उनके बारे में आपसे कुछ भी कहने वाला मैं कौन होता हूँ? इन दिनों जब हम अनैतिकता की असीम गहराइयों में डूबे हुए हैं तब स्वामी जी जैसा संत प्राप्त करना तथा स्वामी जी का यहाँ आकर हमें ज्ञान देना वास्तव में वैसा ही है जैसे मरुस्थल में मरुद्यान (हरित प्रदेश) मिल गया हो। हमारे लिए उनको सुनना और मात्र सुनना ही नहीं उसके अनुरूप अपने कर्मों को ढालना भी वास्तव में हमारे लिए अनिवार्य है।

मुम्बई में अन्तिम दिन का जो मुख्य कार्यक्रम था वह था स्वामी जी की पाद-पूजा का कार्यक्रम। स्वामी जी के सहयोगी चाहते थे कि पाद-पूजा के पूर्व स्वामी जी कुछ देर विश्राम कर लें। जैसे ही वे लेटने वाले थे उन्होंने देखा कि आसपास रहने वाले लोग अपने छज्जों में खड़े होकर दरवाजे और खिड़की में से झांककर उन्हें देख रहे हैं। स्वामी जी तुरन्त उठ कर बाहर आ गये और छज्जे में खड़े होकर उन सबको दर्शन दिए। स्वामी जी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वे सभी प्रसन्न हो गए। इसके बाद स्वामी जी ने थोड़े फल लेकर उनको दिखाए और इशारे से कहा—"मैं आपके लिए यह प्रसाद भेज रहा हूँ। आप कृपा करके स्वीकार करें" और कुछ लोगों के हाथ पड़ोस वाले घर में स्वामी जी ने प्रसाद भिजवाया।

इसके बाद स्वामी जी छत पर गये और सीधे उस ओर गये जो सड़क के पास था। वहाँ पर मंच बना था और इस पर आत्मानन्द जी कीर्तन कर रहे थे। स्वामी जी वहाँ पर एकत्रित लोगों को संबोधित करने लगे। यहाँ लगभग १००० लोग स्वामी जी के दर्शन तथा उनके प्रवचन को सुनने के लिए धूप में खड़े हुए थे।

स्वामी जी ने उनसे कहा—''आप सब देख रहे हैं मैं आपकी तरफ मुड़ गया हूँ और कीर्तन कर रहा हूँ। जो लोग छत पर बैठे हैं वे आराम से बैठे हैं, लेकिन आप तेज धूप में खड़े हुए हैं। आपको जो असुविधा हो रही है उस पर ध्यान न दें। आप सभी में भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण और आस्था है। आप आध्यात्मिक प्रवचन सुनने के लिए तथा कीर्तन करने हेतु उत्सुक हैं। आप सभी मुझे बहुत अधिक प्रिय हैं।''

बम्बई से बड़ौदा के रास्ते में एक छोटी से जगह अमलसाड़ में स्वामी जी के दर्शनों तथा उनके प्रवचनों को सुनने के लिए लगभग ५०००० लोग एकत्र हुए थे। ये सभी वहाँ लगभग ५०-५० मील की दूरी तय करके आए थे। रेलवे के द्वारा इस समय विशेष रेलें चलाई गईं। विद्यालयों के मैदानों में जनसभा हुई। जब स्वामी जी ने देखा कि सन्ध्या के समय रेलवे स्टेशन पर भीड़ एकत्रित है तो उन्होंने वहाँ भी कीर्तन का संचालन किया।

बड़ौदा में स्वामी जी ने टाउन हॉल में जनसमूह को संबोधित किया तथा विठ्ठल मन्दिर में सत्संग किया। १ नवम्बर को स्वामी जी ने यहाँ दिव्य जीवन संघ की शाखा का शुभारम्भ किया और कहा—''मैं दिव्य जीवन संघ की शाखा के शुभारम्भ की घोषणा करता हूँ। दिव्य जीवन संघ एक विश्वव्यापी संस्था है। इसके कोई विशेष मत अथवा सिद्धान्त नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति इस संस्था का सदस्य बन सकता है। सम्पूर्ण यूरोप तथा अमेरिका में इसकी शाखाएँ हैं। ईसाई, मुस्लिम, पारसी, जर्मन तथा फ्रांसीसी लोग भी इसके सदस्य हैं। कुछ लोग प्रारम्भ में बड़ी रुचि और अत्यधिक उत्साह दर्शाते हैं लेकिन बाद में उनकी रुचि समाप्त हो जाती है तथा जो काम उन्होंने हाथ में लिया होता है उसे भी छोड़ देते हैं। आपको उनकी तरह नहीं बनना है। ...सचिव तथा अध्यक्ष तथा अन्य कार्यकताओं को अनुकूलनीयता का विकास करना चाहिए। आपको प्रत्येक के साथ सामंजस्य करना चाहिए। तभी संस्थान उन्नति करेगा और इसे जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

अगला स्थल था अहमदाबाद जहाँ स्वामी जी ने प्रेमाबाई हॉल में जनसभा को संबोधित किया और गीता मन्दिर में दो बार सत्संगों का आयोजन हुआ। स्वामी जी महात्मा गाँधी के साबरमती आश्रम के दर्शन के लिए भी गये और वहाँ पर उन्होंने आश्रम में रहने वाले लोगों को भी संबोधित किया। स्वामी जी ने प्रेस के पत्रकारों को

भी एक साक्षात्कार दिया। जब सभी पत्रकारों के प्रश्नों के उत्तर दे दिए गये तो उसके बाद स्वामी जी ने सारांश में अपनी शिक्षाएँ बताईं।

सेवा, प्रेम, दान, पवित्रता, ध्यान, साक्षात्कार

भले बनो, भला करो, दयालु बनो, सहनशील बनो अनुकूलनीय बनो, सामंजस्य करो, समायोजन करो

अपमान सहो, आघात सहो—यही है सर्वोच्च साधना। जिज्ञासा करो मैं कौन हूँ। आत्मा को जानो और मुक्त हो जाओ।

अपमान सहो, आघात सहो, यही सर्वोच्च साधना है। एक कठोर शब्द आपको विचलित कर देता है, आप की आँखों में खून उतर आता है और आप यह कहते हुए कि "आप जानते हैं कि मैं कौन हूँ?" तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं आप अत्यन्त बुद्धिमान् होते हुए भी स्वयं पर नियन्त्रण नहीं रख पाते। आपको यह सोचकर कि 'ये मात्र ईथर में ध्वनि की तरंगे हैं।' शान्तभाव से अपमान और आघात को सहन करना सीखना होगा। इसके लिए अहंकार का पूर्ण नष्ट होना आवश्यक है। आपको जिज्ञासा करनी चाहिए मैं कौन हूँ? किसने किसका अपमान किया? और इस प्रकार जब-जब आपका अपमान हो उस प्रत्येक अवसर का उपयोग आप आत्म-निरीक्षण, जिज्ञासा तथा आध्यात्मिक प्रगति हेतु सुअवसर के रूप में करें।

जिस प्रकार गीता में भगवान् ने कुछ विशेष मूलभूत सद्‌गुण बताएं हैं जो साधक की शीघ्र आध्यातिमक प्रगति हेतु आवश्यक हैं। मैंने अठारह मूल सद्‌गुणों का चयन किया है और इन्हें विद्यार्थियों के लाभार्थ एक गीत के रूप में समायोजित किया है। आशा है आप इसे पसन्द करेंगे।

शाँतता, नियमितता, निरभिमानिता
निष्कपटता, सरलता, सत्यवादिता
शान्तचित्तता, दृढ़ता, अक्रोधता
अनुकूलनीयता, विनम्रता, दृढ़ संकल्प
पूर्णता, तेजस्विता, उदारता
दयालुता, सज्जनता, उदारता

उपरोक्त अठारह सद्गुणों का नित्य व्यवहार करो। आप शीघ्र अमरता प्राप्त करेंगे।

ब्रह्म ही एक सत्य है।
अमुक अमुक व्यक्ति का मिथ्या अस्तित्व है।
आप रहेंगे नित्य अमरता और नित्यता में
आप अनेकता में एकता देखेंगे
यह आप किसी विश्वविद्यालय में प्राप्त नहीं कर सकते
आप इसे अरण्य विश्वविद्यालय में प्राप्त करेंगे।

स्वामी जी ४ नवम्बर को नई दिल्ली पहुँचे। स्वामी जी का स्वागत नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर विजय मंच पर किया गया और उस समय वहाँ इतनी अधिक भीड़ थी कि एक सेना की टुकड़ी द्वारा भी उसे नियन्त्रित करना कठिन था। ५ तारीख को स्वागत समारोह की अध्यक्षता भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री पतंजलि शास्त्री द्वारा की गयी और कई प्रमुख व्यक्तियों द्वारा स्वामी जी का अभिनन्दन किया गया। इसके साथ-ही-साथ स्वामी जी ने बिड़ला मन्दिर हॉल, सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, योग आश्रम, दिल्ली विश्वविद्यालय, लोधी कालोनी, सालवन स्कूल तथा वाय.एम.सी.ए. में भी प्रवचन दिए। बिड़ला मन्दिर तथा सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा में स्वामी जी ने अपने दिल्ली निवास के समय नित्य एक जनसभा को संबोधित किया।

स्वामी जी महात्मा गाँधी जी के समाधि स्थल राजघाट तथा जहाँ उनको गोली लगी थी (बिड़ला हाउस) भी गये और दोनों जगह श्रद्धांजलि अर्पित की।

स्वामी जी ने ऑल इण्डिया रेडियों के दिल्ली केन्द्र से एक वार्ता भी प्रसारित की।

महान् आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक श्री गणेश गोस्वामी दत्त ने कहा था—"क्या चमत्कार है। इस एक साधु ने भारत की राजधानी में अपनी उपस्थिति मात्र से नई दिल्ली के सम्पूर्ण वातावरण को रूपान्तरित कर दिया!" न्यायाधीश श्री पातंजलि शास्त्री जी ने कहा—"स्वामी जी, आपने अपने अन्तर्चक्षु से देखा कि वास्तविक

आवश्यकता कहाँ है और आपने यह आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया। यह वास्तव में एक महानतम कार्य है।''

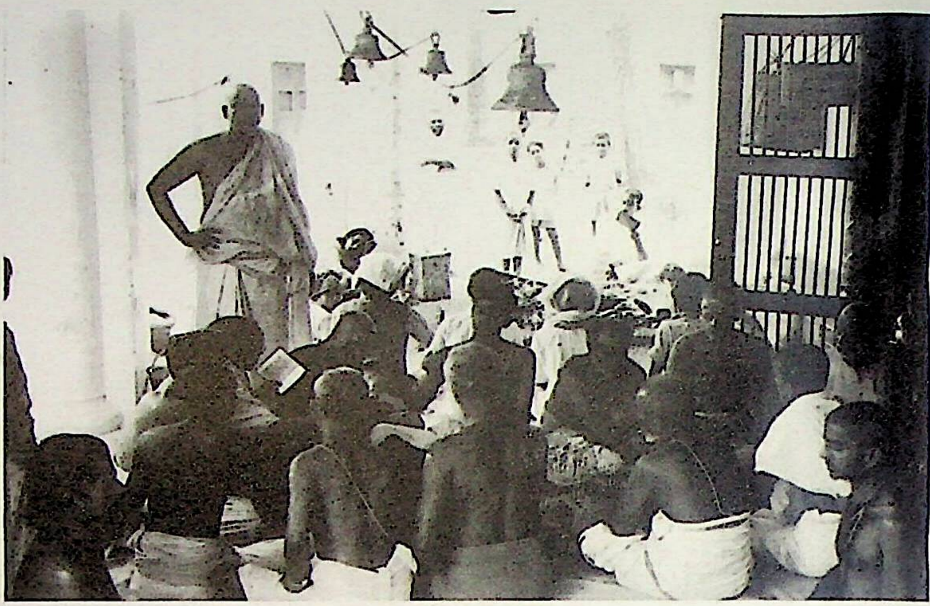
नई दिल्ली में स्वामी जी के प्रवास का एक विशेष कार्यक्रम था भक्तों के घर जाना (इनमें से भारतीय सेना के प्रमुख जनरल के.जे. करियप्पा सम्मिलित थे) और वहाँ जाकर उन्होंने सत्संग भी किया। इनमें से एक सत्संग के बाद स्वामी जी ने कहा—''मैं नहीं सोचता कि अभी हमने जो पूरी योंजनाबद्ध रूप से तथा प्रचार आदि करके यात्रा की, वह इस घर-घर जाकर सत्संग करने से अधिक प्रभावशाली होगी। हमारे पास एक ऐसी गाड़ी होनी चाहिए जिससे हम गाँव-गाँव जायें और घर-घर सत्संग करें। यह आध्यात्मिक ज्ञान प्रसार का सर्वाधिक प्रभावशाली तरीका है।''

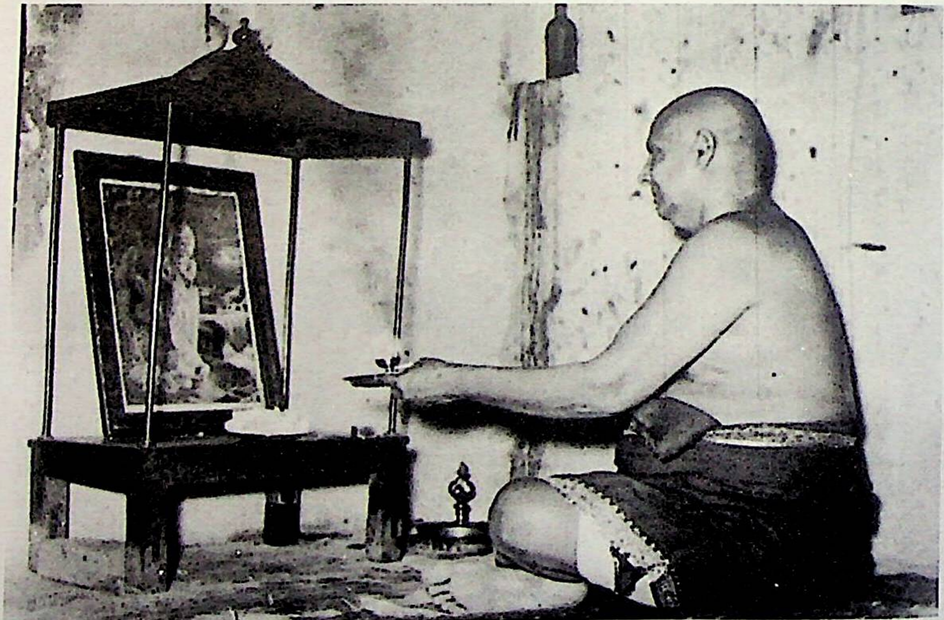
दो माह की इस भारत और श्रीलंका की यात्रा के द्वारा स्वामी जी ने अत्यधिक सेवा की तथा देश-भर में जन-जन का अपूर्व आध्यात्मिक जागरण किया और अब स्वामी जी गंगा नदी के तट पर स्थित अपने स्थान पर वापस आ गए। स्वामी जी के मुख पर अत्यधिक शान्ति थी और उससे आध्यात्मिक प्रवाह की किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं, जिससे सारा देश उनके ज्ञान से लाभान्वित हुआ। और इस सर्वाधिक कठिन कार्य को करने के बाद भी न तो वे स्वयं थके, न ही उनका यह भौतिक शरीर। ऋषिकेश के महात्माओं ने उनके ओजस्वी मुख तथा चमकती आँखों में यह सन्देश पढ़ा—''सेवा आपको अनन्त दैवी स्रोत से शक्ति, प्रसन्नता तथा ऊर्जा प्राप्त करने योग्य बनाती है।''

ऋषिकेश में स्वामी जी का उन सभी ने बड़ी ही भव्यता, प्रेम तथा आदर के साथ स्वागत किया। वे सभी स्वामी जी की अतिमानवीय उपलब्धियों पर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहे थे तथा स्वामी जी पूर्ण स्वस्थ थे, इसलिये अत्यधिक प्रसन्न थे। जब स्वामी जी उनसे दो महा पूर्व बिछड़े थे तो वे फूट-फूट कर रो दिए थे और जब वे वापस आए तो उनकी आँखों में खुशी के आँसू थे। आखिर वे पिछले पच्चीस वर्षों से स्वामी जी के साथ रह रहे थे।

आश्रम में स्वामी जी के आगमन पर उनके शिष्यों ने उनका स्वागत किया। वे स्वामी जी को माला पहनाने और उनके चरण स्पर्श करने हेतु दौड़ पड़े। एक शोभा







यात्रा के साथ स्वामी जी को वापस आश्रम लाया गया। पूरे दो माह पश्चात् स्वामी जी अपने गंगा किनारे स्थित कुटीर में वापस आए। स्वामी जी अपना ओवरकोट उतार कर गंगा जी की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने गंगा माँ की पूजा की और सीढ़ियों पर बैठ कर ईश्वर के ध्यान में लीन हो गए।

आश्रम आए हुए स्वामी जी को मुश्किल से आधा घण्टा हुआ होगा, वे अपने कार्यालय में बैठे काम कर रहे थे। उनके मुख पर सम्पूर्ण भारत यात्रा की थकान की छाया भी न थी। स्वामी जी ने प्रातःकालीन प्रार्थना की और अपनी मेज पर रखे पत्रों को देखने लग गए।

सम्पूर्ण भारत भ्रमण के अनुभवों के सम्बन्ध में स्वामी जी ने लिखा—''यह पवित्र भारतवर्ष जिसकी आध्यात्मिक समानता में मैं श्रीलंका को भी सम्मिलित कर रहा हूँ, वह सम्पूर्ण मानव-जाति का सदा आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन करता रहेगा। भारत माता ने सारे संसार के बच्चों का पालन-पोषण ज्ञान रूपी दुग्ध से किया है। वह ज्ञान, वह मूल आध्यात्मिकता, वह अमरता की आकांक्षा, वह ईश्वर के प्रति प्रेम जो वैदिक काल के समय लोगों में परिलक्षित होता था, वह आज भी भारतीयों के रक्त में दौड़ रहा है। यही है वह जो मैंने सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा में पाया।''

स्वामी जी सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा के समय जिन अनेकों संस्थानों में गये, वह दिन उनके लिए लाल अक्षरों में अंकित हो गया। उन्होंने इसे अपने धार्मिक पंचांग में अंकित कर लिया और वे इसे प्रतिवर्ष शिवानन्द विजय दिवस (स्वामी जी के आगमन की वर्षगांठ) के रूप में मनाने लगे। इस प्रकार स्वामी जी की यह यात्रा एक स्थाई प्रेरणा का स्रोत बनी।

इसमें किञ्चित भी सन्देह नहीं है कि स्वामी जी की इस अविस्मरणीय यात्रा से देश में मात्र आध्यात्मिक जाग्रति ही नहीं आयी वरन् इसने दिव्य जीवन संघ की स्थापना हेतु दृढ़ आधार प्रदान किया। इससे मिशन को एकदम से प्रोत्साहन मिला और हजारों लोग स्वामी जी के सम्पर्क में आए और संस्था की आय में वृद्धि हुई। यह स्वामी जी का चमत्कार था, यह चमत्कार था निरन्तर की जा रही आत्म-त्याग की सेवा का।

विश्व धर्म-संसद

जब स्वामी परमानन्द जी नेविश्व धर्म-संसद बुलाने का विचार रखा तो स्वामी जी ने बड़े उत्साह से इसका समर्थन किया और सभी तरह से उन्हें प्रोत्साहन दिया तथा यह कहा कि 'यदि कुछ बाधाएं आएं तो भी आप निरुत्साहित न हों। अन्त में सफलता अवश्य मिलेगी।'

सन् १९५३ में दिनांक ३,४,५ अप्रैल को आश्रम में धर्म-संसद का आयोजन हुआ। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण, अपूर्व आनन्द का तथा आध्यात्मिक उत्साह का अवसर था। आश्रम जैसे एक नगर में बदल गया और १ अप्रैल से ही यहाँ उत्सव का वातावरण था। स्वागत समारोह समिति के अध्यक्ष (श्री एन.सी. घोष) तथा स्वामी परमानन्द जी कार्यक्रम को अन्तिम रूप देने में व्यस्त थे। २ अप्रैल की सन्ध्या को सभी प्रतिनिधि आ गये थे। आश्रम के सभी निष्काम सेवी कार्यकताओं को अतिथियों के स्वागत उनकी व्यवस्था तथा देखभाल हेतु उत्तरदायित्व सौंप दिए गये थे। ऐसे अनूठे आयोजनों के समय स्वामी जी आश्रम के कार्यकताओं में अद्भुत उत्साह भर देते थे और यह स्पष्ट ही परिलक्षित होता था। ये सभी स्वामी तथा साधक अपनी साधना और गुरुसेवा हेतु समर्पित ज़ीवन के अभ्यस्त थे तथा तुरन्त स्वेच्छा से स्वयं को मानव यन्त्र में रूपान्तरित कर देते थे और सेवा में लग जाते थे। इनमें से प्रत्येक बिना भूले अपने स्थान पर पहुँच जाता था तथा अपना कर्तव्य भली-भाँति पूर्ण करता था और बिना कुछ कहे कोई भी कार्यभार स्वीकार करने के लिए तैयार रहता था। स्वामी जी ने उन्हें उपदेशों के द्वारा नहीं वरन् स्वयं के उदाहरण द्वारा प्रशिक्षित किया था क्योंकि उपदेश मात्र का प्रभाव अस्थाई होता है। इस त्रिदिवसीय विश्व धर्म-संसद के बारे में प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया में जो सूचना छपी, वह निम्नानुसार है—

ऋषिकेश में गंगा तट पर स्थित शिवानन्द आश्रम में त्रिदिवसीय विश्व धर्म-संसद का उद्घाटन श्री सी.पी. रामास्वामी अय्यर ने किया तथा इसमें सभी प्रमुख धर्मों के लगभग २०० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए।

इसके आयोजक श्री स्वामी शिवानन्द जी जिनकी आयु अभी सड़सठ वर्ष है, उन्होंने सभी धर्मों की एकता पर बल देते हुए कहा कि धर्मों में जो भिन्नताएँ हैं, वे मूल रूप से शास्त्र पद्धतियों अर्थात् कर्मकाण्डों में हैं।

श्री रामास्वामी अय्यर ने कहा कि 'हमारा कार्यक्रम अनेकता में एकता पर बल देने के लिए आयोजित किया गया है। यह संसार एक विशेष सांचे से बना हुआ नहीं है। विभिन्नता भी एकता की भाँति ही महत्वपूर्ण है।

एक ही नीरस एकरूपता रखने वाले लोग धर्मों के लिए उतने ही हानिकारक हैं जितने कि निरर्थक भिन्नता रखने वाले। सदियों से भारतीय जातियाँ जिस भाव के कारण जीवित हैं, वह है जीवन के लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति। हमारे रास्ते भिन्न हैं परन्तु लक्ष्य एक है। आज जब यह सारा जगत् भय के चंगुल में है, यदि भारत किसी भी बात के लिए खड़ा है तो वह है भय से मुक्ति और यही वह सहयोग है जो भारत संसार में शान्ति लाने के लिए प्रदान कर सकता है।

विश्व धर्म-संसद की सफलता हेतु उपराष्ट्रपति डा. राधाकृष्ण, केन्द्रीय मन्त्रियों, राज्यपालों, राजप्रमुख, श्रीमान बी.जी. खेर, लन्दन के उच्चायुक्त, श्रीमान चेस्टर बाउल्स, जनरल करियप्पा और कई विदेशी संगठनों के सन्देश प्राप्त हुए।

विश्व धर्म-संसद में सम्मिलित होने वाले प्रमुख अतिथि थे मेजर जनरल यदुनाथ सिंह (इन्होंने कश्मीर में सेना की कार्यवाही में मुख्य भूमिका अदा ही तथा इस समय नेपाल में सेना के प्रमुख थे) मेजर जनरल ए.एन. शर्मा (जो सेना के निवृत्तमान प्रमुख चिकित्सक थे) तथा संन्यासी और अन्य बहुत से लोग।

विश्व धर्म-संसद प्रारम्भ होने के ठीक पहले गुरु ग्रन्थ साहब को लेकर एक शोभायात्रा निकाली गई जिसमें आगे हाथी चल रहे थे और साथ में ब्रास बैण्ड भी थे।

संसद में स्वामी शिवानन्द जी ने उपनिषदों के श्लोक पढ़े तथा सभी धर्मों के पैगम्बरों तथा ऋषियों जिनमें कृष्ण, ईसा मसीह, बुद्ध, मुहम्मद और कन्फ्यूशियस भी सम्मिलित थे, के आदर-स्वरूप एक अंग्रेजी गीत गाया।

स्वामी शिवानन्द जी ने इस बात को अस्वीकार किया कि धर्म जनसमूह को उन्मत्त कर देता है। उन्होंने कहा कि 'धर्म कोई भय से जन्मा रोग नहीं है बल्कि यह तो

हमारी श्वाँस है। यह शान्ति, भाईचारे तथा आत्म-साक्षात्कार का मार्ग दिखलाता है।'

स्वामी शिवानन्द जी ने श्रोताओं को भले बनने, दुष्कर्म त्यागने, अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने तथा देश-सेवा के लिए कठिन परिश्रम करने की प्रेरणा देने के लिए तुरन्त कविता बना कर सुनायी।

यह संसद प्रातःकाल तथा सन्ध्या के समय और देर रात तक बैठती थी जिसमें संसार के सभी प्रमुख धर्मों के प्रतिनिधियों ने सम्बोधन दिया। स्वामी जी इस संसद के आयोजन के पूर्व दो माह से कटिवात से गम्भीर रूप से पीड़ित थे और संसद के लिए ही अपने कुटीर से बाहर निकले थे, लेकिन वे सर्वप्रथम पहुँचते थे और सबसे अन्त में संसद से आते थे। तीसरे दिन संसद तब तक चली जब तक वहाँ आए सभी व्यक्ति जो बोलना चाहते थे, उन्हें बोलने का एक अवसर प्राप्त हो गया। इस समय रात्रि के दो बजे थे जब स्वामी जी विश्राम हेतु गये और आश्चर्य की बात थी कि प्रातः ५ बजे स्वामी जी श्री अनन्त शयनम अयंगार (जो बाद में भारतीय संसद के स्पीकर बन गये) से उनके दिल्ली प्रस्थान के पूर्व मिलने के लिये तैयार थे। स्वामी जी की शारीरिक स्थिति उनके मन की शक्ति और सेवा-भाव के मध्य कभी बाधक नहीं बनी।

संसद में सम्मिलित होने वाले लोगों में से कुछ इस प्रकार हैं—डा. एम.एच. सैयद (निवृत्तमान व्याख्याता, इलाहाबाद विश्वविद्यालय), डा. बी.एल. आत्रेय (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मनोविज्ञान विभाग के प्रमुख), क्वेकर मूवमैंट के श्री सेंट जॉन कैचपूल, एक महान् वेदान्तिक लीडर श्री स्वामी निर्मली, हिन्दू महासभा के अध्यक्ष श्री एन.सी. चटर्जी, कलकत्ता से योगदा सत्संग के श्री स्वामी आत्मानन्द, सरदार बलवन्त सिंह, नव कल्याण मठ पुरी श्री कुमारास्वामी, धारवाड़ से श्री व्यास जी महाराज, स्विटजरलैंड से श्री एच.जे. हब्लूब्जेल, माऊँट आबू से ब्रह्मकुमारियाँ, गीता प्रेस के श्री जयदयाल गोयनका जी, महर्षि शुद्धानन्द भर्तियार जी, दीवान बहादुर श्री के.एस. रामास्वामी शास्त्रियार, डा. थामस रान्श्च, जे.ई. डा. सोइदर्शनो, भारत में इण्डोनेशिया के राजदूत, कैलाश आश्रम के महामण्डलेश्वर श्री चैतन्य गिरी जी, दिल्ली के महामण्डलेश्वर श्री स्वामी

गंगेश्वरानन्द जी, वशिष्ठ गुहा के श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी, मदुरई के श्री शिवानन्द विजय लक्ष्मी।

इस विश्व धर्म-संसद के आयोजन में विभिन्न धर्मों के जो प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं हो सके उनके लेखों को संकलित करके एक आकर्षक विश्व विश्व धर्म-संसद स्मारिका निकाली गयी। इसमें बड़े बड़े विद्वानों के लेख थे।

विश्व विश्व धर्म-संसद का मुख्य लक्ष्य था स्वामी जी द्वारा विश्व के सभी धर्मों के अनुयाइयों के मध्य एक-दूसरे की बात को समझकर मैत्री-भाव का विकास करना, जिससे कि उनका संयुक्त नैतिक बल संसार का आध्यात्मिक जागरण कर सके, जो वर्तमान में सर्वाधिक आवश्यक है।

हीरक जयन्ती

स्वामी जी के सत्तरवें जन्म दिवस को एक महत्वपूर्ण दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया। उनके आध्यात्मिक प्रभाव ने सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया था तथा स्वामी जी ने अपने जीवनकाल में ही अपने महान् लक्ष्य को पुष्पित-पल्लवित होते तथा संसार के हजारों लोगों को देवत्व की ओर बढ़ते देख लिया था। जब वे ऋषिकेश में एक साधु के रूप में मात्र एक वस्त्र तथा कमण्डल जिसे वे अपना कह सकते थे, के साथ आये थे, उस घटना को अभी मात्र ३२ वर्ष ही हुये थे। आज स्वामी जी की ऋषिकेश की सड़कों पर पूर्ण आदर तथा सम्मान के साथ भव्य शोभा यात्रा निकल रही थी। आश्रम भी अब एक गौशाला से नगर में बदल गया था। समर्पित शिष्यों ने वहाँ एक भव्य मन्दिर स्थापित कर दिया था तथा अपने जीवनकाल में ही स्वामी जी की पूजा हुई। हीरक जयन्ती इस कीर्ति की साक्षी थी।

७ सितम्बर को जो भव्य शोभा यात्रा निकली वह आज तक के ऋषिकेश के इतिहास में सर्वाधिक बड़ी थी। यह स्वामी जी के सम्पूर्ण भारत भ्रमण के समय निकाली गयी शोभा यात्रा से भी बड़ी और भव्य थी। इसका आयोजन स्वामी परमानन्द जी ने किया था (और बड़े-बड़े कार्यों को भव्यता से करना उनका स्वाभाविक गुण था)।

यह शोभा यात्रा लगभग १ मील लम्बी थी। इसमें मोटर कारों का समूह तथा बसें थीं जिनमें भक्त, संकीर्तनकार, गायक तथा स्वामी जी के समर्पित शिष्य थे। कुछ महामन्त्र कीर्तन कर रहे थे, कुछ प्रसन्नता से नृत्य कर रहे थे, कुछ वेद मन्त्रों का पाठ कर रहे थे। यह स्वामी जी के उत्साही शिष्यों की छोटी-सी दैवी सेना थी जो कि इस रजत जयन्ती उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आश्रम आये थे और इसके साथ एक बाजे वालों का दल तथा एक नट भी था।

सारे ऋषिकेश में उत्सव का वातावरण था। ऋषिकेश के इतिहास में पहली बार रास्ते के दोनों ओर झण्डे और बैनर लगे थे और उन पर लिखा था स्वामी शिवानन्द जी अमर रहें। शोभा यात्रा ने पूरे नगर का भ्रमण किया जिससे नगर का प्रत्येक व्यक्ति स्वामी जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सके। स्वामी जी की कार एक राज सिंहासन की तरह सजायी हुई थी।

ऋषिकेश के मुख्य बाजार से जब शोभा यात्रा आगे बढ़ रही थी तो अचानक सब रुक गये। देखने पर मालूम हुआ कि कुछ स्त्रियाँ जो स्वामी जी की कार के आगे-आगे चल रही थीं, वे सभी अच्छे सम्भ्रान्त घरों की थीं और वे स्वामी जी की दिव्य उपस्थिति में अपना सब कुछ भूल कर भावोत्कर्ष में नृत्य करने लगीं थीं। उनके भीतर इतने बड़े जनसमूह के सामने लज्जा अथवा भय का भी कोई भाव न था।

स्वामी जी की कार अनेकों दुकानों के सामने रुकी और दुकानदारों ने बड़े ही समर्पण भाव से स्वामी जी की पूजा की। स्वामी जी की पूजा करते समय उनके मन में यह भाव कदापि नहीं था कि स्वामी जी उस संस्था के प्रमुख हैं जिसे उन्होंने सामान आदि के लिए उधार दिया है। वे उन्हें माला पहना रहे थे तथा उनके दिव्य चरणों की पुष्पों से पूजा कर रहे थे और उनकी कर्पूर आरती कर रहे थे। उन्हें विश्वास था कि इससे उन्हें स्वामी जी की कृपा और आशीर्वाद प्राप्त होगा। जब स्वामी जी उनकी ओर मुड़ कर देखते और पूछते—"अच्छा, यह सेवाराम जी की दुकान है? आया राम जी की दुकान कौन-सी है?" आदि तो वे अपने आपको कितना भाग्यवान् और प्रसन्न अनुभव करते थे।

प्रत्येक स्थान पर फल और मिठाइयाँ स्वामी जी को अर्पित किये गये और स्वामी जी के दिव्य स्पर्श बाद उन्हें भक्तों को वितरित कर दिया गया। यहाँ तक कि

जब शोभा यात्रा चल रही थी तो स्वामी जी इन्हें शोभा यात्रा में सम्मिलित लोगों को तथा जो गा रहे थे और नृत्य कर रहे थे, उन्हें वितरित करते जा रहे थे।

जब स्वामी जी आश्रम वापस आये और वे अपने कुटीर में प्रवेश कर रहे थे तो उन्होंने अपने साथ जो भी लोग थे, उन्हें बुलाया और अपने साथ भोजन लेने के लिए आमन्त्रित किया और कहा—"आप सारे रास्ते पैदल चलते-चलते, गाते और नृत्य करते हुए बहुत अधिक थक गये होंगे। कृपया इस कष्ट हेतु हमें क्षमा करें। भगवान् का आशीर्वाद आप पर सदा बना रहे।"

अगले दिन ४ तारीख को शिवानन्द नगर प्रातः ३ बजे से ही गतिविधियों का केन्द्र था। बीती रात्रि अधिकांश भक्त शोभा यात्रा के बारे में चर्चा करते हुए आधी रात तक जागते रहे। व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक ध्यान तथा प्रार्थना की गयी। प्रातः सभी ने गंगा स्नान किया तथा अन्य कार्यक्रमों की तैयारी में लग गये। सभी के हृदय में एक ही प्रार्थना थी कि स्वामी जी दीर्घायु हों।

सुबह ६ बजे कार तैयार थी। स्वामी जी अपने कुटीर से निकले और नवनिर्मित शिवानन्द मन्दिर गये। इसके बाद श्रीमती रानी शिवानन्द कुमुदनी देवी ने मन्दिर का शुभारम्भ किया और इसी समय एकत्रित जनसमूह ने जोर से उद्घोष किया—"सद्गुरु शिवानन्द भगवान् की जय।"

स्वामी जी ने स्वयं मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा की। इसके बाद स्वामी जी तथा उनकी मूर्ति दोनों की आरती उतारी गयी।

इस ऐतिहासिक घटना को दीवान बहादुर श्री के.एस. रामास्वामी शास्त्रियार ने मन्दिर के कार्यक्रम के बाद अपने भावपूर्ण उद्‌बोधन में एक संगमरमर की मूर्ति का देवता में रूपान्तरण कहा।

लगभग आधे घण्टे के विश्राम के बाद (जिसके बीच में जन्म दिवस के अतिथियों का आगमन हो रहा था) स्वामी जी शामियाने में गये जहाँ पाद-पूजा होने वाली थी। पाद-पूजा में बड़ी संख्या में भक्त सम्मिलित हुए और जो वहाँ नहीं आ सके, उन्होंने स्वयं के लिये अन्य लोगों से पाद-पूजा कराई। सबसे अधिक ध्यान देने वाली बात यह थी कि जब भक्त पूर्ण आस्था, भावना और भक्ति के साथ स्वामी जी

के दिव्य चरणों की पूजा कर रहे थे तो वे इन सबसे बेखबर भक्तों को फल और मिठाई बाँटते जा रहे थे और इसके साथ ही वे दे रहे थे अपनी कृपा और स्नेह।

पाद-पूजा के बाद दिल्ली, देहरादून आदि स्थानों से आये संगीतज्ञों द्वारा संगीत का कार्यक्रम था। श्री साधु मुरुगदास स्वामी जी को संगीतज्ञों के मंच पर ले जाना चाहते थे। १२ बज गये थे, इसलिये एक वरिष्ठ आश्रमवासी ने सोचा कि यह सत्संग की समाप्ति का समय होगा। इसलिये उन्होंने भीतर झाँक कर देखा कि स्वामी जी अपने दार्शनिक गीत गा रहे हैं उन्हें देख कर स्वामी जी विनोदपूर्वक बोले—''ओह स्वामी जी, मैं आपसे नहीं डरता। आप अभी सत्संग नहीं समाप्त कर सकते।''

अन्त में स्वामी जी अपने कुटीर में दोपहर १ बजे गये और इससे अधिक आश्चर्य वाली बात यह थी कि मध्याह्न सत्र के लिये शामियाने में स्वामी जी ही सर्वप्रथम पहुँचे। (आश्चर्य की बात इसलिये थी क्योंकि अभी उनका स्वास्थ्य अत्यन्त क्षीण था अन्यथा वे सत्संग में सर्वप्रथम आते थे और सबसे अन्त में सत्संग से जाते थे।) इस समय ३ बजने में कुछ मिनट शेष थे और आश्रम के कार्यकर्ता जो स्वामी जी की विशिष्टता से परिचित थे वे भी आज आश्चर्यचकित रह गये क्योंकि स्वामी जी ने स्वयं मंच तैयार किया, दरियाँ बिछायीं और सारे स्थान को सत्संग के लिये तैयार किया था। समारोह के अन्त में श्रीमती शिवानन्द जीपोरह जो आस्ट्रेलिया से आयी थीं, ने स्वामी जी को एक प्लेटिनम की हाथ घड़ी भेंट की। इसमें हीरे जड़े हुए थे जो कि हीरक जयन्ती समारोह को इंगित कर रहे थे।

रात्रि सत्संग ८ सितम्बर की प्रातः ४ बजे के बाद तक चला। जो लोग जागते नहीं रह सके वे शीघ्र चले गये। वे लोग जो नींद को नहीं रोक सके वे जहाँ थे वहीं सो गये। लेकिन स्वामी जी और कुछ उनके समर्पित शिष्य एक क्षण को भी नहीं सोये। एक गायक के बाद दूसरा गायक, संकीर्तनकार के बाद संकीर्तनकार ने भगवान् के नाम तथा यश का गान किया, ऑल इण्डिया रेडियो के श्री शिवानन्द वाणी ने एक नाटक का मंचन किया। श्री सुदर्शन सरीन ने अपने विद्यालय के छोटे-छोटे बच्चों के साथ एक भिन्न मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। नई दिल्ली के श्री बालम ने भजन सुनाये। प्रातः ३ बजे स्वामी जी ने कहा—''अब यह ब्रह्म मुहूर्त है। इसलिये हम

तेजी से भगवान् के नाम का कीर्तन करेंगे। प्रातः ४.३० बजे अत्यन्त गरिमापूर्व ढंग से सत्संग का समापन हो गया।

७ बजे प्रातः स्वामीजी जब प्रातःकालीन सत्संग के लिये वापस आये तो उनके मुख अथवा शरीर पर थकान का कोई चिह्न भी नहीं था।

शिवानन्द साहित्य उत्सव

आश्रम में यह एक सामान्य दृश्य था। हालाँकि इस ओर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता और न ही समझा जाता किन्तु यह अनूठा था।

आश्रम में एक भद्र व्यक्ति प्रवेश करता तथा स्वामी जी उसका जिस प्रकार स्वागत करते उससे उसके सभी अविश्वास तथा धर्म के विषय में सन्देह दूर हो जाते। इसके साथ ही स्वामी जी उसकी उपलब्धियों, आदर्शों और विचारों में रुचि प्रदर्शित करते जिससे वह और अधिक प्रसन्न हो जाता था। इसके पश्चात् स्वामी जी उसे कॉफी और मिठाइयाँ आदि लेने के लिये कहते जिससे उसका रहा-सहा संकोच भी दूर हो जाता। इसी प्रकार आधा घण्टा व्यतीत हो जाता। उसके समक्ष हिमालय के महान् योगी बैठे हैं जिनका उनकी विद्वता के कारण सभी आदर करते है लेकिन स्वामी जी उसे कोई सलाह अथवा निर्देश नहीं देते परन्तु उन भद्र सज्जन को कोई निराशा नहीं होती; क्योंकि वह एक स्नेहिल व्यक्तित्व से मिल कर जा रहे हैं। अब वह व्यक्ति जाने को उद्यत है। इसी समय स्वामी जी अचानक अदृश्य हो जाते हैं और कुछ किताबें लेकर वापस आते हैं। कॉफी और मिठाइयों का स्वाद तो खत्म हो जायेगा किन्तु स्वामी जी का प्रेम उसे इन पुस्तकों को देख कर याद आता रहेगा। इस पुस्तक की एक-एक पंक्ति से उसे स्वामी जी का ध्यान आयेगा। उसकी दृष्टि उनके चित्र पर पड़ेगी और इस प्रकार स्वामी जी अपने उद्देश्य में सफल हो जाते थे।

ऐसा चमत्कार उनकी पुस्तकों के निःशुल्क उपहार द्वारा किया जाता था। ये पुस्तकें स्वामी जी मुक्त हस्त से वितरित करते थे। स्वामी जी की निःशुल्क वितरण के प्रति इतनी रुचि थी कि वे यह भी नहीं देखते थे कि वह पुस्तक बेचने के विभाग में हैं या नहीं। स्वामी जी का कहना यह था कि जो व्यक्ति किसी पुस्तक की माँग कर रहा है इसका अर्थ है कि वह सही राह पर है और यदि उसे अभी यह पुस्तक न मिली तो

वह किसी और पुस्तक से प्रेरणा लेगा। परन्तु यदि उसे माँगी हुई पुस्तक दे दी जायेगी तो वह उसका मन्तव्य भली प्रकार पूरा करेगी। कभी-कभी कोई व्यक्ति पुस्तक की माँग तो नहीं करता परन्तु चूँकि स्वामी जी उसे दे रहे हैं तो वह उन्हें कैसे मना कर सकता था इसलिये शिष्टाचारवश उसे ले लेता था।

स्वामी जी की पुस्तकें मात्र छपा हुआ कागज न थीं वरन् वे ईश्वर की कृपा और प्रकट स्वरूप में ईश्वर ही थीं। वे शक्ति से पूर्ण हैं। लोग उन्हें ज्ञान तथा आध्यात्मिक प्रकाश की प्राप्ति हेतु प्रयोग तो करते ही थे, इसके साथ-साथ वे इनका अन्य अनेकों प्रकार से प्रयोग करते थे। कुछ इन पुस्तकों को ईश्वर की मूक वाणी समझते और जब भी उन्हें कोई कष्ट अथवा परेशानी होती तो वे एक पन्ना खोलते ओर उन्हें सामने जो भी वाक्य आदि दिखायी देता उससे अपने प्रश्न का उत्तर प्राप्त कर लेते। कुछ पुस्तकों को अच्छे मित्र की भाँति तथा दुःख दूर करने के लिए तथा निराशा दूर करने के लिए प्रयोग करते थे। अन्य लोगों के लिए उन पुस्तकों की भाषा अनजानी भी होती तो भी स्वामी जी सदा उनके और अधिक पास होते थे। स्वामी जी की पुस्तकें वेद, गुरुग्रन्थ साहब, बाइबिल और कुरान की भाँति सच्चाई को प्रकट करती थीं।

शिवानन्द साहित्य उत्सव मनाने के पीछे यही धारणा निहित थी। यह उत्सव २० जुलाई १९५८ को गुरु पूर्णिमा को मनाया गया।

सत्य तो यह है कि शिवानन्द साहित्य को मात्र पुस्तकों की भाँति नहीं वरन् ईश्वर के जाग्रत स्वरूप में देखा जाता था जो परमानन्द प्रदान करने, पथ-प्रदर्शन करने तथा ज्ञान का प्रकाश प्रदान करने हेतु सदा उत्सुक थीं।

मिशन का विस्तार

पश्चिमी शिष्य

गंगा तट पर स्थित स्वामी जी के छोटे से कुटीर से स्वामी जी का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व में फैल गया। स्वामी जी ने अन्य देशों में रहने वाले लोग जिन्हें स्वामी जी ने कभी देखा भी न था, उनकी कठिनाइयाँ समझीं और उनका आध्यात्मिक मार्ग में पथ-प्रदर्शन किया।

स्वामी जी ने इस बात को जाना कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वे सारे संसार के अधिकतम लोगों तक पहुँच सकते हैं। इसलिये उन्होने अपने विचार अंग्रेजी में ही व्यक्त किए। वे अंग्रेजी बोलते थे, अंग्रेजी में लिखते और गाते थे। इससे मात्र पश्चिमी लोग ही नहीं वरन् भारतीय युवा वर्ग जो पश्चिम का अनुकरण करने में अपनी संस्कृति तथा धर्म को भुला चुके थे, वे भी लाभान्वित हुए। स्वामी जी की पुस्तकें पढ़ने से वे अपनी आध्यात्मिक विरासत के प्रति पुनः जाग्रत हुए। पश्चिमी लोगों तथा पश्चिम का अनुकरण करने वाले भारतीयों दोनों के ही विवेकी ओर तार्किक मनों पर स्वामी जी ने विजय प्राप्त कर ली क्योंकि वे प्रत्येक व्यक्ति के सही स्तर के अनुरूप स्वयं को समायोजित कर लेते थे। क्योंकि वे बच्चों के साथ बच्चे थे, किशोरों के साथ किशोर, हिन्दू पण्डितों के साथ रूढ़िवादी ब्राह्मण तथा पश्चिमी जनों के साथ एक शिष्ट पश्चिमी व्यक्ति थे।

उनकी पुस्तकें बोधगम्य, व्यवहारिक, आत्मोत्थानकारी तथा शक्तिशाली थीं। इस कारण उन्हें पश्चिम के लोगों ने बड़ा पसन्द किया। स्वामी जी की योग के विभिन्न पथों पर दी गयी शिक्षाएँ उनके द्वारा बड़े उत्साह से ग्रहण की गयीं और उनकी आध्यात्मिक साधना अथवा जीवन में आने वाली किसी भी समस्या के समाधान के लिए पत्राचार का माध्यम सदा खुला था। स्वामी जी को लिखा गया। कोई पत्र अनुत्तरित नहीं रहता था तथा जो उन्हें पत्र लिखते वे उनके साथ एक अन्तरंग सम्बन्ध का अनुभव करते थे। स्वामी जी की मित्र बनने तथा पथ-प्रदर्शन के प्रति जो

उत्सुकता थी तथा उनके पास जो ज्ञान था, उसके कारण उन्हें पत्र लिखने वाले अत्यधिक प्रेरित होते और पत्र लिखने उनके हृदय पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता था। वे अपने विदेशी शिष्यों का भी उतना ही ध्यान रखते थे जितना भारतीय शिष्यों और भक्तों का।

स्वामी जी का विदेश में सर्वप्रथम सम्पर्क हुआ लेटविया से। सन् १९३० में एक संस्था स्वामी जी की पुस्तकों के कारण स्वामी जी के सम्पर्क में आयी। यह संस्था योग शिक्षण के प्रति पूर्ण समर्पित थी और यह योग के शुद्ध रूप की शिक्षा देती थी। यह संस्था एक ऐसे गुरु को पा कर जिसने कि योग के सिद्धान्तों का अत्यन्त सरल भाषा में सभी के समझने योग्य बनाया, इतनी अधिक उत्साहित थी कि यह अत्यन्त शीघ्र दिव्य जीवन संघ की शाखा के रूप में कार्य करने लगी। इसके नायकों में से एक थे हैरी डिकमैन जो स्वामी जी के साथ नियमित पत्र व्यवहार करते थे।

स्वामी जी की पुस्तकें लेटवियन भाषा में अनुवादित हुईं और ये लेटविया से एस्टोनिया में फैल गयीं, जहाँ दिव्य जीवन संघ की शाखा भी प्रारम्भ हो गयी।

स्वामी जी के लेखों का श्री लुइसबिंकफोर्ट ने डेनिश भाषा में अनुवाद किया और ये कोपेनहेगन में पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। श्री ब्रिंकफोर्ट ने डेनमार्क, नार्वे और स्वीडन में व्याख्यान दिए और वहाँ पर हठयोग की कक्षाएँ और प्रदर्शनों का प्रारम्भ हो गया।

बेल्जियम के डा. हेनिज बुम्बलेट्ट स्वामी जी की शिक्षाओं से प्रेरित हुए। उन्होंने अनेक समूहों से भी बात की और इस संगोष्ठी में उन्होंने स्वामी जी की पुस्तकों के अंशों को पढ़ा और कार्यक्रम का समापन, प्रार्थना, कीर्तन तथा प्रणवोच्चार साथ किया (जैसा स्वामी जी ने निर्दिष्ट किया था)।

बल्गेरिया के एक पादरी ने स्वामी जी के उपदेशों का अनुकरण किया और स्वामी जी के साथ नियमित पत्र व्यवहार बनाये रखा और उन्होंने स्वामी जी के लेखों का निःशुल्क वितरण हेतु अनुवाद किया और अपने मित्र बोरिस सेचारो के साथ मिल कर निष्काम्य सेवा के रूप में रोगियों और निर्धनों की सहायता करने लगे।

स्वामी जी का प्रभाव अब इंग्लैंड, मेक्सिको, केन्या तथा अमेरकिन उपमहाद्वीप में फैल गया था। मोमबासा, नाकारू, एलडोवेट, तेहरान, इजिप्ट, रंगून, शंघई और बहरीन में दिव्य जीवन संघ की शाखायें प्रारम्भ हो गयी थीं।

इसके बाद प्रारम्भ हुआ द्वितीय विश्व युद्ध। हालाँकि युद्ध के परिदृश्य से स्वामी जी बहुत-बहुत दूर थे, परन्तु स्वामी जी ने अपने यूरोपियन शिष्यों को इस प्रकार पत्र लिखा जैसे वे प्रतिक्षण उनके साथ हैं। उन्होंने अपने शब्दों में अपना सम्पूर्ण हृदय उड़ेल दिया था। जर्मनी के डा. ओ.सी. फौस को स्वामी जी ने लिखा—

''आज जिस दुर्बलता तथा निष्ठुरता के लिए यूरोप को दोषी बताया जा रहा है वह सदियों से सभी देशों में चली आ रही है। यह कितनी ही क्रांतियों अथवा संगठनों से दूर नहीं हो सकती। कोई भी व्यक्ति, कोई घोषणा, कोई संविधान एक रात में ऐसा संसार नहीं बना सकता जहाँ पर पूर्ण समन्वय हो, शान्ति हो तथा समृद्धि हो। संसार की मुक्ति व्यक्ति की मुक्ति पर निर्भर है तथा संसार की पूर्णता प्रत्येक व्यक्ति की पूर्णता से प्राप्त हो सकती है।

ईसाओं, बुद्धों और विवेकानन्दों की पीढ़ी ही मात्र पूर्ण संसार के स्वप्न को साकार कर सकती है और इस प्रकार का पूर्ण जगत केवल उच्चकोटि के मनुष्यों द्वारा ही सम्भव है तथा निष्ठुर जनों द्वारा दिये जाने वाले कष्ट, आने वाली सुबह के पूर्व का अन्धकार हैं। यह एक आवश्यक शिक्षा है। युवा पीढ़ी को अपने प्रयत्नों के परिणामों को, अपनी उपलब्धियों की निःसारता को अपने लाभ की सीमाओं को तथा उनकी खुशियों में निहित दुःख को जानने के लिए इस शिक्षा को प्राप्त करना आवश्यक है।

इतिहास के इस वीभत्स समय रूपी चाबुक के द्वारा सब पर कृपा करने वाले भगवान् अपनी असीम करुणा को प्रकट करते हैं और हमें इसलिये रुलाया जाता है जिससे कि ऐसे कष्टदायक कर्मों से हमारे भीतर स्थित पशुता, सरलता और शीघ्रता से दूर हो जाए।

कभी भी निराश न हों। जब हृदय में निराशा का दबे पाँव प्रवेश होता है तो यह इस बात की चेतावनी है कि आस्था की ज्योति बुझ गयी है। आस्था, धैर्य तथा





धार्मिक प्रयत्नों के निरन्तर व्यवहार द्वारा अपने हृदय की समस्त दुर्बलताओं और वासनाओं का उन्मूलन कर दें।

इन कष्टदायी वर्षों में यूरोप तथा अन्य स्थानों के अधिकांश शिष्य स्वामी जी तक पत्र भेजने में असमर्थ थे लेकिन जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ, सम्पर्क पुनः प्रारम्भ हो गया और उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नता से स्वामी जी को पत्र लिखे और पत्र में स्वामी जी से सम्पर्क करके जो आनन्द उन्हें मिला, उसे भी व्यक्त किया।

युद्ध के पूर्व यूरोप से अनेक लोग शिवानन्द आश्रम आये और युद्ध के बाद कई अमेरिकी भी आये। अनेक लोगों ने स्वामी जी को उनकी आगामी विश्व यात्रा में अमेरिका आने के लिए आमन्त्रित किया, लेकिन स्वामी जी के दुर्बल स्वास्थ्य को देखते हुए यह यात्रा निरस्त कर दी गयी और इस समय उन्होंने लिखा—"विश्व के सभी स्थानों से लोग यहाँ आकर आध्यात्मिक पथ में निर्देशन प्राप्त करते हैं। मैं पत्र द्वारा भी निर्देश देता हूँ... संसार के सभी भागों में दैवी सन्देश पहुँच रहा है, यही पर्याप्त है। इस स्थान से मुझे इधर-उधर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा इंग्लैंड भी यहीं है और मेरा जर्मनी भी यहीं है।"

अन्य समय पर उन्होंने कहा—"सदैव यात्रा करके वहाँ व्याख्यान देकर आप कुछ लोगों में ही जाग्रति ला सकते हैं। आप कुछ श्रोताओं को प्रोत्साहित कर सकते हैं। लेकिन जब तक आप उन्हें पुस्तकों के द्वारा स्थाई प्रेरणा नहीं देंगे, वे सांसारिक जीवन में आपके उपदेशों को शीघ्र ही भूल जायेंगें। यदि मैं हमेशा यात्रा करता रहा तो मैं इन पुस्तकों को लिखने में असमर्थ रहूँगा। अतः भगवान् के बच्चों की सेवा के लिए अच्छा है कि मैं यहीं एकान्त में रहूँ। आध्यात्मिक साहित्य के सृजन के लिए ऐसा एकान्त परम आवश्यक है।"

संसार के अन्य स्थानों से विभिन्न भक्तगण स्वामी जी से उनके शिष्यों को भेजने का अनुरोध करते थे जिससे कि वे आश्रम से बाहर जाकर स्वामी जी की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार तथा आध्यात्मिक केन्द्र स्थापित करने में सहायता करें।

इनमें से प्रथम शिष्य थे स्वामी सच्चिदानन्द जी, जिन्हें श्रीलंका में आमन्त्रित किया गया। १३ वर्ष वहाँ रहने के पश्चात् उन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका तथा संसार के

अन्य भागों से आमन्त्रित किया गया। यहाँ जाकर उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी की पुस्तकों तथा उपदेशों को फैलाने में सहायता की।

इसके बाद श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द जी गये। उन्होंने हाँगकाँग, आस्ट्रेलिया, यू.एस.ए. तथा कनाडा की यात्रा की और वे वहीं स्थाई रूप से बस गये। स्वामी जी की शिक्षाओं के प्रचार हेतु उन्होंने कनाडा तथा अन्य कई देशों में शिवानन्द योग वेदान्त केन्द्र की स्थापना की।

१९५८ में स्वामी चिदानन्द जी को अमेरिका और यूरोप आदि की यात्रा हेतु आमन्त्रित किया गया तथा इसके पश्चात् वे पश्चिमी जगत के विभिन्न देशों मे तथा मलेशिया, सिंगापुर, हाँगकाँग, जापान आदि में नियमित रूप से जाते रहे (स्वामी शिवानन्द जी की महासमाधि के पश्चात् उन्हें दिव्य जीवन संघ का अध्यक्ष चुना गया और तब से वे निरन्तर संसार भर के दिव्य जीवन संघ की शाखाओं तथा अन्य केन्द्रों की यात्रा का महान् कार्य कर रहे हैं। स्वामी कृष्णानन्द जी (महासचिव के रूप में) तथा श्री स्वामी माधवानन्द जी (उपाध्यक्ष के रूप में) आश्रम में ऋषिकेश में ही रहे तथा स्वामी जी के यशस्वी मिशन को निरन्तर चलाते रहे।

सन् १९६१ में स्वामी श्री वेंकटेशनन्द जी को श्रीलंका तथा आस्ट्रेलिया प्रवास हेतु आमन्त्रण मिला। इसके बाद स्वामी शिवानन्द जी ने उन्हें डर्बन दिव्य जीवन संघ शाखा के तात्कालिक अनुरोध पर दक्षिणी अफ्रीका भेज दिया। ३ वर्ष बाद दक्षिणी अफ्रीका से उन्होंने सारे संसार की यात्रा की और १९८२ में उनकी महासमाधि होने तक उन्होंने स्वामी जी की शिक्षाओं का सारे संसार में प्रचार-प्रसार किया तथा कई स्थानों पर केन्द्र भी स्थापित किये।

इस प्रकार स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षाएँ सारे संसार में फैल गयीं।

स्वामी जी ने पश्चिमी लोगों को भी संन्यास दिया तथा वे लोग फिर अपने देश वापस चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने आश्रम और केन्द्र स्थापित किये। इनमें से कनाडा की स्वामी शिवानन्द राधा का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है।

आश्रम आने वाले कुछ पश्चिमी अतिथि अपने साथ फिल्म तथा टी.वी. कैमरे लेकर आये थे, जिसमें वे स्वामी जी तथा आश्रम की गतिविधियों आदि की फिल्म बना कर ले गये और इनसे कनाडा, फ्रांस, बेल्जियम और स्विटरलैंड मे

स्वामी शिवानन्द जी तथा उनके आश्रम जीवन को देखा गया और वहाँ से सैकड़ों लोग भारत आये। कई विदेशी पत्रकार भी स्वामी जी से मिले और उन्होंने स्वामी जी को आधुनिक भारत के महान् आध्यात्मिक गुरु के नाम से संबोधित किया। इससे पुनः अनेकों विदेशी सत्य के खोजी तथा पर्यटक ऋषिकेश आने के लिये प्रेरित हुए और इसलिये उनकी शिक्षाएँ और अधिक फैल गईं। इनमें से अधिकांश स्वामी जी से पहली भेंट में ही बहुत अधिक प्रभावित हुए और स्वामी जी के शिष्य बन गये। एक इजराइली महिला एस्सिया मैलकेइली ने स्वामी जी से अपनी प्रथम भेंट के बारे में लिखा।

"मैं वहाँ उनके ठीक सामने बैठी हुई थी और उन्हें देख रही थी। वे एक साथ कई प्रकार के तथा ढेरों काम कर रहे थे।"

"जैसे मरुस्थल में प्यासे भटक रहे मनुष्य को एक ताजे जल का झरना मिल गया हो, उसी प्रकार मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे मेरी आध्यात्मिक प्यास बुझ गयी हो। मेरे सभी सन्देह अपने-आप दूर हो गये। संवाद हेतु शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। मुझे ऐसा लगा जैसे हर चीज हमारे भीतर ही छिपी हुई है, हमारे सभी सन्देहों के सभी हल भी, आवश्यकता है तो बस उन्हें अनावृत करने की।"

हालैंड से आये अन्य जिज्ञासु श्री एलबर्ट वान्विन्सेस्टर ने स्वामी जी से हुई अपनी प्रथम भेंट के बारे में लिखा—

"उनको प्रथम बार देखते ही मुझे अत्यधिक प्रसन्नता की अनुभूति हुई। उनकी आँखें मुझ पर टिकी हुई थीं। उन्होंने मुझसे मित्रता और स्वागत के कुछ शब्द कहे। ये बहुप्रतीक्षित सत्य के शब्द मात्र नहीं थे, इन शब्दों ने मुझे जो प्रसन्नता प्रदान की, वह संसार की कोई वस्तु नहीं प्रदान कर सकतीथी। बड़े ही सरल शब्द थे जो दैवी प्रेम तथा सान्तवना से परिपूर्ण थे। यहाँ चारों ओर शान्तिपूर्ण वातावरण था। मैं अपने भीतर उस खुशी का अनुभव कर रहा था जिसे मैं जानता नहीं था। उस प्रकाश को देख रहा था जिसे मैंने कभी भी न देखा था। जो मुझे कोई पुस्तक न समझा पायी, वह स्वामी जी की उपस्थिति मात्र ने समझा दिया।"

डा. मेरिसे चोइसी सीचे की संवादक थी और आश्रम में स्वामी जी से यह सोच कर मिलने गयी थी कि उन्हें पश्चिमी विज्ञान और संस्कृति की कोई समझ नहीं होगी। उन्होंने लिखा—

''मुझे तत्काल ऐसा अनुभव हुआ कि जिस वास्तविक ज्ञान के लिए हम सभी लालायित हैं वह स्वामी जी में उपस्थित है। हमारा भौतिक जन्म स्थल कोई भी हो, जो आप पश्चिमी महाविद्यालय में सीख पाते उससे कहीं अधिक स्वामी जी जानते हैं। जो घोर सांसारिक व्यक्ति हो वह भी स्वामी जी क़े आसपास जो आभामण्डल, प्रभाव तथा आकर्षण, शान्ति और पवित्रता प्रवाहित होती रहती थी, उसका अनुभव कर सकता था। मुझे स्वामी जी के भीतर सर्वाधिक प्रशंसनीय तथा नवीन यह लगा कि वे जीवन के प्रत्येक क्षण में चाहे वह मनोवैज्ञानिक, चिकित्सकीय, दर्शन अथवा धर्म से सम्बन्धित हो, देवत्व का समावेश करते थे। स्वामी शिवानन्द जी के पास हमें शिक्षा देने के लिए बहुत कुछ था।

स्वामी जी के पास आने वाले पश्चिमी लोगों में अधिकांश ईसाई पृष्ठ भूमि से थे। इनमें से बहुत लोगों ने अपना विश्वास छोड़ दिया था और वे किसी वैकल्पिक आध्यात्मिक मूल्यों की खोज में थे। स्वामी जी के सम्पर्क में अपने के बाद उनमें से कई लोगों को अनुभव हुआ कि उनकी ईसाईयत की समझ और अधिक गहन हो गयी तथा वे ईसामसीह के उपदेशों को एक पूर्णतया नये ढंग से समझने योग्य हो गये। पर्थ के डाक्टर आर.टी. वेर्थर एक यहूदी थे। वे ईसाईयत से भी जुड़े थे। वे एक बार क्रिसमस के समय ऋषिकेश आये। इस समय के बारे में उन्होंने लिखा—

''वहाँ और केवल वहाँ मैंने वह शान्ति पायी जो तब आती है जब आपके आन्तरिक विरोध समाप्त हो जाते हैं। मैंने देखा ये स्वामी शिवानन्द जी जिन्हें हम अन्य राष्ट्रीयता तथा धर्म का व्यक्ति कहते हैं, हमारे स्वामी ईसामसीह की शिक्षाओं से एकदम साम्य रखते हैं। हाँ, मैंने वहाँ सच्ची ईसाईयत पायी जो मैं अपने पश्चिमी जगत् में नहीं पा सका।

एरिच पीयरशेल ने अपनी पुस्तक इन्डियन, जेहेमनिस एण्ड मिस्टेरियम में लिखा—

"यहाँ शिवानन्द आश्रम में ईसामसीह का कृष्ण... के समान आदर किया जाता है। क्रिसमस के समय हम यूरोपियन लोगों से स्वामी शिवानन्द जी अनुरोध करते हैं कि हम ईसामसीह के जन्म की घटना का मंचन करें। माँ दुर्गा, भगवान् विष्णु तथा ब्रह्मा जी के देश में हमसे ईसाइयत की महिमा बताने का अनुरोध किया जाता है, यह सहिष्णुता अविश्वसनीय लगती है।"

एक ईसाई व्याख्याता ने लिखा कि उसने स्वामी जी की पुस्तकों में नयी और पुरानी दोनों बाईबल के अस्पष्ट अनुच्छेदों की व्याख्या देखी है।

शाखायें

स्वामी जी अपने शिष्यों को विदेशों में दिव्य जीवन संघ के केन्द्रों का संचालन करने योग्य बनाने के लिए उनमें उत्साह पैदा करते थे और वे सदैव अपने बीच स्वामी जी की उपस्थिति का अनुभव करते थे। एक वर्ष के भीतर सारे संसार में दिव्य जीवन संघ की कई शाखायें प्रारम्भ हो गयीं। इसके पीछे दो कारण थे—यदि किसी का पता स्वामी जी को मिल जाता तो इसका अर्थ था कि उस व्यक्ति के पास पर्चों तथा पत्रकों का एक बण्डल उस व्यक्ति के पास जाएगा (यह पहली बात थी), दूसरी बात यह कि स्वामी जी सम्पूर्ण भारत और विदेशों की पत्रिकाओं में नियमित रूप से लेख भेजा करते थे। ये लेख सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति... उसकी नकल करने वाले एक संन्यासी शिष्य से लेकर प्रिंटर, प्रूफ रीडर, पत्रिका के सम्पादक तथा उसके हजारों पाठकों को प्रेरणा प्रदान करते थे। इन लेखों को पढ़ने के बाद वे साधना प्रारम्भ कर देते तथा जब वे देखते कि इस साधना से उन्हें कुछ लाभ हो रहा है तो वे इसके लेखक से सम्पर्क करना चाहते और वे स्वामी जी को पत्र लिखते और इस प्रकार स्वामी जी को एक नया पता मिल जाता और पुनः उसके साथ पूर्ववत व्यवहार होता।"

एक बार वार्तालाप करते हुए स्वामी जी ने कहा—"यह मेरी पते की पुस्तक है जिसमे मैं उन सबके पते लिखता हूँ जो दिव्य जीवन की विचारधारा वाले होते हैं। जैसे पत्रिकाओं के सम्पादक, व्याख्याता, प्राधनाध्यापक, यूरोपी, अमेरिकी साधक आदि। जब कोई नयी पुस्तक प्रकाशित होती है तो इससे लाभान्वित होने वाले लोगों को उसे भेजने में यह पते की पुस्तक मेरी सहायता करती है। पिछले २५ वर्षों से मैं

इस रजिस्टर में पते लिखता हूँ और यह मेरे लिए औपचारिक ध्यान से अधिक श्रेष्ठ साधना का रूप है। यह भी एक प्रकार का ध्यान है जिससे मात्र हम ही नहीं अन्य भी लाभ प्राप्त करते हैं। संसार भर में जिज्ञासु मुझसे पत्र व्यवहार करते हैं। उनके लिए एक पुस्तक, एक पर्चा अथवा पत्रक अक्सर एक शक्तिवर्धक की तरह कार्य करता है। यही वह रजिस्टर है जो हजारों को वह आध्यात्मिक भोजन प्रदान करता है।''

यदि उनका प्रारम्भिक उत्साह ठण्ढा पड़ जाता तो भी स्वामी जी उन्हें नहीं छोड़ते थे। वे लोग पत्रक, पर्चे, पत्रिकायें प्राप्त करते रहते थे। इसने चमत्कार किया और आनन्द कुटीर से कहीं बाहर जाये बिना ही स्वामी जी ने सारे संसार में आध्यात्मिक जाग्रति लायी। इनको प्राप्त करने के बाद स्वामी जी के बहुत से पुराने शिष्य मिशन के साथ पुनः जुड़ने के लिए प्रेरित हुए। स्वामी जी सबको अपनी मित्र मण्डली तथा सम्बन्धियों के मध्य आध्यात्मिक जाग्रति लाने के लिए प्रयत्न करने के लिए कहते थे जिससे एक दिव्य जीवन शाखा बन जाती थी और इनमें से बहुत सी शाखायें कुछ समय बाद स्वामी जी के स्वयं के दैवी नायकत्व में गत्यात्मक संस्थान बन गये। ये साधना सत्रों और सभाओं का संचालन करते थे। सभी पर्व मनाते थे तथा स्वामीजी के उपदेशों के पत्रकों को मुद्रित कराते और उनका वितरण करते थे।

इनमें से एक शाखा थी लाहौर की किला गजर सिंह शाखा। दिव्य जीवन पत्रिका प्रथम वर्ष में यहाँ से प्रकाशित हुई और यह तब तक यहीं से प्रकाशित होती रही जब तक शिवानन्द प्रकाशन संस्थान ने सारा प्रकाशन का कार्य अपने हाथ में नहीं ले लिया।

२ . सिम्बर १९५९ को सिंगापुर में दिव्य जीवन संघ शाखा के शुभारम्भ का समाचार मिलने पर स्वामी जी ने निम्न निर्देश दिये। ''शाखाओं की गतिविधयों को चलाने के लिए ऊर्जावान तथा योग्य तीन कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। शाखाओं को नियमित पार्सल भेजे जाने चाहिए। शुभारम्भ तथा वर्षगांठ के अवसर पर शुभकामना सन्देश भेजे जाने चाहिए तथा प्रगति को बनाये रखने के लिए कार्यालयीन कार्यकर्ताओं को सदा प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे कि काम अपनी मंजिल को प्राप्त कर सके। शाखाओं से आने वाले पत्रों का तुरन्त उत्तर दिया जाना चाहिए।

"किसी के भी अनुमान से भी अधिक संस्थान ने प्रगति की है। कितने भी योग्य कार्यकर्ता आयेंगे लेकिन फिर भी हमारे पास कार्यकर्ताओं की कमी रहेगी और प्रत्येक के पास उसकी क्षमता से अधिक काम रहेगा।

"सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जो काम किया जा रहा है वह तथा जिनके हम सम्पर्क में आते हैं वे लोग सही मार्ग पर चलते रहें। इस कार्य में मेरी पते वाली पुस्तक मेरी सहायता करती है। मैं आजकल इस पुस्तक को ताले में बन्द करके रखता हूँ। यह मेरे लिए सर्वाधिक मूल्यवान है। मैंने पुरुषोत्तमानन्द जी को मेरी पाण्डुलिपियों की दोनों पेटियाँ जो मेरे कुटीर में रखी हैं, उनका विशेष ध्यान रखने के लिए कहा है। यदि बाढ़ आने पर कुटीर मे मेरी सब चीजें नष्ट भी हो जायें तो भी मैं इन दोनों पेटियों को नष्ट नहीं होने दूँगा। मुझे यहाँ से हजारों मील दूर जंगल में रखो लेकिन मुझे मेरी पते वाली पुस्तक तथा वे दोनों पेटियाँ दे दो तो मैं वहाँ से पुनः एक संस्थान बना लूँगा और पुनः सभी कार्य प्रारम्भ कर दूँगा।

"इस पुस्तक में मैंने सभी प्रकार के लोगों के पते लिखे हैं—जैसे मन्त्रीगण, मठ, आश्रम, व्याख्याता, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि। जैसे ही मुझे एक पता मिलता है मेरा काम प्रारम्भ हो जाता है। मुझे पता कैसे मिलता है? उन पत्रों के द्वारा जो मुझे लोगों से मिलते हैं, पत्रिकाओं के कोने पर तथा उन पुस्तकों से जो मुझे अवलोकनार्थ उपहार में प्राप्त होती हैं। मैं सदा पतों के प्रति सतर्क रहता हूँ और जिस क्षण मुझे कोई पता मिलता है मैं उसे तुरन्त रजिस्टर में अंकित कर लेता हूँ और इस प्रकार वह व्यक्ति पंजीकृत हो जाता है। मैं तुरन्त ही उसे एक पत्र लिखता हूँ तथा पत्रकों का एक बण्डल तथा कुछ पुस्तकें भी भेजता हूँ। उसका पता मैं दिव्य जीवन पत्रिका के रजिस्टर में भी लिख लेता हूँ। उसे दिव्य जीवन पत्रिका भेजता हूँ तथा उसका नाम प्रसाद के रजिस्टर में लिख लेता हूँ। सर्वप्रथम पता मिलते ही मैं उसके साथ नियमित पत्र व्यवहार करता हूँ। उसे एक दिन तीन पत्र मिलते हैं और पहले दो सप्ताह तक उसके घर में दिव्य जीवन का प्रवाह होता है। फिर एक दिन उसे पत्रिका मिलती है, उसके अगले दिन पत्र, तीसरे दिन पत्रकों का बण्डल, उसके अगले दिन प्रसाद तथा उसके बाद पुस्तकें और इस प्रकार यह सम्पर्क बढ़ता जाता है।

और इस प्रकार आज मैंने संसार भर में बहुत से लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित कर लिया है। हमें संस्थान के लिए इन लोगों की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है बल्कि हमें उनकी सेवा करने की सच्ची इच्छा है। इसलिये स्वाभाविक रूप से उन्होंने इस लक्ष्य में सहायता की और इस प्रकार संस्थान बढ़ता चला गया।''

दिव्य जीवन भाव

''न ही मुख्यालय, न ही शाखा के केन्द्रों पर पद तथा शक्ति के लिए कोई झगड़ा होगा।'' स्वामी जी ने संस्था को चलाने में इस जीवन्त पहलू के सम्बन्ध में कोई गलती नहीं की। वास्तव में शाखाओं के लिए जो वास्तविक नियम बताये गये थे वे इस प्रकार थे कि चाहे निष्काम्य सेवी उत्साहपूर्वक उत्तरदायित्व वहन करने तथा शाखा का संचालन करने के लिए आगे आयें, तो भी उन्हें एक जैसे छद्म नाम जेसे गुरुदास और हरिदास आदि स्वीकार करने होंगे। मुख्यालय में भी स्वामी जी द्वारा निष्काम्य सेवा का भाव कार्यकर्ताओं में भरा जाता था। जैसे ही स्वामी जी को यह मालूम होता कि किसी विशेष कार्यकर्ता का सिर फिर गया है, वे किसी अन्य को शान्ति से प्रशिक्षित करते और उसे यह काम दे देते। इससे पूर्व वाले कार्यकर्ता को यह सीख मिलती कि स्वामी जी का मिशन किसी के बिना रुकेगा नहीं और यहाँ पर आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का स्वागत है। इस विधि से साधक का आध्यात्मिक लाभ भी होता क्योंकि इससे उसकी दिव्य जीवन के सबसे बड़ शत्रु अहंकार से भी रक्षा होती। (क्योंकि अहंकार सबसे पहले घमण्ड के रूप में प्रकट होता है फिर यह प्रभुत्व और पद आदि के लिए स्वार्थ, लालच, लालसा रूपी बहुगुणित शाखाओं के रूप में विकसित होता जाता है।)

स्वामी जी स्वयं ही सेवा की सच्ची भावना के अद्भुत उदाहरण थे। सन् १९५६ तथा १९४७ में दर्शनार्थियों ने इस ऋषि को लंगर में अतिथियों और आश्रमवासियों को भोजन परोसते हुए देखा। उनकी विनम्रता देख कर सभी आश्चर्यचकित रह गये। वे प्रत्येक के सामने झुक कर पूछते—''रोटी भगवान्, और दाल भगवान् आदि। यदि यह ग्रीष्म ऋतु होती तो वे एक बड़ा पंखा लेते और भोजन ग्रहण कर रहे लोगों को हवा करते।

एक बार की घटना है दिव्य जीवन संघ द्वारा एक विद्यालय के छात्र को छात्रवृत्ति दी जा रही थी। उसके लिए मनीआर्डर भेजना था जिस पर सचिव के हस्ताक्षर होने थे। जब यह मनीआर्डर पत्र स्वामी जी के अवलोकनार्थ रखा गया तो स्वामी जी ने संघ के सचिव के स्थान पर शान्तिपूर्वक हस्ताक्षार कर दिये और बोले—"मैंने स्वयं ही दस्तखत कर दिये हैं सचिव के स्थान पर। यह मनीआर्डर आज ही भेज दिया जाये।" आप स्वामी जी को अध्यक्ष, सचिव अथवा इससे भी निम्न किसी भी सम्बोधन से पुकारें, कार्य सदैव कुशलता से, सुन्दर ढंग से और बिना किसी देरी के किया जायेगा। "उपाधि अथवा प्रभुत्व से नहीं वरन् प्रेम और स्वयं उदाहरण प्रस्तुत करके कार्यकर्ताओं में उच्च आदर्शों को धीरे-धीरे प्रविष्ट करा के काम कराया जाना चाहिए।" यह स्वामी जी का तरीका था।

स्वामी जी ने एक बार कहा—

"अपनी क्षमता से अधिक कार्य न करो। काम को अन्यों से भी करवाओ। आपको अन्यों से दयालुता, प्रेम तथा सहानुभूति द्वारा किस प्रकार काम कराया जाये, इसका ज्ञान होना चाहिए। यह कोई सरल बात नहीं है। आपमें अहंकार की भावना बिलकुल ही नहीं होनी चाहिए। आपको स्वयं को नीचे के स्तर पर रखना होगा तथा उनकी प्रशंसा करनी होगी। उनका आदर करना होगा। स्वयं को स्थिति के अनुसार ढालना होगा, समायोजन करना होगा, निभाना होगा आपको उनके साथ एक होना होगा।"

यदि सचिव अथवा कोई अन्य अधिकारी आश्रम के अनुशासन के प्रति लापरवाह होता तो स्वामी जी का व्यवहार उसको सही करने तथा इसका अनुभव कराने के लिए पर्याप्त था लेकिन इससे स्वामी जी का मिशन एकाएक कमजोर पड़ जाता। स्वामी जी एक छोटे से व्यक्ति से भी सलाह लेते थे और उसको पूरे विश्वास के साथ मानते भी थे।

हालाँकि दिव्य जीवन संघ स्वयं इतनी बड़ी और व्यापक संस्था थी और इसके लक्ष्य और विषयों में मनुष्य के जीवन के सभी पहलू आ जाते थे। लेकिन फिर भी स्वामी जी ने विशेष कार्यों के लिए अन्य विभिन्न संस्थानों की स्थापना की। यदि अतीत का सिंहावलोकन किया जाये तो यह ज्ञात होगा कि स्वामी जी ने इनको

कितनी चुतराई तथा दूरदर्शिता के साथ स्थापित किया और इसमें आश्चर्य करने जैसी कोई बात नहीं है, क्योंकि स्वामी जी आवश्यकता उत्पन्न होने के बहुत पहले ही उसे जान लेते थे। वे मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को ही नहीं, उनके हलों को भी देख लेते थे और मानव मात्र को इसके प्रति पूर्व में ही सावधान कर देते थे।

ऑल वर्ल्ड रिलीजन्स फेडरेशन

ऑल वर्ल्ड रिलीजन्स फेडरेशन की २८ दिसम्बर १९४५। यह सभी अच्छी तरह से जानते हैं कि इस समय धर्म के नाम पर दंगे होने लगे थे। संत के पास जो आन्तरिक दृष्टि होती है उसमें भविष्य वर्तमान जैसा ही स्पष्ट होता है और स्वामी जी जिस दुर्भाग्य का भारत पर आक्रमण होने वाला था, उसका पूर्वानुमान करने में सक्षम थे।

फेडरेशन के शुभारम्भ पर स्वामी जी ने उस आधार का स्पष्ट विवरण दिया जिसके ऊपर उन्होंने फेडरेशन का भव्य महल खड़ा किया।

स्वामी जी ने कहा—''सभी धर्मों का जो आधार है वह एक ही है। जो थोड़ी भिन्नतायें दिखायी देती हैं वह सतही हैं। इसलिये उन पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए और मूल बातों को पकड़ना चाहिए। ऐसा करने से विरोध, गलतफहमियों तथा झगड़ों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। चारों ओर सामञ्जस्य तथा भाईचारे का वातावरण होगा। मानवीयता होगी और सभी एक होकर रहेंगे। आप इस सुन्दर एकता की स्थापना, सामाजिक संस्थाओं, दिखावटी भ्रातृभाव, राजनैतिक दल अथवा उत्साहपूर्ण धर्म निरपेक्ष कार्यक्रमों तथा नारों द्वारा नहीं कर सकते। इस सबसे आप मानव मात्र के बाह्य किनारे को मात्र स्पर्श कर सकते हैं। उनके मूल अंश के साथ, उनकी सच्ची आध्यात्मिक प्रकृति से सम्पर्क कीजिए।

विश्व साधु संघ

इतनी ही महत्वपूर्ण थी विश्व साधु संघ की स्थापना। जब स्वामी जी ने इस अनन्त शक्ति के स्रोत की ओर ध्यान दिलाया जिसका उपयोग मानव कल्याण के लिए किया जा सकता है, तो भारत तथा अन्य देशों के राजनेता भी इस ओर जागरुक हुए। इस बात के लिए स्वामी जी तथा राजनेताओं की पहुँच में यह अन्तर था कि

स्वामी जी सदा सभी के हितैषी थे। कितना भी श्रेष्ठ तर्क हो वे कभी उस विशेष समूह का पक्ष नहीं लेते थे, जो दूसरे को दबाना चाहता हो। स्वामी जी ने देखा संन्यासी देश के निर्माण की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेकर अधिक अच्छा काम कर सकते हैं और इसका लाभ देश के साथ-साथ स्वयं संन्यासियों को भी मिलेगा। हालाँकि उन्होंने सदा इस बात की प्रशंसा की कि रोगियों और निर्धनों की सेवा ईश्वर को सबसे अधिक प्रिय है, किन्तु उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि साधु का कर्तव्य है कि वह जनसमूह का दिव्य जीवन के पथ हेतु मार्गदर्शन करे और उनका आध्यात्मिक जागरण करे। अन्यों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए साधुओं का समाज सेवा हेतु स्वागत है परन्तु इससे उनका जो प्राथमिक कर्तव्य है मनुष्य क़ा आध्यात्मिक जागरण करना, उसकी उपेक्षा नहीं होना चाहिए। यहाँ कि समाज सेवा के भीतर भी मानव के आध्यात्मिक जागरण करने का ही भाव होना चाहिए। इसी लक्ष्य के लिए विश्व साधु संघ की स्थापना की गयी। नीचे दिये गये प्रतिवेदन में इस शुभारम्भ के बारे में विवरण दिये गये हैं। यह प्रतिवेदन १९४७ की दिव्य जीवन पत्रिका में प्रकाशित हुआ था—

बुधवार १९ फरवरी १९४७ को महाशिवरात्रि के पवित्र दिन विश्व साधु संघ की स्थापना श्री स्वामी शिवानन्द जी द्वारा हुई। इस संस्था की स्थापना का विचार श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के पास शिवरात्रि के कुछ दिन पहले ही आया और स्वामी जी ने अपने स्वभाव के अनुरूप इसे एक क्षण के लिए भी लम्बित नहीं करना चाहा और इस कारण इस निर्णय की घोषणा तथा अधिक प्रतिनिधियों को बुलाने का समय नहीं मिल सका। इसलिये संघ के शुभारम्भ की संगोष्ठी अनौपचारिक रूप से की गयी। श्री स्वामी जी तथा कुछ अन्य लोग शिवानन्द आश्रम में योग साधना कुटीर में १९ फरवरी १९४७ को शाम ४.३० बजे एकत्रित हुए। प्रणवोच्चारण के बाद नियमित रूप से होने वाला कीर्तन किया गया। श्री स्वामी शिवानन्द जी ने एक संक्षिप्त भाषण दिया जिसमें उन्होंने सम्पूर्ण जगत् के समस्त धर्मों के मध्य ऐसे संघ की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने बताया कि जो अपना जीवन इस संसार की सेवा के उद्देश्य हेतु समर्पित कर चुके हैं, वे आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करने जैसा सच्चा आत्मोत्थान का कार्य तथा मानव और मानव के बीच एकता और सामञ्जस्य स्थापित करने जैसे कार्य करके सच्चे धर्म को पुनर्जीवित कर सकते हैं तथा आगे

उन्होंने कहा कि "एक औसत मनुष्य का समय तो अपने जीविकोपार्जन में ही व्यय हो जाता है। उसे अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए थोड़ा सा भी समय निकालना कठिन होता है। आम जन इसी कारण सभी विषयों में पथ-प्रदर्शन तथा सहायता हेतु और इस भौतिक अस्तित्व के भंवरजाल से बाहर निकलने का मार्ग बताने के लिए संन्यासियों, आत्मत्यागियों तथा महात्माओं की ओर देखते हैं।

आज तक यह वर्ग एक पृथक् वर्ग के रूप में सम्मानित किया जाता रहा है क्योंकि यह अब तक सांसारिक समाज से बाहर ही रहता था। अभी तक इस वर्ग ने आध्यात्मिक साधना तथा आत्म-विकास के लिए स्वयं को अलग रखा हुआ था। इसी कारण इसे एक पृथक् वर्ग माना जाता था और इसी पृथक्करण के कारण उनका शेष जगत् से सम्पर्क टूट गया। अब समय आ गया है कि ये लोग गाँवों और नगरों के लोगों के साथ प्रयत्नपूर्वक पुनः सम्पर्क करें और गृहस्थों तथा सामान्यजनों की समस्याओं और कठिनाइयों को प्रभावकारी ढंग से समझें, जिससे कि वे अपने कर्तव्य का निर्वहन कर सकें तथा अपने मानव-मात्र के पथ-प्रदर्शन और आध्यात्मिक जाग्रति के पद के साथ न्याय कर सकें। यदि संसार भर के साधु लोग सभी आपस में एक होकर आपसी सहयोग से कार्य करें तो वे इस कार्य को शक्तिशाली ढंग से कर सकते हैं।"

विश्व साधु संघ की स्थापना की औपचारिक घोषणा हो गई तथा इसका मुख्यालय था ऋषिकेश और इसका लक्ष्य और विषय थे संसार के सभी महात्माओं, साधुओं, संन्यासियों, फकीरों तथा भिक्षुओं का एकीकरण तथा उनके निःस्वार्थ प्रयत्नों द्वारा विश्व का आध्यात्मिक जागरण और उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्यकर्तागणों को प्रशिक्षित करना।

शान्ति पाठ के साथ इस कार्यक्रम का समापन हुआ।

जब विश्व साधु संघ की स्थापना हुई उसके लगभग एक दशक बाद भारत साधु समाज का निर्माण हुआ तथा पश्चिम में भी कुछ पादरियों ने पुण्यात्मा लोगों के लिए धर्म युद्ध किया। यदि भूतकाल की ओर दृष्टि डाली जाए तो आप स्वामी जी की अन्तर्दृष्टि तथा दूरदृष्टि से आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सकेंगे।

९ अप्रैल १९४६ को भारत साधु समाज संघ के प्रथम सत्र का उद्घाटन करते हुए स्वामी जी ने कहा कि

"भारत साधु समाज संघ भारत तथा सम्पूर्ण विश्व के आध्यात्मिक उत्थान हेतु कार्य करेगा। साधु-संन्यासी त्याग, वैराग्य और ध्यान से प्राप्त ऊर्जा के आन्तरिक तथा प्रबल कोष से पूर्ण हैं। जब वे अपनी ऊर्जा का सदुपयोग करेंगे तो वे भारत ही नहीं सारे संसार का नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनर्जागरण सरलतापूर्वक कर सकेंगे। उनके उपदेश जन-जन के हृदय में प्रविष्ट हो जाएँगे। भारत तो स्वयं ही आध्यात्मिक देश है और इसका प्रभाव पश्चिम पर भी पड़ेगा और उनका भी उत्थान होगा। कुछ ऐसे संन्यासी भी होने चाहिये जो स्वयं को पूर्णकालिक ध्यान हेतु समर्पित कर सकें।

सक्रिय आध्यात्मिक जागरण

आश्रम, आश्रमवासी, दिव्य जीवन संघ तथा अन्य संस्थाएँ तो मात्र साधन थे। किन्तु इनका लक्ष्य था बृहत स्तर पर मानव-मात्र का आध्यात्मिक जागरण। यदि स्वामी जी के आसपास एकत्रित मुट्ठी भर जिज्ञासुओं का आध्यात्मिक उत्थान हो जाता तो यह पर्याप्त नहीं था। स्वामी जी उन्हें एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं होने देते थे कि मानव-मात्र की आध्यात्मिक जाग्रति में ही उनकी स्वयं की मुक्ति निहित है।

जो मिशन के लिए काम कर रहे थे वे तो सौभाग्यशाली तो थे ही और उनकी मुक्ति भी निश्चित थी, क्योंकि वे भगवान् के लिए भगवान् का कार्य कर रहे थे। और स्वामी जी उन्हें इस महान् तथ्य से अवगत कराते हुए कभी थकते नहीं थे। इस प्रकार वे इसी के साथ-साथ सभी का कल्याण भी कर रहे थे। यहाँ तक कि एक वैज्ञानिक भी अपने उपकरणों को प्रयोग करने से पूर्व दोषरहित करता है परन्तु यहाँ तो एक परम वैज्ञानिक अत्यन्त सुकोमल सामग्री का निर्माण उन मशीनों तथा उपकरणों से करने जा रहे थे जो स्वयं ही प्रयोगात्मक स्थिति में थे। इस विधि में उन पर जो तनाव आ रहा था वह इस पृथ्वी के किसी भी अन्य व्यक्ति को चाहे वह योगी ही क्यों न होता उसके भी उत्साह को तोड़ देता।

स्वामी जी के मिशन का पत्राचार विभाग बड़ा ही विशिष्ट था। किसी भी अन्य संत अथवा योगी के पास इतनी भारी मात्रा में पत्र नहीं आते होंगे तथा पत्र लिखने वाले को उत्तर हेतु प्रतीक्षा भी नहीं करना पड़ती थी। स्वामी जी तो पत्रों को आमन्त्रित करते थे जबकि उनके स्थान पर अन्य लोगों की सोच ऐसी थी कि यह एक भार है। उनकी पुस्तकें पढ़ कर किसी भी जिज्ञासु को कोई विरोधाभास नहीं होता था, न ही उसके मन में कोई सन्देह जन्म लेता था, ये पुस्तकें उसका स्पष्ट मार्ग दर्शन करती थीं। उनके सन्देह इन्हें पढ़ कर स्वयं दूर हो जाते थे। संसार भर के हजारों लोग उनकी पुस्तकों में बताये गये उपदेशों को व्यवहार में लाते थे और स्वयं को उनका शिष्य मानते थे तथा ऐसे कई लोग थे जिन्होंने आश्चर्यजनक आध्यात्मिक प्रगति की और स्वामी जी को कभी एक पत्र भी नहीं लिखा अर्थात् इस हेतु पत्र व्यवहार अति आवश्यक नहीं था। परन्तु स्वामी जी का यह अपना ही विशिष्ट तरीका था प्रशिक्षण देने का। वे जिज्ञासुओं से कहते थे कि उन्हें संकल्प लेना चाहिए तथा आध्यात्मिक दैनन्दिनी रखना चाहिए। स्वामी जी ने एक बार कहा—

''नये वर्ष में पालन करने के लिए कुछ नये संकल्प लें। प्रत्येक अपनी स्वयं की प्रकृति के अनुरूप, अपनी सुविधा अथवा विकास के स्तर के अनुरूप संकल्प ले सकता है।

''अपनी प्रकृति अथवा रहने का तरीका एकदम से न बदलें। आप आध्यात्मिक पथ में शीघ्र विकास कर सकते हैं किन्तु इसके लिए अपने संकल्पों पर दृढ़ रह कर मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखें और संकल्प शक्ति का विकास करें।''

''संकल्प पत्र की दो प्रतियाँ रखें। इनमें से एक प्रति को दस्तखत करके अपने गुरु के पास भेज दें जिससे आप अपने प्रयत्नों को ढीला न कर सकें अथवा किसी बहाने अथवा झूठे तर्क द्वारा अपने संकल्प को तोड़ न सकें।

''आपके भीतर आपके मन में छिपे चोर को मारने के लिए दैनन्दिनी से धारदार कोई तलवार नहीं है। यह आपके माता-पिता से भी श्रेष्ठ है। दैनन्दिनी भरने से आप अपनी गलतियों में सुधार कर सकते हैं। अधिक साधना (योगभ्यास) कर सकते हैं तथा शीघ्र विकास कर सकते हैं।

"दैनन्दिनी भरने में कोई असत्य बात न लिखें। इसे आप अपने लाभ के लिए भर रहे हैं।

"अभी तक आपने अपनी इन्द्रियों को संतुष्ट करने में सारी कठिनाइयाँ झेली हैं। आज इसी क्षण से गम्भीर हो जाएँ और साधना प्रारम्भ कर दें।

आध्यात्मिक दैनन्दिनी आपके मन को धर्म और भगवान् की ओर प्रवृत्त करने के लिए कोड़े की तरह कार्य करती है। यदि आप नियमित रूप से दैनन्दिनी भरेंगे तो आपको चैन तथा मन की शान्ति प्राप्त होगी और आप आध्यात्मिक पथ में शीघ्र प्रगति करेंगे। एक दैनन्दिनी रखें और इसके अद्भुत परिणामों को साक्षात देखें।"

जो दैनन्दिनी भरते थे वे स्वामी जी से नियमित पत्र व्यवहार करते थे। वे प्रतिमाह इसकी एक प्रति भेजते थे और अपनी कठिनाइयाँ और अनुभवों को लिखते थे तथा स्वामी जी का निर्देशन प्रापत करते थे। इसके सिवा वे पत्र व्यवहार करते थे, जो स्वामी जी की पुस्तकों में बताये गये मार्गों का अनुकरण करते थे तथा पथ में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए स्वामी जी का आशीर्वाद चाहते थे। इसके सिवा पत्र व्यवहार करने वालों में वे होते थे जो प्रेमपूर्वक भेंट देकर स्वामी जी के लक्ष्य हेतु सहायता प्रदान करते थे और अक्सर स्वामी जी से उन्हें एक विनयपूर्ण पत्र प्राप्त होता था। यह स्वामी जी के काम करने का एक रोचक अंग था। स्वामी जी इसे रचनात्मक पत्र व्यवहार कहा करते थे। यहाँ तक कि आश्रम में कोई आकस्मिक रूप से भी आ जाता तो भी जब वह घर वापस जाता तो उसे स्वामी जी का पत्र मिलता कि वे उसके आगमन हेतु प्रतीक्षारत हैं। लोगों को स्वामी जी से निःशुल्क पुस्तकें और पर्चे प्राप्त होते थे और उसके अन्त में लिखा होता था 'धन्यवाद के साथ'। कोई व्यक्ति इसके बाद सोचता कि लेन-देन अब समाप्त हो गया लेकिन स्वामी जी के लिए यह प्रारम्भ था। अन्तिम पत्र सदा उनकी ही तरफ से ही होता। जब लोगों को पता चलता कि जिन तक वे इतनी सरलता से पहुँच सकते हैं और जो उनकी कठिनाइयों को दूर करने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, वे एक संत हैं तो वे यह बात अपने मित्रों को बताते और इस प्रकार पत्र व्यवहार बढ़ता जाता था।

साधना सप्ताह

स्वामी जी द्वारा प्रशिक्षण हेतु जो अन्य विधि अपनाई जाती थी वह थी साधना र प्ताह का आयोजन। ईस्टर और क्रिसमस के समय देश के सभी भागों से आने वाले

ईश्वर के सच्चे खोजी जो कि भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक साधनाओं का प्रशिक्षण लेने आते थे। उन सभी को स्वामी जी एकत्रित करते और इन्हें साधना का एक विस्तृत कार्यक्रम दिया जाता, जिसमें जप, ध्यान, मन्त्र लेखन, योगासन, मौन, साधना, निष्काम्य सेवा आदि सम्मिलित थे तथा इस समय स्वामी जी, अन्य संतों और वरिष्ठ साधकों के प्रवचन होते थे। इन प्रवचनों को सुनने से साधना सप्ताह में सम्मिलित होने वाले प्रतिभागियों के साधना के प्रति उत्साह को और अधिक अच्छी सैद्धान्तिक पृष्ठ भूमि प्राप्त होती थी जिससे वे ऋषिकेश जिस उद्देश्य से आये थे उससे कहीं अधिक प्राप्त करते थे।

सन् १९३९ में जो साधना सप्ताह क्रिसमस के समय आयोजित हुआ था उसमें स्वामी जी ने निर्देश दिये थे, वे दिव्य जीवन पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। यह प्रतिवेदन हमें स्वामी जी की आदर्श जीवन के प्रति धारणा तथा स्वामी जी की उन विधियों को बतालाता है जिनसे स्वामी जी प्रशिक्षित करते थे। यह प्रतिवेदन निम्नानुसार है—

१. आहार हेतु कोई कठोर नियम नहीं है। इसका चुनाव सदस्यों के ऊपर छोड़ दिया गया है।

२. हमारी ओर से साधना सप्ताह में निम्न भोजन का निर्देश दिया जा रहा है।

दिनांक २६ को—रोटी, दाल, सब्जी (बिना नमक की), दूध (बिना चीनी के)

दिनांक २७ को—मात्र दूध, चावल, दाल अथवा फल नहीं

दिनांक २८ को—चावल, दाल, रोटी, सब्जी, दूध (बिना शक्कर के)

दिनांक ३१ को—भोजन के साथ मिठाई भी दी जाएगी

अन्य दिनों सादा भोजन, चावल, रोटी, दाल, सब्जी आदि

३. प्रातः ९ बजे तथा सायंकाल भी ९ बजे दूध दिया जाएगा। २७ को १२ बजे मध्याह्न भोजन के स्थान पर दूध दिया जाएगा।

४. ऊपर बताया गया भोजन आनन्द कुटीर के रसोई घर में तैयार करके दिया जाएगा। सदस्यगण यदि उन्हें यह भोजन अनुकूल न आ रहा हो वे अपना भोजन स्वयं बना सकते हैं।

५. उपवास का चुनाव स्वयं सदस्यों पर निर्भर है। इस हेतु उन पर कोई दबाव नहीं है।

६. सदस्यगण जो भी दिनचर्या अपनाएँ उसे २४ तारीख को सचिव को सूचित कर दें तथा अपनी दैनन्दिनी में लिखें।

७. आपको बार-बार कहने आने की आवश्यकता नहीं है। आपको बताए गए समय पर रसोईघर से दूध तथा फल मिल जाएँगे।

८. सभी दिनों में चाय से परहेज रखें। जिनको चाय की आदत है वे २५ तथा ३१ दिसम्बर को चाय ले सकते हैं।

९. सदस्य पद्मासन अथवा सिद्धासन में बैठने का प्रयास करें। प्रातःकाल के समय प्रार्थना, श्री शंकराचार्य जी के प्रातः स्मरण स्तोत्र, शिवस्तोत्र तथा गुरु स्तोत्र को सामूहिक रूप से दोहराएँ। सदस्यों से अनुरोध है कि वे प्रार्थनाओं को सस्वर दोहरायें।

१०. प्रातःकालीन जप, प्रार्थना, ध्यान, मन्त्र लेखन (लिखित जप) और स्वाध्याय के समय सदस्य एक आसन में बैठे यदि वे बीच में स्थिति बदलना चाहें तो अनावश्यक रूप से हाथों-पैरों को न हिलाएँ और अन्य लोगों को कष्ट न दें। आसन को जल्दी-जल्दी न बदलें।

११. अन्य सभी सामान्य कार्यक्रमों में भी सदस्यों से निवेदन है कि वे इधर-उधर न देखें। शरीर स्थिर रहे। मन एकाग्र रहे। दूसरों के जोर-जोर से श्वाँस लेने द्वारा हाथों और पैरों को हिला कर तथा छींक, खाँसी आदि अन्य आवाजों द्वारा परेशान न करें। प्रातःकाल मानसिक जप, ध्यान, त्राटक आदि के समय सभी सदस्यों को शान्ति बनाए रखने का अधिक-से-अधिक प्रयास करना चाहिए।

१२. मानसिक जप बिना ओठों को हिलाए तथा बिना माला के करना है। सभी कार्यक्रमों में इसे करते रहना आवश्यक है। जब जप किसी अलग स्थान में व्यक्तिगत रूप से किया जा रहा हो तो इसे मानसिक बैखरी, उपांशु तथा जोर-जोर से बोल कर भी किया जा सकता है।

१३. प्रातःकाल यदि किसी को तंद्रा का अथवा निद्रा का अनुभव हो तो वह १० मिनट तक खड़े-खड़े मानसिक जप अथवा प्रार्थना कर सकता है। खड़े रहते समय या बैठते समय कोई आवाज नहीं होनी चाहिए।

१४. जप के लिए इष्ट देवता या गुरु मन्त्र का जप किया जा सकता है। लिखित जप या मानसिक जप के लिए एक ही मन्त्र रखें। मन्त्र नहीं बदलना चाहिए।

१५. लिखित जप के लिए एक अलग कापी में स्याही से मन्त्र लिखें। मन्त्र संस्कृत, अंग्रेजी अथवा मातृभाषा में लिख सकते हैं।

१६. भगवान् कृष्ण का चित्र ध्यान कक्ष के मध्य रखा रहेगा। प्रातः के समय एक घी का दीपक जलता रहेगा। भक्त उस चित्र पर त्राटक कर सकते हैं अथवा घी के दीपक या ॐ पर त्राटक भी कर सकते हैं।

१७. महामन्त्र का अखण्ड कीर्तन होगा और इसे एक स्वर में करना है। लय बार-बार न बदलें, बीच में न रोकें। प्रत्येक सदस्य आधा घण्टे तक नायकत्व करेगा और अन्य सामूहिक रूप से दोहरायेंगे।

१८. ३१ दिसम्बर को भोजन बनाने तथा साधुओं, महात्माओं तथा गरीबों के लिए भोजन पकाने तथा परोसने के लिए सभी सदस्य एक जगह एकत्र होंगे। इस कार्य के लिए वे भोजन सामग्री हेतु भी अपना सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप साधुओं और महात्माओं को आमन्त्रित किया जाएगा।

१९. दिनांक २४ को सभी सदस्य साधना के व्यवहारिक पक्ष पर एक लेख लिखें और २९ तारीख को सन्ध्याकालीन सत्संग में उस पर भाषण देने का प्रयास करें। इस लेख की एक प्रतिलिपि दिव्य जीवन संघ के सचिव को प्रकाशानार्थ दे दी जाती थी। इसके प्रथम पृष्ठ पर सदस्यों का नाम-पता स्पष्ट अक्षरों में लिखा जाता।

२०. आध्यात्मिक दैनन्दिनी के फार्म सदस्यों को दे दिये जाएँगे। यह मात्र उनके निर्देशन के लिए है। इसका विस्तृत विवरण एक अलग कॉपी में लिखना है।

जैसे जप, दिनचर्या, एकाग्रता और ध्यान से सम्बन्धित प्रत्येक बात के लिए एक-एक पन्ना रखना है। कॉपी के अन्त में साधना में आने वाली बाधाएँ तथा अपने अनुभव लिखेंगे। दैनन्दिनी के अवलोकन के बाद स्वामी शिवानन्द जी आगे के निर्देश डाक द्वारा भेजेंगे। एक जनवरी के पूर्व आध्यात्मिक दैनन्दिनी और मन्त्र लेखन की कॉपियाँ श्री स्वामी शिवानन्द जी के हाथ में दी जानी चाहिए।

सदस्यगण अपनी दैनिक साधना बिना किसी विघ्न अथवा असुविधा के कर सकते हैं। उन्हें अपने साथ निम्न वस्तुएँ लेकर आना है—(१) पीने के पानी का पात्र, (२) लालटेन तथा टार्च, (३) घड़ी, (४) मृगचर्म अथवा कुशासन, (५) भगवद्गीता की एक प्रति, (६) रुद्राक्ष अथवा तुलसी की माला, (७) सादा बिस्तर और एक कम्बल।

दिव्य जीवन पत्रिका के मार्च १९४७ के अंक में आगे और निर्देश दिये गये जो बड़े ही प्रेरक थे—

'जब आप साधना-सप्ताह मे आयें, पूर्ण आध्यात्मिक भाव से आयें। आप साधना-सप्ताह में सप्ताहांत की छुट्टियाँ मनाने अथवा छुट्टियाँ बिताने के लिए न आयें। पिकनिक अथवा आनन्द की यात्राओं के विपरीत यह एक गम्भीर और भिन्न प्रकार का अवसर है। आपको अत्यधिक गम्भीर अथवा दुःखी नहीं होना है, न ही छुट्टी का भाव रखना है। इससे वातावरण की शान्ति तो नष्ट होगी ही। आपको इससे आध्यात्मिक लाभ भी नहीं मिल सकेगा।

जब आप अपने कार्यालय में जाते हैं तो आप एक विशेष गणवेश पहनते हैं। आप त्योहारों अथवा विशेष अवसरों पर विशेष वस्त्र धारण करते हैं। साधना-सप्ताह के लिए विवाह समारोह अथवा किसी प्रकार के चमक-दमक वाले वस्त्र न पहनें। सादे वस्त्र पहनें जिससे आपका मन धार्मिक बना रहे। कम-से-कम एक सप्ताह तक पुरुष ये सभी बातें जैसे शौचालय का विशेष ध्यान, अधिक देर तक कंघी करना, बालों में तेल लगाना आदि त्याग दें तथा स्त्रियाँ इत्र लगाना, मुख पर पाउडर लगाना, नेल पॉलिश लगाना आदि त्याग दें। आपको आत्म चेतना होनी चाहिए कि आप एक साधक हैं और यहाँ विशेष रूप से कुछ ठोस साधना करने के लिए आये हैं।

ये निर्देश भी दिये गये कि संकल्प लें कि आप एक सप्ताह तक धूम्रपान नहीं करेंगे, तम्बाकू नहीं चबायेंगे आदि, और जो अपने संकल्पों को तोड़ेंगे, जो कक्षा में समय पर नहीं पहुँचेंगे, उन्हें १ रुपया अधिक देकर दण्ड भरना होगा। जिज्ञासु जो स्वामी जी के नरम हृदय को जानते थे, उन्होंने सोचा कि अन्य समय की भाँति स्वामी जी कोई कड़ी कार्यवाही नहीं करेंगे। परन्तु वे गलती पर थे। साधना-सप्ताह का प्रतिवेदन बताता है—

३१ तारीख को प्रातः श्री स्वामी जी महाराज ने प्रातः की प्रार्थना और ध्यान के बाद साधकों को बहुमूल्य निर्देश दिये। स्वामी जी एक विद्यालयीन शिक्षक के समान अनुशासनहीनता करने वाले साधक जो कक्षा में समय पर नहीं आते थे तथा जिन्होंने नियमों का उल्लंघन किया, उनसे दण्ड वसूल कर रहे थे। जिनके पास रुपये नहीं थे उनको दाँये हाथ बायाँ कान पकड़ कर तथा बायें हाथ से दाँया कान पकड़ कर कई बार झुक कर कोहनियाँ भूमि से स्पर्श करने को कहा। कई साधकों के लिए यह एकदम नया अनुभव था क्योंकि उनका यह विचार था कि स्वामी जी उनकी गलतियों को अनदेखा कर देंगे।

साधना-सप्ताह सदैव आध्यात्मिक प्रशिक्षण शिविर होते थे। इसमें सैद्धान्तिक व्याख्यान भी होते थे और ये निस्सन्देह आध्यात्मिक-साधना हेतु सहायक होते थे। यहाँ अभ्यास अधिक महत्वपूर्ण था। ब्रह्ममुहूर्त में सामूहिक ध्यान होता था और किसी को भी छूट नहीं दी जाती थी।

साधना-सप्ताह में स्वामी जी कुछ आश्रमवासियों को अतिथियों को जाकर जगाने और उन्हें ध्यान की कक्षा हेतु भजन-कक्ष में लाने के लिए कहते थे। यदि कोई अतिथि अनुपस्थित रहता तो स्वामी जी उस अतिथि से न पूछ कर आश्रमवासी से ही पूछताछ करते कि उसने अपने कर्तव्य की अवहेलना क्यों की? स्वामी जी सोते हुए व्यक्ति को जगाने की कला भी सिखाते थे—"कभी भी किसी को जगाते समय चिल्लाएँ नहीं। इससे नाड़ी तन्त्र पर अनावश्यक रूप से झटका पड़ता है। सबसे पहले धीरे से ॐ कहें और प्रतीक्षा करें कि वह जागता है या नहीं। यदि वह नहीं जागे तो थोड़ी और जोर से आवाज दें, लेकिन धैर्य न खोएँ। जब वह प्रतिक्रिया करे तो कुछ देर और रुकें और देखें कि वह वास्तव में जागा है या नहीं। कभी-कभी वह

आपकी आवाज का उत्तर देकर पुनः सो जाता है, तब यह न सोचें कि आप अपना समय व्यर्थ गंवा रहे हैं। यह तो भगवान् की अद्भुत सेवा है। ध्यान से भी ऊँची क्योंकि आप एक शिशु आत्मा के आध्यत्मिक विकास में सहायता कर रहे हैं।''

इस सबमें स्वामी जी की उपस्थिति तथा क्रियाशील भागीदारी बहुत अधिक प्रेरणा प्रदान करती। वे साधकों के साथ मिल कर एक हो जाते थे। साधना-सप्ताह में गीता, रामायण, भागवत, उपनिषद् आदि धर्मग्रन्थों में से स्वाध्याय किया जाता था तथा जप और लिखित जप आदि का क्रमबद्ध प्रशिक्षण दिया जाता था। पहले थोड़ा परिचय कराया जाता। फिर वास्तविक साधना का अभ्यास। स्वामी जी प्रतियोगी भावना को प्रोत्साहन देते थे और इसका उपयोग वे साधक के आध्यात्मिक विकास के लिए करते थे। इस समय योगासन तथा मन्त्र लेखन प्रतियोगिता होती थी। गीता जयन्ती के अवसर पर गीता-पाठ प्रतियोगिता होती थी। कभी-कभी निबन्ध लेखन प्रतियोगिता होती। पुरस्कार भी दिये जाते थे। एक या दो साधकों को प्रथम एवं द्वितीय पुरस्कार दिये जाते थे। लेकिन स्वामी जी ऐसे किसी अन्तर को नहीं मानते थे और वे सभी प्रतिभागियों को प्रथम पुरस्कार दे देते थे। बच्चों को उनके काम की चीजें पेन पेंसिल आदि दी जाती थीं और बड़ों को स्वामी जी की पुस्तकें स्वामी जी के आशीर्वाद और दस्तखत के साथ दी जाती थीं।

साधना सप्ताह में कर्म योग की कक्षा भी होती थी। ऐसी ही एक कक्षा का विवरण सितम्बर १९४५ के अंक में प्रकाशित हुआ था जो निम्नानुसार है—

स्वामी जी ने इस माह के तीन विभिन्न अवसरों पर बिना कोई निर्देश आदि दिये कर्म योग की नियमित कक्षाओं के रूप में एक अनूठा कार्यक्रम किया। एक घण्टी के बजते ही आश्रमवासियों तथा अतिथियों का सारा दल आश्रम के मुख्य द्वार की ओर चल पड़ा और उनके सबसे आगे थे स्वामी जी स्वयं काम करने के लिए तैयार। स्वामी जी ने अपनी धोती ऊपर बाँध रखी थी और सिर पर पगड़ी की तरह तौलिया लपेट रखा था। इसके बाद जो दृश्य था वह अविस्मरणीय था। यह राह चलते यात्रियों तथा स्थानीय निवासियों को भी चकित कर रहा था। सब्बल और फावड़े की सहायता से स्वामी जी ने गंगा तट और सड़क के किनारे की सफाई करनी प्रारम्भ कर दी। एक या दो अतिथि जो कुलीन और समृद्ध थे वे एक क्षण को हिचकिचाये लेकिन जब उन्होंने स्वामी जी को सीधा हाथ कोहनी तक गटर में डाले सफाई करते देखा तो

वे सब कुछ भूल कर एक श्रमिक की तरह काम करने लगे। स्वामी जी ने स्वयं अपने हाथों से मैला और सड़क का कीचड़ साफ करके यह दिखाया कि कैसे स्वयं के प्रत्यक्ष उदाहरण से अन्यों को भी निष्काम सेवा हेतु प्रेरित किया जाता है। जब वे कीचड़ से भरी बाल्टी अपने सिर पर रख कर ले जा रहे थे तो उनके भीतर की यह भावना उनके मुख पर झलक रही थी **'स्मरण रखो सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (सभी वास्तव में ब्रह्म ही हैं), इसलिये संसार में कोई भी चीज घ्रणित नहीं है। प्रत्येक वस्तु आपके मन में है। अनुभव करें हर चीज में भगवान् है, तभी आपके मन में सच्चे कर्मयोगी की भावना आयेगी और आपकी दृष्टि और व्यवहार सच्चे कर्मयोगी का होगा। कभी भी किसी काम को तुच्छ मत समझो। सभी कर्म सर्वव्यापक ईश्वर की पूजा है। कर्म आपको बाँधते नहीं, ये आपको आत्म-साक्षात्कार प्रदान करते हैं।

दोहरायें—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धयात्मनावा प्रकृतेस्र्वाभात्!
करोमि यद्यत सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामी!!

मैं शरीर मन और आत्मा से जो भी कर्म करता हूँ वह सब मैं ईश्वर को अर्पण करता हूँ।

इन कर्म योग की कक्षाओं ने सभी में सेवा-भाव भर कर तथा उनके स्वभाव में एक नवीन नम्रता का प्रवेश करा के उन्हें एक पूर्णतया परिवर्तित मनुष्य में बदल दिया।

साधना-सप्ताह के साथ-साथ स्वामी जी विद्यालयों और महाविद्यालयों के विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए विशेष ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण सत्र आयोजित करते थे। इसमें अन्य लोग भी सम्मिलित हो सकते थे।

इसके पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत साधना की सभी महत्वपूर्ण बातें, सामूहिक साधना सत्र संचालित करने की विधियाँ तथा बृहत धर्म निरपेक्ष दिव्य जीवन की दिशा में क्रमबद्ध आध्यात्मिक प्रचार सम्मिलित था।

जन्म दिवस

संस्था में संसार के सभी धर्मों के सभी प्रवर्तकों के जन्म दिन मनाये जाते थे। सदस्यों तथा स्वामी जी के शिष्यों तथा भक्तों के लिए इनमें से सबसे महत्वपूर्ण थी

शिवानन्द जयन्ती। इस उत्सव की उत्पत्ति अत्यन्त रोचक है। सन् १९३६ की घटना है, इस समय स्वामी जी प्रवास पर थे। आनन्द कुटीर में जो थोड़े शिष्य थे उनके मन में स्वामी जी का जन्म दिन मनाने का विचार आया।

लेकिन उन्हें स्वामी जी की वास्तविक जन्म तिथि नहीं मालूम थी। उन्हें स्वामी जी से मात्र उनके जन्म का वर्ष, माह तथा नक्षत्र के बारे में मालूम हुआ था। स्वामी जी के शिष्यों में एक अच्छे ज्योतिषि थे स्वामी सत्यानन्द जी जो श्रीलंका के थे। सभी शिष्यों ने उनसे अनुरोध किया कि वे ज्योतिष के गणित से स्वामी जी की सही जन्म दिनांक निकालें। स्वामी सच्चिदानन्द जी ने पत्रिका बनाई। इसी बीच स्वामी परमानन्द जी के मन में यह विचार आया कि हम शिवानन्द जी का जन्म दिन शिवरात्रि के दिन मनायेंगे और सन् १९३६ में स्वामी जी का जन्म दिन शिवरात्रि के दिन मनाया गया। स्वामी परमानन्द जी ने आनन्द कुटीर में प्रथम जन्म दिवस के उत्सव का वर्णन इस प्रकार किया—

''आनन्द कुटीर में उस समय मात्र ६ या ७ आश्रमवासी थे। स्वामी जी उस समय कीर्तन संचालन तथा साधना कक्षाएँ लेने के लिए गये थे। मैंने ऋषिकेश के कुछ महात्माओं को सत्संग में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया। हमने इसे स्वामी जी का जन्म दिन कहा लेकिन हमें स्वामी जी के वास्तविक जन्म दिन के बारे में पता नहीं था। हमें इस अवसर पर ऋषिकेश तथा स्वर्गाश्रम के महात्माओं से श्री स्वामी जी महाराज के जीवन तथा मिशन के बारे में प्रेरणाप्रद बातें सुनने को मिलीं।

शिष्यों तथा आध्यात्मिक जिज्ञासुओं की प्रतिक्रिया भी बड़ी अच्छी रही। इससे स्वामी जी उनके शिष्यों के हृदय के और अधिक निकट आ गये और उनका स्वामी जी के प्रति समर्पण और अधिक बढ़ गया।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी की पत्रिका के अनुसार यह स्पष्ट हुआ कि ८ सितम्बर सन् १९३७ को स्वामी जी की स्वर्ण जयन्ती है और आश्रम के अधिकारियों ने यह निश्चय किया कि हम इसे उत्सव के रूप में मनायेंगे। आश्रम के बाहर रहने वाले भक्तों ने इस निर्णय का स्वागत किया। इस उत्सव में भाग लेने के लिए भारत के विभिन्न भागों से बहुत से लोग आये। यह उनके लिए स्वामी जी के दर्शन तथा स्वामी जी के प्रवचनों को सुनने का स्वर्णिम अवसर था। जो यहाँ न आ सके उन्होंने अपने

गृहनगर में ही यह उत्सव मनाया और स्वामी जी से आशीर्वाद हेतु प्रार्थना की। उन सभी ने मुख्यालय द्वारा घोषित कार्यक्रमों के अनुरूप ही कार्यक्रम किये जैसे ब्रह्ममुहूर्त में सामूहिक ध्यान, भगवान् के नाम का गायन करते हुए प्रभात फेरी, साधुओं तथा निर्धनों का भंडारा, स्वामी जी के सन्देशों और उपदेशों वाले पर्चों तथा पत्रकों का वितरण, सत्संग अथवा जनसभा का आयोजन जिसमें विद्वानों, योगियों, संतों के प्रवचन, जिससे कि जन सामान्य आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। कार्यक्रम के अन्त में सम्पूर्ण मानव-जाति के कल्याण हेतु सामूहिक प्रार्थना।

इससे वास्तव में यह सिद्ध हुआ कि यह भगवान् के दिव्य जीवन सन्देश के विस्तार हेतु एक और अवसर था। इसके बाद से स्वामी जी का जन्म दिन आश्रम तथा सारे संसार में अत्यधिक उत्साहपूर्वक मनाया जाने लगा। विशेष रूप से सन् १९५० में इस उत्सव ने एक महान् धार्मिक पर्व का रूप ले लिया। भारत के बड़े शहरों में स्थित दिव्य जीवन संघ के केन्द्रों ने स्वामी जी के जन्म दिन पर बहुत बड़ा उत्सव मनाया। वहाँ के लोगो ने अपनी संयुक्त विचारशक्ति की तरंगे स्वामी जी के चरणों में भेज कर तथा विद्वानों और संतों द्वारा स्वामी जी के यशस्वी जीवन और मिशन के बारे में सुन कर स्वामी जी की आध्यात्मिक उपस्थिति को जाग्रत किया और इस प्रकार उन्होंने स्वामी जी की भौतिक अनुपस्थिति के कारण जो कमी थी, उसकी पूर्ति कर ली।

जब भी स्वामी जी कोई काम अपने हाथ में लेते थे तो उसके पीछे लोगों का कल्याण निहित होता था। वे इतनी शीघ्रता से उस काम में लग जाते थे और इतना अधिक उस बारे में विचार करते थे कि अन्य भी दिन-रात उसी काम के बारे में सोचने लगते थे। स्वामी जी इस काम के बारे में श्रेष्ठ और प्रभावशाली विधियाँ बताते रहते थे और आश्रम का एक विशेष विभाग कुछ समय तक उसमें अत्यधिक परिश्रम के साथ लग जाता था और जब तक यह कार्य स्वामी जी के दृष्टिकोण से सम्पन्न न हो जाता, सभी इसमें व्यस्त रहते थे।

जनवरी १९३९ के दिव्य जीवन पत्रिका के अंक में एक नया समाचार प्रकाशित हुआ जिससे आपको आगे की कहानी मालूम होगी।

जन्म दिवस उत्सव

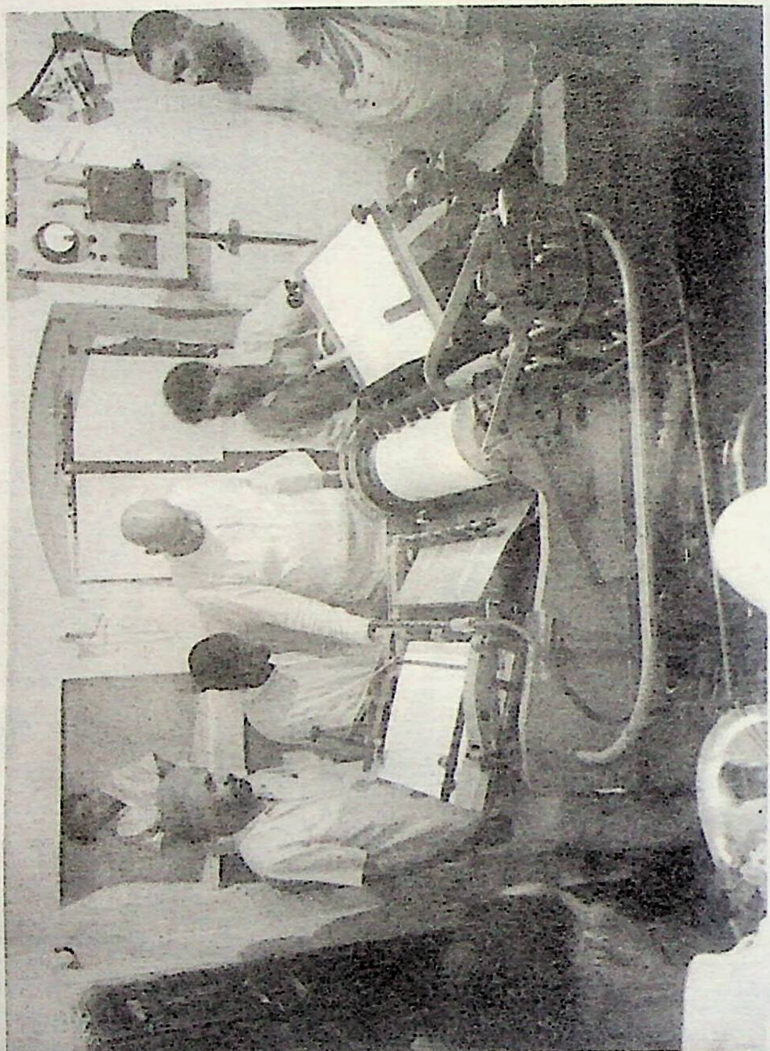
सारे संसार के श्री स्वामी शिवानन्द जी के भक्त प्रतिवर्ष ८ सितम्बर को उनका जन्म दिन बड़े ही उत्साह से मनाते हैं। श्री स्वामी जी के अग्रणी शिष्यों की यह भावपूर्ण प्रार्थना है कि ऐसा उत्सव माह में एक बार अवश्य ही मनायें जिससे वे अपने हृदय में निरन्तर शिव-आनन्द का उत्सव बनाये रखें (उसका अनुभव करते रहें)। हमें यह समाचार देते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है इस उत्सव को ८ अक्तूबर से शिवानन्द आश्रम में मनाना प्रारम्भ कर दिया गया है और प्रतिमाह की ८ तारीख को आश्रम में इस दिवस पर कीर्तन, प्रार्थना तथा आध्यात्मिक साधना की जाएगी।

स्वामी जी की वाणी को अमर किया गया

अक्तूबर सन् १९४० को स्वामी जी अपनी आवाज की ग्रामोफोन डिस्क पर रिकार्डिंग के लिए कलकत्ता गये। स्वामी जी के एक शिष्य जिन्होंने कलकत्ता में स्वामी जी की कुछ पुस्तकों के मुद्रण तथा प्रकाशन के लिए एक प्रकाशन संस्था बनायी थी, उनका नाम था श्री स्वामी कैवल्यानन्द जी। इन्होंने हिन्दुस्तान म्यूजिकल प्रोडक्ट्स के साथ मिल कर स्वामी जी के प्रेरक प्रवचनों तथा कीर्तनों को ग्रामोफोन डिस्क पर रिकार्ड करने में अत्यधिक रुचि ली। स्वामी जी ने इस सुअवसर का प्रयोग भारत के इस सबसे बड़े शहर में लोगों में आध्यात्मिक उत्साह उत्पन्न करने हेतु किया। उन्होंने वहाँ कुछ सभाओं को संबोधित किया और १३ नवम्बर १९४० को वापस आश्रम आ गये।

यहाँ पर १३ रिकार्ड बनाये गये और स्वामी जी को इस विधि द्वारा उनके सन्देश तथा भगवान् के नाम के प्रचार का विचार बड़ा ही अच्छा लगा। बाद में दिव्य जीवन पत्रिका में यह सूचना प्रकाशित हुई। स्वामी जी ने कहा—"इन गीतों को बिस्तर पर सोने जाने के पूर्व तथा प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में सुनिए। आप परमानन्द तथा परमशान्ति का आनन्द उठायेंगे। आप दुःस्वप्नों से मुक्त हो जाएँगे। आपका मन शुद्धता से परिपूर्ण हो जाएगा। आप के भीतर मन के संतुलन, आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति तथा दृढ़ इच्छा शक्ति का विकास होगा। आपमें अन्दर से आध्यात्मिक जीवन जीने की इच्छा होगी। यह इस शोरगुल, विवादों तथा उपद्रवों से





पूर्ण जगत में आपके लिए निरन्तर सत्संग का साधन है। इन उपदेशों को अपने जीवन में अपनायें तथा इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त करें।

जब स्वामी जी सन् १९४४ में बम्बई गये तो १० अन्य ग्रामोफोन रिकार्ड तैयार किये गये।

स्वामी जी की सम्पूर्ण भारत यात्रा के समय उनकी आवाज को अमर करने हेतु एक और क्षेत्र प्रारम्भ हुआ। वह था मैगनेटिक टेप रिकार्डिंग। इस रिकार्डिंग द्वारा सन् १९५० में अक्तूबर माह के प्रारम्भ में स्वामी जी का प्रथम प्रवचन धरमपुर में रिकार्ड किया गया। एक भण्डारे के समय स्वामी जी का प्रवचन रिकार्ड किया गया और इसे अगले दिन प्रसारित किया गया, जिससे स्वामी जी भी आश्चर्यचकित रह गये। इसी प्रवास में एक बार और जब स्वामी जी बम्बई में थे तो उनका भगवद्गीता पर प्रवचन रिकार्ड किया गया। परमानन्द जी तथा शारदानन्द जी को बड़ा अच्छा लगा कि जब स्वामी जी प्रवचन दें तो उनकी आवाज को पकड़ लिया जाए तथा उसे उसी समय वापस सुना जाए। इसलिए जब स्वामी जी नवम्बर में आश्रम में वापस आये तो ये दोनों स्वामी जी बम्बई गये और एक टेप रिकार्डर क्रय करके ले आये।

स्वामी जी की ऐसी नवीन बातों के लिए बड़ी ही उत्साहजनक प्रतिक्रिया रहती थी। जब ये लोग टेप रिकार्ड लाये तो स्वामी जी देहरादून अस्पताल में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था परन्तु फिर भी उन्होंने स्वामी शारदानन्द जी को अपने सभी भाषण और गीतों की रिकार्डिंग करायी। इसमें घण्टों लग गये। डाक्टरों को भी स्वामी जी की संकल्पशक्ति को देख कर महान् आश्चर्य हो रहा था।

जो प्रवचन उस समय रिकार्ड किये गये, उनमें से एक नीचे दिया जा रहा है।

''हे मनुष्य, जब दैनिक जीवन के संग्राम में दुःख, कठिनाइयाँ और कष्ट आयें तो निराश न हों, आप अपने भाग्य के स्वयं स्वामी हैं। आप दिव्य हैं। इसी भाव में जियें, इसी का अनुभव करें और इस स्वीकार करें। अपने भीतर से आध्यात्मिक शक्ति तथा साहस खींचें। स्रोत के दोहन के तरीके सीखें। अपने भीतर गहरे गोते लगायें। अमरत्व के पवित्र जल में डुबकी लगायें। आप पुनः स्फूर्तिवान्, पुनर्युवा तथा जीवनीशक्ति से परिपूर्ण हो जायेंगे।

विश्व के नियमों को समझें। इस संसार के चतुराई से विचरण करें। प्रकृति के रहस्यों को जानें। मन पर नियन्त्रण के श्रेष्ठ तरीकों को सीखें। मन पर विजय ही वास्तव में इस प्रकृति और संसार पर विजय है।

जब कठिनाइयाँ और दुःख आप पर आ पड़ें तो बड़बड़ायें नहीं। कठिनाइयाँ आपके संकल्प को दृढ़ करेंगी। आपकी सहनशीलता में वृद्धि करेंगी और आपके मन को ईश्वर की ओर प्रवृत्त करेंगी। उनका सामना मुस्करा कर करें। आपकी दुर्बलता में ही आपकी वास्तविक शक्ति है। सभी कठिनाइयों पर एक-एक करके विजय प्राप्त करें। यह एक नये आध्यात्मिक जीवन का, विस्तृत, यशस्वी तथा दैवी वैभव सम्पन्न जीवन का प्रारम्भ है। सभी सद्गुणों—धैर्य, सहनशीलता, साहस आदि को बढ़ायें, उनका विकास करें तथा उनका निर्माण करें। एक नवीन जीवन का आरम्भ करें।

एक नवीन दृष्टिकोण रखें। स्वयं को विवेक, प्रसन्नता, वैराग्य, तत्परता तथा साहस से सुसज्जित करें। एक देदीप्यमान भविष्य आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। भूतकाल को भूल जायें। आप चमत्कार कर सकते हैं। आशा न छोड़ें। आप अपने विरोध में आने वाले गुप्त विरोधी बलों तथा बुरी शक्तियों के प्रभावों को निष्प्रभावी कर सकते हैं। आप अपने भाग्य को बदल सकते हैं। पहले भी कई लोग ऐसा कर चुके हैं। आप अमर आत्मा हैं, इस पर दृढ़ रहें, इसे स्वीकार करें और इसका साक्षात्कार करें। अपने इस जन्म सिद्ध अधिकार को माँगें।

आपने अपने विचारों और कर्मों से अपने भाग्य को निर्माण किया है। आप इसे सही विचारों तथा सही क्रमों से बदल भी सकते हैं। मानव के दुःखों की पीछे मूल कारण है गलत सोच। "मैं अमर आत्मा हूँ, यही सही सोच है"। एकता के लिए काम करें, निःस्वार्थ भाव से कार्य करें। आत्म भाव से काम करें (आत्म भाव अर्थात् सभी में एक ही आत्मा है का भाव)। यही सही कर्म है।

पाप जैसी कोई वस्तु नहीं है। पाप मात्र एक गलती है। यह मन की उपज है। विकास की प्रक्रिया में शिशु आत्मा कुछ गलतियाँ तो करती ही है। गलतियाँ आपकी श्रेष्ठ शिक्षक हैं। ऐसा सोचें 'मैं पवित्र आत्मा हूँ' तो आपके भीतर से पाप का विचार हवा में उड़ जायेगा।

इसके पश्चात् कनाडा की श्री स्वामी शिवानन्द राधा ने स्वामी जी को एक टेप रिकार्डर भेंट किया और स्वामी जी के बहुत से रिकार्डित गीत और प्रवचन अपने साथ लेकर गईं। उनके इस कार्य का कई अन्यों ने भी अनुकरण किया वे भी अपने साथ स्वामी जी के रिकार्डित गीतों और प्रवचनों को ले गये। जर्मनी के प्रकाशकों के एक संघ ने स्वामी जी के ध्यान पर आधारित एक प्रेरक प्रवचन को मेगनेटिक टेप पर रिकार्ड किया तथा व्यापक प्रचार हेतु इसका एल.पी. रिकार्ड बनाया।

सन् १९४९ में श्री स्वामी हृदयानन्द जी तथा श्री स्वामी शान्तानन्द जी ने स्वामी जी के गीतों और लेखों में से कुछ संवादों को संकलित करके उनका रिकार्ड बनाया निम्न रिकार्डिंग के समय स्वामी जी के मुख्य भूमिका रही।

१. गोल ऑफ लाइफ

२. अ मार्निंग विथ स्वामी शिवानन्द

३. प्रेक्टिस ऑफ भक्तियोग

४. शिवानन्द—द डार्लिंग ऑफ चिल्ड्रेन

५. वेदान्त फार मॉर्डन मैन

६. भगवद्गीता

७. शिवगीता (आत्म कथा)

८. आनन्द गीता (प्रश्नोत्तरी)

९. संगीत रामायण

१०. ऐसेंस आफ भागवतम् (गीतों के रूप में)

शिवानन्द चिकित्सा संस्थान

जब स्वामी जी स्वर्गाश्रम में थे तब भी उन्हें लोग डाक्टर स्वामी अथवा डा. शिवानन्द के रूप में जानते थे तथा साधु और निर्धनजन उनके पास उपचार हेतु दौड़े-दौड़े आते थे।

जब स्वामी जी शिवानन्द आश्रम में आये तो उनका चलित औषधालय भी उनके साथ आ गया। वे अपनी व्यस्त दिनचर्या में से प्रातः के कुछ घण्टे रोगियों की सेवा के लिए अगल रखते थे तथा इस कार्य में उनके नवीन शिष्यों में से कोई एक उनकी सहायता करता था और इस कार्य के द्वारा वह रोगियों के उपचार की कला में व्यवहारिक तथा आध्यात्मिक प्रशिक्षण भी प्राप्त करता था।

संस्था के सन् १९४२ के वार्षिक प्रतिवेदन में शिवानन्द पारमार्थिक औषाधालय द्वारा किये गये कार्यों का विवरण दिया गया था, जो इस प्रकार था—

इस औषधालय द्वारा स्थानीयजनों की बड़ी सेवा की जा रही है। आज इसने जिले भर में बड़ी ख्याति अर्जित कर ली है। यहाँ चौबीस घण्टे सभी को निःशुल्क औषधियाँ प्रदान की जाती हैं तथा जिनके लिए आवश्यक होता है उन्हें स्वास्थ्य लाभ हेतु आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया जाता है।

इस औषधालय को दो प्रमुख दानदाताओं तथा चिकित्सकों द्वारा अधिकांश दवाइयों की आपूर्ति की जाती है। ये हैं श्री राय साहब डा. हेत राम आगरवाला एम.डी. (अमृतसर) एवं डा. परसराम सी. पंजाबी एम.बी.बी.एस. (हैदराबाद सिंध)। मेरठ के कैप्टन टी.एन. श्रीवास्तव। अन्य हितैषीजनों द्वारा भी दान प्राप्त होता है। वर्ष १९४२ में १९३२ रोगियों का उपचार किया गया तथा औषधियाँ प्रदान की गयीं।

यह स्वामी जी के लिए अपने नवीन शिष्यों तथा मार्गदर्शन लेने आने वालों को प्रशिक्षित करने का एक अन्य महत्वपूर्ण तरीका था। इसके द्वारा वे उनमें सेवा की भावना को अनुप्राणित करते थे। स्वामी जी के अनुसार सेवा को जरुरतमन्द के पास

जाना चाहिए न कि उसके आने की प्रतीक्षा की जानी चाहिए। स्वामी जी की प्रेरणा से समय-समय पर निष्काम्य सेवियों के छोटे-छोटे दल औषधियाँ, दूध तथा अन्य भोज्य पदार्थ लेकर समीप के आश्रमों तथा बस्ती में मलेरिया और हैजा से पीड़ितजनों तथा महात्माओं की सेवा हेतु जाया करते थे।

शिवानन्द चिकित्सालय

स्वामी जी की सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा के समय दक्षिण भारत के चिदम्बरम नामक स्थान में स्वामी जी के कार्यक्रम के कर्मठ आयोजकों में से एक थे डा. के.सी. राय, एम.बी.बी.एस.। यात्रा की समाप्ति के बाद वे अति शीघ्र आश्रम से जुड़ गये। उन्होंने शिवानन्द औषाधालय में लगभग ६ वर्षों तक चिकित्सा अधिकारी के रूप में कार्य किया तथा इस अवधि में यह एक चिकित्सालय में परिणित हो गया था और सेना के सेवा निवृत्त चिकित्सक मेजर जनरल ए.एन. शर्मा आई.एम.एस. शिवानन्द चिकित्सा संस्थान से जुड़ गये थे।

स्वामी जी के प्रेरणादायक नेतृत्व ताी उत्साह को धन्यवाद जिसके कारण ये अद्‌भुत शिष्य उनकी ओर आकृष्ट हुए और चिकित्सालय संस्थान के रूप में विकसित हो गया तथा अत्यन्त कम सुविधाओं के होते हुए भी यह आसपास रहने वाले निर्धनजनों तथा ऋषिकेश के महात्माओं को कष्टों से यथासम्भव राहत देने लगा। अस्पताल में धीरे-धीरे एक्सरे मशीन, सूक्ष्मदर्शी, डायाथर्मी उपकरण, अल्ट्रावायलेट किरणों का संयंत्र तथा आपरेशन के साधन उपलबध कराये गये। भर्ती होने वाले रोगियों के लिए बिस्तरों की व्यवस्था की गयी तथा सम्पूर्ण भवन का नवीनीकरण किया गया। उपचार, आहार तथा विशेष चिकित्सक तो कहीं और भी मिल सकते थे लेकिन यहाँ मिलने वाला स्वामी जी का दयाभाव तथा प्रार्थना जो रोगी में पवित्र रोगहरण तरंगों का संचार करती थी, वह कहीं और नहीं मिल सकती थी।

दिनांक ४ नवम्बर १९५३ को स्वामी जी ने शिवानन्द जनरल अस्पताल में श्री रतन देवी एक्सरे क्लीनिक का उद्‌घाटन किया। इस दिन यहाँ एक अलग कमरें में एक्सरे मशीन स्थापित की गयी।

आश्रम में डायथर्मी उपकरण की स्थापना की पृष्ठभूमि बड़ी रोचक है। सन् १९५२ में स्वामी जी के ऊपर गम्भीर कटिवात का आक्रमण हुआ। स्वामी जी के शिष्य सेना के अस्पताल में डायथर्मी उपकरण खोजने गये। वहाँ के अधिकारी बड़े दयालु थे, उन्होंने इसे प्रतिदिन दस रुपये किराये पर इसे ले जाने की अनुमति प्रदान कर दी। हालाँकि बाद में इसे नहीं लाया गया परन्तु जब अगली बार स्वामी जी पुनः कटिवात से पीड़ित हुए तो उन्होंने यह उपकरण शिवानन्द सामान्य चिकित्सालय हेतु क्रय कर लिया। स्वामी जी ने कहा—"यह निर्धन ग्रामवासियों तथा आसपास के महात्माओं के काम आयेगा। वे इसे खरीदने में सक्षम नहीं हैं। अब हम उन्हें यह सुविधा निःशुल्क उपलब्ध करायेंगे। इसे २६ फरवरी सन् १९५४ को चिकित्सालय में स्थापित किया गया।

२१ मार्च १९५४ को औषधीय प्रयोगशाला का शुभारम्भ किया गया। रेवाड़ी के नेत्र शल्य चिकित्सक डा. शिवानन्द रामजस ने अस्पताल को एक सूक्ष्मदर्शी भेंट किया।

शिवानन्द नेत्र चिकित्सालय

स्वामी जी का मिशन और विशेष रूप से चिकित्सा सुविधा कैप्टन श्रीवास्तव को बड़ी अच्छी लगी और उन्होंने शिवानन्द नेत्र चिकित्सालय के लिए २०,००० रुपये प्रदान किये। इसकी स्थापना की कहानी स्वामी जी ने निम्न प्रकार से व्यक्त की—

कैप्टन श्रीवास्तव,

जो मुझसे कभी मिले भी नहीं,
उन्होंने नेत्र चिकित्सालय के लिए,
२०,००० रुपये प्रदान किये।

यह भी एक रहस्य है कि,
डा. चेल्लमा,
जो संक्षिप्त प्रवास हेतु आश्रम आये थे,
उन्होंने अपना परिवार सम्पत्ति तथा लाभदायक प्रैक्टिस

छोड़ दी
और अस्पताल के नेत्र चिकित्सक बन गये।

इससे भी बड़ा रहस्य,
एक महान् आत्मा ने,
अस्पताल के निर्माण कार्य हेतु,
हमें निःशुल्क सीमेंट उपलब्ध कराया,
यह भी एक और रहस्य है।

इस रहस्यों का रहस्य क्या है?
वह है ईश्वर में आस्था
यदि आपका ईश्वर पर विश्वास है
तो, समय पर सहायता अवश्य मिलेगी
असम्भव सम्भव हो जायेगा
यही रहस्यों का रहस्य है।

नेत्र चिकित्सालय के नये भवन का उद्घाटन २४ दिसम्बर १९५७ को हुआ। इसमें शल्य चिकित्सा कक्ष तथा सभी उपकरण थे।

आश्रम में आने वाला व्यक्ति किसी भी सामाजिक स्तर का हो, वह आश्रम में निष्काम्य सेवा का अवसर पा सकता था। स्वामी जी का यह कथन जो कि बड़े उत्साह से कहा जाता था कि 'थोड़ी निष्काम्य सेवा कीजिए' सभी को प्रसन्न हृदय से काम करने के लिए तैयार कर देता था और इसी से विभिन्न राहत शिविर प्रारम्भ हुए।

नेत्र चिकित्सा शिविर

सन् १९५० के प्रारम्भ में एक युवा नेत्र शल्य चिकित्सक आश्रम में कुछ दिनों के लिए आया। स्वामी जी को उसमें एक श्रेष्ठ सेवाभावी पुरुष के लंक्षण दिखायी दिये और इसी का परिणाम था—प्रथम नेत्र चिकित्सा शिविर। स्वामी जी ने देखा यह निष्काम सेवा हेतु बृहत क्षेत्र है, इसलिये वे प्रतिवर्ष ये शिविर आयोजित करने लगे। नेत्र चिकित्सालय की स्थापना के बाद से नेत्र चिकित्सा शिविर बड़ी संख्या में आयोजित होने लगे। इसके सिवा अन्य और कई शिविरों का संचालन डा. रेवाड़ी

तथा कैप्टन सी.एस. के ने किया। इसके बाद वीर नगर के डा. शिवानन्द अध्वर्यो ने आश्रम के नेत्र चिकित्सा शिविर का काम अपने हाथ में लिया। वे दवाईयाँ, शल्य चिकित्सा हेतु उपकरण, नर्सों तथा आवश्यक धन की व्यवस्था भी स्वयं ही करते थे तथा वे स्वामी जी की इच्छानुसार ही इनका संचालन करते थे। प्रातःकाल तथा सायंकाल दोनों समय की जाने वाली प्रार्थनाओं से शल्य चिकित्सकों तथा नर्सों के भीतर उत्साह तथा सेवा भाव का संचार होता था तथा शल्य क्रिया के समय प्रार्थना का भाव होने से चिकित्सक के हाथों से भगवान् की रोगहरण शक्ति तथा उनकी कृपा का प्रवाह होता था। भगवान् के नाम का जप तथा रोगी को दिलाया जाने वाला विश्वास कि भगवान् की कृपा से आपरेशन सफल होगा, उनके साथ मधुर शब्दों में किया जाने वाला वार्तालाप कि आप भगवान् की कृपा से अति शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे—ये सब रोगी को चमत्कारिक ढंग से स्वस्थ करने में सहायक होते थे।

दिव्य जीवन का प्रतिवेदन बताता है—

आठवाँ नेत्र चिकित्सा शिविर (वर्तमान वर्ष का दूसरा) शिवानन्द पारमार्थिक अस्पताल के तत्त्वाधान में नवम्बर माह के तीसरे और चौथे सप्ताह में शिवानन्द नगर में आयोजित हुआ। अस्पताल के नेत्र चिकित्सा विभाग द्वारा सामान्य रूप से भी रोगियों की चिकित्सा तथा शल्य क्रिया भी की जाती है। बम्बई के वीर नगर से डा. बी.जी. अध्वर्यो (एम.बी.बी.एस. डी.ओ.) के आगमन पर श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने २० नवम्बर को एक नेत्र चिकित्सा शिविर का शुभारम्भ किया। डा. अध्वर्यो एक कुशल नेत्र शल्य चिकित्सक के रूप में प्रसिद्ध हैं और वे निर्धन रोगियों के लिए जगह-जगह शिविर लगा कर मानव मात्र की सेवा करते हैं। इसलिये भी उनकी प्रसिद्धि है। आश्रम में उनके चार दिनी प्रवास पर २१० रोगियों ने उनकी सेवा का लाभ लिया, इनमें से ३१ रोगियों की शल्य चिकित्सा की गयी तथा मोतियाबिन्द तथा अन्य रोगों का उपचार किया गया। हालाँकि यह शिविर मुख्य रूप से नेत्र रोगों के उपचार के लिए था परन्तु इसमें सामान्य रोगों से पीड़ित अन्य रोगियों को भी चिकित्सा परामर्श प्रदान की गयी और उनका उपचार किया गया तथा इनमें से ५ लोगों की शल्य चिकित्सा की गयी।

दिल्ली के डा. एस.एन. शर्मा ने एक दन्त चिकित्सा शिविर भी संचालित किया।

जब भी कोई स्त्री रोग विशेषज्ञ आश्रम में छुट्टियाँ बिताने आती स्वामी जी एक स्त्री चिकित्सा शिविर की घोषणा कर देते थे। इसलिये ऋषिकेश की महिलायें अक्सर आकर यह पूछती रहतीं थी कि स्त्री रोग चिकित्सक कब आने वाली हैं? लखनऊ की डा. देवकी कुट्टी, बम्बई की डा. बसंत, दिल्ली की डा. लक्ष्मी मीरचंदानी, देहरादून की डा.अमर कौर, बम्बई की डा. सरोज तथा नागपुर की डा. पद्मा मुधोलकर ने इस अद्भुत सेवा में हिस्सा लिया।

स्वामी जी एक उच्च योग्यता सम्पन्न डाक्टर की योग्यता और सेवा का उपयोग दो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करते थे। यह दिव्य जीवन पत्रिका के अगस्त १९५६ के स्त्री चिकित्सा शिविर के प्रतिवेदन से स्पष्ट होता है।

"ये सभी चिकित्सक अपने अस्पताल के काम के तनाव को कम करने तथा अपने आन्तरिक ऊर्जा के स्रोत को पुनः भरने हेतु आती थीं। इसलिये स्वामी जी उन्हें निष्काम्य सेवा द्वारा अन्यों के लिए जीवन जी ने तथा बिना किसी पुरस्कार की अपेक्षा के दूसरों की सेवा आत्म-त्याग से करते हुए दूसरों के लिए जीवन जीने की प्रेरणा देते थे। स्वामी जी उन्हें एक भिन्न ही दृष्टिकोण रखने का निर्देश देते थे, जिससे कि उनका कर्म योग में परिणित हो जाये। इससे दूसरा लाभ यह होता था कि ऋषिकेश के निवासियों तथा निर्धनों और साधुओं को इन कुशल चिकित्सकों द्वारा उपचार प्राप्त होता था। स्त्री चिकित्सा राहत शिविर का विवरण इस प्रकार है—

"शिवानन्द सार्वजनिक चिकित्सालय के तत्त्वाधान में दिनांक १८ से २० जून तक डा. देवकी कुट्टी के नेतृत्व में 'महिला एवं बाल्य रोग राहत शिविर' का आयोजन किया तथा इसमें इनकी सहयोगी थी डा. सरोज श्राफ तथा अन्य आश्रम के कर्मचारीगण। डा. देवकी कुट्टी (एम.बी.बी.एस., डी.जी.ओ., एम.आर.सी.ओ.जी.) लखनऊ के क्वीन मेरी महिला चिकित्सालय में रीडर हैं तथा आश्रम की अतिथि चिकित्सक भी हैं। आपको स्मरण होगा कि प्रतिवर्ष डा. देवकी कुट्टी तथा अन्य स्त्री रोग एवं प्रसूति विशेषज्ञों के आगमन पर इस शिविर का आयोजन किया जाता है, जिससे ऋषिकेश तथा आसपास की स्त्री रोगिणियों को

विशेष उपचार तथा परामर्श प्राप्त करने का स्वर्णिम अवसर प्रापत हो सके। डा. कुट्टी ने इस शिविर में लगभग ४०० रोगियों का उपचार किया जिनमें से २ प्रतिशत प्रसूति, ७ प्रतिशत शल्य क्रिया, ६.५ प्रतिशत स्त्री रोगों से पीड़ित थे।

सन् १९५७ के सितम्बर माह से १९५८ के अगस्त माह तक शिवानन्द सार्वजनिक चिकित्सालय तथा शिवानन्द नेत्र चिकित्सालय द्वारा जो कार्य किये गये उनके निम्न संक्षिप्त विवरण से उस निष्काम्य सेवा भाव का स्पष्ट प्रमाण मिलता है, जो स्वामी जी ने अपने समीप रहने वाले शिष्यों में अनुप्राणित किया था। प्रतिवेदन इस प्रकार है—

"इस वर्ष में कुल १६७६८ रोगियों का उपचार किया गया। इनमें से कुल ११०८६ पुरुष तथा ५६८२ स्त्रियाँ थीं। इसमें स्त्रियों तथा बच्चों के लिए शिविर, दो नेत्र चिकित्सा शिविर तथा दो दंत चिकित्सा शिविरों का आयोजन भी हुआ। सार्वजनिक चिकित्सालय में रोगियों के लिए दस बिस्तरों की व्यवस्था है और वे सदा भरे रहते हैं।

अस्पताल द्वारा की जा रही महान् सेवा को देखते हुए राज्य तथा केन्द्र सरकार ने आर्थिक सहायता भी की और रेडक्रास सोसाइटी ने दवाइयों की आपूर्ति की।

स्वास्थ्य शिक्षा

"उपचार से रोकथाम अधिक श्रेष्ठ है।" इस बुद्धिमत्तापूर्ण उक्ति को स्वामी जी ने अपने चिकित्सा क्षेत्र में जीवन के प्रारम्भ में ही अपना आदर्श बना लिया था। जब वे एक उभरते हुए चिकित्सक थे तब भी वे रोगियों के उपचार के साथ-साथ उन्हें स्वस्थ जीवन जीने की कला का प्रशिक्षण भी देते थे। अपने सम्पूर्ण जीवन में उन्होंने लोगों को सदा इस बारे में शिक्षा दी कि वे डाक्टर के पास जाने से कैसे बच सकते हैं तथा वे अच्छे स्वास्थ्य का आनन्द कैसे उठा सकते हैं। दिव्य जीवन के फरवरी १९५४ के अंक का समाचार देखिए—

यात्रा के मौसम में हिमालय के पवित्र मन्दिरों के दर्शन हेतु आने वाले तीर्थयात्रियों को आश्रम आने पर आवश्यक दवाओं के पैकेट दिये जाते थे तथा यात्रा के पूर्व अथवा बाद में बीमार होने वालों का उपचार भी किया जाता था।

इन दवाओं से यात्रियों को छोटी-मोटी बीमारियों जैसे सरदी, खाँसी, दस्त, कब्ज, ज्वर आदि से बचाव में सहायता मिलती थी, जिससे रोग आगे और न बढ़ें। उस स्थिति में बचाव भी होता था।

मानसून अथवा वर्षा के चार महीनों में स्थानीय निवासियों को मलेरिया के प्रकोप से बचाने के लिए प्रभावशाली उपाय भी किये गये। रोग की रोकथाम के लिए शहर तथा आसपास की बस्ती में डी.डी.टी का छिड़काव किया गया। मच्छर निरोधी तेल का भी वितरण किया गया। रोगियों का उपचार भी किया गया। पिछले वर्ष की तुलना में इस वर्ष रोगियों की संख्या में कमी हुई।

चारों धाम यात्रा पर जाने वाले तीर्थ यात्रियों को कष्ट से राहत हेतु संस्था द्वारा सन् १९५४ में चलित चिकित्सा दल भी भेजे गये। इस बारे में दिव्य जीवन में प्रकाशित सूचना निम्नानुसार थी—

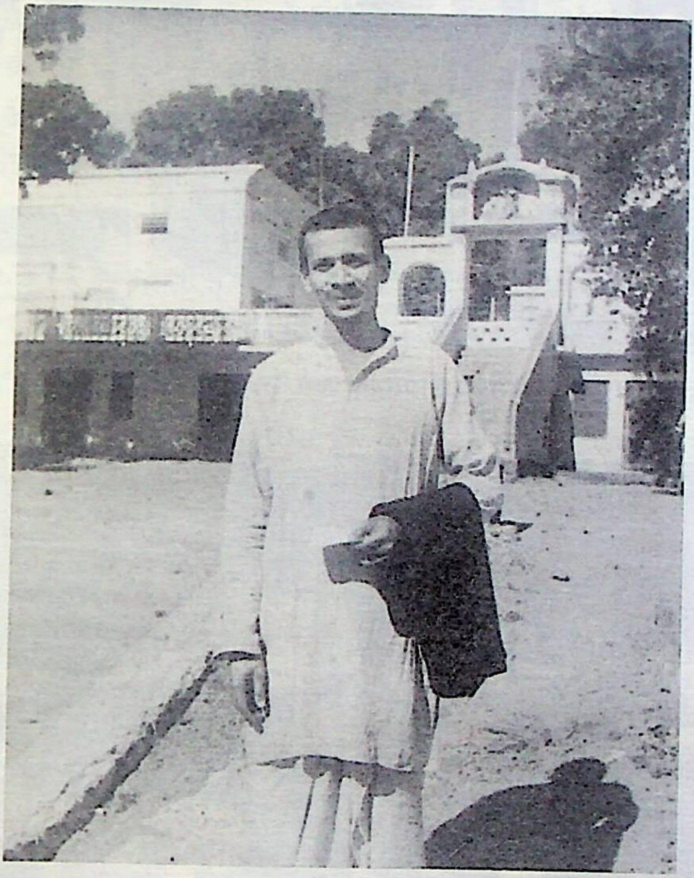
श्री शिवानन्द चिकित्सा संस्थान ने इस वर्ष चलित चिकित्सा दल भेजने का निर्णय लिया है। इसमें प्रत्येक दल के साथ अनिवार्य औषधियाँ तथा ३ अथवा चार निष्काम्य सेवी होंगे। स्वयं सेवकों को प्रथम दल १ मई से ऋषिकेश से निकलेगा। इसके बाद संस्था निष्काम्य सेवियों के दलों को भेजने हेतु प्रयासरत रहेगी। उनके पास भी पूर्ववत औषधियाँ होंगी। प्रत्येक दल यात्रीगणों के ठहरने के स्थान पर तीन या चार दिन रुकेगा और स्थानीय निवासियों की भी चिकित्सा करेगा। ये निष्काम्य सेवी वहाँ दैनिक कार्य आरम्भ करने के पहले तथा कार्य समाप्त होने के बाद सत्संग तथा कीर्तन भी करेंगे।

यदि रोग से बचाव तथा उत्तम स्वास्थ्य के विकास की तुलना रोगी की सेवा और उसे कष्ट से मुक्ति दिलाने से की जाये तो प्रथम प्रकार की सेवा अधिक उच्च स्थान पर आयेगी। इसलिये स्वामी जी ने रोग की रोकथाम तथा बचाव और उत्तम स्वास्थ्य हेतु स्वास्थ्य पर आधारित बहुत सी पुस्तकों का प्रकाशन किया। सर्वप्रथम उन्होंने एम्ब्रोसिया पत्रिका का प्रकाशन किया। इसमें रोग से रोकथाम के अनेक बहुमूल्य उपाय बताये गये थे। इन सभी लेखों का संकलन करके शिवानन्द प्रकाशन संस्थान द्वारा **'घर का डाक्टर'** पुस्तक में प्रकाशित किया गया।

अच्छे स्वास्थ्य के लिये विचार शक्ति की महत्ता को स्वामी जी ने पहचाना, इसलिये उन्होंने हमेशा इस बात की ओर प्रेरित किया कि व्यक्ति को सदैव यह सोचना चाहिए कि उसे कुछ नहीं हुआ है। यह उन्होंने स्वयं अपने व्यवहार से प्रत्यक्ष दर्शाया। यहाँ तक कि जब वे स्वयं बीमार रहते थे तब भी यदि उन्हें कोई देखने आता और उनसे पूछता कि स्वामी जी आप कैसे हैं, स्वामी जी का उत्तर होता—"मैं तो बहुत अच्छा हूँ।" सन् १९५४ में स्वामी जी गम्भीर रूप से बीमार थे, एक वरिष्ठ आश्रमवासी उन्हें देखने आये। जैसे ही उन्होंने स्वामी जी के कमरे में प्रवेश किया, स्वामी जी उनसे कहने लगे—"स्वामी जी आपको अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए। आप क्या लेना पसन्द करेंगे—मीठे या नमकीन बिस्किट? ...क्या मैं आपको च्यवनप्राश का डिब्बा दूँ? क्या आप स्थान परिवर्तन के लिए मसूरी जाना चाहेंगे? आदि और वे स्वामी जी उस लक्ष्य को ही भूल गये जिसके लिए वे यहाँ आए थे।

जब पश्चिम से कोई महान् मनोवैज्ञानिक आश्रम में आते तो स्वामी जी उनके व्याख्यान की व्यवस्था करते थे। उनमें से प्रमुख मनोवैज्ञानिक थे पेरिस के डा. मेरिसे चोइसी तथा लन्दन में हार्ले स्ट्रीट के डा. ग्राहम होव। ये १९५२ से १९५३ में आश्रम आये और उन्होंने व्याख्यान दिये।

स्वामी जी चाहते थे कि प्रत्येक जिज्ञासु को चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों तथा रोगी की सेवा-सुश्रुषा का अच्छा ज्ञान हो और इसी आकांक्षा ने एक ठोस रूप लिया और उन्होंने १९४९ में एक 'प्राथमिक चिकित्सा और घरेलू परिचर्या' की कक्षाओं का आयोजन किया और इसमें व्याख्यान और प्रत्यक्ष प्रदर्शन श्री स्वामी चिदानन्द जी द्वारा किया गया। जब डा. के.सी. राय आश्रम से जुड़े तो स्वामी जी ने उन्हें इस विषय की कक्षा लेने के लिए कहा। बाद में मेजर जनरल ए.एन. शर्मा ने अपने वार्षिक प्रवास पर प्राथमिक चिकित्सा तथा घरेलू परिचर्या पर दो प्रशिक्षण शिविर संचालित किये तथा इसमें सफल होने वाले प्रतिभागियों को सेंट जॉन एम्बुलेंस प्रमाण-पत्र प्रदान किये। ग्रीस की डा. लीला ब्लाचू ने आश्रम प्रवास के समय मालिश द्वारा उपचार की एक कक्षा ली।







स्वामी जी का सार्वभौमिक दृष्टिकोण

स्वामी जी सभी का स्वास्थ्य अच्छा रहे, इस दृष्टिकोण से वे अपने शिष्यों तथा जनसमूह को बृहत स्तर पर प्रशिक्षित करने के प्रत्येक अवसर का सदुपयोग करते थे। सन् १९५४ तथा १९५५ में उनके पास दो प्राकृतिक चिकित्सक थे—श्री एल. कामेश्वर शर्मा तथा श्री कैलाश नाथ गुप्ता। ये दोनों प्राकृतिक चिकित्सा तथा आहार सम्बन्धी कक्षायें लेते थे।

स्वामी जी प्राकृतिक चिकित्सकों के श्रेष्ठ विचारों की बड़ी प्रशंसा करते थे। जब डा. कैलाश नाथ गुप्ता जी ने आश्रम में एक प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र प्रारम्भ करने के बारे में स्वामी जी से कहा तो स्वामी जी ने उन्हें तुरन्त अनुमति प्रदान कर दी तथा इसे बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया और आवश्यक साधन उपलब्ध कराये।

हालाँकि स्वामी जी स्वयं एक ऐलोपेथिक चिकित्सक थे परन्तु उनका दृष्टिकोण इतना अधिक विस्तृत था कि वे उपचार की अन्य पद्धतियों को भी प्रोत्साहित करते थे। डा. बृजनानन प्रसाद जो एक अच्छे होम्योपैथिक चिकित्सक थे, वे स्वामी जी से बड़े प्रभावित थे और उन्होंने स्वामी जी से आश्रम में एक होम्योपैथिक चिकित्सालय प्रारम्भ करने की इच्छा व्यक्त की। स्वामी जी आसानी से तैयार हो गये। होम्योपैथिक चिकित्सालय के शुभारम्भ के अवसर पर स्वामी जी ने कहा कि विभिन्न प्रकृति एवं संघटन वाले व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ आवश्यक हैं। ऐलोपैथी की तरह ही होम्योपैथी भी आवश्यक है। हमारा लक्ष्य है रोगी की सेवा चाहे साधन कोई भी हो। एक अन्य होम्योपैथिक चिकित्सालय शिवानन्द पारमार्थिक चिकित्सालय में श्री स्वामी अचिन्त्यानन्द जी के निर्देशन में श्री स्वामी वेंकटेशानन्द जी के सहयोग से कार्य कर रहा था।

स्वामी जी रोगों के उपचार में योगासन के महत्व को जानते थे। इसलिये वे अक्सर श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द जी को इस स्वास्थ्य की प्राचीन शाखा के अध्ययन तथा इसके उन रोगियों में जिन्हें डाक्टरों ने असाध्य घोषित कर दिया हो, प्रयोग करने हेतु प्रेरित करते थे।

चिकित्सा सेवा का एक अन्य क्षेत्र था दुर्भाग्य के मारे कुष्ठ रोगियों की सेवा। यह सेवा स्वामी जी को अत्यधिक प्रिय थी।

३ मई १९४९ को अमेरिका के कुष्ठ रोग मिशन के आदरणीय टेलर महोदय उत्तर प्रदेश सरकार के अधिकारियों के साथ स्वामी जी से मिले तथा उन्होंने ऋषिकेश में कुष्ठ रोगियों के विषय में स्वामी जी से सहायता के लिए निवेदन किया तो स्वामी जी ने कहा—

"सरकारी अधिकारी तथा राज्य स्वास्थ्य मन्त्री डा. गैरोला इस कार्य के लिए संन्यासियों से सहायता क्यों चाहते हैं? फिर स्वामी जी ने स्वयं ही कहा क्योंकि ये असहाय लोग अपने प्रारब्ध कर्मों के कारण इस रोग से पीड़ित हैं और ये समाज के प्रत्येक वर्ग के द्वारा उपेक्षित हैं। एक चिकित्सक जो चिकित्सा व्यवसाय करता है वह भी इनका इलाज करने से इन्कार कर देता है क्योंकि ऐसा करने से उसके पास मरीज नहीं आयेंगे और उसका व्यवसाय ठप्प हो जायेगा और उसकी आय का स्रोत बन्द हो जायेगा। लोग कोढ़ियों के पास जाने से डरते हैं। मात्र संन्यासी ही जिसने सांसारिक जीवन को त्याग दिया हो तथा जिसे मृत्यु का भय नहीं है, ऐसी सेवा के कार्य का उत्तरदायित्व ले सकता है।"

कुष्ठियों के उपचार हेतु आवश्यक दवाएँ आश्रम के अस्पताल में सदा उपलब्ध रहती थी। स्वामी जी उन्हें प्रतिवर्ष कम्बल आदि का वितरण करते थे। इनमें से जो नेत्रहीन अथवा विकलांग होते थे उनको स्वामी जी जेबखर्च भी देते थे।

स्वामी जी से प्रेरित होकर उनकी एक शिष्या श्री शिवानन्द रानी कुमुदिनी देवी ने हैदराबाद में शिवानन्द कुष्ठी पुनर्वास केन्द्र की स्थापना की। इसमें हजारों कुष्ठियों को आश्रय, संरक्षण तथा शिक्षा प्रदान की जाती थी। यह वास्तव में कुष्ठियों के लिए सत्संग का केन्द्र था। यहाँ पर वे भगवान् के नाम का कीर्तन करना सीखते तथा ज्ञानी महात्माओं के प्रवचन सुनते थे। यह कोढ़ियों की सेवा करने वाले चिकित्सकों तथा अन्य निष्काम्य सेवियों के लिए और साथ-ही-साथ स्वयं कोढ़ियों के लिए मुक्ति का प्रवेश-द्वार था।

शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी

आयुर्वेदिक फार्मेसी के जन्म और विकास के पीछे भी बड़ी रोचक कहानी है। सन् १९४५ में स्वामी जी को एक साधु से एक बड़े अच्छे दन्त मंजन के निर्माण की

विधि ज्ञात हुई। स्वामी जी ने इसे एक आयुर्वेदाचार्य जी को बताया। ये शिवानन्द प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक थे। दंत मंजन तैयार होने के बाद इसे आश्रम में आश्रमवासियों तथा आने वाले अतिथियों को दिया गया। जब सभी ने इसकी प्रशंसा की तो स्वामी जी चाहते थे कि इसे नियमित रूप से प्रदान किया जाये। स्वामी जी ने इसके लिए आयेर्वेदाचार्य श्री सच्चिदानन्द मैथली से बात की। वे तैयार हो गये। इस प्रकार ६ मई १९४५ को शिवानन्द आयुर्वेद फार्मेसी की जन्म हुआ।

फार्मेसी में दंत मंजन की तरह से दो अन्य वस्तुएँ बनने लगीं—ब्राह्मी आंवला तेल तथा च्यवनप्राश। श्री मैथनी की निपुणता और समर्पण भाव के साथ-साथ ये आयुर्वेदिक औषधियाँ स्वामी जी के पास रहने वाले शिष्यों द्वारा, आश्रम के शुद्ध वातावरण में हिमालय की जड़ी-बूटियों तथा गंगा जल से निर्मित की जाती थीं। इसलिये ये निःसन्देह अन्य औषधियों के तुलना में अधिक लाभप्रद थीं। अब स्वामी जी ने आयुर्वेदाचार्य जी को विद्यालय के कार्य से मुक्ति दे दी ताकि वे इन औषधियों के निर्माण हेतु समर्पित भाव से कार्य कर सकें। इनके साथ-ही-साथ अन्य औषधियाँ तथा बलवर्धक औषधियाँ भी बनायी जाने लगीं। सन् १९५२ में आश्रम की फार्मेसी के उत्पादनों को उत्तर प्रदेश राज्य सरकार की भी बड़ी प्रशंसा प्राप्त हुई तथा उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सेवा के कार्यवाहक निदेशक ने यह प्रमाणपत्र दिया—

मुझे यह प्रमाणित करते हुए बड़ा हर्ष हो रहा है कि मैंने सन् १९५१ के जून माह में तथा इसके पूर्व भी एक-दो अवसरों पर शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी के कार्यों को देखा। इस फार्मेसी की दवाइयाँ उच्च शुद्धता वाली पाई गई तथा ये भारत की प्राचीन पद्धति आयुर्वेद द्वारा निर्मित हैं। श्री स्वामी जी हिमालय क्षेत्र में उत्पन्न बहुमूल्य जड़ी-बूटियों से इन दवाओं का निर्माण करके उन्हें भारत ही नहीं विदेशों में भी अत्यन्त कम मूल्य पर उपलब्ध करा रहे हैं और मानव मात्र के लिए महान् सेवा का कार्य कर रहे हैं। इस फार्मेसी में प्रत्येक वस्तु अत्यन्त सावधानी तथा कुशलता से बनाई जाती है और इन दवाइयों के प्रयोग से किसी प्रकार की हानि होने की कोई सम्भावना नहीं है।

उत्तर प्रदेश शासन के स्वास्थ्य मन्त्रालय के आयुर्वेद विभाग ने स्वामी जी की पुस्तक 'घरेलू दवाइयाँ' को राज्य शासन द्वारा संचालित ग्रामीण औषधालयों के लिए स्वीकृत किया।

दिव्य जीवन पत्रिका के अप्रैल १९४६ के अंक में आयुर्वेदिक फार्मेसी विभाग द्वारा निर्मित औषधियों की विशेषतायें वर्णित की गई थीं।

इस विभाग द्वारा निर्मित औषधियों का स्वागत बड़े उत्साह से किया गया। इस विभाग का इन उत्पादनों के पीछे मुख्य लक्ष्य है मानव मात्र के दुर्बल स्वास्थ्य के उपचार में सहायता करना। इसके निर्माण हेतु प्रयुक्त शुद्ध जड़ी-बूटियाँ तो इसे निःसन्देह लाभदायक बनाती ही थीं, लेकिन इसके साथ-ही-साथ ये आध्यात्मिक तरंगों से भी आवेशित थीं। दवाओं का निर्माण करते समय विशेषज्ञ कीर्तन करते थे और ईश्वर से प्रार्थना करते थे। इसमें प्रयुक्त होने वाली जड़ी-बूटियों का चुनाव अत्यन्त ध्यान से किया जाता था तथा इन्हें उनके उचित अनुपात में प्रयुक्त किया जाता था।

निष्काम्य सेवी के आदर्श

नीचे दिये गये वृत्तान्त में स्वामी जी ने उन परम आदर्शों को प्रकट किया है जो एक निष्काम्य सेवी को सदा अपनी आँखों के सामने रखना चाहिए।

"क्या आपने बालाम्माल का सन्ध्या के समय तापमान लिया?" रात्रि सत्संग के पश्चात् भजन-कक्ष से बाहर आते समय स्वामी जी ने पूछा। जिज्ञासु ने उत्तर दिया—"स्वामी जी, मैं तो सन्ध्या के समय वहाँ गया ही नहीं।" स्वामी जी तत्काल रोगी के कमरे में गये और तत्काल रोगी से सम्बन्धित प्रत्येक मिनट के विवरण तथा उसकी आवश्यकताओं के बारे में जानकारी प्राप्त की। इसके बाद स्वामी जी ने कहा—"स्वयं को रोगी के स्थान पर रखें। रोगी की छोटी-से-छोटी बात पर ध्यान देने का यह सबसे अच्छा तरीका है। यदि आप अपने आपको चिकित्सक समझेंगे तो कुछ बातों की अवहेलना कर देंगे। यहाँ तक कि यदि आप स्वयं को नर्स समझेंगे तो भी आपसे कुछ बातों में चूक हो जायेगी। एक क्षण के लिए सोचें आप रोगी हैं तो आपको किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी? फिर

देखिए कि वे सभी चीजें उसके पास हैं अथवा नहीं। आपको रोगी की आत्मा में प्रवेश करना होगा। यही सच्ची सेवा है। रोगी के पास एक बेड-पैन होना चाहिए, वृद्ध रोगियों के लिए यह बहुत आवश्यक है। रोगी के पास एक माचिस, मोमबत्ती, बालटी में पानी तथा एक गिलास होना चाहिए। इन सभी वस्तुओं को इस प्रकार व्यवस्थित रखना चाहिए कि रोगी बिना किसी परेशानी के उन तक पहुँच सके। आपको बिस्तर बिछाने में विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि इसमें थोड़ी-सी भी असावधानी से रोगी प्रकृति की सर्वाधिक प्रभावकारी औषधि नींद से वंचित रहेगा। यह सदैव ध्यान रखें कि जो एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए थोड़ी सी असुविधा है वह रोगी के लिए असह्य भूल है। आपको सेवा का कोई अवसर नहीं चूकना चाहिए, मात्र तभी निष्काम्य सेवा आपका अंग बनेगी। अवधूत गीता के प्रथम श्लोक में भगवान् दत्तात्रेय ने कहा है कि भगवान् की कृपा के बिना अद्वैतिक साक्षात्कार असम्भव है और भगवान् की कृपा मात्र लगन से की गई अथक निष्काम्य सेवा तथा भक्ति द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। रोगी की सेवा निष्काम्य सेवा का सर्वश्रेष्ठ रूप है। यह तत्काल हृदय को शुद्ध करती है और सेवा करने वाले के अन्दर ईश्वर की कृपा को जाग्रत करती है।

स्वामी जी तो सभी का बहुत ध्यान रखते थे। एक बार की घटना है—बैंगलोर से आये एक भक्त को गंगा जी के शीतल जल में स्नान करने से ज्वर हो गया। स्वामी जी देर रात तक उसके कमरे में ही रहे और उसका ध्यान रखते रहे कि उसे उचित दवाई दी गई या नहीं। रोगी ने उसे लिया अथवा नहीं तथा वह कैसा अनुभव कर रहा है आदि। एक अन्य अतिथि कुछ अस्वस्थ थे और अपने कमरे में से बाहर नहीं आये थे। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ जब आश्रम के मन्दिर में संध्याकालीन आरती के बाद उनके कमरे में आरती लाकर दी गई। स्वामी जी को सदा इस बात का ध्यान रहता था। वे एक शिष्य को अस्वस्थ अतिथि के पास आरती में अतिरिक्त कर्पूर का टुकड़ा डालकर भेजा करते थे।

स्वामी जी अच्छे स्वास्थ्य के लिए भगवान् की कृपा को सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानते थे तथा सदैव प्रार्थना की शक्ति पर बल देते थे। वे तो सड़क के किनारे लेटे हुए रोगी पशु के लिए भी प्रार्थना करते थे। वे उसी समय वहीं रुक कर

महामृत्युंजय मन्त्र पढ़ते, फिर आगे बढ़ते थे। सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा के समय उन्होंने प्रत्येक केन्द्र पर इस मन्त्र के महत्व के बारे में बताया और अनेक लोगों को इसकी दीक्षा दी। जब भी उन्हें यह सूचना मिलती कि कोई अस्वस्थ है तो वे सत्संग में उसके लिए महामृत्युंजय मन्त्र का जप करते थे। प्रार्थना की महिमा देखिए—

कर्नल रिखये एक महान् कुशल चिकित्सक थे तथा स्वामी जी के प्रति पूर्ण समर्पित थे। सन् १९५४ में जब स्वामी जी टायफाइड रोग से स्वस्थ होने पर रुड़की में स्वास्थ्य लाभ ले रहे थे तो वहाँ पर उनकी सेवा-सुश्रुषा कर्नल रिखये ने की थी। सन् १९५९ में कर्नल रिखये को गम्भीर हृदय का दौरा पड़ा। वे मृत्यु शय्या पर थे। उन्होंने किसी को स्वामी जी का आशीर्वाद लेने के लिए ऋषिकेश भेजा। जब यह सन्देशवाहक रास्ते ही था कर्नल की मृत्यु हो गयी। सभी बच्चों को तार भेज दिये गये और उनकी पत्नी का रो-रोकर बुरा हाल था। लेकिन महान् आश्चर्य की बात रात ९ बज कर १५ मिनट पर कर्नल उठ बैठे और उन्होंने एक गिलास पानी पीने के लिए माँगा। देखिए, मृतक के भीतर पुनः जीवन आ गया था। यह ठीक वही समय था जब सन्देशवाहक के अनुरोध पर स्वामी जी ने आश्रम में उनके लिए प्रार्थना करना प्रारम्भ कर दी थी। कर्नल उस रात तथा अगले पूरे दिन अच्छे रहे। जब उनके पास स्वामी जी के द्वारा भेजी गयी पुस्तकें और प्रसाद पहुँच गया तो वह प्रसाद उन्होंने अपने माथे पर लगाया और अत्यन्त आदर के साथ पुस्तकें अपने माथे पर रखीं। इसके बाद रात्रि में अत्यन्त शान्तिपूर्वक उन्होंने प्राण त्याग दिये।

स्वामी जी ने जिस विश्वनाथ मन्दिर का आश्रम परिसर में निर्माणं कराया था, उसके द्वारा भी मानव-मात्र के लिए नित्य असीमित सेवाएँ की जाती हैं। यहाँ भक्तों के उत्तम स्वास्थ्य तथा दीर्घायु के लिए नित्य मन्दिर में पूजा, अर्चना, अभिषेक, महामृत्युंजय मन्त्र जप तथा हवन किया जाता है और उनको प्रसाद भी भेजा जाता है।

सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा के समय स्वामी जी ने अन्तर्राष्ट्रीय मित्र मण्डल को अन्तर धार्मिक सहकारिता विषय पर संबोधित किया। नीचे उनके भाषण का सार दिया जा रहा है।

स्वामी जी ने कहा—"आपको प्रत्येक वस्तु स्वयं के लिए चाहिए और आप अन्तर्राष्ट्रीय मित्र मण्डल बनाना चाहते हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मित्र मण्डल बनाना सम्भव नहीं, इसके लिए आपको सभी में यहाँ तक कि सड़क के किनारे पड़े हुए व्यक्ति में भी ईश्वर के दर्शन करने होंगे। ऐसे कई काम हैं जिन्हें आप ईश्वर के समक्ष पुष्पों की भाँति अर्पित कर सकते हैं तथा इन्हीं से ईश्वर प्रसन्न होते हैं। स्वामी जी ने इसके लिए कुछ उदाहरण भी दिये—जैसे एक यूरोपियन व्यक्ति ने एक हैजे के रोगी को अपने कंधों पर उठाया और उसे अस्पताल में भर्ती कराया। स्वामी जी ने स्वामी चिदानन्द जी द्वारा की जाने वाली सेवाओं के बारे में भी बताया—

आश्रम के पास में एक कुत्ता था जो किसी भयंकर रोग से पीड़ित था। उसके पास से इतनी बदबू आती थी कि उसके पास जाना कठिन था। स्वामी चिदानन्द जी ने स्वयं अपने हाथों से महीनों तक उसके घावों को धोया और उसकी मल्हम पट्टी की। स्वामी चिदानन्द जी का हृदय अत्यन्त शक्तिशाली है। उनके लेख और प्रवचन उनके हृदय से निकलते हैं, वे अत्यंन्त शक्तिशाली हैं। वह हृदय जो अन्यों के कष्टों से पिघल जाता है, ऐसे ही शुद्ध हृदय से आप गीता तथा उपनिषद् का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसके बाद स्वामी जी ने बताया कि स्वामी चिदानन्द जी ने इसी प्रकार एक कुष्ठी की सेवा भी की थी। इसके बाद स्वामी जी ने कहा—

"आपको भी ऐसे काम करने चाहिये। इनसे आपका हृदय शुद्ध होता है और आन्तरिक शक्ति प्राप्त होती है। इस मित्र मण्डल के प्रत्येक सदस्य को आध्यात्मिक ऊर्जा से सम्पन्न होना चाहिये।"

जहाँ-जहाँ भी स्वामी जी के चिकित्सक शिष्य निवास करते थे वहाँ-वहाँ शिवानन्द चिकित्सा संस्थान कार्य करता था। मेजर जनरल ए.एन. शर्मा इस संस्थान के प्रमुख निर्देशक थे। इन्होंने एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। जब वे कांगड़ा घाटी में गरमी की छुट्टियाँ मनाने गये तो वहाँ उन्होंने एक औषधालय संचालित किया। एक अन्य डा. रेवाड़ी स्वामी जी के जन्म दिन पर प्रतिमाह ८ तारीख को रोगियों का निःशुल्क उपचार किया करते थे। डा. सरोज श्राफ मुम्बई में अपने चिकित्सालय में निर्धन लोगों का निःशुल्क उपचार करती थीं। ये तो कुछ ही

लोग हैं लेकिन अन्य ऐसे कई लोग हैं जो अपने-अपने क्षेत्रों में चिकित्सा सेवा का क्रान्तिकारी सेवा का क्रान्तिकारी ढंग से कार्य कर रहे थे।



सम्पर्क के माध्यम तथा शिक्षा

फोटोग्राफिक स्टूडियो

आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए गुरु का चित्र उनका आदर्श तथा प्रेरणा का स्रोत होता है, वैसे ही जैसे एक देश भक्त के लिए उसका राष्ट्रध्वज मातृभूमि का प्रतीक होता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए स्वामी जी की प्रारम्भ में प्रकाशित होने वाली पुस्तकों के प्रकाशक स्वामी जी से चित्र की माँग करते थे और वे स्वयं ही स्टूडियो का बिल भी चुकाते थे। इसलिये स्वामी जी को स्वर्गाश्रम से फोटो खिचवाने के लिए जल्दी-जल्दी हरिद्वार जाना पड़ता था।

सभी प्रकाशकों को अलग-अलग प्रकार के चित्रों की आवश्यकता रहती थी। उन्हें बाजार की ओर भी दृष्टि रखनी पड़ती थी और पाठक को भी संतुष्ट करना पड़ता था। दक्षिण भारतीय प्रकाशक स्वामी जी का रुद्राक्ष की माला पहने मस्तक पर त्रिपुंड तिलक लगाये भुजाओं पर भस्म की लकीरें लगाये तथा संन्यासी जनों के भगवा वस्त्र पहने चित्र की माँग करता लेकिन उत्तर भारतीय प्रकाशक का एक भिन्न ही विचार होता था। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक पुस्तक के लिए विशिष्ट मुद्रा वाले चित्र की आवश्यकता होती थी। इसके लिए स्वामी जी को सारी चीजें जैसे शेर की छाल, वस्त्र, योगदण्ड, कमण्डल आदि लिए पैदल-पैदल ऋषिकेश तक जाना पड़ता था।

स्वामी जी के लिए अपने नाम से अधिक उनकी पुस्तकों का प्रकाशन तथा आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार महत्वपूर्ण था। एक बार किसी को एक चित्र अत्यन्त शीघ्रता से चाहिए था तो वह उन्होंने सड़क के किनारे स्थित एक सस्ते से स्टूडियों में खिचवाया। एक बार मेरठ से स्वामी जी वापस आ रहे थे कि उन्हें मालूम पड़ा कि एक चित्र की आवश्यकता है, वे तुरन्त लखनऊ गये। उस समय उन्होंने दाढ़ी भी नहीं बनाई थी। फोटोग्राफर ने उनका बढ़ी हुई दाढ़ी में ही चित्र खींचा।

सन् १९३२ में लखनऊ के श्री पी.सी. मुल ने सर्वप्रथम स्वामी जी के अच्छे चित्र खींचे। इन्हें स्वामी जी की आरम्भिक पुस्तकों में लगाया गया।

सन् १९३४ में स्वामी परमानन्द जी ने ३ रुपये में ब्राउनी ६२० बाक्स कैमरा क्रय किया। स्वामी परमानन्द जी ने बताया कि मैंने स्वामी जी से ८ एम.एम. मूवी कैमरा खरीदनें के लिए कई बाद अनुरोध किया, लेकिन वे इस पर थोड़ा भी धन व्यय करने के लिए तैयार नहीं थे। सन् १९३८ में स्वामी जी के जन्म दिन पर आये दान से हमने ८ एम.एम. मूवी कैमरा क्रय किया और जब एक बार यह कैमरा क्रय कर लिया गया तो इसके महत्व को सभी ने स्वीकारा। स्वामी जी को काम करते देखना कितना अधिक प्रेरणाप्रद होता था। हालाँकि चित्र से भी प्रेरणा प्राप्त होती है लेकिन एक समर्पित शिष्य गुरु को चलते हुए कार्य करते हुए देखना चाहता है, उसके लिए गुरु प्रत्यक्ष धर्म-ग्रन्थ है। इसलिये यह मूवी कैमरा बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ।

कुछ वर्षों बाद अटगढ़ के राजा साहब ने आश्रम को १६ मि.मि. का मूवी कैमरा तथा एक प्रोजेक्टर प्रदान किया। यह तो सच में एक वरदान ही था।

इसके बाद स्वामी सारदानन्द जी आश्रम से जुड़े और उन्होंने कैमरों में बड़ी रुचि ली। स्वामी जी ने उनके उत्साह को देख कर सोचा कि उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए। कैलीफोर्निया की श्रीमती लिलियन शमश ने आश्रम को एक स्पीडोग्राफिक कैमरा प्रदान किया। अब स्वामी जी तथा अन्य लोगों के चित्र जो स्वामी जी के साथ खिंचवाते थे, आश्रम में ही धुलने लगे।

इसी समय आश्रम में कुछ कमरों का निर्माण हुआ जिनमें से कुछ तल मंजिल पर थे। इनमें से एक कमरा थोड़ा बड़ा था और यह फोटोग्राफिक कमरे के लिए अच्छा था। स्वामी सारदानन्द जी ने इसे अधिग्रहीत करके स्टूडियो के रूप में बदल लिया। इसे ऐसा कहा जा सकता था कि यह देश भर के श्रेष्ठ स्टूडियों में से एक था। स्वामी सारदानन्द जी के शुद्ध निष्काम भाव, प्रबल समर्पण तथा असीम उत्साह ने स्वामी जी के हृदय को जीत लिया और स्वामी जी ने भी उतने ही उत्साह से उन्हें स्टूडियो के लिए आवश्यक साधन लाने के लिए प्रोत्साहित किया।

२५ फरवरी १९४९ को महाशिवारात्रि के दिन स्वामी जी ने शिवानन्द आर्ट स्टूडियों का औपचारिक रूप से उद्घाटन किया। संस्था के दैवी लक्ष्य के लिए स्टूडियो का अमूल्य योगदान रहा। शिवानन्द आर्ट स्टूडियो ने स्वामी जी के जीवन और क्रिया-कलापों पर तथा उनके शिष्यों के आसनों, प्राणायाम, क्रियाओं के

प्रत्यक्ष प्रदर्शनों के चलचित्र बनाये गये, जिसे संसार-भर के जिज्ञासुओं ने सराहा। लन्दन, ऑस्ट्रेलिया तथा जर्मनी के योग-विद्यालयों ने अपने पुस्तकालयों में इन चलचित्रों की प्रतियों को रखा। स्टूडियों में स्वामी जी के जीवन पर आधारित वास्तविक गतिविधियों पर चलचित्र निर्मित किया गया, जिससे सभी स्वामी जी को बच्चों की तरह कूदते हुए, भजन गाते हुए, नृत्य करते हुए, अभिवादन करते हुए, सफाई करते हुए तथा विश्व प्रसिद्धजनों के साथ वार्तालाप करते हुए देख सकें। स्वामी परमानन्द जी ने उनकी दक्षिण भारत प्रचार यात्रा के समय सभी शाखाओं पर इन चलचित्रों का प्रदर्शन किया तथा इसी तरह श्री स्वामी चिदानन्द जी ने अपनी गुजरात यात्रा में इन चलचित्रों का प्रदर्शन किया, जिससे जो स्वामी जी के दर्शन हेतु लालायित हैं लेकिन ऋषिकेश जाने में समर्थ नहीं हैं, वे भी स्वामी जी के दर्शन कर सकें।

ये चित्र आध्यात्मिक जिज्ञासुओं और विशेष रूप से स्वामी जी के शिष्यों के लिए अत्यधिक मूल्यवान थे। भारत तथा विदेशों के अनेक जनों के लिए यह एक अद्वितीय अनुभव था कि स्वामी जी के चित्र उनसे बातें करते हैं। जब भी उनके समक्ष कोई समस्या आती, वे स्वामी जी के चित्र के सामने खड़े होकर प्रार्थना करते थे। कई लोगों के लिए ये चित्र उनके जीवन के रक्षक थे, जैसे हैदराबाद की रानी शिवानन्द कुमुदनी देवी का आपरेशन हुआ तो उन्होंने अपने कमरे की सभी दीवारों पर स्वामी जी के चित्र लगा दिये, जिससे वे जहाँ भी देखें स्वामी जी दिखाई दें। जब श्री मोहिनी देवी बीमार थीं तो उन्होंने अपने लॉकेट में स्वामी जी का चित्र लगा रखा था और इसी ने उनकी रक्षा की। स्वामी जी का चित्र उनके प्रत्येक शिष्य के लिए, प्रतयेक आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिए जीवन्त सत्य तथा देवत्व की उपस्थिति था।

श्री स्वामी सारदानन्द जी के प्रबन्धन के कारण यह स्टूडियो साधनों और उपयोगिता दोनों की दृष्टिकोणों से सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर गया था। यह अत्यधिक विकसित हो गया था तथा इसकी सफलताओं की सम्मानीय तथा स्थापित फोटोग्राफरों ने भी प्रशंसा की। आश्रम में आये एक विश्वविख्यात व्यक्ति उस समय आश्चर्यचकित रह गये जब स्वामी सारदानन्द जी ने उनके उसी समय खींचे गये चित्र को थोड़ी ही देर बाद बड़ा कर के दिखाया। स्वामी जी के चित्रों को

पूर्ण आकार में बड़ा करके नेत्र चिकित्सालय में लगाया गया। स्वामी सारदानन्द जी कहते थे कि यह सब मात्र स्वामी जी की कृपा के कारण हुआ है क्योंकि वे हमारे काम को श्रेष्ठ बनाने में हर प्रकार से रुचि लिया करते थे। यहाँ तक कि यदि उनके स्थान पर स्वयं मेरे पिता भी होते तो वे भी मुझे वह सब प्रदान नहीं करते जो मैं चाहता था। परन्तु स्वामी जी ने मेरी हर प्रकार से सहायता की।

डाकघर

आनन्द कुटीर के तीन विभाग स्वामी जी के हृदय को व्यक्त करते थे—शिवानन्द प्रकाशन संस्थान, अन्नपूर्ण अन्नक्षेत्र तथा डाक घर। इन तीनों के द्वारा ही वे सम्पूर्ण मानव-जाति को देने में सक्षम थे। स्वामी परमानन्द जी इस बात के साक्षी हैं कि स्वामी जी के ऋषिकेश निवास के आरम्भिक वर्षों में स्वामी जी को जो थोड़े से रुपये दान में प्राप्त होते थे, उनका वे कितनी सावधानी से विनियोजन किया करते थे। इनमें प्रथम अंश प्रिंटिंग प्रेस में जाता था, अगला अंश डाक घर को जाता था, जिसके द्वारा मुद्रित पुस्तकें, पर्चे आदि संसार भर के जिज्ञासुओं को भेजे जाते थे और स्वामी जी तथा उनके कार्यकर्ता भोजन हेतु अन्न क्षेत्र पर निर्भर थे। ऐसा कहा जाता था कि स्वामी जी अपने संयमी शिष्यों को सुविधाओं के लोभ से बचाये रखने के लिए आश्रम में दूध तथा अन्य सामानों की आपूर्ति करने वालों से ऋण सदा बनाये रखते थे। जो भी धन प्राप्त होता था वह तुरन्त डाक घर में चला जाता था।

डाक घर की बारहवीं वर्षगांठ के अवसर पर स्वामी श्री चिदानन्द जी ने आनन्द कुटीर के डाक घर की सुन्दर कहानी सुनाई, जो इस प्रकार है—

स्वामी जी के पास जो शिष्य, साधक रहा करते थे वे ही अन्तेवासी थे, वे ही कार्यकर्ता थे, वे ही सब-कुछ थे। वे जो भी कार्य करते थे उसके लिए पारिश्रमिक लेने का तो विचार भी उनके मन में कभी नहीं आता था। आनन्द कुटीर डाक घर की स्थापना के पूर्व उनको सबसे अधिक कठिन श्रमसाध्य कार्य करना पड़ता था, वह था नित्य की डाक को ऋषिकेश डाक घर लेकर जाना। इसे स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, सास्वत स्वामी जी अथवा पूर्ण बोधानन्द जी अपने सिर पर रखकर ले जाते थे। चाहे तेज धूप हो, भारी वर्षा अथवा कड़ाके की ठंड, यह काम करना ही पड़ता था। जब

यह डाक इतनी अधिक होने लगी कि एक व्यक्ति के लिए इसे ले जाना सम्भव नहीं था तो आश्रम की सम्पत्ति में एक साइकिल और जुड़ गई।

बाद में जब पत्राचार का कार्य इतना अधिक बढ़ गया कि पत्रों तथा पुस्तकों के बड़े-बड़े बण्डलों को भेजने के लिए आवश्यक डाक टिकट ऋषिकेश डाक घर में उपलब्ध नहीं रहते थे तो आश्रम के स्वयं के डाक घर की आवश्यकता अनुभव होने लगी। १ मई १९४० को डाक घर की एक अतिरिक्त शाखा आश्रम में प्रारम्भ हुई और इसका नाम रखा गया—आनन्द कुटीर। इसके बाद विश्व में ज्ञानानन्द का प्रसारण आश्रम से सीधे ही होने लगा। इसकी स्थापना रसोई घर के अन्त में स्थित कमरे में स्थापित किया गया। सर्वप्रथम स्वामी विशुद्धानन्द जी डाक घर के अध्यक्ष थे और डाक घर का प्रबन्धन करते थे और उनका सहयोग करते थे—पूर्णबोधानन्द जी। जब स्वामी विशुद्धानन्द जी दक्षिण भारत चले गये तो श्री आत्माराम जी इसे सम्भालने लगे। हीरक जयन्ती के बाद आत्माराम जी को काम अधिक बढ़ जाने के कारण दो सहयोगियों की आवश्यकता पड़ने लगी।

जिला मुख्यालय (देहरादून) के डाक घर के अधिकारी आनन्द कुटीर शाखा से होने वाली आय में तीव्रता से हो रही वृद्धि को देख रहे थे और ऋषिकेश डाक घर को भी आनन्द कुटीर से अतिशय मात्रा में प्राप्त होने वाले डाक के थैलों को आगे भेजने में कठिनाई हो रही थी। इसलिये अन्त में यह निर्णय लिया गया कि आनन्द कुटीर को उप-डाकघर बना दिया जाये और इसके लिए डाकघर से अध्यक्ष हेतु स्वामी चैतन्यानन्द जी को चुना गया।

आनन्द कुटीर उप-डाकघर का शुभारम्भ ११ नवम्बर १९४९ को हुआ और डाकघर निरीक्षक ने स्वामी जी से निवेदन किया कि आप उस दिनांक के डाक टिकट लगा कर शुभारम्भ करें। स्वामी जी ने सारे टिकट लेकर प्रणवोच्चार करते हुए एक-एक करके सबको चिपका दिया। इस प्रकार सारे क्षेत्र में एक अच्छा डाकघर आ गया।

इसी दिन मध्याह्न में डाक ले जाने वाली गाड़ी लेकर चालक आश्रम में आया। उसने गाड़ी को कुछ फर्लांग दूर खड़ा कर दिया था क्योंकि उसे लगा था कि कोई

छोटा-सा थैला ले जाना होगा लेकिन जब उसने देखा कि यहाँ तो इतने सारे डाक के थैले हैं तो वह दौड़ कर गया और डाक गाड़ी लाकर डाकघर के सामने खड़ी कर दी।

स्वामी चैतन्यानन्द जी के डाकघर के अध्यक्ष के रूप में कार्यकाल की अवधि में डाकघर की योग्यता प्रमाण-पत्र तथा डाक सेवा अधिकारियों की अत्यधिक प्रशंसा प्राप्त हुई।

स्वामी चैतन्यानन्द जी के बाद स्वामी केशवानन्द जी डाकघर के अध्यक्ष बने। ये बड़े ही परिश्रमी थे और प्रत्येक कार्य स्वयं ही करना पसन्द करते थे। वे ही आश्रम के कोषाध्यक्ष थे, उन्हें सचिव के अधिकार भी थे तथा वे टाइपिंग, स्वामी जी के लेखों को समाचार पत्रों में भेजने, पुस्तकों के संकलन आदि कार्यों के प्रमुख भी थे। एक वर्ष अथवा कुछ और अधिक समय तक डाकधर के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हुए उन्हें लगा कि यह काम उनकी क्षमता से अधिक है और इसी कारण उनसे डाक विभाग तथा दिव्य जीवन संघ के बही-खातों में कुछ गड़बड़ हो गई, जिसके कारण उन्होंने तत्काल आश्रम छोड़ दिया। इस समय तक डाकघर एक संस्था के रूप में विकसित हो गया था और इसका काम सम्भालना संस्था के लिए सम्भव नहीं था। इस कारण अब इसे शासन को सौंप दिया गया।

स्वामी जी डाकघर के कर्मचारियों के साथ भी शिष्यों तथा आश्रमवासियों के समान व्यवहार करते थे तथा वे अभी भी डाकघर के कार्य में पूर्ववत रुचि लिया करते थे। स्वामी जी की कृपा से शासन ने डाकघर को एक टेलीफोन प्रदान किया जिससे संस्था के टेलीग्राम भी भेजे जाते थे। इसका शुभारम्भ १४ जून १९५५ को हुआ और स्वामी जी ने स्वयं यहाँ से प्रथम सन्देश अमृतसर के पन्नालाल जी को भेजा।

१४ अगसत १९५६ को शासन ने इस डाकघर में एक टेलीग्राफ उपकरण लगाया जिससे कि सन्देशों को शीघ्र भेजना सम्भव हो गया तथा टेलीफोन आश्रम के व्यक्तिगत उपयोग के लिए हो गया।

आश्रम में होने वाली किसी भी सुविधा में वृद्धि का उपयोग स्वामी जी गहन अभिलाषा रखने वाले जिज्ञासुओं को सन्देश भेजने तथा सत्य के खोजी जनों की सेवा हेतु करते थे। स्वामी जी ने टेलीग्राफ उपकरण की स्थापना के समय कहा—"मैं इसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग करूँगा और वे अपने शिष्यों को तार द्वारा

सन्देश भेजने लगे। स्वामी जी ने सर्वप्रथम प्रमुख निर्देशक डाक एवं तार विभाग, नई दिल्ली तथा प्रमुख डाक अध्यक्ष, लखनऊ को भेजा। स्वामी जी प्रतिदन कुछ चुने हुए शिष्यों, राष्ट्रीय नेताओं तथा विदेशी शिष्यों और सत्य के खोजी जनों को तार भेजा करते थे। इस प्रकार यह क्रम चलता रहा और स्वामी जी की पुस्तक टेलीग्राफिक टीचिंग (तार द्वारा शिक्षण) पुस्तक के लिए पर्याप्त सामग्री एकत्रित हो गयी। हम पत्र की अपेक्षा टेलीग्राम अधिक ध्यान से पढ़ते हैं, इसलिये स्वामी जी ने इस मनोवैज्ञानिक कारक का प्रयोग अपने शिष्यों के ऊपर प्रभाव डालने के लिए किया तथा वे उन्हें तार द्वारा सन्देश भेजते थे तथा इसके द्वारा उन्होंने हमें यह शिक्षा दी कि आध्यात्मिक साधना हमारे जीवन में अन्य किसी भी कार्य से अधिक आवश्यक है। जिन्हें स्वामी जी टेलीग्राम भेजते थे उनसे प्राप्त होने वाले प्रत्युत्तर उनके अनुमान को सत्य सिद्ध करते थे। इनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को टेलीग्राम के लक्ष्य और तात्पर्य के बारे में मनन करने के लिए विवश किया तथा इससे प्राप्त करने वाले के मन पर अमिट छाप पड़ी।

शिवानन्द प्राथमिक विद्यालय

स्वामी जी ने देखा कि स्थानीय बालक-बालिकाओं की शिक्षा हेतु यहाँ उचित व्यवस्था नहीं है, इसलिये उन्होंने यहाँ एक प्राथमिक विद्यालय प्रारम्भ किया। १५ अक्तूबर १९४१ को विजया दशमी के दिन शिवानन्द प्राथमिक विद्यालय की स्थापना हुई। इस विद्यालय में विद्यार्थी मात्र ३ रुपये में बालक स्वयं स्वामी जी से नैतिकता, सदाचार तथा सच्चे आध्यात्मिक जीवन के मूल सिद्धान्तों के उपदेश ग्रहण करते थे और इसके साथ-ही-साथ उनको शिक्षा देने के लिए आश्रमवासी, साधक और धर्मात्मा शिक्षक भी थे। इसके साथ-साथ यह शिक्षा प्रदान करने की योग्यता रखने वाले आश्रमवासियों के लिए निष्काम्य सेवा का एक अन्य क्षेत्र था।

प्राथमिक विद्यालय को शासन द्वारा मान्यता प्राप्त हो गयी। विद्यालय के बच्चे सभी क्षेत्रों में विशिष्ट थे। स्वामी जी ने स्वयं उन्हें कीर्तन करने, छोटे-छोटे भाषण देने तथा आध्यात्मिक नाटकों में भाग लेने हेतु प्रशिक्षित किया। ये बच्चे परीक्षाओं में भी सदैव अच्छा परिणाम लाते थे तथा उनका व्यवहार समाज में भी दृष्टान्त योग्य होता

था। इस प्रकार उन बच्चों के परिवार, आश्रम, स्वामी जी और उनकी अनूठी शिक्षा-विधि को सम्मान तथा यश प्राप्त हुआ।

मार्च १९५० की दिव्य जीवन पत्रिका के अंक में यह प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ—

निर्धन विद्यार्थियों को उनकी शिक्षा प्राप्त करने में सहायता करना दिव्य जीवन संघ का लक्ष्य है। दिव्य जीवन संघ मुख्यालय द्वारा पिछले ९ वर्षों से एक प्राथमिक विद्यालय चलाया जा रहा है, जहाँ पढ़ाई तथा छात्रावास की सुविधा इन्हें निःशुल्क प्रदान की जाती है तथा इसके साथ-ही-साथ अन्य क्षेत्रों के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। हीरक जयन्ती के दिन ८ सितम्बर १९४७ को निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करने की घोषणा की थी और अन्त में उन सभी छात्रों के नाम दिये गये जो इस योजना से लाभान्वित हुए।

संस्कृत शिक्षण

सन् १९४४ में स्वामी जी ने देवभाषा संस्कृत की शिक्ष के प्रसार हेतु एक अन्य शिक्षण संस्थान 'सरस्वती संस्कृत विद्यालय' की स्थापना की। स्वामी जी सभी आध्यात्मिक जिज्ञासुओं को संस्कृत सीखने के लिए प्रोत्साहित करते थे जिससे वे धर्मशास्त्रों को उनके मूल स्वरूप में समझ सकें। श्री स्वामी कृष्णानन्द जी, श्री स्वामी चैतन्यानन्द जी तथा श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी कुशल संस्कृत आचार्य थे। इस संस्थान की यह प्रशंसनीय बात थी कि यहाँ विदेशी छात्रों ने भी संस्कृत की शिक्षा ग्रहण की।

शिवानन्द संगीत विद्यालय

स्वामी जी का कहना था कि ललित कलाएँ भगवद्साक्षात्कार हेतु भिन्न-भिन्न प्रकार के सुन्दर मार्ग हैं। स्वामी जी को संगीत और नृत्य का अच्छा ज्ञान तो था ही, वे बचपन से ही इसमें रुचि भी रखते थे। स्वामी जी के निकट सम्बन्धी श्री पी.आ. सुब्बियार महाविद्यालय में उनके साथ पढ़ते थे। वे ५० वर्ष बाद स्वामी जी से मिले तो स्वामी जी की आवाज सुन कर बड़े ही प्रसन्न हुए और बोल पड़े कि 'क्या अद्भुत आवाज है'। आयु में वृद्धि तथा रोगों से पीड़ित होने के बाद भी स्वामी जी ने अपनी

शक्तिशाली आवाज में मधुरता बनाए रखी थी। स्वामी जी हमें आन्दोलित कर देते थे। हम सभी को उन्हें सुनना बड़ा प्रिय था।

जब भी कोई नवीन जिज्ञासु आश्रम में प्रवेश लेता जो संगीत में भी प्रवीण होता, तो स्वामी जी उसे कुछ आश्रमवासियों को भी संगीत की शिक्षा देने के लिए प्रेरित करते थे। श्री राघवीय (ये नई दिल्ली में स्वामी जी के नाम पर संगीत विद्यालय संचालित करते थे), श्री स्वामी शिवस्वरूप जी तथा श्री स्वामी नादब्रह्मानन्द जी को आश्रम प्रवास की अवधि में संगीत की शिक्षा प्रदान करने के लिए सभी सुविधायें उपलब्ध कराई गयी थीं। श्री स्वामी विद्यानन्द जी आश्रम में विशेष रूप से विदेशी जिज्ञासुओं को वीणा सिखलाते थे और सारे दिन व्यस्त रहते थे। वे वीणा सिखाने के साथ-साथ भगवान् के नाम का कीर्तन करना भी सिखाते थे। यदि आश्रम में कोई अतिथि संगीत शिक्षक होता तो स्वामी जी उससे भी आश्रमवासियों को संगीत की शिक्षा देने के लिए कहते थे। इस विद्यालय को आनन्द नाद मन्दिर कहा जाता था तथा इसे ६ दिसम्बर १९५५ को उचित स्वरूप प्रदान किया गया।

योग वेदान्त महाविद्यालय

आज हमें योग और वेदान्त के प्रति संसार में जो रुचि दिखाई दे रही है, उसका पूर्वाभास स्वामी जी को पहले ही हो गया था। इसी कारण वे शिवानन्द आश्रम को आनन्द कुटीर अरण्य विश्वविद्यालय कहा करते थे। सत्य के खोजी जनों तथा वे जो जाग्रत हैं, और योग तथा वेदान्त के बारे में जानना चाहते हैं, के लिए स्वामी जी ने यथाक्रम प्रशिक्षण देने की अनिवार्यता को समझा। स्वामी जी की इस योजना के बारे में क्या विचार थे, वे उस समय कैसा अनुभव कर रहे थे, इसकी एक झलक देखिए—यह दिव्य जीवन के मई १९४७ के अंक से उद्धृत है—

संसार आज दुष्ट शक्तियों के चंगुल में है। लालच और प्रभुत्व से अन्धे होकर देश एक-दूसरे को नष्ट करने में लगे हुए हैं। उनके हृदय में द्वेष की भावना है और वे पाश्विक बलों को प्रयोग करने के लिए प्रतीक्षरत हैं। लोग हताश होकर प्रश्न कर रहे हैं कि क्या कभी स्थाई शान्ति होगी। क्या सभ्यता जीवित रह सकेगी? इसका उत्तर है—"हाँ! लेकिन ऐसा तभी सम्भव है जब सारे संसार के बुद्धिमान् तथा भले लोग आपस में एक जुट हो जायें।"

बिना आध्यात्मिक शक्ति के प्रयोग के प्राचीनकाल में भी कोई अच्छा कार्य सम्भव नहीं था। इस शक्ति का विकास करना एक कला है और इसे सीखना आवश्यक है। आध्यात्मिक शक्ति द्वारा ही पाशविक शक्तियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। आज इस शक्ति का अर्जित करने का समय आ गया है और इसीलिए ऋषिकेश में योग तथा वेदान्त महाविद्यालय का शुभारम्भ किया जा रहा है। महान् आत्माएँ जिन्हें शान्त वातावरण में ध्यान करने में आनन्द का अनुभव होता है, वे भी आज बाह्य वातावरण में यत्नशील हैं। वे हमारे चारों ओर जो भी कष्ट और निराशा है, उसे सहन नहीं कर सकती है। इसलिये जो इस निरन्तर बढ़ रही दुष्टता पर विजय पाना चाहते हैं और इसके लिए आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें यह शक्ति प्रदान करने के लिए वे महान् आत्माएँ तैयार हैं।

मानव मात्र को आध्यात्मिक रूप से आन्दोलित करने के लिए ऋषिकेश में गंगा तट पर योग और वेदान्त महाविद्यालय की स्थापना की जायेगी। यह आध्यात्मिक ऊर्जा उत्पन्न करने को केन्द्र होगा जिसका प्रवाह सम्पूर्ण पृथ्वी तक पहुँचेगा। इस आध्यात्मिक ऊर्जा को ग्रहण करने के लिए संसारके चारों कोनों से आने वाले जिज्ञासुओं को प्रवेश दिया जायेगा। उन्हें योग और वेदान्त की सम्पूर्ण शिक्षा दी जायेगी तथा अभ्यास कराया जायेगा और इसके साथ-साथ आत्म-साक्षात्कार के सभी मार्गों का भी प्रशिक्षण दिया जायेगा। यहाँ से प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद वे जहाँ भी जायेंगे, अच्छाई के महान् शक्तिशाली अस्त्र बन कर जायेंगे। वे यहाँ से अपने साथ समाज को पुनर्जीवित करने के लिए आध्यात्मिक शक्ति लेकर जायेंगे तथा जो भी उनके सम्पर्क में आयेंगे वे सच्चे सुख को नष्ट करने वालों के भ्रामक प्रचार से मुक्त होंगे। इस महाविद्यालय का लक्ष्य है, प्रशिक्षणार्थियों को संसार के विभिन्न भागों में ऐसे आध्यात्मिक केन्द्रों की स्थापना करने योग्य बनाना, जिससे उन्होंने मातृ संस्था से जो शिक्षायें ग्रहण की हैं, वे उन्हें सर्वत्र फैला दें और वे जन-जन में प्रविष्ट हो जायें। ये केन्द्र संसार को शुद्ध करेंगे, बुराई के आक्रमण से रक्षा करेंगे और इसे सच्चे सुख का धाम बनायेंगे।

इस महाविद्यालय का कार्य तीन विभागों द्वारा किया जायेगा—

१. शास्त्रज्ञान शाखा (सैद्धान्तिक अध्ययन)

२.साधना शाखा (अभ्यास)

३.अभ्यासयोग शाखा (शोध तथा गहन ध्यान)

उपरोक्त शाखाओं में काम के साथ-साथ महाविद्यालय के आवासीय छात्रों को (अभ्यासयोग शाखा के सदस्यों को छोड़कर) आध्यात्मिक तरंगों के निर्माण के लिए लम्बे समय से स्थापित पूर्व से परीक्षित विधियों के अनुरूप नित्यप्रति कार्य करने होंगे।

दिन के एक निश्चित समय पर यहाँ निम्न कार्यक्रम संचालित किये जायेंगे—

१.सामूहिक प्रार्थना

२.नाम-संकीर्तन, तथा

३.मानव मात्र को ज्ञान-प्रकाश प्रदान करने तथा शुद्धता प्रदान करने के लिए उच्च शक्तियों से सहायता हेतु आह्वान करने के लिए ध्यानाभ्यास। यह सभी अच्छी तरह से जानते हैं कि आत्म-साक्षात्कार के आकांक्षी जनों में आध्यात्मिक ऊर्जा की उत्पत्ति हेतु उपरोक्त विधियाँ बड़ी सहायक हैं।

हालाँकि अभी वास्तव में महाविद्यालय अस्तित्व में नहीं था परन्तु स्वामी जी की योजना आश्चर्यचकित कर देने वाली थी।

योग वेदान्त फॉरेस्ट एकाडेमी

महाविद्यालय के विचार से योग वेदान्त फॉरेस्ट एकाडेमी का जन्म हुआ (इसे प्रारम्भ में विश्वविद्यालय कहा गया और बाद में विश्वविद्यालय शब्द को बदल कर एकाडेमी कर दिया गया)।

एक संत की आकांक्षा की प्रतिक्रिया के रूप में दर्शन तथा अन्य भारत के धर्मशास्त्रों के विद्वान् आश्रम से जुड़े। उनमें से प्रमुख थे प्रोफेसर नन्द किशोर श्रीवास्तव, एम.ए.एल.एल.बी. तथा प्रोफेसर सी.वी. नारायण अय्यर, एम.ए.एल.टी. (बाद में ये स्वामी सदानन्द हो गये), और आश्रम के वरिष्ठ स्वामीगण श्री स्वामी चिदानन्द जी, श्री स्वामी कृष्णनन्द जी तथा श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी। इन सभी के सहयोग से नियमित कक्षायें प्रारम्भ हो गईं।

पाठ्यक्रम बनाया गया तथा पाठों की सूची विद्यार्थियों को दी दी गई। नीचे कर्म योग तथा भक्तियोग शीर्षक के अन्तरगत अभ्यासिक पाठ्यक्रमों के बारे में बताया जा रहा है—

कर्मयोग (अभ्यासिक)

रोगियों की परिचर्या तथा उपचार, निर्धनों को वस्त्र प्रदान करने के लिए सूत कातना एवं कपड़ा बुनना, गाँव वालों की कृषि तथा बागवानी में सहायता करना, कुलियों को उनके काम में सहायता करना, राहगीरों को जल की आपूर्ति करना, समाज के कल्याण के लिए सेवाकार्य करना, शान्तिपूर्ण ढंग से कार्य करते हुए आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार द्वारा आध्यात्मिक शिक्षा के पर्चों तथा पत्रकों का वितरण, प्रचार तथा भाषण, विद्यार्थियों को आध्यात्मिक पथ में प्रशिक्षित करना तथा आध्यात्मिक पुनर्जागरण पर लेख लिख कर देश की सेवा करना।

भक्तियोग (अभ्यासिक)

इसमें जप, कीर्तन, भजन तथा प्राणायाम, पूजा और प्रार्थना, मन्दिर में सेवा, संतों की सेवा, सत्संग, उपवस, रात्रि जागरण तथा अखण्ड कीर्तन आदि थे।

यह कहना अत्यावश्यक है कि स्वामी जी योग और वेदान्त के सैद्धान्तिक रूप के स्थान पर व्यवहारिक रूप पर अधिक बल देते थे।

आश्रम में आने वाले विश्व प्रसिद्ध विद्वान् जनों को उनके आश्रम प्रवास की अवधि में कक्षायें संचालित करने हेतु आमन्त्रित किया जाता था। इनमें से प्रमुख थे अमेरिका के प्रोफेसर बुर्ट्ट, लन्दन के डा. ग्राहम होव, पेरिस के डा. मेरिसे चोइसी, अन्नामलई विश्वविद्यालय के श्री सच्चिदानन्दम पिल्लै, पुदुकोट्टई के श्री डा. कामेश्वर शर्मा तथा श्री आ.ए. शास्त्री।

एक अतिथि प्रोफेसर के प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामी जी ने कहा कि योग वेदान्त फॉरेस्ट विश्वद्यालय तथा अन्य विश्वविद्यालयों में यह अन्तर है कि अन्य विश्वविद्यालयों को रोटी कमाने के लिए तैयार करते हैं, जबकि योग वेदान्त फॉरेस्ट विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को साधु और संत बनने के लिए तैयार करता है। संसार में विद्यार्थी अपनी पढ़ाई समाप्त करने के बाद वेतन भोगी प्रोफेसर बनने का प्रयास करते

हैं लेकिन यहाँ से जाने के बाद विद्यार्थी शिक्षा देने जाते हैं और पारिश्रमिक पाने की उनकी कोई आकांक्षा नहीं होती। उनका अपने परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वे कुण्डलिनी योग, वेदान्त तथा दर्शन का अध्ययन करते हैं। इसमें से कुछ हठयोग में प्रवीण होते हैं तथ कुछ वेदान्त में प्रवीण होते हैं। उन्हें नाम और प्रसिद्धि की कोई कामना नहीं होती है।

जो ऐसा अनुभव करते थे कि विश्वविद्यालय में बहुत कम विद्यार्थी हैं तथा यहाँ रहने की व्यवस्था ठीक से नहीं है आदि, तो वे स्वामी जी के सामने अपनी भावनाएँ व्यक्त करते थे और स्वामी जी उन्हें बड़ा ही सुन्दर उत्तर देते थे। नीचे ऐसा ही एक उत्तर दिया जा रहा है जिसे स्वामी जी ने २१ जनवरी १९४९ को एक अतिथि को दिया—

स्वामी जी ने कहा—"यह संसार के अन्य विश्वविद्यालयों की तरह नहीं है। लोग यहाँ क्लर्क, वकील तथा वैज्ञानिक बनने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त नहीं करते। आजकल मानवीयता का स्तर इतना अधिक गिर गया है कि लोग सर्वत्र मात्र विषय-सुख चाहते हैं। उन्हें योग वेदान्त तथा आत्म-ज्ञान द्वारा प्राप्त होने वाले परमानन्द से कोई मतलब नहीं है। इस अस्त-व्यस्त संसार में सांसारिक सुखों को त्याग कर योगाभ्यास के द्वारा भगवद् साक्षात्कार प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला एक भी साधक प्राप्त करना बड़ी बात है लेकिन योग वेदान्त फॉरेस्ट यूनिवर्सिटी में दर्जनों विद्यार्थी सत्य की खोज हेतु प्रयत्नशील हैं। यह एक महान् उपलब्धि है और इससे प्रमाणित होता है कि इसे संसार का महान् विश्वविद्यालय कहा जाना चाहिए।

हमें अपना पूरा ध्यान इस ओर केन्द्रित करके इसका विकास करना चाहिए। इसका भविष्य उज्जवल है। इन्हीं विश्वविद्यालयों (या आश्रमों में) भारतीय संस्कृति का जन्म होता है।

विश्वविद्यालयों की कक्षाओं का समय (प्रातः ४ बजे से ६ बजे तक) सांसारिक लोगों के लिए थोड़ा असुविधाजनक है। लेकिन यह ब्रह्ममुहूर्त है। यह समय मन में आध्यात्मिक विचारों को ग्रहण करने के लिए सर्वाधिक अनुकूल होता है। इसलिये संन्यासी-साधक जिनका लक्ष्य भगवद् साक्षात्कार है, उन्हें इस समय कक्षा में जाना सर्वाधिक प्रिय होता है।

अतिथियों तथा साधारण साधकों के लिए हमने प्रातः ९ बजे से ११ बजे तक तथा सायं ३ बजे से ५ बजे तक कक्षायें रखी हैं। ये कक्षायें निमित रूप से चलती हैं जिससे जो आश्रम में मात्र एक रात्रि और दूसरे दिन सुबह तक के लिए आयें, वे भी ध्यान और आसन की कक्षा में सम्मिलित हो सकें।

अब बीजारोपण तो हो गया है। भगवान् इसकी सफलता का ध्यान रखेंगे। कुछ समय में हम एक बड़ा भवन तथा प्रत्येक व्याख्याता के लिए अलग निवास स्थान का निर्माण करेंगे। एक अच्छा पुस्तकालय भी निर्मित किया जायेगा। व्याख्यातागणों को अन्य सुविधायें भी प्रदान की जायेंगी। बहुत से व्याख्याता आयेंगे। संन्यास का सन्देश दूर-दूर तक फैल जायेगा। दिव्य जीवन की कीर्ति दूर-दूर तक फैलेगी, मन्त्री तथा राज्यपाल भी आयेंगे और संन्यास दीक्षा लेंगे। जो अपना जीवन सांसारिक कामों में व्यर्थ गँवा रहे हैं, उनके पास भी यह सन्देश जायेगा कि यह जगत् मिथ्या है, एक ब्रह्म ही सत्य है। इस संसार को सुधारना व्यर्थ है। मनुष्य का एक ही धर्म है—आत्म-साक्षात्कार और यही जीवन तथा मृत्यु की समस्या का एकमात्र हल है।

सारे संसार से विद्यार्थी आयेंगे। यहाँ विदेशी छात्रों के लिए एक छात्रावास होगा और उन्हें शिक्षा देने के लिए अनेक व्याख्याता होंगे। इस विश्वविद्यालय में सारे संसार से लोग आयेंगे। अमेरिका और यूरोप से सच्चे साधक यहाँ आयेंगे।

ये शब्द सत्य सिद्ध हुए। एक दशक के भीतर विश्वविद्यालय की ओर अमेरिका और यूरोप से विद्यार्थी आकृष्ट हुए और यहाँ आकर वेदान्त का अध्ययन करने तथा योगाभ्यास हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए संसार भर से आने वाले विद्यार्थियों का सतत प्रवाह प्रारम्भ हो गया।

शिवानन्द स्मृति संग्रहालय

डाक घर के ऊपर शिवानन्द स्मृति संग्रहालय था। इसका ९ जनवरी १९५६ को शुभारम्भ हुआ। इस अवसर पर स्वामी जी ने स्वामी परमानन्द जी के प्रति अपना आभार इस प्रकार व्यक्त किया—

स्वामी परमानन्द जी की योजनायें मौलिक हैं। ये वही हैं जिन्होंने लोगों से दान एकत्र करके भजन-कक्ष का निर्माण किया। ये वही हैं जिन्होंने प्रकाशन संस्थान प्रारम्भ किया। ये वहीं हैं जिन्होंने मेरी सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा का आयोजन किया। स्वामी परमानन्द जी ने मेरी पुस्तकों का जर्मन तथा फ्रांसीसी भाषाा में अनुवाद यिा। इन्होंने ही प्रकाशकों को पत्र लिख कर इन अनुवाद की हुई पुस्तकों को लेने के लिए प्रेरित किया। इन्होंने मेरे ज्ञान को सारे संसार में फैलाया। ये बड़े कर्मठ कार्यकर्ता हैं। वे सारी रात काम करते हैं।

श्री शिवानन्द स्मृति संग्रहालय के लिए श्री स्वामी परमानन्द जी ने ऋषिकेश में प्रारम्भ के जीवन से अभी तक के जीवन तक जुड़ी सभी वस्तुएँ जिनमें भिक्षा-पात्र से लेकर वह चाँदी की पत्र-पेटिका भी सम्मिलित थी, जो उन्हें सम्पूर्ण भारत भ्रमण यात्रा के समय मद्रास में अभिनन्दन पत्र रख कर भेंट की गई थी, इन सभी को संग्रहित किया था। संग्रहालय के चारों ओर की दीवारों पर स्वामी जी की सेवा कार्यों के जीवन्त चित्र थे। यह हमें दिव्य जीवन संघ के इतिहास का सजीव चित्रण दिखलाती है।

योग संग्रहालय

योग संग्रहालय स्वामी जी की अनूठी कृति था। यह एकाडेमी का महत्वपूर्ण अंग था। इसके प्रत्येक भाग में योग के मूल सिद्धान्तों को चित्रों द्वारा संक्षेप में किन्तु स्पष्ट रूप से समझाया गया था। इसमें परमात्मा की प्रकृति, दृश्यमान जगत् की प्रकृति, सर्वव्यापक तथा अनुभवातीत ईश्वर, ज्ञानयोग, राजयोग, भक्तियोग, कर्म योग—इन सभी मार्गों को अत्यन्त सुन्दर चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया था, जिससे कोई भी व्यक्ति इनमें दर्शाये गये सन्देशों को बिना किसी कष्ट के सरलता से ग्रहण कर सकता था। वास्तव में यह उन पश्चिमी जिज्ञासुओं के लिए बड़ा ही उपयोगी था, जो पूर्वी दार्शनिक विचारों के लिए एकदम नये थे।

शिवानन्द वाणी

एक अन्य नवीन बात थी शिवानन्द वाणी (प्रसारण केन्द्र)। इसका शुभारम्भ स्वामी शिवानन्द जी ने २९ मार्च १९५० को आनन्द कुटीर में किया। विश्वनाथ

मन्दिर के गुम्बद के ऊपर एक लाउड स्पीकर लगाया गया था। इसका मुँह मुनिकीरेती की तरफ था। इससे रोचक कार्यक्रमों का प्रसारण होता था। प्रतिदिन प्रातः ४ बजे प्रणवोच्चारण, कीर्तन, भगवद्गीता का पाठ आदि से कार्यक्रम का शुभारम्भ होता था, मध्याह्न में १ से २ बजे तक यथा संध्या ६ बजे से ७ बजे तक सामाजिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर हिन्दी तथा गढ़वाली भाषा में प्रवचन तथा श्रेष्ठ गायकों द्वारा भजन-कीर्तन किये जाते थे तथा श्री स्वामी जी महाराज तथा अन्य महात्माओं के ग्रामोफोन रिकार्डों का प्रसारण किया जाता था। इससे आश्रम की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों के समाचार तथा सूचनायें भी प्रसारित की जाती थीं।

आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार

स्वर्गाश्रम

जब स्वामी जी स्वर्गाश्रम में थे तब भी अक्सर तीर्थयात्री तथा दर्शनार्थी उनके पास धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करने तथा सलाह लेने आया करते थे। उनके लिए स्वामी जी ऐसे संत थे जो उनकी आन्तरिक कठिनाइयों को ग्रहण कर लेते थे और उनकी समस्याओं को समझते थे तथा सहानुभूतिपूर्वक उनके प्रश्नों को उत्तर देते थे तथा उनका निर्णय एकदम सही होता था।

स्वामी जी उत्कण्ठित जनसमूह का केन्द्र थे जो उनसे साधना में आने वाली बाधाओं, साधना के अनुभव आदि के बारे में तथा व्यक्तिगत जीवन में आने वाली बाधाओं के बारे में निरन्तर प्रश्न करते रहते थे। वे स्वामी जी से अपने मन में उठने वाले सन्देहों को भी व्यक्त करते थे। स्वामी जी भी उनकी यथासम्भव सहायता करते थे और उन्हें उनकी सहायता हेतु उचित पथ-प्रदर्शन करते थे और ये सभी निर्देश स्वामी जी के स्वयं के अनुभवों पर आधारित थे।

स्वामी जी की सलाह के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई और सभी ने इसकी बड़ी प्रशंसा की, जिससे स्वामी जी ने विचार किया कि अन्य ऐसे लोग भी होंगे जिनके समक्ष भी इस प्रकार की समस्याएँ होगीं। उन्हें भी इसका लाभ मिलना चाहिए। इसलिये स्वामी जी ने विचार किया कि इन सभी सुझावों को लिख कर बहुत से लोगों में वितरित किया जाये। स्वामी जी का स्वभाव था कि जो सोचा उसे कार्यरूप में तत्काल परिणित करना। इसलिये वे अब अपने पास आने वाले दर्शनार्थियों के प्रश्नों तथा सन्देहों को नित्य याद करके लिख लेते थे। इसके बाद वे इनके उत्तरों, सुझावों तथा निर्देशों को लिखते थे।

स्वामी जी ने यह कार्य अत्यधिक प्रतिकूल परिस्थितियों में, सभी बाधाओं को कठोरता से, दृढ़ निश्चयपूर्वक दूर हटाते हुए किया। उन्होंने इसके द्वारा कम-से-कम सारे संसार के आधे भाग में आध्यात्मिक जागरण किया। प्रारम्भ में जब उन्हें अपने

पर्चों की प्रशंसा के पत्र मिलते थे तो उनके भीतर स्थिति संन्यासी उनके टुकड़े-टुकड़े करके गंगा जी में बहा देता था। इन भयंकर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे लेखन कार्य करते रहे। इस समय उनके पास कागज की व्यवस्था नहीं थी। इसके लिए वे रद्दी कागजों के ढेर में से छोटे-छोटे खाली कागजों को ढूँढते थे। इनको एकत्रित करके उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तिका बना ली थी। उन्हें जो बेकार लिफाफे मिलते थे उसके भीतरी कोरे हिस्से पर वे अपने विचार तथा अनुभव लिख लिया करते थे। इसके साथ-साथ कभी-कभी उनके पास स्याही नहीं होती थी और यदि कभी स्याही रहती तो दीपक की व्यवस्था न होने के कारण उन्हें गोधूलि बेला के बाद लिखना बन्द कर देना पड़ता था और कभी-कभी उनके पास उपरोक्त सभी चीजें होती तो दीपक के लिए तेल न होने के कारण अथवा माचिस की अन्तिम तीली खत्म हो जाने के कारण उन्हें सारी रात अन्धेरे में अपने विचारों के साथ बितानी पड़ती थी। परन्तु महान् आश्चर्य की बात यह हुई कि इतनी सारी परेशानियों के बाद भी वे दूर पश्चिम के लोगों के जीवन में तथा गतिविधियों में क्रान्ति लाने में सफल हो गये।

प्रारम्भ में तो काम करने में वे अकेले ही थे उनका एकमात्र सहारा थे अन्यों की सेवा, उनकी आन्तरिक साधना की शक्ति तथा ईश्वर में पूर्ण आस्था बाद में उनके पास जो जिज्ञासु आये वे सभी युवा तथा अनुभवहीन थे। उन्हें स्वयं ही प्रत्येक चरण पर स्वामी जी की सहायता की आवश्यकता थी।

स्वामी जी का जब पहला पर्चा छप कर आया तो उन्हें कैसा लगा इसे वे बड़े ही मनोरंजक तरीके से बताया करते थे। स्वामी जी के एक भक्त थे चांद नारायण हरकुली। वे स्वामी जी के दृढ़ संकल्प तथा अपरिग्रह से बड़े ही प्रभावित थे। एक बार उन्होंने स्वामी जी को एक ५ रुपये का नोट दिया और निवेदन किया कि इससे वे अपने लिए दूध क्रय करें। बाद में स्वामी जी अपने चारों ओर पुस्तकों तथा पर्चों की ओर संकेत करके कहते थे—"आप मेरे चारों ओर जो यह सब देख रहे हैं वह चांद नारायण का दूध है।" बाद में उन्होंने स्पष्ट किया—"जब उन्होंने मुझे ५ रुपये दिये तो मैंने ऐसा अनुभव किया जैसे यह सर्वशक्तिमान् ईश्वर से मिला उपहार है। मैं अपने विचारों को प्रकाशित करने के लिए लिखने के लिए कुछ अच्छे कागज चाहता था और उन्होंने बिना माँगे ही मुझे रुपये दे दिये। मेरे अनेक लेख इसी आंधी की प्रतीक्षा

में थे। मैंने उसी समय इस धन से मेरा प्रथम पर्चा मुद्रित कराया, इसका नाम था ब्रह्मविद्या (भगवद्साक्षात्कार)। और इसे तुरन्त मेरे पास आने वाले सभी लोगों में वितरित कर दिया गया।

यह पर्चा बहुत से लोगों द्वारा बहुत पसन्द किया गया और वे स्वामी जी के विचारों को और अधिक जानने के उत्सुक थे तथा इन्हीं में से कई लोगों ने स्वामी जी के पुस्तकों के मुद्रण का उत्तरदायित्व लिया। इससे अगले कार्य को प्रेरणा मिली तथा 'मेटाफिजिक्स ऑफ द इनर मैन' प्रकाशित हुआ और काम आगे चलता रहा। इस प्रकार चांद नारायण हरकुली जी का दूध जो एक व्यक्ति के लिए था वह हजारों लोगों के लिए देव आहार बन गया।

कुछ पत्रिकाओं जैसे माय मैग्जीन आदि ने उन्हें लेख लिखने के लिए आमन्त्रित किया। स्वामी जी इस हेतु बड़ी प्रसन्नता से तैयार हो गये परन्तु यह काम सरल न था।

स्वामी परमानन्द जी ने पत्रिकाओं में लेख भेजने के बारे में लिखा—

स्वामी जी को एक लेख तीन या चार पेज का लिखना पड़ता था और विभिन्न पत्रिकाओं के लिए इसकी तीन या चार प्रतिलिपियाँ तैयार करनी पड़ती थीं। स्वामी जी मेरे पास आते और एक प्रतिलिपि बनाने के लिए कहते। मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ इस काम को करने को तैयार हो जाता। अगले दिन मैं देखता कि प्रकाश इसी की नकल कर रहा है। इसके बाद विवेकानन्द की बारी रहती। स्वामी जी को मनुष्य के मनोविज्ञान की अच्छी समझ थी। यदि वे मुझसे एक साथ तीन प्रतिलियाँ करने के लिए कहते तो शायद मैं मना कर देता। इसलिये वे एक एक सभी से करवाते थे। वे हमें यह भी विश्वास दिलाते थे कि इस प्रकार हमें उनके लेख पढ़ने का अन्य दूसरों से पहले अवसर मिल रहा है। जैसे ही प्रतिलिपि तैयार हो जाती स्वामी जी उसे पढ़ते और उसमें जो गलतियाँ होतीं उन्हें सुधारते। मुझे संस्कृत के शब्दों को पढ़ने में कठिनाई होती थी लेकिन स्वामी जी के लेख में प्रत्येक पंक्ति में एक संस्कृत का शब्द अवश्य होता था वास्तव में स्वामी जी ऐसा मुझे शिक्षा देने के लिए करते थे। उनका यह कार्य, उपंदेश तथा साधना का सुन्दर सम्मिश्रिण था।

स्वामी जी तथा उनके शिष्यों को इस तनाव से मुक्ति देने के लिए माय मैग्जीन ऑफ इण्डिया के श्री पी.के. विनायगम ने स्वामी जी को एक टाइपराइटर भेंट किया। यह एक उत्कृष्ट यन्त्र था जिसने लगभग २० वर्षों तक मिशन की असाधारण रूप से सेवा की। श्री पी.के. विनायगम ने सन् १९३२ में स्वामी जीको एक साइक्लोस्टाइल मशीन भेंट की और स्वामी जी ने उसी समय भगवान् द्वारा प्रदत्त इस उपहार के श्रेष्ठ उपयोग हेतु विचार किया और तुरन्त ही सायक्लोस्टाइल करना प्रारम्भ कर दिया और इसे बाद में 'फॉरेस्ट टॉक्स' के नाम से जाना गया।

स्वामी जी ने निम्न शीर्षकों से छोटे-छोटे पर्चे भी मुद्रित कराये। ये थे योग, योग इन डेली लाइफ, गोल्डन प्रीसेप्ट्स आदि। इन्हें कई स्थानों पर मुद्रित किया गया तथा इन्हें निःशुल्क वितरित कर दिया गया।

सन् १९३७ में एक रेमिंग्टन डुप्लीकेटर क्रय किया गया तथा 'फॉरेस्ट टॉक्स' को इस पर स्थानान्तरित कर दिया गया।

जब इन निःशुल्क पर्चों को प्रसिद्धि मिलने लगी तथा स्वामी जी ने देखा कि सत्य को जानने के लिए उत्सुक जनों में उनके उपदेशों की माँग बढ़ गयी है तो वे भगवद्गीता की ओर मुड़े। हालाँकि उनके पूर्व बहुत सारे विद्वानों ने इसकी व्याख्या की थी। लेकिन स्वामी जी ने इसकी स्वयं व्याख्या की और उनकी इच्छा थी कि इसका निःशुल्क वितरण किया जाये, इसलिये १ दिसम्बर १९३९ के दिव्य जीवन पत्रिका के अंक में यह सूचना प्रकाशित की गयी—

निःशुल्क प्रकाशन

दिव्य जीवन श्रृंखला के पर्चों तथा पत्रकों का प्रकाशन हो गया है। इन पर्चों में सभी साधकों के लिए कर्म योग, भक्तियोग, योग तथा वेदान्त पर व्यवहारिक उपदेश संनिहित हैं। और इनमें से प्रत्येक विषय की २००० प्रतियाँ मुद्रित की गयी हैं। दिन-प्रतिदिन प्रकाशनों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। वर्तमान में हम श्री स्वामी शिवानन्द जी द्वारा लिखित श्री भगवद्गीता की १००० प्रतियाँ प्रकाशित कर रहे हैं। इसमें मूल संस्कृत श्लोकों के शब्दशः अर्थ तथा उनकी व्याख्या दी गयी है जो श्री शंकराचार्य जी की व्याख्या पर आधारित है। इसके प्रथम भाग में प्रथम तीन

अध्याय हैं जिनमें लगभग १०० पृष्ठ हैं तथा यह दिसम्बर १९३९ तक तैयार हो जायेगी और शेष अध्याय सन् १९४० तक पूर्ण हो जायेंगे। हम सभी सदस्यों से अपेक्षा रखते हैं कि वे इस महत्वपूर्ण प्रकाशन का एक अध्याय भी न चूकें।

वास्तव में इन पुस्तकों तथा पत्रकों का मुद्रण कहीं और होता था और कभी कभी जो दान प्राप्त होता था उसे इस उपयोग में लिया जाता था। स्वामी जी द्वारा एक निःशुल्क साहित्य निधि बनायी गयी थी तथा पाँच अथवा पच्चीस रुपये दान करने वालों को भी निःशुल्क पर्चे तथा पत्रक दिये जाते थे। स्वामी जी को जो पत्र लिखता अथवा जो थोड़ा सा भी दान देता उसे कुछ पर्चे तथा पत्रक प्राप्त होते थे। स्वामी जी के पते के रजिस्टर ने यह काम किया था। १९३० के समय में बड़े दान नहीं प्राप्त होते थे। चार आने वाले, आठ आने वाले तथा एक रुपये वाले इन सभी का स्वामी जी के हृदय में स्थाई निवास था। मात्र एक अथवा दो पाँच रुपये वाले थे तथा नागपुर के डा. बी.ए. वैद्य एक मात्र दस रुपये वाले थे। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि इन सभी ने मिशन के विकास में महान् सहयोग किया क्योंकि ये सभी अपने दान में बड़े नियमित थे। जिससे कि स्वामी जी दान से प्राप्त हाने वाली आय के बारे में योजना बना सकते थे। वे सदैव पूर्व में ही योजना बना लेते थे जिससे यह धन किसी अन्य मद में न व्यय हो जाये।

जब स्वामी जी प्रचार यात्राओं अथवा संकीर्तन सभाओं में अध्यक्षता हेतु जाते थे उन दिनों उनका बहुत से दानदाताओं से सम्पर्क होता ही था और वे स्वामी जी के महान् लक्ष्य के लिए पर्चे तथा पत्रकों के मुद्रण के लिए धन का दान देकर सहयोग करते थे। स्वामी जी इन सभाओं में निःशुल्क वितरण के लिए कुछ आध्यात्मिक साहितय मुद्रित कराते थे। यह स्वामी जी के लिए सर्वाधिक महत्वूपर्ण था। बाद में स्वामी जी के लेखों का 'माई मैग्जीन' में प्रकाशन हुआ तथा और अधिक लोग इस ओर आकृष्ट हुए और श्री पी.के. विनायगम स्वयं श्री स्वामी जी की पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए आगे आये।

सन् १९२९ के प्रारम्भ में स्वामी जी की प्रथम पुस्तक 'प्रेक्टिस ऑफ योग (भाग १)' मेसर्स गणेश एण्ड कम्पनी ने प्रकाशित की। इसके बाद स्वामी जी ने

लिखी 'प्रेक्टिस ऑफ वेदान्त' और इसे तत्काल गणेश एण्ड कम्पनी को भेज दिया गया तथा उन्होंने इसके साथ 'ए ट्रिप टू कैलाश' का प्रकाशन भी किया।

इसी बीच स्वामी परमानन्द जी स्वर्गाश्रम में स्वामी जी के साथ जुड़े। परमानन्द जी को मद्रास भेज दिया गया और इसके बाद से आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए स्वामी जी, परमानन्द जी तथा श्री पी.के. विनायगम ने मिलजुल कर काम किया।

इसके सम्बन्ध में स्वामी जी का परमानन्द जीको २९ जुलाई १९३६ को लिख गया पत्र देखिए—

"मेरे विचारों के प्रसारण के लिए श्री विनायगम जी को धन्यवाद तथा तृतीय संस्करण की भव्य प्रस्तुति के लिए श्री परमानन्द जी को धन्यवाद, यह अति सुन्दर है... अब हम इसका विभाजन करते हैं। इसका ४० प्रतिशत श्री पी.के.वी. को जाता है। ४० प्रतिशत परमानन्द जी को और २० प्रतिशत शिवा को।

स्वामी जी की प्रथम तीनों पुस्तके गणेश एण्ड कम्पनी से श्री पी.के. विनायगम ने (जिनहोंने स्वामी जी की बहुत सी पुस्तकें हिमालयन योग सीरीज नाम शीर्षक से प्रकाशित कीं) अपने अधिकार में ले लीं।

हिमालयन योग सीरीज में निम्न पुस्तकें प्रकाशित हुईं **'यौगिक होम एक्सरसाइजेज, कुण्डलिनी योग, प्रेक्टिस ऑफ वेदान्त, राजयोग, इन्सपायरिंग लैटर्स, प्रेक्टिस ऑफ योग (भाग २ और ३), स्प्रिचुअल लेसन्स (भाग १ तथा २), हाउ टू गेट वैराग्य, योगासन, साईंस ऑफ प्राणायाम, कन्वर्सेशन ऑन योग, माइंड इट्स मिस्ट्रीज एंण्ड कन्ट्रोल तथा ब्रह्मचर्य।"**

माई मैग्जीन द्वारा इनका प्रचार भी किया जाता था जिससे इन पुस्तकों की बिक्री में वृद्धि हुई तथा ये पुस्तकें देश और विदेश में प्रसिद्ध हो गयीं। श्री विनायगम एक के बाद एक पुस्तकों का प्रकाशन करते गये। इन पुस्तकों के ढेरों संस्करण निकाले गये, लेकिन फिर भी उनकी माँग सतत् बनी रहती थी तथा प्रकाशक भी उस माँग को पूरा करने के लिए उत्सुक थे। श्री विनायगम ने स्वामी जी की प्रथम जीवनी

"लाइफ एण्ड टीचिंग ऑफ शिवा" (जो श्री स्वामी परमानन्द जी ने लिखी थी) का भी प्रकाशन किया।

श्री विनायगम एवं परमानन्द जी भी स्वामी जी से ही निर्देशन प्राप्त करते थे। दिनांक २९ जुलाई १९३६ को स्वामी जी द्वारा लिखा गया पत्र उनकी पुस्तक निर्माण सम्बन्धी अद्भुत योग्यता को प्रकट करता है। पत्र इस प्रकार है—

स्वामी जी पुस्तक के अन्दर मुख पृष्ठ के बाद तथा चित्र के पहले पुस्तक के नाम के साथ एक खाली पृष्ठ लगायें। आप इसे तृतीय संस्करण में भूल गये हैं। कृपया भाग २ में इस बात का ध्यान रखें। यह एक आधुनिक तरीका है। भाग २ से सम्बन्धित विज्ञापन उत्साहवर्धक न होकर रोता हुआ है। यह अत्यन्त साधारण है। यह बात को पूर्णतः व्यक्त नहीं करता। आपने पहले योगासन, कुण्डलिनी आदि में बड़े ही सुन्दर ढंग से यही काम किया था। अभी क्यों नहीं? शायद थरमस... था। कृपया भाग २ में 'वेदान्त इन डेली लाइफ' तथा 'मेडिटेशन' ये दोनों लेख भी जोड़ें। ये दोनों अच्छे तथा व्यवहारिक हैं।

स्वामी जी सदा चाहते थे कि लोग उनके विचारों को स्वयं अपने अनुभव से ग्रहण करें। इसलिये उन्होंने एक बार कहा—

सन् १९३३ में मद्रास के प्रकाशकों ने मेरे जीवन पर लेख लिखे और उनमें मुझे अवतार कहा। मैंने उन्हें तुरन्त उत्तर दिया 'कृपया कृष्णावतार तथा भगवान् आदि से मुझे संबोधित न करें। अपने लेख को सरल रहने दें। तभी वह आकर्षक लगेगा। मेरे बारे में कदापि अतिशयोक्ति न करें अन्यथा जो सार है वह वाष्पीकृत हो जायेगा। मुझे महामण्डलेश्वर, जगत् गुरु आदि से संबोधित न करें। सत्य को रहने दें। वही प्रकाशित होगा।

निम्न अनुच्छेद अत्यधिक प्रेरक है—

मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि आप मेरी पुस्तक प्रेक्टिस ऑफ योग (भाग १, २, ३, ४, ५) को प्रकाशित करने में कठिनाई का अनुभव क्यों कर रहे हैं जबकि मैं हर बार आपको नई सामग्री प्रदान कर रहा हूँ। इसे एक श्रृंखला के रूप में प्रकाशित करें और जब तक मेरी आँखें और शरीर सही ढंग से कार्य करते रहें। इसें अनन्त रूप से चलते रहने दें।

अपनी आत्मकथा में स्वामी जी ने लिखा—

''जक तक मेरी आँखें अच्छी हैं मुझे अधिक से अधिक कार्य करने दें। जब तक मेरे पास सत्य के खोजी जनों के लिए नये सन्देश और शिक्षायें हैं मुझे कार्य करने दें। मानव मात्र की सेवा से मुझे इतना अधिक प्रेम है कि यदि मेरी आँखें भी खराब हो जायें तो भी मैं योग्य सहयोगियों तथा सचिवों की सहायता से अपना प्रकाशन का कार्य करता रहूँगा। दैवी कार्य का विकास होगा और यह समस्त जगत् में शान्ति और परमानन्द लायेगा।

अब स्वामी जी का दृढ़ रूप आता है—

भयभीत न हों। आप अगले वर्ष उत्तरकाशी जा सकते हैं। आपको मद्रास जाने की आवश्यकता नहीं है लेकिन आप काम के लिए निजबोध अथवा अमृतम को तैयार कर दें और पी.के.वी. को सूचित कर दें। वे एक अच्छे व्यक्ति हैं। अमृतम शीघ्रता से विकास कर रहा है। वह अपने काम में १२ बजे से शाम ६ बजे तक सारे संसार को भुलाकर टाइपराइटर पर काम करने में व्यस्त रहता है। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे प्रेक्टिस ऑफ योग (भाग ३ आदि) के काम को न रोकें (मुझे पूर्ण विश्वास है कि लोग इन पुस्तकों के पीछे पतंगों और तितलियों की तरह मंडरायेंगे)।

स्वामी जी इसके लिए प्रमाण भी देते हैं। उन्होंने सितम्बर १९३४ में लिखा—

पंजाब के बहुत से लोग मेरे पास आये जिनके हाथ में मेरी पुस्तकें थीं। उन पुस्तकों का प्रभाव इतना अच्छा था कि उन सभी लोगों ने पहले से ही कोई न कोई साधना प्रारम्भ कर दी थी।

स्वामी जी की अपनी स्वयं की योजनायें थीं तथा वे किसी प्रकार की आलोचना की चिन्ता नहीं करते थे। वे एक संत थे और उनका एक श्रेष्ठ लक्ष्य था। उन्हें मालूम था कि अच्छे कार्य के बीच में विरोधी बल कार्य करते ही हैं। वे इन सबकी उपेक्षा कर देते थे और अपने शिष्यों में उत्साह भरते थे। किसी ने उन्हें लिखा कि आपकी पुस्तकों में बहुत सी पुनरावृत्तियाँ हैं। उसे उन्होंने अत्यन्त सुन्दर तथा विश्वास दिलाते हुए पत्र लिखा। पत्र इस प्रकार है—

''आपका पत्र मिला—पुनरावृत्ति के सम्बन्ध में। मेरे विचार से ऐसा व्यक्ति बड़ा ही अभागा है जो ऐसा सोचता है। मैं तो उस व्यक्ति को दो रुपये भी देने को तैयार

हूँ जो मुझे ऐसा पर्चा अथवा पुस्तक दे जो मुझे कुछ नये विचार प्रदान करे। हम इस संसार को प्रसन्न नहीं कर सकते। यह संसार स्वयं पुनरावृत्ति है। गीता, उपनिषद् आदि सभी पुनरावृत्तियों से भरे हुए हैं। इससे बचना कठिन है। फिर भी अब हम पुनरावृत्तियों के प्रति जागरुक रहेंगे। कुछ वर्षों पश्चात जब हम नये संस्करण निकालेंगे तब हम प्रत्येक पुस्तक के प्रत्येक अनुच्छेद को तथा प्रत्येक पंक्ति को संशोधित करेंगे।''

बाद में एक अन्य प्रकाशक अमृतसर के श्री एम.एइरी स्वामी जी की पुस्तकों के प्रकाशन के लिए आगे आये तथा एक अन्य आश्रमवासी स्वामी योगानन्द को इस कार्य के लिए प्रशिक्षित किया गया। इन्होंने 'द सेल्फ रिएलाइजेशन सीरीज' निकाली।

स्वामी जी के प्रारम्भिक साहित्य के तीसरे महत्वपूर्ण प्रकाशक थे 'गीता प्रेस, गोरखपुर'। इन्होंने स्वामी जी की श्रेष्ठतम पुस्तक 'माइंड इट्स मिस्ट्रीज एण कन्ट्रोल' (हिन्दी में 'मन, रहस्य और निग्रह') का प्रकाशन किया। यह उन पुस्तकों में से एक है जिनकी माँग सदा बनी रहती है। यह सभी आध्यात्मिक जिज्ञासुओं की प्रिय पुस्तक है।

इसी बीच स्वामी जी ने योग के पश्चिमी जगत् के शिष्यों के लिए विशेष रूप से एक पुस्तक लिखी। इनकी संख्या दिन-प्रतिदिन शनैः शनैः बढ़ती जा रही थी और इसके साथ ही साथ योग के सर्वश्रेष्ठ व्यवहारिक गुरु के रूप में स्वामी जी की ख्याति भी फैलती जा रही थी। पश्चिमी जन अपनी आध्यात्मिक मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को गुरुदेव को पत्र द्वारा बताते रहते थे। इसलिये स्वामी जी उनसे भली भाँति परिचित थे। एक ऐसी पुस्तक की तत्काल अनिवार्यता थी जो इन समस्याओं के बारे में व्यवहृत हो। इसलिये 'प्रेक्टिकल लैसन्स इन योग' अस्तित्व में आयी। इस अद्भुत पुस्तक का प्रकाशन लाहौर के मेसर्स बनारसी दास ने किया।

लाहौर के डेली हैरल्ड ने स्वामी जी की एक अन्य पुस्तक जो सर्वाधिक प्रेरक है 'हाउ टू गेट वैराग्य' का प्रकाशन किया।

इस प्रकार स्वामी जी द्वारा लिखित दिव्य जीवन सन्देश का बहुमूल्य कोष कई प्रकाशकों के हाथों में बिखरा हुआ था। स्वामी जी को पुस्तकों द्वारा जन-जन को

लाभान्वित करने के सिवा और कुछ प्राप्त करने की इच्छा भी नहीं थी। यहाँ तक कि सन् १९४२ में जब स्वामी परमानन्द जी ने सुझाव दिया कि लाहौर में कुछ प्रकाशक रायल्टी के आधार पर उर्दू भाषा में उनकी पुस्तकें प्रकाशित करने को तैयार हैं तो स्वामी जी ने उन्हें लिखा—"आप अनुवाद के लिए चार पुस्तकें ले सकते हैं। आपको उनसे १०० प्रतियाँ हमें देने हेतु बात करने की आवश्यकता नहीं है। वे हमें दें या नहीं—हमारा लक्ष्य है पंजाब तथा दिल्ली के उर्दू जानने वाले लोगों के बीच आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार।

यहाँ तक कि जिस रायल्टी के लिए अन्य लेखक झगड़ा करते हैं उसे भी स्वामी जी ने एक नया अर्थ प्रदान किया। स्वामी जी का इसके प्रति भिन्न ही दृष्टिकोण था जो उनके जैसे संत का ही हो सकता था। स्वामीजी ने स्वामी परमानन्द जी को २२ नवम्बर १९४२ को लिखा "कृपया उन्हें गणेश पूजा का विचार बतायें, जैसे जब किसी वृक्ष पर फल लगते हैं तो उन्हें पहले भगवान् अथवा संन्यासी को अर्पित किया जाता है। ऐसा वे स्वयं के लाभ के लिए ही करते हैं क्योंकि ऐसा करने से उनकी समृद्धि बढ़ती है और उन्हें सफलता मिलती है। ऐसा ही पुस्तकों की गणेश पूजा करने से भी होगा। यदि वे ऐसा करेंगे तो प्रकाशक को समृद्धि प्राप्त होगी। स्वामी जी के लिए प्रकाशक पुस्तकें भेजें अथवा नहीं, एक ही बात थी क्योंकि उन्हें जो भी पुस्तकें मिलती थीं उन्हें वे निःशुल्क वितरित कर देते थे। लेकिन अन्तर इसमें यह था कि स्वामी जी द्वारा पुस्तकें उन्हें भेजी जाती थीं जो जिज्ञासु थे और स्वामी जी से पत्र व्यवहार करते थे और वे आश्रम द्वारा भेजी जाने वाली इन पुस्तकों का अध्ययन और अधिक ध्यानपूर्वक करते थे। जब पुस्तकों का बण्डल उनके पास आता तो उन्हें ऐसा अनुभव होता जैसे स्वामी जी स्वयं उनके घर आ गये हों। वे स्वामी जी को इस हेतु अपनी इच्छा भी व्यक्त करते थे। स्वामी जी को ऐसा लगा कि इस प्रकार वे आश्रम में आने वाले अतिथियों को पर्चे अथवा पत्रक के स्थान पर वे पुस्तकें भी निःशुल्क दे सकेंगे। इसलिये प्रकाशकों को यह सुझाव दिया गया कि वे लेखक को रायल्टी के रूप में १०० प्रतियाँ भेज दिया करें। प्रकाशकों ने भी इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। यह इन पुस्तकों के विक्रय का एक स्रोत भी था।

बाद में दिव्य जीवन संघ के न्यासियों द्वारा यह अनुभव किया गया कि स्वामी जी की सभी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए एक ही संस्थान होना चाहिए तथा इस पर संस्था का नियन्त्रण होना चाहिए तो और अधिक अच्छा होगा क्योंकि इससे स्वामी जी की पुस्तकें संरक्षित रहेंगी तथा ये संसार को और अधिक अच्छी तरह उपलब्ध करायी जा सकेंगीं। यह योजना मेजर जनरल ए.एन. शर्मा जी को बड़ी अच्छी लगी। उन्होंने लिखा—"कुछ वर्ष पूर्व मैंने एक अन्य संत के साहित्य के संरक्षण के लिए किसी आध्यात्मिक संस्था को कुछ धन दिया और इस कार्य हेतु कुछ सुझाव भी दिये। उन्होंने मेरे बताये सुझावों पर अमल किया ओर आज वह संस्थान तेजी से विकसित हो रहा है। और एक गत्यात्मक केन्द्र बन गया है। मैं इस पत्र के साथ एक चेक भेज रहा हूँ तथा मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि स्वामी जी की पुस्तकें भी उपरोक्त प्रकार से संरक्षित रहें।" और इस प्रकार शिवानन्द प्रकाशन संस्थान अस्तित्व में आया।

आनन्द कुटीर में दिनांक २९ फरवरी सन् १९३९ को प्रथम संगोष्ठी हुई। इसमें संस्थान के लक्ष्य तथा विषय पर निर्णय लिया गया जो निम्नानुसार थे—

१. श्री स्वामी शिवानन्द जी के साहित्य को सदा के लिए संरक्षित करना तथा उन्हें भविष्य में आने वाली पीढ़ी के लिए उपलब्ध कराना जिससे स्वामी जी के शक्तिशाली लेखन तथा व्यवहारिक उपदेशों से वे प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

२. पुस्तकों को न्यूनतम मूल्य पर उपलब्ध कराना।

३. श्री स्वामी शिवानन्द जी की सभी पुस्तकों के प्रकाशन के अधिकार संस्था द्वारा अपने हाथ में लेकर उनको एक ही स्रोत द्वारा जनमानस को उपलब्ध कराना।

४. संस्था के प्रकाशनों तथा अन्य पुस्तकों के विक्रय से यदि कोई लाभ प्राप्त होता है तो उसका उपयोग दिव्य जीवन संघ के लक्ष्यों और विषयों के लिए करना।

स्वामी परमानन्द जी ने संस्था द्वारा प्रकाशित करने के लिए सर्वप्रथम 'इजी स्टेप्स टू योग' को लिया। लाहौर की मर्केन्टाइल प्रेस (जहाँ दिव्य जीवन पत्रिका मुद्रित होती थी) ऋण के आधार पर इसे मुद्रित करने को तैयार हो गयी। स्वामी परमानन्द जी प्रकाशन के पूर्व प्रचार करने में बड़े प्रवीण थे। मुद्रण के पूर्व ही उनके

हाथों में ५०० पुस्तकों का आदेश था। स्वामी जी की पुस्तकों को प्रकाशित करने के पहले ही उन्होंने बिना अपना धन लगाये प्रकाशकों से प्रकाशन हेतु आपसी आदान-प्रदान के लिए समझौत किया। उनके इन प्रयासों से संस्थान अपने प्रारम्भ में ही सुदृढ़ स्थिति में आ गया और उनकी सारी पुस्तकें (जो उस समय लगभग २० थीं) एक साथ एक जगह उपलब्ध हो गयीं।

इसके बाद स्वामी जी की पुस्तक हठयोग तथा योगासन का रेखाचित्र प्रकाशन के लिए लिया गया। इनके लिए लोगों की बहुत अधिक माँग थी तथा उनकी बिक्री ने बाद में प्रकाशन के काम तथा प्रेस के ऋण चुकाने में भी सहायता की। मर्केन्टाइल प्रेस, लाहौर के स्वामी, स्वामी शिवानन्द जी तथा उनके मिशन के प्रति इतने अधिक समर्पित थे कि उन्हें अपने बिलों के भुगतान की चिन्ता ही नहीं थी। वास्तव में सन् १९४७ में भारत विभाजन के समय जब यह प्रेस दिल्ली प्रतिस्थापित हो रही थी तब भी संस्था ने इसका पूरा ऋण नहीं चुकाया था। स्वामी जी ने आग्रह किया कि संस्था को किसी भी प्रकार प्रेस के दिल्ली के कार्यालय में सारा ऋण तत्काल चुका देना चाहिए।

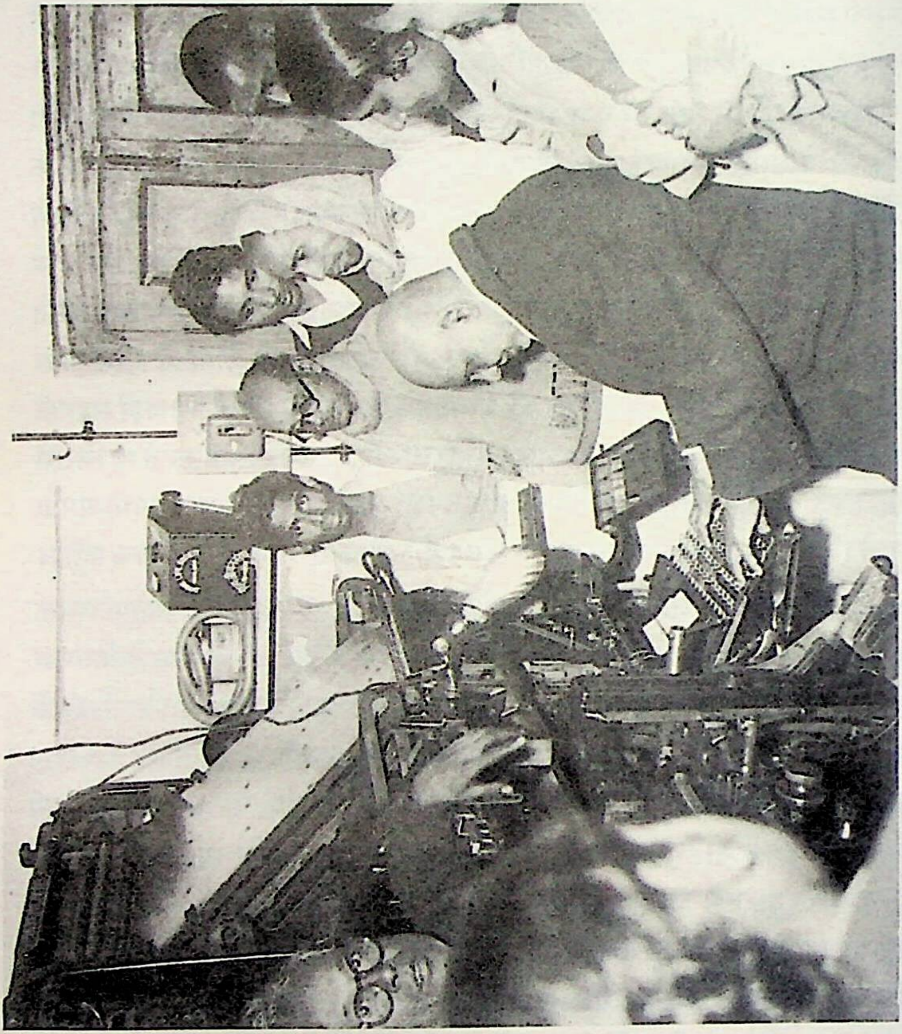
'हठयोग' पुस्तक के बाद संस्थान ने **'फिलॉसफी एण्ड मेडिटेशन ऑन ॐ'** तथा इन्सापायरिंग मैसेजेज' के प्रकाशन का कार्य हाथ में लिया। इसी अवधि में अमृतसर के श्री एम. गिरि अपना प्रेस का व्यवसाय बन्द करना चाहते थे। परमानन्द जी की इच्छा थी कि उनके पास जितनी भी पुस्तकें हैं वह पूरा संग्रह खरीद लिया जाये और यदि ऐसा किया जाता तो इसमें मूल पूँजी लगानी पड़ती क्योंकि जिस मूल पूँजी द्वारा न्यास की स्थापना की गयी थी उसके सिवा अन्य कोई धन तो था ही नहीं। सभी आश्रमवासी भिक्षा तथा अन्न क्षेत्र पर निर्भर थे। स्वामी जीने ८ फरवरी १९३९ को परमानन्द जी को लिखा "मैं आपको इस हेतु १००० रुपये की पूँजी दूँगा। मैंने राय साहब, ए.के.पी. सिन्हा, स्वामी स्वरूपानन्द जी तथा अन्य से सुझाव माँगे हैं। हम मूल पूँजी से धन लेकर शिवानन्द प्रकाशन संस्थान हेतु तभी प्रयोग कर सकते हैं जब नियम हमें अनुमति देंगे। यदि ऐसा होता है तो हम इस पूँजी का एक भाग संस्था की इस कष्टदायक परिस्थिति को दूर करने तथा संस्था की वृद्धि हेतु करेंगे।" जब नियमानुसार इसके उपयोग की अनुमति मिल गयी तो इसके द्वारा

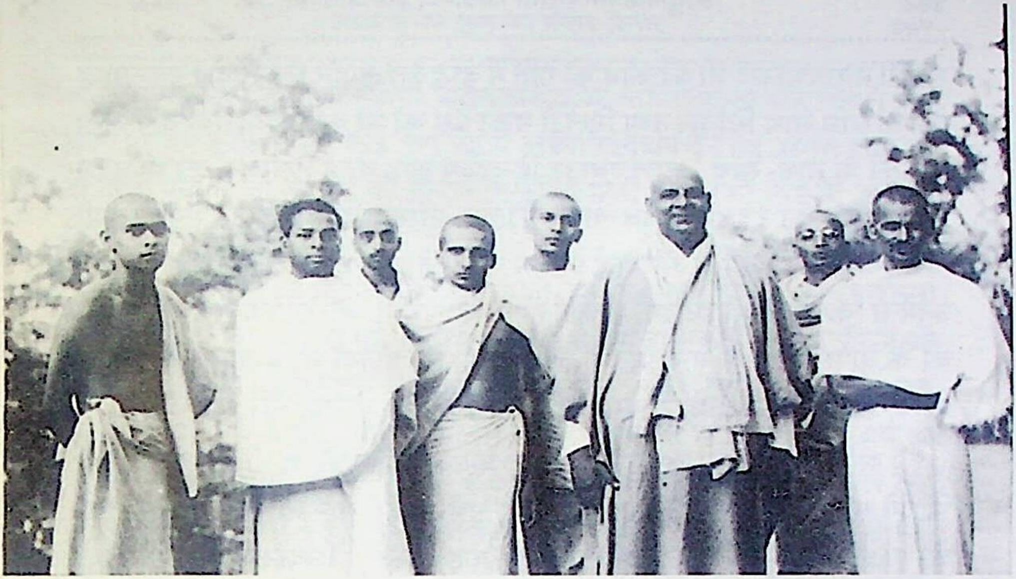
श्री एम.एइरी के यहाँ से पुस्तकों का संग्रह शिवानन्द प्रकाशन संस्थान में स्थानांतरित कर दिया गया।

स्वामी जी के लिए आर्थिक सलाहकारों के सिद्धान्तों का कोई भी उपयोग नहीं था। वे दो ही बातें जानते थे, पहली बात ज्ञान को प्रत्येक व्यक्ति के पास पहुँचना चाहिए तथा दूसरी बात जो कुछ भी उनके पास है उसे देते और देते जाना। वे बिना कुछ सोचे समझे बस दान करते जाते थे। किन्तु इससे विकसित हो रही संस्था के विकास में व्यवधान पड़ता था, और स्वामी जी का संस्था के लिए बड़ा महान् लक्ष्य था और दिन-प्रतिदिन दिव्य जीवन संघ की गतिविधियों में अधिकाधिक धन व्यय करने वाले विभाग सम्मिलित होते जा रहे थे। प्रकाशन विभाग को एक व्यवस्थित योजना की आवश्यकता थी और इस योजना का अर्थ था आय में वृद्धि तथा नियत्रित व्यय—जो कि स्वामी जी की भावना के विपरीत थे। इसलिये यहाँ सदा ही आर्थिक विषमता बनी रहती थी और स्वामी जी भी इसे प्रोत्साहित करते थे जिससे निष्काम्य सेवी कठिन श्रम मे लगे रहें और उनके मन से संन्यास भावना कभी समाप्त न हो जिससे उनका सन्देश कम से कम समय में अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचे।

इन सभी कठिनाइयों के साथ साथ हमें इस समय कागज की भी अनुपलब्धता थी क्योंकि यह द्वितीय विश्व युद्ध का समय था। इसके बाद भी संस्थान ने दिसम्बर १९४४ के पूर्व स्वामी जी की २० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित कीं। स्वामी जी के एक कर्मठ शिष्य श्री स्वामी कैवल्यानन्द जी ने कलकत्ता में शिवानन्द प्रकाशन संस्थान की शाखा स्थापित की जिसका इस सफलता में महत् योगदान रहा। स्वामी कैवल्यानन्द जी भी व्यापारिक विधियों में बड़े निपुण थे उन्होंने सारी बीसों पुस्तकें कलकत्ता शाखा में प्रकाशित करने के लिए अधिग्रहीत कर लीं और इनके कई संस्करण निकाले। इन पुस्तकों में **'श्योर वेज फार सक्सेस इन लाइफ एण्ड गॉड रिएलाइजेशन'** (**'जीवन में सफलता के रहस्य'**), टेन उपनिषद् तथा स्टोरीज फ्राम योग वशिष्ठ आदि सम्मिलित थीं।

प्रकाशन संस्थान के कार्य के दूसरे भाग ने अत्यधिक सफलता अर्जित की और शिवानन्द रजत जयन्ती के समय विशाल मात्रा में दान प्राप्त हुआ और स्वामी जी ने अपने स्वभाव के अनुरूप अधिकतम धन प्रकाशन के काम में लगा दिया। श्री







स्वामी नारायणानन्द जी को कार्य की गति में वृद्धि हेतु लाहौर भेजा गया। मर्केन्टाइल प्रेस के साथ साथ सिविल तथा मिलेट्री गजट प्रेस को भी काम दिया गया जहाँ अन्य पुस्तकों के साथ-साथ 'आल एबाउट हिन्दुइज्म एण्ड वर्ल्ड रिलीजन' का भी मुद्रण किया गया। सन् १९४६ में जब लाहौर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे भड़के उस समय स्वामी नारायणानन्द जी वहीं थे और कई प्रेसों में बहुत सी पुस्तकों का कार्य पूर्णता पर था। उनमें से किसी को भी इन दंगों में कोई हानि नहीं पहुँची, बल्कि स्वामी नारायणानन्द जी के वापस आने के बाद प्रेसों में जो पुस्तकों की प्रतियाँ थीं वे भी सुरक्षित भारत पहुँच गयीं और इस कार्य में मुसलमान लोगों ने भी सहायता की।

इसी समय कुछ पुस्तकें कलकत्ता में जनरल प्रिंटिंग प्रेस में भी मुद्रित हुईं। यहाँ भी दंगे भड़के किन्तु स्वामी जी की कृपा जो सभी जगह व्याप्त थी उसने सभी पुस्तकों की रक्षा की। मन, रहस्य और निग्रह, माइ मास्टर, शिवानन्द विजयम तथा कंसन्ट्रेशन एण्ड मेडिटेशन इसी समय मुद्रित हुईं।

हीरक जयन्ती के बाद कैलीफोर्निया की श्रीमती लिलिएन शमश १ वर्ष तक आश्रम में रहीं और उन्होंने एक ही बार में स्वामी जी को ४०,००० रुपये का चेक दिया। स्वामी जी जब चेक ले रहे थे तो बड़े ही प्रसन्न थे। उन्होंने श्रीमती शमश से कहा—"आपने मेरी सारी पाण्डुलिपियों को बचा लिया। अब मैं उन्हें तत्काल मुद्रित कराऊँगा।" ये सभी पाण्डुलिपियाँ तुरन्त भारत के विभिन्न नगरों में कई प्रेसों में छपने के लिए भेज दी गयीं।

रजत जयन्ती महोत्सव के महीनों पहले श्री स्वामी परमानन्द जी तथा श्री शिवप्रेम जी कलकत्ता गये और वहाँ उन्होंन हीरक जयन्ती स्मृति पुस्तिका जनरल प्रिंटिंग प्रेस में मुद्रित करायी। इसका स्वरूप अत्यन्त भव्य तथा कलात्मक था।

प्रकाशन संस्थान के विकास की अवधि में नामी पुस्तक विक्रेताओं द्वारा पुस्तकों की बिक्री की जाने लगी। स्वामी जी के सन्देशों को पंख लग गये और वे दूर दूर तक फैल गये।

दिव्य जीवन मिशन के महानतम संरक्षक कलकत्ता के जनरल प्रिंटिंग वर्क्स के श्री काशीराम गुप्ता जी अगले योगदान हेतु आगे आये। उन्होंने स्वामी जी की कम से कम अट्ठारह पुस्तकों के निःशुल्क मुद्रण की स्वीकृति दी। यह आश्चर्यजनक था

और स्वामी जी ने तत्काल स्वामी नारायणानन्द जी को कतकत्ता भेज दिया। ऐसे समय पर जब उनके सामने कोई ज्ञान यज्ञ में अपना योगदान देने हेतु प्रस्तुत होता था तो उनके मुख से जो आनन्द की किरणें प्रस्फुटित होती थी उनको स्पष्ट ही अनुभव किया जा सकता था।

श्री काशीराम जी की जितनी प्रशंसा की जाये वह कम होगी। उनकी तुलना ऋषि भागीरथ (जो गंगा जी को पृथ्वी पर लाये) से की जा सकती है। काशीराम जी ज्ञान गंगा को जाये। प्रति सप्ताह ऋषिकेश रेलवे स्टेशन पर ढेरों पार्सल उतरते थे। जब स्वामी जी अतिथियों को पुस्तकें देते उनके हाथों में पुस्तकें भरी रहती थीं। जब श्री काशीराम जी ने स्वामी जी की पुस्तकें बाँटने की गति के बारे में सुना तो वे बोले उन्हें बाँटने दीजिये। हमारा यह कर्तव्य है कि हम उनकी आलमारियाँ पुस्तकों से भरी रखें।

श्री नारायणानन्द जी को अति कार्यभार से मुक्त करने के लिए स्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी आये। वे प्रूफ को संशोधित करने के लिए सारे दिन और देर रात तक लगे रहते थे।

श्री काशीराम गुप्ता ही से प्रेरित होकर जनरल प्रिंटिंग वर्क्स ने स्वयं ही स्वामी जी की कुछ पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन किया। इसमें मन, रहस्य और निग्रह भी सम्मिलित है।

इसी बीच ऋषिकेश में विज्ञान प्रेस की स्थापना हुई। स्वामी जी की प्रबल इच्छा शक्ति के कारण इसकी स्थापना हुई थी और उन्होंने धीरे-धीरे सारा काम स्थानान्तरित कर दिया।

ज्ञान यज्ञ के प्रति समर्पण भाव

स्वामी जी के पास धन जिस गति से आता था उससे भी अधिक तीव्र गति से वापस चला जाता था। आश्रम में प्रतिवर्ष आर्थिक विषमता की स्थिति आती थी लेकिन स्वामी जी की इसके प्रति प्रतिक्रिया अपरिवर्तनशील रहती थी। वे कहते थे—"हम सब क्षेत्रों की ओर जायेंगे और भिक्षा पर निर्भर रहेंगे लेकिन ज्ञान यज्ञ सदा चलता रहेगा। यदि अन्य गतिविधियाँ न भी चलें तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि लोग उन्हें क्रय करने में असमर्थ होंगे तो हम इन सभी पुस्तकों को निःशुल्क

वितरित कर देंगे। यही हमारा लक्ष्य और कर्तव्य है। हम साधु हैं। हम अपना भोजन क्षेत्र से प्राप्त कर सकते हैं अथवा चार घरों में जाकर हाथ फैला कर भिक्षा माँग सकते हैं। एक साधु के लिए इतना पर्याप्त है। सन् १९४९ में न्यासियों ने निर्णय लिया कि जिनकी सेवाएँ अति आवश्यक हैं और जो स्वेच्छा से यहाँ रहना चाहते हों, उनके सिवा सभी आश्रमवासी आश्रम छोड़ दें, तथा जो यहाँ रहेंगे वे भी भिक्षा हेतु क्षेत्र जाने के लिए तैयार रहें। स्वामी जी ने कहा—"मैं पैदल नहीं जा सकता तो ताँगे से अन्न क्षेत्र जाऊँगा परन्तु नियम नहीं तोड़ूँगा। लेकिन कुछ ही दिनों में स्थिति रहस्यमय ढंग से बदल गयी और यह योजना निरस्त कर दी गयी।

आर्थिक विषमता के समय में भी स्वामी जी ने तीनों पत्रिकाओं को बन्द करना तथा यहाँ तक कि उनके आकार में कमी करने से भी इन्कार कर दिया था। पुस्तकों के मुद्रण के विषय में तो किसी को कुछ बोलने का साहस ही नहीं था। स्वामी जी का कहना था कि यदि हमारे पास पोस्ट करने के लिए धन नहीं होगा तो हम आलमारियाँ खुली रखेंगे जिससे तीर्थयात्री तथा अतिथि जो चाहेंगे वह ले जा सकेंगे। किसी भी मूल्य पर ज्ञानयज्ञ चलता रहेगा।

इसी समयावधि में मद्रास के राजा पावर प्रेस में कुछ तमिल भाषा में पुस्तकें मुद्रित हुईं। इस प्रेस को स्वामी जी की सेवा के लिए स्वामी परमानन्द जी ने स्थापित किया था।

इसके बाद आयी सम्पूर्ण भारत भ्रमंण यात्रा और इसी के साथ ही अपार धन। आर्थिक विषमता एक दुःस्वप्न हो गयी और सभी इसे शीघ्र ही भूल गये। आश्रम में कुछ लोग पुस्ताकें के सम्पादन तथा उन्हें प्रेस में भेजने के लिए दिन-रात काम करते थे। विज्ञान प्रेस के श्री देवेन्द्र विज्ञानी जी ने अपने काम करने वाले कार्यकर्ताओं की संख्या में तथा मुद्रण क्षमता में वृद्धि की जिससे वे स्वामी जी द्वारा कार्य में नित्य हो रही वृद्धि के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकें। इसी बीच एक अन्य छोटी प्रेस अस्तित्व में आयी और वहाँ भी मुद्रण हेतु पाण्डुलिपियाँ भेजी जाने लगीं।

योग वेदान्त फॉरेस्ट यूनिवर्सिटी प्रेस

(यूनिवर्सिटी शब्द को सन् १९५८ में एकाडेमी कर दिया गया)

स्वामी दयानन्द जी, स्वामी नित्यानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी तथा स्वामी शिवप्रेम जी ने आपस में मिलकर विचार किया और इस निर्णय पर पहुँचे कि संस्था

का स्वयं का प्रेस होना चाहिए। स्वामी जी के आशीर्वाद से मिश्रा प्रेस को क्रय कर लिया गया और २० सितम्बर १९५१ को इसे आश्रम में लाया गया। यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी जिसने निरन्तर चलने वाले ज्ञानयज्ञ का शुभारम्भ किया। जब स्वामी जी का स्वयं का प्रेस हो गया तो इसमें कोई सन्देह शेष न रहा कि स्वामी जी के मिशन पर ईश्वर की कृपा है। अब वे जिसे चाहें जितनी चाहें पुस्तकें देने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र थे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि प्रेस पुस्तकों की पुनः आपूर्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहेगा।

ये स्वामी दयानन्द जी थे जिन्हें यह अनुभव हुआ कि आटोमेटिक प्रिंटिंग मशीन काम को तेजी से कर सकती है। इसी समय भगवान् की कृपा हुई और एक सद्गुणी तथा साधु प्रवृत्ति के व्यक्ति श्री श्रीनिवासन (बाद में स्वामी सहजानन्द) आश्रम में आये। इस दक्षिण अफ्रीका के शिवानन्द ने स्वामी शिवानन्द जी के साथ मिलकर अद्भुत काम किया। उन्हें कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उन्होंने स्वेच्छा से मिशन के लिए यथा सम्भव काम किया। उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में दान एकत्रित किया जिससे प्रेस के लिए मर्सीडीज आटोमेटिक प्रिंटिंग मशीन, जर्मनी की एक आटोमेटिक फोल्डिंग मशीन तथा इंटर टाइप मशीन खरीदी गयी।

६ अक्तूबर १९५६ को प्रेस में मर्सीडीज आटोमेटिक प्रिंटिंग मशीन लगायी गयी तथा नवम्बर १९५६ को आटोमेटिक फोल्डिंग मशीन लगायी गयी। मानव मात्र की सेवा अधिक प्रभावकारी तरीके से की जा सके, इसके लिए एक और विभाग के मशीनीकरण की आवश्यकता थी। अभी तक कम्पोजिंग हाथों से की जाती थी और यह विधि अब पुरानी हो गयी थी तथा इससे प्रिंटिंग अच्छी नहीं होती थी। इसलिये स्वामी दयानन्द जी ने इस पर विचार किया और श्रीनिवासन जी ने उनकी इस योजना में सहायता करने का वचन दिया और फलस्वरूप ४ फरवरी १९५८ को प्रेस में अमेरिकन इंटरटाइप मशीन लगायी गयी।

अमृतसर के श्री पन्नालाल जी तथा मेंगलोर के श्री मिजर गोविन्दा पाई कुछ प्राथमिक मशीनों की खरीदी के लिए आगे आये। उस समय प्रिंटिंग मशीन को हाथों और पैरों से चलाया जाता था। इस कारण काम की गति बहुत धीमी थी। स्वामी जी ने यह सब देखा तो बड़े ही कष्ट से बोले—''ओजी, आपने जितना काम किया वह

बस यही है?'' इसके बाद प्रेस में एक और ट्रेडल लगाया गया लेकिन यह भी पैरों से ही चलाया जाता था। इसके बाद विश्व धर्मसंसद का आयोजन हुआ और इस समय आश्रम में बिजली आ गयी जिससे प्रेस को विद्युत आपूर्ति होने लगी और धीरे-धीरे सभी मशीनें बिजली से चलने लगीं।

स्वामी जी में अनन्त धैर्य तथा संगठन की असीमित शक्ति एक साथ विद्यमान थीं। वे किसी को भी महान् कर्मयोगी कहकर उसकी सब के सामने प्रशंसा कर देते थे तथा यह भी कह देते थे कि 'आपने बहुत अधिक काम किया है अब आपको विश्राम की आवश्यकता है। आप अपने कमरे से बाहर न आयें। मैं स्वयं आपके कमरे में सब कुछ पहुँचा दूँगा।' अक्सर और लगभग तुरन्त ही (अथवा अतिशीघ्र) वे उस व्यक्ति को प्रेरित करते कि वह स्वेच्छा से पुनः काम में लग जाये। अधिकतर स्वामी जी का स्वयं का उदाहरण प्रत्येक के सामने होता था। जब स्वामी जी ने स्वयं के उदाहरण द्वारा दर्शाया कि निष्काम्य सेवी के लिए कोई विश्राम नहीं है तो कोई कैसे विश्राम कर सकता था। इस प्रकार कार्यकर्ताओं पर स्वामी जी सदा दबाव बनाकर रखते थे। यह काम जिनके आध्यात्मिक विकास के लिए किया जाता था उनमें से प्रथम थे; जो पुस्तकों के उत्पादन में लगे हें और दूसरा समस्त संसार। यह बात स्वामी जी द्वारा प्रतिक्षण स्पष्ट की जाती थी। स्वामी जी के दैवी व्यवहार के कारण आश्रम में प्रेस के निष्काम्य सेवी अपने कर्तव्यों का निर्वाह संसार के अन्य प्रेस में काम करने वाले कार्यकर्ताओं की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी ढंग से तथा अधिक उत्साह से करते थे।

यहाँ तक कि वेतन प्राप्त करने वाले कर्मचारी भी उस समर्पण भावना से परिपूर्ण थे जो स्वामी जी ने उनमें अनुप्राणित की थी। वे इसे रोटी कमाने वाला काम न मानकर इसे पूर्ण लगन के साथ किया करते थे। उदाहरण के लिए नवम्बर १९५३ में कार्यकताओं ने २४ तथा २५ को दिन-रात स्वेच्छा से काम किया और स्वामी परमानन्द जी की पुस्तक **'शिवानन्द—द अपोस्टल ऑफ पीस एण्ड लव'** के मुख्य भाग को पूरा किया। उनके हृदय में भी स्वामी जी ऐसा प्रेम और समर्पण जगाने में सक्षम थे।

स्वामी जी द्वारा किसी भी काम के लिए व्यक्ति का चुनाव अपने आप में एक कला थी और प्रेस ने उनको इस कला में अद्वितीय सिद्ध किया। वे एक स्वामी को प्रबन्धक के पद पर नियुक्ति करते समय उसकी प्रबन्धन योग्यता ही नहीं वरन् यह भी देखा जाता कि वह मिशन तथा उसके विकास के लिए कितना गम्भीर है। यदि इस चुनाव में कुछ कमी रह जाती तो भी स्वामी जी इसे गम्भीरता से नहीं लेते थे। संस्था के विकास के साथ इसमें भी पूर्ति हो जाती थी। यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष प्रयोजन से कोई नया कार्य करना चाहता जिसकी सफलता संदिग्ध होती तो भी स्वामी जी उसे मना नहीं करते थे बल्कि वे तो इसे करने के लिए अपनी ओर से प्रोत्साहन देते थे, कहते थे—"मैं हूँ न, चिन्ता की कोई बात नहीं।" इससे काम करने वाले के मन में स्वामित्व की भावना आ जाती थी। वह सोचता था कि यह संस्थान मेरा है और किसी भी संस्थान की प्रगति के लिए यह भाव आवश्यक है। संस्थान का जो प्रबन्धक होता था वह प्रेस का स्वामी रहता था।

मुख्य सिद्धान्त यह था कि संस्थान का विकास होना चाहिए और संस्थान द्वारा सेवा की जानी चाहिए। इन सिद्धान्तों में जो भी दृढ़ रहता था वह प्रेस के किसी भी उत्तरदायित्व को ले सकता था, चाहे उसकी अन्य योग्यतायें कोई भी हों। स्वामी जी द्वारा स्वामी दयानन्द जी का चुनाव इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण था। उनकी प्रेस में बहुत अधिक रुचि थी। यदि उन्हें कोई अच्छी मशीन अथवा कागज मिलने के लिए दिल्ली प्लेटफार्म पर एक सप्ताह भी बिताना पड़े तो इस कार्य के लिए वे खुशी-खुशी वहाँ रुकने को तैयार थे। एक बार कोई मशीन स्थापित हो जाती तो फिर वे अपना ध्यान उस ओर लगा देते थे जिससे अन्य कोई सुधार अथवा विकास हो।

स्वामी दयानन्द जी के मन में एक फ्लैट-बेड प्रिंटिंग मशीन प्रेस में लगाने का विचार आया और इसकी खरीदी के लिए उन्होंने तुरन्त स्वयं ही पहल की और मशीन शीघ्र ही प्रेस में स्थापित हो गयी।

उस समय प्रेस में पुस्तकों की बाइंडिंग पुराने तरीके से की जाती थी और इन परिस्थितियों में पुस्तकों की सेक्शन बाइंडिंग नहीं हो पाती थी। इसलिये स्वयं स्वामी जी ने आधुनिक प्रेस तथा आश्रम के प्रेस के उत्पादन में अन्तर बताते हुए स्वामी दयानन्द जी को प्रेरित किया और अतिशीघ्र मार्टिनी थ्रेड सुईंग मशीन के लिए आर्डर

भेजा गया और यह मशीन जनवरी १९५५ में प्रेस में लगायी गयी। प्रारम्भ में प्रेस में २०० पृष्ठ की तीन पुस्तकें प्रतिमाह निकलती थीं तथा इसके साथ ही साथ आश्रम द्वारा कुछ पत्रिकायें भी निकाली जाती थीं। प्रेस में अंग्रेजी, हिन्दी तथा तमिल भाषा में पुस्तकें मुद्रित की जाती थीं।

शिक्षाओं का प्रसार

स्वामी जी की शिक्षाओं के प्रसार से सारे संसार के लोगों को योग और वेदान्त का ज्ञान प्राप्त हुआ। इनको पढ़ने के बाद वे योगाभ्यास करने लगे जिससे उनको उत्तम स्वास्थ्य, मन की शान्ति तथा संतोष की प्राप्ति होती थी। स्वामी जी को दान देना तथा सभी को अपने ज्ञान में भागीदार बनाना अत्यधिक प्रिय था। दर्शनार्थियों के एक समूह के साथ वार्तालाप करते समय स्वामी जी ने इस बात को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया।

"चाहे हमारे पास खाने को कुछ हो अथवा नहीं, मैं पूरे तीस वर्षों से पुस्तकें निःशुल्क भेज रहा हूँ। और इसके बाद भी हमारी आलमारियाँ सदा भरी रहती हैं। मैंने निःशुल्क साहित्य के साथ-साथ एक आयुर्वेदिक विभाग भी खोला है जिससे मैं निर्धन लोगों को हजारों रुपये के उत्पादन निःशुल्क भेजा करता हूँ। गृहस्थजन लेने में सुख का अनुभव करते हैं जबकि संन्यासी देने में आनन्द का अनुभव करते हैं। पुस्तकें देना, औषधियाँ देना तथा सेवा करना—ये सभी मुझे आनन्द प्रदान करते हैं, शक्ति देते हैं। मेरे लिए पुस्तकों का मुद्रण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, अन्य कार्य इसके बाद हैं। ज्ञान का यथासम्भव बृहत स्तर पर प्रसार करना यही मेरा लक्ष्य है। भवन निर्माण, जल परियोजना तथा अन्य प्रत्येक कार्य प्रतीक्षा कर सकते हैं। यह संसार पथ प्रदर्शन के लिए हमारे आश्रम और संस्था जैसे संस्थानों की ओर देख रहा है। हमें पुस्तकें और पत्रकों का प्रकाशन करते रहना चाहिए। इससे दान दाता को भी महान् लाभ प्राप्त होगा क्योंकि उसके धन द्वारा सारे संसार की सेवा की जा रही है।

स्वामी जी ने कहा जो मनुष्य आधुनिक संसार में रह रहा हो और चारों ओर से विचलनों और प्रलोभनों से घिरा हुआ हो उससे विवेक और वैराग्य की अपेक्षा रखना शायद गलत होगा। उन्होंने यह भी कहा कि जो व्यक्ति असफलता के कारण जीवन से भागा हो उसके भीतर भी वैराग्य की चिंगारी का प्रकट होना सम्भव है और

हो सकता है यही चिंगारी बाद में ज्वाला में बदल जाये। कभी-कभी यह चिंगारी प्रकट नहीं होती थी तो स्वामी जी उसे प्रज्वलित भी करते थे।

स्वामी जी द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान के बृहत प्रचार हेतु अनूठी विधि अपनाई गयी थी। उन्होंने अत्यधिक मात्रा में साहित्य दान किया इस आशा के साथ कि उनका एक भी पर्चा अथवा पुस्तक किसी विशेष मनोवैज्ञानिक क्षण में किसी व्यक्ति के हाथों में पड़ेगा और हो सकता है वह तब उसके भीतर सच्ची जिज्ञासा जगा देगी। इसीलिए वे अक्सर भक्तों को तथा जो भक्त नहीं भी थे उन्हें भी अनेक पुस्तकें भेजा करते थे और इनमें श्री विन्स्टन चर्चिल (लन्दन के प्रधानमन्त्री), राष्ट्रपति ट्रूमन (वाशिंगटन) तथा मार्शल स्टालिन (मास्को) भी सम्मिलित थे।

एक बार किसी ने कहा—"स्वामी जी, ये पुस्तकें कभी भी उन तक नहीं पहुँचेंगी।"

उन्होंने उत्तर दिया—"कोई बात नहीं। ये पुस्तकें मास्को, लन्दन, वाशिंगटन भेजी गयी हैं और वे वहाँ पहुँच जायेंगी। ये जिसे भी प्राप्त होंगी वह इन्हें खोलकर देखेगा कि इसमें क्या है और वह इन्हें पढ़ेगा।"

न्यूयार्क से एक पत्र आया जो इस प्रकार था—

आदरणीय स्वामी जी,

पिछले सप्ताह मैं एक पुरानी पुस्तकों की दुकान पर गया। वहाँ संयोगवश मेरा ध्यान एक पुस्तक 'वाइस ऑफ हिमालयाज बाई स्वामी शिवानन्द' पर गया। मैंने इसके कुछ अनुच्छेद पढ़े जिन्हें पढ़कर मैं रोमांचित हो गया और मैंने यह पुस्तक क्रय कर ली। इसने मुझे जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण प्रदान किया। आपने मेरे जीवन में जो रूपान्तरण किया उसके लिए आपका आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। अत्यन्त रहस्यमय तरीके से आपने मेरे भीतर आध्यात्मिक जीवन जीने की प्यास जागयी। आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें और मेरा पथ-प्रदर्शन करें।

यहाँ एक अन्य रुचिकर घटना दी जा रही है—

एक दिन किसी शासकीय विभाग से एक कार्यालयीन पत्र आया। इसके ऊपर उस विभाग के प्रमुख का नाम तथा पता लिखा था। स्वामी जी ने तुरन्त एक पुस्तक

ली। उस पर लिखा "ईश्वर की कृपा आप पर सदा बनी रहे। प्रेम और आनन्द के साथ शिवानन्द" और इसे उपरोक्त पते पर भेज दिया। उस व्यक्ति का नाम निःशुल्क दिव्य जीवन पत्रिका के रजिस्टर में लिख दिया गया। उस व्यक्ति को यह पुस्तक प्राप्त हो गयी और कुछ दिनों बाद दिव्य जीवन पत्रिका प्रापत हुई।

अगले माह उसे पुनः दिव्य जीवन पत्रिका प्राप्त हुई। अब उसने अपने सहयोगी से कहा—"दिव्य जीवन संघ को एक पत्र लिखो कि आप यह सब भेजने में अपना समय बरबाद न करें। मैं इन्हें पसन्द नहीं करता। यहाँ तक कि मैं उनकी ओर देखता भी नहीं हूँ।"

जब यह पत्र स्वामी जी को मिला तो वे बोले—"वह नहीं चाहते तो ठीक है उनका नाम निःशुल्क पत्रिका के रजिस्टर में से काट दें। हम किसी पर कोई बात थ़ोपना नहीं चाहते।" ऐसा लग रहा था कि बात यहीं समाप्त हो गयी लेकिन नहीं, दो वर्ष बाद पुनः उसी व्यक्ति का पत्र आया। वह इस प्रकार था—

"दो वर्ष पूर्व मुझे आपके द्वारा भेजी हुई एक पुस्तक मिली थी। भगवान् ही जाने आपको मेरा नाम और पता कहाँ से मिला। उस समय मैं ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित था और मेरा बड़ा मान-सम्मान था। मैं इतना अधिक अभिमानी था कि मैंने उसे उठाकर कचरे के डिब्बे में फेंक दिया। कुछ दिनों बाद मेरी नौकरी चली गयी, मेरा धन तथा सब कुछ समाप्त हो गया। मैं बहुत हताश होकर एक दिन अपने अध्ययन कक्ष में बैठा हुआ था। मेरे मन में आत्महंत्या का विचार आया। अचानक मैंने अलमारी की ओर देखा जहाँ पर एक पुस्तक 'श्योर वेज फार सक्सेस इन लाइफ एण्ड गॉड रिएलाइजेशन' (हिन्दी में 'जीवन में सफलता के रहस्य) पर मेरी दृष्टि टिक गयी। मैंने लगभग यान्त्रिक रूप से उस पुस्तक को निकाल लिया और एक पृष्ठ खोला। वहाँ लिखा था "कभी निराश न हों।" मुझे स्मरण हो आया कि दो वर्ष पूर्व आपने यह पुस्तक मुझे भेजी थी और इसे मैंने रद्दी कागज के डिब्बे में पटक दिया था। मेरे नौकर ने जब इसे साफ किया तो उसे लगा कि शायद मैंने गलती से इसे फेंक दिया होगा इसलिये उसने इसे साफ करके मुझे बिना बताये अलमारी में रख दिया। अतः मैं उसका भी आभारी हूँ तथा आपका भी। इस पुस्तक ने मेरे जीवन की रक्षा की। उस व्यक्ति ने अपने बचे जीवन को सफल बनाया।

यह स्वामी जी की विधि थी। स्वामी जी पुस्तकें, पत्रिकायें तथा पर्चे प्राप्त करने वाले हजारों व्यक्तियों में से कुछ ही इस प्रकार उनका उपयोग करते थे, लेकिन कहीं कभी किसी के हृदय में सहानुभूति का तंतु जुड़ जाये इसलिये स्वामी जी ऐसा करते थे।

सबको बड़ा आश्चर्य होता था कि स्वामी जी दिव्य जीवन संघ के प्रबन्धन, आश्रम को चलाँने तथा शिष्यों को प्रशिक्षण देने में इतने व्यस्त रहते थे तो उन्हें लिखने के लिए समय कैसे मिलता है? उनमें से कुछ ने स्वयं स्वामी जी से यही प्रश्न किया, स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि उनकी सफलता का राज है नियमितता। वे बोले—''मैं प्रतिदिन कुछ समय तक अवश्य ही लेखन करता हूँ। चाहे कितने भी अन्य कार्य हों मैं इसकी कभी उपेक्षा नहीं करता, मैं पिछले चालीस वर्षों से ऐसा ही कर रहा हूँ। स्वामी जी मध्याह्न में लगभग १२ बजे भोजन हेतु जाते थे। इसके बाद वे थोड़ा विश्राम करते और पुनः लिखने बैठ जाते थे। स्वामी जी की ढेरों पुस्तकों के पीछे यही रहस्य था। वे अपने मस्तिष्क के कोष को कभी भी खोल सकते थे और बन्द कर सकते थे। जब लिखने का समय प्रारम्भ होता उनके भीतर से प्रेरक विचारों का प्रवाह प्रारम्भ हो जाता और जब यंह समय समाप्त हो जाता तो उनका मन अन्य सेवा कार्यों में लग जाता था। यह कार्य इतनी सरलता से होता था कि सभी देखकर आश्चर्यचकित हो जाते थे।

स्वामी जी लेखकों को कुछ व्यवहारिक निर्देश भी देते थे। वे बताते थे कि आप सभी को अपने विचारों को लिखने के लिए एक पुस्तिका रखनी चाहिए। इसमें सर्वप्रथम आपको वे सभी नयीं बातें लिख लेनी चाहिये जो आपने कक्षा में अभी सीखी हैं। इसके पश्चात इसके समानान्तर जो विचार आपके मन में आते हैं अथवा कक्षा में अन्य लोगों द्वारा व्यक्त विचारों से जो विचार आपके मन में उत्पन्न होते हैं उन्हें लिख लें। इनसे आपको विशेष लाभ प्राप्त होगा। सबसे पहले तो आपको कुछ अच्छे विचार सुनने को मिलेंगे। उसके बाद आप उनके बारे में सोचते रहेंगे और ये आपमें कुछ अन्य विचारों को जन्म देंगे। जब आप उन्हें लिखते जायेंगे तो वे धीरे-धीरे बढ़ते जायेंगे। यह आपकी आदत बन जायेगी। आपको सदा उत्कृष्ट

विचारों में ही डूबना चाहिए। फिर यदि इसे नीचे आने हेतु आमन्त्रित भी किया जायेगा तो यह नीचे आना अस्वीकार कर देगा। यह है श्रवण, मनन, निदिध्यासन।

शारीरिक, मानसिक तथा भौतिक कल्याण

स्वामी जी इस बात से पूर्ण सहमत थे कि खाली पेट और नंगे बदन किसी को धर्म-पालन के लिए जोर नहीं दिया जा सकता। इसलिये स्वामी जी ने विचार किया कि आध्यात्मिक जागरण हेतु प्रथम अनिवार्य आवश्यकता है मनुष्य का शरीरिक, मानसिक तथा नैतिक कल्याण और इसी को उन्होंने अपना लक्ष्य बनाया। मान लीजिए, कोई दाँत के दर्द से पीड़ित है, वह कहीं पर प्रेरक प्रवचन सुनता हे तो प्रवचन की समाप्ति पर उसका पहला प्रश्न यह होगा कि अपने सर्वशक्तिमान ईश्वर के नाम पर कृपा कर मुझे यह बताने की कृपा करें कि मेरे दाँत का दर्द कैसे ठीक होगा। स्वामी जी की पुस्तकें सरलता से समझने योग्य, निर्देशक और पथ-प्रदर्शक थीं। किसी भी विषय के बारे में स्वामी जी का ज्ञान श्रेष्ठ तथा उच्च विश्वज्ञान का कोष था तथा उनके लेखन में महत्वपूर्ण सूचनाओं, व्यवहारिक निर्देशों तथा प्रेरणा का सार था। और इन सबका सम्मिलित परिणाम था कि 'जीवन में सफलता के रहस्य, विद्यार्थी जीवन में सफलता, स्त्री धर्म, घर का डाक्टर, योग इन डेली लाइफ, वेदान्त इन डेली लाइफ, एसेंस ऑफ गीता इन पोएम्स, इन्सपायरिंग मैसेजेस, मन, रहस्य और निग्रह, इजी स्टेप्स टू योगा' आदि कई प्रकार की पुस्तकें स्वामी जी ने लिखीं। उनकी प्रत्येक पुस्तक की एक निराली ही विशेषता थी तथा यह भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों को रुचिकर भी लगती थी तथा यह सभी प्रकार के लोगों के अनुकूल भी होती थी।

अच्छा स्वास्थ्य तथा सुदृढ़ शरीर किसी भी कार्य को करने हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस तथ्य के प्रति सजग रहते हुए स्वामी जी ने एक बड़ी ही व्यवहारिक तथा उपरोक्त प्रयोजन में सहायक पुस्तक निकाली 'योगासन' और उन्होंने यह भी बताया कि प्रत्येक का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह स्वास्थ्य अच्छा रखे और बलवान शरीर को प्राप्त करे। चाहे वह सांसारिक जीवन बिताये अथवा आध्यात्मिक साधना करे। सभी कार्यों की सफलता का मूल आधार है उत्तम स्वास्थ्य। तीन अन्य पुस्तकों **ब्रह्मचर्य साधना**, हठयोग तथा **यौगिक होम एक्सरराइजेज** ने लोगों में

और विशेष रूप से विद्यार्थियों में स्वास्थ्य के प्रति जाग्रति लायी। अभी तक आसन, प्राणायाम आदि पातंजलि महर्षि के अष्टांग योग के अंगों के रूप में जाने जाते थे। हमें स्वामी जी ने अपनी पुस्तकों द्वारा जिस बुद्धिमानी से जन मानस को प्रभावित किया उसके लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहिए क्योंकि इसके कारण आसन तथा उसके समान अन्य व्यायामों को उत्तम स्वास्थ्य तथा निरोग शरीर की प्राप्ति के लिए सुरक्षित तथा सुनिश्चित साधन माना जाने लगा और यह समझा जाने लगा कि ये मात्र भस्म रमाने वाले जटाजूट रखने वाले योगी के लिए ही नहीं है वरन् ये गाँवों, कस्बों तथा शहरों के सभी युवाओं और वृद्धजनों के लिए भी समान रूप से लाभदायक है। ऊपर बतायी गयी पुस्तकों में से **'घर का डाक्टर'** का मुख्य ध्येय था देशवासियों के स्वास्थ्य तथा शक्ति में वृद्धि तथा संरक्षण।

स्वामी जी ने अपनी अधिकांश पुस्तकों में मानसिक शक्तियों तथा नैतिक विचारों की संस्कृति के उचित प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया है। उनकी पुस्तकें **'मन—रहस्य और निग्रह', 'योगासन' तथा 'जीवन में सफलता के रहस्य'** में इस विषय पर विशेष बल दिया गया है। स्वामी जी की पुस्तकों को पढ़कर एक पाठक ने लिखा कि मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि स्वामी जी की तीन पुस्तकें **'मन, रहस्य और निग्रह', 'जीवन में सफलता के रहस्य'** और **'प्रेक्टिस ऑफ भक्तियोग'** श्रेष्ठ पुस्तकें हैं। इनकी उपयोगिता की तुलना इनके बराबर सोने से की जाये तो ये उनसे अधिक भारी होंगी और इन्हें सभी प्रकार के जिज्ञासुओं को चाहे वे प्रसिद्धि, धन अथवा भगवद्साक्षातकार, किसी के लिए भी यत्नशील हों, अवश्य ही पढ़ना चाहिए।

स्वामी जी की पुस्तकों में आध्यात्मिक भाव प्रत्येक जगह पर स्पष्ट ही दिखायी देता था। यह उनके छोटे से पत्रक से लेकर बड़ी से बड़ी पुस्तक में अपरिवर्तनीय रूप से विद्यमान था।

स्वामी जी ने आत्म-साक्षात्कार की परम्परागत चार प्रमुख विधियों को लिया और उन्हें विस्तृत रूप से किन्तु सरल रूप से समझाया।

ये चारों मार्ग हमारे प्राचीन ऋषियों ने गहन अन्वेषण द्वारा मानव मात्र के लिए खोजे थे। ये सभी कालों में उपयोगी हैं। स्वामी जी की **कर्मयोग साधना, प्रेक्टिस**

ऑफ भक्तियोग, प्रेक्टिस ऑफ वेदान्त, राजयोग तथा **कुण्डलिनी योग** ऐसी पुस्तकें हैं जिनका वर्तमान आधुनिक संसार में स्थाई स्थान है तथा वे निश्चित रूप से आगामी पीढ़ियों का भी पथ-प्रदर्शन करती रहेंगी। उनकी प्रत्येक पुस्तक आत्म-साक्षात्कार के चारों मार्गों में किसी एक पर सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान करती है। स्वामी जी ने इन्हें इतने परिश्रम से लिखा है कि यह जिज्ञासु को उस विशेष योग की साधना हेतु आवश्यक प्रत्येक बात को प्रारम्भ से अन्त तक बतलाती है। उसे साधना हेतु किसी अन्य पुस्तक का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं रहती और वह इसी पुस्तक से पूर्ण दृढ़ संकल्प से साधना कर सकता है। वास्तव में स्वामी जी की प्रत्येक पुस्तक एक पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें उस विषय के मूल तथ्य तथा स्वामी जी के उस क्षेत्र में स्वयं के अनुभव का सार संनिहित था (जो कि अधिक महत्वपूर्ण है)। इनमें स्वामी जी के अनुभवों को, सुझावों, बहुमूल्य संकेतों तथा व्यवहारिक रूप से सहायक निर्देशों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

आत्म-साक्षात्कार की चारों विधियों के बारे में क्रमानुसार लिखने के बाद स्वामी जी ने बाद में उनमें से प्रत्येक के बारे में थोड़ा अधिक विस्तारपूर्वक तथा नवीन दृष्टिकोण से मुख्य पुस्तक की पूरक पुस्तक भी लिखी है। जैसे प्रेक्टिस ऑफ वेदान्त की पूरक पुस्तक है, **वेदान्त इन डेली लाइफ तथा डायलाग्स फ्राम उपनिषद्, प्रेक्टिस ऑफ भक्तियोग** की पूरक है, **भक्ति एण्ड संकीर्तन** तथा **इन्सपायरिंग सांग्स एण्ड कीर्तन**। राजयोग के लिए हठयोग तथा प्राणायाम साधना जोड़ी गयी है। कर्म योग साधना की पूरक है, **योग इन डेली लाइफ** इसमें यह बताया गया है कि संसार में विभिन्न कर्तव्यों का पालन करते हुए अन्य गतिविधियों के साथ-साथ ईश्वर के भाव को कैसे बनाये रखा जाये।

साधना के बारे में पुस्तक के रूप में लिखित उपदेश देने के बाद स्वामी जी ने हिन्दुत्व के तीनों आधारों उपनिषद्, श्रीमद्‌भगवद्‌गीता तथा ब्रह्मसूत्र को लिया। इन विषयों को लेने से स्वामी जी का भाव यह था कि मात्र विद्वान् और पण्डित ही नहीं, सामान्यजन भी इन धर्म ग्रन्थों को समझ सकें।

इसके बाद स्वामी जी ने भारतीय संस्कृति के एक अन्य मुख्य ग्रन्थ पुराणों को लिया। स्वामी जी ने 'भगवान् श्रीकृष्ण' पुस्तक में श्रीमद्‌भागवत' की मुख्य शिक्षा

तथा भगवान् और उद्धव के अद्भुत वार्तालाप के सार को बड़ी ही सुन्दरता से वर्णित किया है। इसमें भागवत के भाव को सरल बोलचाल की भाषा में समझाया गया है। महर्षि वाल्मीकि की अमर कृति **'रामायण—ऐसेन्स ऑफ रामायण'** में पुनर्जीवित हो उठी है तथा यह पाठक को प्रेरणा देती है और उसका आत्मोत्थान करती है। **'स्टोरीज फ्राम महाभारत'** में इस पवित्र ग्रन्थ की श्रेष्ठ दार्शनिक तथा नैतिक शिक्षायें संनिहित हैं और यह साथ ही साथ महान् योद्धाओं के वीरतापूर्ण जीवन, उनके अति मानवीय कृत्यों, अविस्मरणीय धैर्य, आत्म त्याग, साहस तथा राजभक्ति के बारे में बतलाती है।

स्वामी जी ने वेदों, श्रुतियों, पुराणों तथा सभी धर्मों के ग्रन्थों के सार को एकत्र किया और इसे इस पृथ्वी पर प्रत्येक के उपयोग हेतु प्रस्तुत किया। चुने हुए संस्कृत के स्तोत्रों को संकलित करके स्तोत्र रत्न माला के रूप में प्रकाशित किया। श्री शंकराचार्य जी की आनन्द लहरी की व्याख्या तथा **सेलेक्टेड स्टोरीज फ्राम द योग वाशिष्ठ** नामक पुस्तक इस महान् विचारोत्तेजक शास्त्र के दर्शन को बतलाती है। स्वामी जी ने हिन्दू दर्शन के प्रायः सभी मुख्य रूपों, हिन्दू शास्त्रों तथा चारों मुख्य साधनाओं को सम्मिलित किया है।

शिवानन्द साहित्य शोध संस्थान

शिवानन्द साहित्य की मात्रा तथा सम्पत्ति ने सभी की अपेक्षाओं का अतिक्रमण कर दिया था। स्वामी जी का हाथ अधैर्यवान था और यह देने हेतु प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। यदि किसी भक्त का कुटीर बनवाने हेतु दान का प्रस्ताव आता तो स्वामी जी कहते कि उनसे कहो तुरन्त धन भेज दें। जब भी कोई अच्छा विचार मन में उत्पन्न हो उसे तुरन्त पूर्ण करना चाहिए। हमें नहीं मालूम कि यह शैतान मस्तिष्क अगले क्षण क्या करेगा। जब आप कुछ दान करना चाहते हो तो उसे उसी क्षण दे दें। यही स्वामी जी के जीवन तथा उपलब्धियों का सार था और यही उनकी सफलता, प्रसिद्धि तथा देवत्व का रहस्य था। लेकिन साहित्य के विषय में इसने एक विचित्र स्थिति उत्पन्न कर दी थी। जब भी स्वामी जी के मन में कोई असाधारण विचार आता (इस विचार के आने के बाद पूर्व के सभी विचार साधारण थे) वे सोचते स्वयं उनके शब्दों में ''इसे इस दुनियाँ के सात चक्कर लगाने दो।'' और यह

विचार तुरन्त सभी पत्रिकाओं तथा सभी समाचार पत्रों में (जो उनके लेख प्रकाशित करते थे) भेजा जाता। और कहीं यह सामग्री गुम न हो जाये इसलिये इसे किसी भी पुस्तक में जो उस समय प्रेस में मुद्रित हो रही होती, जोड़ दिया जाता था। ऐसे बहुत से लेख पुस्तकों के प्रारम्भ अथवा अन्त में जोड़े गये थे जो उन पुस्तकों के विषय से सम्बन्ध नहीं रखते थे। एक आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिए वे प्रेरणाप्रद तथा स्वागत के योग्य थे चाहे उस पुस्तक का शीर्षक कुछ भी हो। लेकिन वास्तव में इस सामग्री को कहीं और स्थान मिलना चाहिए था।

इसलिये बहुत सी पुस्तकों को एकत्रित करके उनका सम्पादन किया गया जिससे स्वामी जी की पुस्तकों को अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखा जाये और भिन्न-भिन्न लोगों के लाभार्थ उनकी व्याख्या की जाये। इसलिये स्वामी जी के बहत्तरवें जन्म दिन पर ८ सितम्बर १९५८ को शिवानन्द साहित्य शोध संस्थान की स्थापना हुई। इसकी घोषणा इस प्रकार की गयी।

"स्वामी शिवानन्द जी ने इस संसार को जितना आध्यात्मिक साहित्य दिया उतना किसी दार्शनिक संत ने नहीं दिया होगा। उनकी पुस्तकों ने (जो संख्या में लगभग ३०० होंगी)। एक भगवद्साक्षात्कार प्राप्त आत्मा का ज्ञान सभी को प्रदान किया।

स्वामी जी के लेखन की यह विशिष्टता थी कि उन्होंने प्रत्येक जिज्ञासु को उसकी बुद्धि, हृदय तथा हाथों का सामंजस्य करते हुए व्यक्तित्व के विकास पर बल दिया तथा उसे उसकी योग्यता के अनुरूप मार्ग चुनने की स्वतन्त्रता प्रदान की। श्री स्वामी जी ने ईश्वर तक पहुँचने के विभिन्न मार्गों को अनावृत्त किया तथा उन्हें अपने आत्म-साक्षात्कार के प्रकाश से ज्योतित कर दिया।

आज शिवानन्द साहित्य एक ज्ञान के महासागर के रूप में विकसित हो गया है। इसलिये श्री स्वामी जी के दर्शन तथा शिक्षाओं के स्पष्ट विवरण के दृष्टिकोण से इसमें शोध की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है।

इस संस्थान की सबसे बड़ी पुस्तक थी 'साधना'। इसमें स्वामी जी की पुस्तकों में बतायी गयी साधनायें संकलित की गयी हैं।

स्वामी जी की पुस्तकों का अनुवाद

सन् १९३९ के प्रारम्भ में ही स्वामी जी में श्रद्धा रखने वाले कई शिष्य उनकी पुस्तकों के विभिन्न भारतीय भाषाओं जैसे हिन्दी, मराठी, तेलगू, तमिल, मलयालम, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, गुजराती, असमी तथा गुरुमुखी में अनुवाद करने के लिए आगे आये।

हालाँकि पूर्व में सन् १९३३ के प्रारम्भ में स्वामी जी की कुछ पुस्तकों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद किया था—जिनेवा के श्री जीन हर्बट ने जर्मनी तथा फ्रेंच भाषा में कुछ पुस्तकों का अनुवाद किया और दिव्य जीवन संघ की लेटविया स्थित शाखाओं के कर्मठ तथा समर्पित सदस्यों ने कुछ पुस्तकों का अनुवाद करके स्वयं के अध्ययन हेतु बहुत सी प्रतियाँ तैयार कीं। इस शाखा के प्रमुख योगीराज श्री हैरी डिकमैन थे।

सन् १९५३ में स्वामी परमानन्द जी स्वामी जी को विश्व भ्रमण यात्रा पर ले जाना चाहते थे। इसलिये एक पूर्वानुमानित कार्यक्रम की घोषणा एक पुस्तक में प्रकाशित की गयी थी। इसमें सन् १९५० में होने वाली भारत भ्रमण यात्रा को चित्रों द्वारा बताया गया था। आश्रम में इस यात्रा हेतु संसार भर से आमन्त्रण पत्र आ रहे थे। इस यात्रा के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने के उद्देश्य से स्वामी परमानन्द जी ने स्वामी जी की कुछ पुस्तकों का विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करके प्रकाशित करने का सुझाव दिया। इसके लिए प्रकाशक बड़े उत्साह से आगे आये और इस समय स्पेनिश, डेनिश, फ्रेंच, इन्डोनेशियन, चीनी, जापानी, रशियन, यूगोस्लावियन तथा चेकोस्लावियन भाषाओं में पुस्तकों का अनुवाद किया गया।

स्वामी जी की अस्वस्थता को देखते हुए विश्व भ्रमण यात्रा स्थगित कर दी गयी परन्तु उनकी शिक्षायें वास्तव में सारे संसार में गयीं।

श्री शिवानन्द साहित्य प्रचार समिति

अनुवादक तथा जो प्रकाशन की गारंटी लेते थे वे अपनी रुचि के अनुसार स्वयं ही पुस्तकों का चुनाव करते थे और उनका प्रकाशन करते थे। जो भी इच्छा प्रकट करता था स्वामी जी उसे अनुवाद करने की अनुमति दे देते थे। अतः इस कार्य को

व्यवस्थित रूप से करने के लिए सन् १९५९ में श्री शिवानन्द साहित्य प्रचार समिति का गठन किया गया।

स्वामी जी के ७३वें जन्म दिन ८ सितम्बर सन् १९५९ के बाद समिति के सदस्य शिवानन्द नगर में एकत्रित हुए तथा सभी ने मिलकर इस कार्य हेतु नियमों का प्रारूप बनाया तथा इस योजना के अन्तरगत सर्वप्रथम प्रकाशित होने वाली पुस्तकों का चयन किया गया। यह भी निर्णय लिया गया कि ये पुस्तकें सभी भाषाओं में मुद्रित होंगी और इनका विमोचन २६ जनवरी (गणतन्त्र दिवस) अथवा गुरु पूर्णिमा को किया जायेगा।

पत्रिकायें

सभी प्रकाशनों में स्वामी जी को पत्रिका प्रकाशित करना सर्वाधिक प्रिय था। इसके पीछे एक बड़ा ही योग्य कारण था। वह था कि पुस्तकें तो कुछ समय तक संग्रह में रह जाती हैं लेकिन पत्रिका तुरन्त भेज दी जाती है। पत्रिका द्वारा एक ही समय में बृहत पाठक वर्ग तक पहुँचा जा सकता है और प्राप्त करने वाला भी इसे (समाचार पत्र पढ़ने की आदत के कारण) एक ही बार में पूरा पढ़ लेता है। जब पुस्तक पढ़ने के बारे में उसकी सोच यह रहती है कि एक दिन रुक कर पढ़ लेंगे। इसी कारण स्वामी जी ने अपने चिकित्सकीय कार्य के प्रारम्भिक दिनों से ही **एम्ब्रोसिया** पत्रिका निकालना प्रारम्भ की थी। सभी लेखों को संकलित करके एक पुस्तक के स्वरूप में प्रकाशित करने से पाठकों को अधिक लाभ भी प्राप्त हुआ और इसे अच्छी प्रसिद्धि भी प्राप्त हुई।

पत्रिकाओं में से स्वामी जी को साप्ताहिक पत्रिका अधिक प्रिय थी। वे ऐसा अनुभव करते थे कि यदि दुष्ट शक्तियों का उन्मूलन करना है तो आध्यात्मिक विचारों का आक्रमण निरन्तर होता रहना चाहिए। इसी कारण उन्होंने स्वर्गाश्रम के दिनों में भी मेरठ के भक्तों को एक साप्ताहिक पत्रिका स्वधर्म निकालने की प्रेरणा दी तथा स्वामी जी स्वयं इसके सम्पादक थे। इसका प्रथम अंक जून १९३५ में प्रकाशित हुआ। बाद में उन्होंने एक अन्य पत्रिका का भी सम्पादन किया जिसका नाम था संकीर्तन और इसे भी मेरठ के भक्तों ने ही प्रकाशित किया था।

दिव्य जीवन संघ के आरम्भ के दो वर्षों के भीतर ही दिव्य जीवन पत्रिका अस्तित्व में आयी जबकि इस समय संस्था स्वयं ही शैशवावस्था में थी और इसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। सन् १९३८ में इसका प्रथम अंक प्रकाशित हुआ।

पत्रिका के प्रथम अंक में स्वामी जी ने निम्न सन्देश दिया। यह उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है—वर्तमान समय में संसार में आध्यात्मिक पत्रिकाओं की बड़ी कमी है। संसार को आज उच्च श्रेणी की पत्रिकाओं की आवश्यकता है और इनके द्वारा ही आध्यात्मिक विचारों का प्रसारण हो सकता है। आज लोगों में आध्यात्मिक विचारों तथा उच्च आत्माओं से सम्पर्क की प्यास है। भौतिक संसार में लोग भी धन और शक्ति से थक चुके हैं, उन्हें वहाँ भी शान्ति नहीं मिलती। इस कारण शनैः शनैः उनका ध्यान ईश्वर के प्रश्न तथा महात्माओं की खोज की ओर जा रहा है।

दिव्य जीवन पत्रिका लाहौर से प्रकाशित होती थी। पहले स्वामी परमानन्द जी तथा बाद में निजबोध जी ने इसका मुद्रण लाहौर के मर्केन्टाइल प्रेस में कराया। जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे होने लगे तो यह निर्णय लिया गया कि इसे पाकिस्तान के सिवा कहीं और से प्रकाशित किया जाये और अब इसे जनरल प्रिंटिंग प्रेस कलकत्ता में स्थानान्तरित कर दिया गया और यह अप्रैल १९४८ से १९५४ तक यहाँ से प्रकाशित होती रही। इसके बाद इसके प्रकाशन का कार्यभार शिवानन्द प्रकाशन संस्थान, ऋषिकेश द्वारा ले लिया गया और स्वामी जी इसके प्रथम सम्पादक थे।

इस पत्रिका द्वारा लम्बे समय से जिसकी आवश्यकता थी उसकी पूर्ति हो गयी। संस्थान में तेजी से हो रहे विकास के कारण स्वामी जी ने अनुभव किया कि पत्रक वितरण का पुराना तरीका पर्याप्त नहीं है। जो भी उनके सम्पर्क में आते हैं उन्हें नियमित रूप से कुछ न कुछ अवश्य भेजा जाना चाहिए तथा यह सामग्री सारभूत होनी चाहिए। अब आश्रम में आने वाले अतिथियों को पत्रक के स्थान पर पत्रिका की एक प्रति दी जाने लगी।

इसके साथ ही साथ संस्था के सदस्यों को संस्था, शाखाओं अथवा व्यक्तिगत रूप से भक्तगण जो निःशुल्क साहित्य तथा पर्चे आदि प्रकाशित करते थे उनके बण्डल भी भेजे जाते थे। सन् १९४९ में इसे दिव्य जीवन सदस्य परिशिष्ट में बदल दिया गया और अप्रैल १९५० में इसे ज्ञान प्रकाश का नाम दिया गया। इस परिशिष्ट

का प्रथम अंक १९४९ में प्रकाशित हुआ तथा यह संस्था के सभी सदस्यों तथा जिन्होंने इसके लिए माँग की थी उन्हें भेजा गया।

इस सदस्यता परिशिष्ट के लिए निष्काम्य सेवियों का उत्साह बहुत अधिक था और इसने अन्य पत्रिकाओं के प्रवेश हेतु मार्ग खोला। स्वामी जी ने ८ सितम्बर १९४९ को दिव्य जीवन अरण्य विश्वविद्यालय साप्ताहिक निकालना प्रारम्भ किया (इसका नाम ३ अगस्त १९५० से योग वेदान्त अरण्य विश्वविद्यालय साप्ताहिक कर दिया तथा सितम्बर १९५८ से इसमें विश्वविद्यालय शब्द हटाकर एकाडेमी शब्द जोड़ दिया गया।) कुछ माह पश्चात् इसका मुद्रण मसूरी में होने लगा। इसके बाद इसका मुद्रण देहरादून में होने लगा। विज्ञान् प्रेस ऋषिकेश की स्थापना के बाद यह कार्य वहाँ होने लगा। योग वेदान्त अरण्य एकाडेमी प्रेस की स्थापना के बाद यह आश्रम में ही मुद्रित और प्रकाशित होने लगी।

स्वामी जी चाहते थे कि सभी के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहे। इसलिये उन्होंने एक स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्रिका हैल्थ एण्ड लाँग लाइफ प्रारम्भ की। इसका प्रथम अंक स्वामी जी के जन्म दिवस ८ सितम्बर १९५१ को हुआ।

दिव्य जीवन पत्रिका में प्रारम्भ में एक भाग हिन्दी का होता था। युद्ध के दिनों में कागज की न्यूनता होने के कारण इसका क्रम टूट गया और स्वामी जी को एक हिन्दी पत्रिका की आवश्यकता का अनुभव हुआ। जुलाई १९५१ से एक हिन्दी पत्रिका योग वेदान्त प्रारम्भ की गयी। ८ सितम्बर १९५१ से एक स्वास्थ्य पत्रिका हिन्दी में प्रारम्भ की गयी जिसका नाम था **आरोग्य जीवन**। बाद में इसे योग वेदान्त के साथ संयुक्त कर दिया गया।

अब स्वामी जी कुछ संतुष्ट थे।

दिव्य जीवन की शाखाओं को उचित प्रसिद्धि प्रदान करने के लिए १५ जनवरी सन् १९५२ में शाखा समाचार पत्र प्रारम्भ किया गया। ये वे पत्रिकायें थीं जो मुख्यालय से प्रकाशित की जाती थीं। ऐसी अनेक शाखायें थीं जो अपनी स्वयं की पत्रिकाओं का प्रकाशन करती थीं। इनमें से कुछ प्रमुख पत्रिकायें निम्न हैं—डा. अध्वर्यो के बृहत गुजरात दिव्य मण्डल द्वारा गुजराती पत्रिका, श्री स्वामी शिवानन्द सहजानन्द डर्बन (दक्षिणी अफ्रीका) द्वारा प्रकाशित पाथ टू गॉड रिएलाइजेशन, श्री

शिवानन्द मार्गरीटा के यूरोपियन दिव्य जीवन संघ द्वारा फ्रेंच में प्रकाशित पत्रिका सिंथीस यूनिवर्सल आदि। इस प्रकार स्वामी जी का दिव्य जीवन सन्देश संसार के कोने-कोने में पहुँच गया।

पत्रिकाओं को निकालने में स्वामी जी लाभ-हानि के बारे में विचार नहीं करते थे। निःशुल्क वितरण उनका आदर्श और लक्ष्य था। यदि कुछ लोग पत्रिका के ग्राहक बनते थे तो स्वामी जी इसे उनका सहयोग मानते थे। एक बार किसी हितैषी ने स्वामी जी को सुझाव दिया कि जब तक संस्था की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न हो जाये तब तक के लिए पत्रिकाओं का प्रकाशन स्थगित कर दिया जाये। इसके लिए स्वामी जी ने जो प्रत्युत्तर दिया उससे उनकी इच्छा स्पष्ट परिलक्षित होती है। यह निम्न है—

चाहे कितना भी नुकसान हो मैं एक भी पत्रिका बन्द करने के बारे में सोच भी नहीं सकता। वास्तव में मैं कुछ और पत्रिकायें प्रारम्भ करने के बारे में विचार कर रहा हूँ। कोई बात नहीं यदि प्रारम्भ में हमें थोड़ा नुकसान भी हो। ये सोचें कि हम लोगों को कितना ज्ञान प्रदान कर रहे हैं। जब भगवान् को ऐसा लगेगा कि हमें धन की आवश्यकता है तो वे हमें धन देंगे। हमें काम करते रहना है। यदि आज हमें १०,००० रुपये प्रतिमाह मिल रहे हैं तो यह भगवान् की कृपा तथा दस पूर्व किये गये हमारे कार्यों का परिणाम है। अब धन की वर्षा हो रही है। बाद में संस्था में सोने का समुद्र उमड़ेगा। इसीलिए मैंने नारायण जी को उनके पास जितने भी पते हैं उन सभी को पत्रिका भेजने के लिए कहा है। साप्ताहिक पत्रिका लोगों को धीरे-धीरे उत्तेजित करती है। आज इस व्यस्ततापूर्ण जीवन तथा शहर के कोलाहल के बीच लोगों के मन में आध्यात्मिक विचार स्थाई नहीं रहते। यह पत्रिका उन्हें पगति सप्ताह जगाती है। आपको प्रतिदिन दस-पन्द्रह लोगों को नमूने के रूप में पत्रिका की प्रति भेजनी चाहिए। आप उन्हें निःशुल्क भेजते रहें। सेवा, सेवा, सेवा, निःस्वार्थ भावे से सेवा कीजिए। भगवान् आपको अवश्य पुरस्कार देंगे।

उपसंहार

एक बार स्वामी जी के अच्छे मित्र मसूरी शमशीरी आश्रम में आये। वास्तव में वे अक्सर आश्रम में आया करते थे। वे सुसंस्कृत, कुलीन नेपाली परिवार से थे। वे अच्छे पढ़े-लिखे, बुद्धिमान् व्यक्ति थे तथा अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे रोचक, विनोद प्रिय तथा सम्भाषण प्रिय थे।

स्वामी जी उनसे नवनिर्मित मन्दिर के बारे में बात कर रहे थे कि मसूरी जी अचानक रुक गये और बोले—"मुझे समझ नहीं आता कि आप ज्ञानी, राजयोगी, भक्त, कर्मयोगी अथवा संकीर्तनकार, क्या हैं? आप इनमें से वास्तव में कौन हैं, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ? सामान्यतया लोग साधु को स्वामी, महान् भक्त, महान् ज्ञानी अथवा महान् हठयोगी के रूप में जानते हैं, लेकिन आप इनमें से कोई एक न होकर ये सभी आपमें विद्यमान हैं। आप एक महान् कर्मयोगी भी हैं, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के निवासी आपको संकीर्तनकार कहते हैं। आप योग के सभी मार्गों में सिद्ध हैं। वास्तव में आप एक पहेली हैं। अन्त में उन्होंने परेशान होकर अपने सिर को हिलाया। कुछ देर पश्चात सोचते हुए बोले—"स्वामी जी, मैं नहीं जानता आप स्वयं इस बारे में क्या सोचते हैं, परन्तु जब मैं विगत वर्षों में आपके द्वारा किये गये कार्यों के परिणामों पर विचार करता हूँ, तो मुझे ऐसा अनुभव होता है कि ऐसा करना किसी मानव के लिए सम्भव नहीं है।"

पूर्व निर्धारित महासमाधि

कुछ घटनाओं से ऐसा प्रतीत होता कि गुरुदेव को अपनी महासमाधि का आभास पूर्व में ही हो गया था। यह सन् १९६० का समय था। शिवानन्द आश्रम में रात्रि सत्संग में आरती के बाद गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी को कुछ अतिथियों ने घेर रखा था। स्वामी जी उनमें से प्रत्येक से बारी-बारी से कुशलक्षेम पूछ रहे थे। उनमें से एक ने बताया कि वे अतिशीघ्र सेवानिवृत्त होने वाले हैं। इससे गुरुदेव अन्तरावलोकन के भाव में पहुँच गये, फिर बोले—"क्या मैं सेवानिवृत्त हो गया हूँ

अथवा मैं सेवा निवृत्त हो रहा हूँ?'' हालाँकि ये शब्द बड़ी सहजता से कहे गये थे परन्तु वे किसी अपशकुन के सूचक थे।

मई १९६२ में आश्रम के कार्यालय से बाहर आते समय एक दर्शनार्थी ने उनका चित्र खींचा और धन्यवाद देकर चला गया। गुरुदेव इसी समय पास खड़े एक शिष्य की ओर मुड़े और बोले—''न हम न तुम, दफ्तर गुम।'' यह बात स्वामी जी कई लोगों से कहा करते थे। यह उनकी प्रिय उक्ति थी। इसके द्वारा वे उस वेदान्तिक सत्य को व्यक्त करते थे कि जिस मनुष्य को तुरीयावस्था की प्राप्ति हो जाती है उसके लिए इस संसार का अस्तित्व नहीं रहता है। लेकिन उस दिन यह बात सामान्य रूप से नहीं वरन् इस बात की ओर संकेत करके कही गयी थी कि आने वाला समय अनिश्चित तथा दुःखद होगा।

स्वामी जी के जन्म दिवस उत्सव के समय जो भक्तगण आते थे, उन्हें अगले वर्ष के लिए भी इसी समय आमन्त्रित करते थे लेकिन सन् १९६२ के जन्म दिवस उत्सव के समय वे भक्तों को आमन्त्रित करने में बहुत हिचकिचा रहे थे। इससे भक्तों को यह आभास हुआ कि स्वामी जी के भीतर कुछ अवश्य छिपा हुआ है।

संस्था की मासिक पत्रिका **दिव्य जीवन** में प्रारम्भ से ही इसके द्वितीय मुख्य पृष्ठ पर स्वामी जी स्वयं अपनी हस्तलिपि में आध्यात्मिक निर्देश लिख कर दिया करते थे और पूरे वर्ष की सामग्री एक साथ माह दिसम्बर में दे देते थे। पत्रिका के साथ-साथ इन्हें एक साथ एक निर्देश पुस्तिका के रूप में भी आध्यात्मिक रूप से जाग्रत लोगों के लिए प्रकाशित किया जाता था। सन् १९६२ के दिसम्बर माह में जब गुरुदेव ने ये निर्देश प्रेस के श्री नरसिम्हलु जी को दिये तो उन्होंने देखा कि यह सामग्री अपूर्ण है। इसमें जुलाई माह के निर्देश भी नहीं थे। उन्होंने यह बात गुरुदेव को बतायी तो उन्होंने कहा कि जो मैंने दिया है आप बस उतना ही छापें। इससे यह सिद्ध होता है कि गुरुदेव महान् त्रिकालदर्शी थे। वे अपनी महासमाधि के पूर्व ही इसका पूर्वानुमान करने मे सक्षम थे। यह बात श्री नरसिम्हलु जी को तब समझ आयी जब वे गुरुदेव की महासमाधि के पश्चात् सन् १९६३ की आध्यात्मिक रूप से जाग्रत जनों के लिए प्रकाशित निर्देश पुस्तिका देख रहे थे।

इस बात का स्पष्ट संकेत सन् १९६३ के प्रारम्भ में मिला जब एक दिन गुरुदेव ने संन्यास के इच्छुक सभी जनों को आगामी शिवारात्रि पर संन्यास लेने हेतु आमन्त्रित किया। उन्होंने कहा—"जो भी संन्यास लेना चाहते हों, वे इसी शिवरात्रि पर संन्यास ले लें।" जब उन्होंने कहा—"अगली शिवरात्रि पर क्या होगा, कौन जानता है?" तो एक शिष्य ने उनका विरोध किया कि गुरुदेव ऐसा न कहें। लेकिन स्वामी जी ने उसे यह कह कर शान्त करा दिया कि 'ओजी, आप शान्त रहें, आप कुछ नहीं जानते।' इस समय ही कुछ लोगों को यह पूर्वाभास हो गया था कि वे अतिशीघ्र जाने वाले हैं।

अप्रैल १९६३ से गुरुदेव सभी मामलों में अत्यधिक गम्भीर हो गये थे। उनके काम, उनके स्वभाव से एकदम भिन्न हो गये थे। जैसे उन्होंने मितव्ययता (जो कि अभी तक स्वामी जी के विषय में अनजानी-अनसुनी थी) प्रारम्भ कर दी। यह समझना बड़ा ही कठिन था कि विशाल हृदय स्वामी शिवानन्द जी आश्रम के कार्यकर्ताओं की छोटी-छोटी आवश्यकताओं में कैस कमी करेंगे? परन्तु उन्होंने इसे किया और बड़े ही विनोदपूर्ण तरीके से किया। जैसे उनके पास यदि कोई किसी चीज की माँग लेकर आता तो वे कहते 'श्रीमान् मितव्ययता करें।' और इस प्रकार उन्होंने आश्रम के छोटे-बड़े सभी खर्चों में कमी की जिससे एक माह के भीतर संस्था के ऋणों में बहुत कमी आ गयी। कोई भी उनके इस कार्य के पीछे छिपे गहन उद्देश्य को नहीं समझ पा रहा था। वास्तव में वे अब यहाँ से जाने की तैयारी कर रहे थे।

इसी वर्ष मई और जून के माह में गुरुदेव ने कई बार पंचाङ्ग मंगाया परन्तु हर बार अलग-अलग व्यक्ति से। एक बार उन्होंने जून का पृष्ठ ऊपर किया और जुलाई में देखने लगे। पंचांग लाने वाले शिष्य ने आश्चर्य से गुरुदेव से पूछा "स्वामी जी, ये सब क्या है?" उनका उत्तर था "अरे, आप नहीं जानते।" और उन्होंने पंचांग वापस भेज दिया। कुछ लोगों का अनुमान था कि गुरुदेव अपनी महासमाधि हेतु दिन तथा समय निश्चित कर रहे थे।

अंतिम दिन

मई १९६३ में गुरुदेव कार्यालय से वापस आने पर नित्य अपने प्रवचन आदि रिकार्ड कराने लगे। वे अपनी पुस्तकों, लेखों आदि में से कुछ अंशों को जोर-जोर

से, प्रचंडता से तथा अन्तःप्रेरणा से पढ़ते थे और एक शिष्य इन्हें रिकार्ड करता जाता था। स्वामी जी इस कार्य में बड़े ही.नियमित थे। प्रति दस दिनों के पश्चात वे पूछते अभी तक मैंने कितनी सामग्री दी। यह कितनी देर तक चलेगा। गुरुदेव को अपने इस भौतिक शरीर को त्यागने के बाद भी मानव मात्र की सेवा की प्रबल आकांक्षा थी। इस आकांक्षा की अभिव्यक्ति और भी कई प्रकार से हुई। अन्य सभी कार्यों के साथ-साथ गुरुदेव बहुत सी पत्रिकाओं में भी ज्ञान प्रसार हेतु, लेख भेजा करते थे, परन्तु उनकी महासमाधि के पूर्व के महीनों में उन्होंने ढेरों पत्रिकाओं में बहुत अधिक लेख भेजे जिससे अधिकतम लोगों को लाभान्वित किया जा सके।

टेप रिकार्डिंग कराते समय गुरुदेव ने अपने भावों को कई बार इस प्रकार व्यक्त किया 'नेत्र ज्योति क्षीण हो रही है जो कुछ तुम लेना चाहते हो, ले लो; श्रवण शक्ति कम हो रही है जो कहना चाहते हो, अभी कह लो; जिह्वा मौन हो रही है जो पूछना चाहते हो, अभी पूछ लो।'

एक दिन गुरुदेव पत्रों को रिकार्ड करा रहे थे उसी समय एक शिष्य उनसे हस्ताक्षर कराने आया। उससे उन्होंने अत्यन्त विनोद पूर्वक कहा 'नेत्र ज्योति क्षीण हो रही है श्रीमान। इसके बाद मैं हस्ताक्षर नहीं कर सकूँगा' और उसके ऊपर एक दृष्टि डाली जैसे यह समझने का प्रयत्न कर रहे हों कि वह उनका अभिप्राय समझा या नहीं।

२१ जून १९६३ का दिन गुरुदेव के लिए हीरक जयन्ती कक्ष स्थित कार्यालय में काम करने का अन्तिम दिन सिद्ध हुआ। इस दिन कार्य समाप्ति के बाद वे नित्य की भाँति बाहर आये और कार्यालय के बाहर स्थित नीम के पेड़ के नीचे रुक गये। फिर उन्होंने अपने पीछे आ रहे भक्तों की ओर दृष्टि डाली और विनोद करते हुए बोले—"अरे, ब्रह्मलोक से दिव्य विमान आ रहा है। कौन-कौन साथ चलेगा।"

लखनऊ के एक वकील मुरारी लाल जी तुरन्त बोले—"मैं चलूँगा।" एक अन्य भक्त डा. देवकी कुट्टी ने कुछ कहा नहीं, बस मुस्करा दीं। स्वामी जी ने भी मुस्कराकर कहा—"हूँ, थोड़े दिनों बाद।" और स्वामी जी के लिए यह दिव्य विमान २३ दिनों बाद आ गया।

अपने कमरे में जाने के बाद गुरुदेव को कूल्हे की संधि में दर्द हो गया और वे रात्रि सत्संग में नहीं जा सके।

अगले दिन अस्वस्थता के कारण गुरुदेव कार्यालय नहीं जा सके और अपने कुटीर से ही उन्होंने पत्र देखना, निःशुल्क पुस्तकों के बण्डल पोस्ट करना तथा अन्य कार्यों का संचालन किया।

रात में दर्द असहनीय हो गया था। फिर भी गुरुदेव प्रातः डाक देखने तथा उस दिन के लिए नियत आध्यात्मिक उपदेशों की रिकार्डिंग कराने के लिए बरामदे में आये और थोड़ी रिकार्डिंग करायी।

अगले दिन अस्वस्थता होने पर वे रिकार्डिंग कराने के लिए बरामदे में आये। कुछ वाक्य बोलने के बाद उन्होंने कहा—"जब जीवात्मा ईश्वर के साथ एक हो जाती है तभी आनन्द की प्राप्ति होती है।" इसके बाद गुरुदेव ने काफी देर तक कुछ नहीं कहा तो रिकार्डिंग हेतु प्रतीक्षारत शिष्य ने पूछा—"आप कुछ और रिकार्डिंग करायेंगे ?" गुरुदेव ने तमिल में कहा—"पोरम", जिसका अर्थ है "पर्याप्त"।

अतः गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी जो मनुष्य और उसके भाग्य पर सैकड़ों प्रेरक पुस्तकों के लेखक थे (उनकी अन्तिम पुस्तक थी दिव्योपदेश)। उनका अन्तिम वाक्य जो रिकार्ड किया गया, वह था "जब जीवात्मा ईश्वर के साथ एक हो जाती है तभी आनन्द की प्राप्ति होती है।" हमारे अतुलनीय अनुपम गुरुदेव ने अपने समस्त महान् उपदेशों का सारांश एक वाक्य में दे दिया। और उपरोक्त कथन के कुछ सप्ताह बाद वे स्वयं ईश्वर के साथ एक हो गये।

अगले दिन एक भक्त के बच्चे का अन्नप्राशन संस्कार गुरुदेव की उपस्थिति में होना था। इसके लिए विशेष रूप से चावल की खीर बनायी गयी थी। संस्कार विधि सम्पन्न होने के बाद गुरुदेव ने उसे आशीर्वाद दिया।

कार्यक्रम की समाप्ति के बाद आश्रम प्रेस के प्रबन्धक ने गुरुदेव को उनकी पुस्तक कुण्डलिनी योग के नवीन संस्करण की एक प्रति भेंट की। उन्होंने पुस्तक हाथ में लेकर उसके नवीन आकर्षक स्वरूप की प्रशंसा करते हुए उसे ऐसे स्नेह से गोद में लिया जैसे माँ अपने बच्चे को दुलारती है।

२५ जून को देहरादून और लखनऊ से चिकित्सक स्वामी जी के परीक्षण के लिए आये। देहरादून के चिकित्सक स्वामी जी से बोले—''स्वामी जी, आपको किसी भी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आपको किसी भी बात का विचार नहीं करना चाहिए।'' स्वामी जी का तुरन्त उत्तर मिला—''ओह, ऐसा कैसे सम्भव है? मुझे तो बहुत सी बातों के बारे में विचार करना है। मुझे बहुत से लोगों की देखभाल करनी है।''

यह गुरुदेव के असाधारण व्यक्तित्व का मात्र एक पहलू था। वह पहलू जो उनका लोगों से सम्बन्ध को दर्शाता है तथा इनका दूसरा पहलू देवत्व की वह परम चेतना थी जो शिवानन्द थी तथा वह पूर्व वाले से बिलकुल भिन्न थी। एक वर्ष पूर्व गुरुदेव ने अपने शिष्य से बड़ी सहजता से कहा था—''मेरे लिए सोचना सम्भव नहीं है।'' जिसका इस बात की ओर संकेत था कि उन्होंने वह लोक प्राप्त कर लिया है जहाँ विचारों का स्पर्श भी नहीं होता। जहाँ मन शेष नहीं रहता।

इसी दिन मध्याह्न में भारत के राष्ट्रपति राधाकृष्णन जी के निजी चिकित्सक कर्नल श्री एम.एस. राव स्वामी जी की अस्वस्थता का समाचार सुनकर दिल्ली से अत्यन्त शीघ्रता से आये। उन्होंने पूछा—''स्वामी जी, आप कैसे हैं?'' गुरुदेव का उत्तर था—''मैं तो पूर्ण स्वस्थ हूँ।''

यह श्री गुरुदेव की विशेषता थी कि जब कोई उनके स्वास्थ्य के बारे में उनसे प्रश्न करता उनका सदा यही उत्तर रहता था कि मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। जो ईश्वर के साथ सतत सम्पर्क में रहता हो उसके सिवा ऐसा उत्तर कौन दे सकता है?

६ जुलाई को गुरुपूर्णिमा का पवित्र दिन था। गुरुदेव के कुटीर में किसी को जाने की अनुमति नहीं थी। आश्रमवासियों तथा अतिथि भक्तों ने इस दिन को आश्रम परिसर में ही औपचारिक रूप से मनाया।

इसी दिन मध्याह्न में एक शिष्य गुरुदेव को करवट बदलने में सहायता कर रहा था। उसने उनसे पूछा कि 'आप कुछ और लेंगे?'

गुरुदेव ने कहा—''नहीं, और थोड़ी देर रुक कर निम्न सूत्र दोहराये—

''तत्तु समन्वयात्।''

वह ब्रह्म मात्र शास्त्रों द्वारा ही जाना जा सकता है। यह इसके सिवा किसी अन्य साधन से प्राप्त नहीं हो सकता और यह सम्पूर्ण वेदान्तिक ज्ञान का मुख्य ध्येय है। (ब्रह्मसूत्र १.१.४)

''तस्य वाचकः प्रणवः।''

प्रणव उस ईश्वर का बोध कराने वाला है। (पातंजलि योगसूत्र १.१४)

''स तु दीर्घकालनैरन्तर्य सत्कार सेवितो दृढ़ भूमिः।''

जब दीर्घकाल तक पूर्ण भक्तिपूर्वक साधना की जाती है तो वह दृढ़ भूमि वाली हो जाती है। (पातंजलि योगसूत्र समाधि पाद सूत्र १४)

उपरोक्त तीनों सूत्रों में गुरुदेव ने यह निर्देश दिया कि ब्रह्म ही लक्ष्य है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य को ॐ का जप करते हुए पूर्ण आस्था तथा भक्ति के साधि दीर्घकाल तक आध्यात्मिक साधना करनी पड़ती है। क्या गुरुदेव गुरु पूर्णिमा के दिन अपने भक्तों को यही निर्देश देना चाहते थे? क्या उनके सिवा कोई और सार रूप में इससे अधिक श्रेष्ठ निर्देश दे सकता है?

इस दिन के बाद से स्वामी जी की स्थिति में निरन्तर सुधार होने लगा। शिष्यगण दर्शनार्थियों को पुनः गुरुदेव कुटीर में जाने देने लगे। ८ जुलाई को गुरुदेव को पहिये वाली कुर्सी पर बरामदे में लाया गया और गंगा जी के सामने के द्वार खोल दिये गये जिससे गुरुदेव गंगा जी के दर्शन कर सकें। गुरुदेव के समक्ष कागज, कलम तथा चश्मा लाया गया। गुरुदेव ने लिखा—''सेवा, प्रेम, ध्यान, साक्षात्कार''। ये गुरुदेव के दिव्य जीवन के छः अमोघ सूत्रों में से चार थे, अन्य दो हैं—दान और पवित्रता।

इतने अधिक शरीरिक कष्टों के बाद भी उन्होंने एक बार भी कराहा नहीं और न ही वे उदास हुए। इसके विपरीत वे सदा विनोद करते रहते थे और अपने सहयोगियों को हंसाते रहते थे। इस समय भी वे जो कहते अथवा करते थे उसमें उनका आन्तरिक आनन्द विकरित होता रहता था। चाहे वे स्वस्थ हों अथवा अस्वस्थ, उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा करुणाशीलता में कभी कोई परिवर्तन नहीं आया। जो भी उनके पास इस समय में भी आया उसने उन्हें पूर्ववत स्नेह करते देखा।

जब ज्योतिषि नित्यानन्द जी आये तो गुरुदेव ने उनसे तुरन्त पूछा—"माँ आयी क्या?" क्योंकि जब भी नित्यानन्द जी आते थे वे अपनी माता को साथ लाते थे।

जब गुरुदेव के अत्यन्त प्रिय शिष्य अमृतसर के श्री पन्नालाल जी आये तो गुरुदेव ने उनका बड़े ही प्रेम से स्वागत किया और बोले—"आपको देखे हुए बहुत लम्बा समय हो गया।" जब वे स्वामी जी को प्रणाम करके उठे तो स्वामी जी ने उनकी पीठ को कई बार थपथपाया और बोले—"वीर बनो, साहसी बनो।" पन्नालाल जी की आँखें से अश्रुधारा बहने लगी। इसी तरह गुरुदेव ने अन्तिम दिनों में अपने कुछ अन्य प्रिय शिष्यों के प्रति अत्यधिक प्रेम भाव का प्रदर्शन किया।

एक दिन गुरुदेव का ध्यान अचानक मदुरै के भक्त वानामामलई पर गया। उन्होंने तुरन्त प्रश्न किया 'आपकी बहन के विवाह का क्या हुआ?'

स्वामी शिवानन्द जी में असाधारण सहनशक्ति थी। वे अपने असंख्य भक्तों की पारिवारिक समस्याओं से हृदय से सम्बद्ध थे। पे इन सभी समस्याओं को अपने स्मृति कोष के एक पृथक् विभाग में संग्रहित करके रखते थे और उनका इस प्रकार समाधान करते थे जैसे वे उनकी अपनी हों। हजारों लोग उनके मानवीय स्वभाव तथा आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन हेतु उनसे प्रेम करते थे।

इसी समय एक बार रात्रि के समय पास वाले कमरे में किसी प्रसिद्ध कलाकार का नादस्वरम् वादन का कार्यक्रम रेडियो पर प्रसारित हो रहा था। गुरुदेव आँखें बन्द किये हुए ध्यान से सुन रहे थे। सभी को लगा गुरुदेव को नींद आ गयी है। परन्तु उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ जब गुरुदेव ने कहा—"उस कलाकार को मेरा धन्यवाद का पत्र भेजिये। मैंने उसके वादन का आनन्द लिया।"

गुरुदेव के अन्तिम दिनों में आने वाले लोगों मे केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री डा. सुशीला नायर भी थीं। शारीरिक रूप से अत्यधिक अस्वस्थ होने के बाद भी स्वामी जी ने उन्हे अभिवादन किया। उन्हें नाश्ता और पुस्तकें देने के लिए कहा तथा उन्हें स्वास्थ्य और कल्याण के लिए महामृत्युंजय मन्त्र पढ़ा तथा उन्हें अपना उत्कृष्ट उपदेश सेवा, प्रेम, दान, पवित्रता, ध्यान तथा साक्षात्कार दिया और अन्त में ईश्वर से उन्हें अपना आशीर्वाद प्रदान करने हेतु प्रार्थना की।

१० जुलाई को स्वामी जी ने अपने बिस्तर पर से ही गंगा जी के दर्शन की इच्छा व्यक्त की। इसलिये उनके बिस्तर को उस दिशा में घुमा दिया गया। उन्हें गंगा जी से बड़ा प्रेम था, गंगा तट ही उनका तीर्थ स्थल था। वे कहते थे—"गंगा मेरी माँ है।" उन्होंने गंगा के ऊपर एक पुस्तक लिखी 'मदर गंगा'।

१२ जुलाई को डाक्टर कुट्टी ने गुरुदेव को एक कागज और कलम दिया। गुरुदेव ने लिया 'याद रखो, भूल जाओ।' फिर कहा—"याद रखो तुम देवी हो। भूल जाओ कि तुम देवकी कुट्टी हो।" सर्वप्रथम छोटा सा निर्देश, फिर उसे मौखिक रूप से विस्तार से समझाना—यह गुरुदेव का विशिष्ट तरीका था। प्रेम के ऊपर प्रेम की बौछार।

इसी दिन रात के समय मध्य रात्रि तक गुरुदेव सोये ही नहीं। वे अपनी दायीं जाँघ पर उँगली से ॐ लिख रहे थे। जब जब वे रुकते शिष्य उनके हाथ को तौलिये से ढाँक देते थे लेकिन वे उसे हटाकर फिर ॐ लिखने लग जाते थे। ऐसा बीसियों बार हुआ। रात्रि २ बजे कहीं जाकर गुरुदेव को नींद आयी।

१३ जुलाई को गुरुदेव ने नाश्ता भी नहीं लिया। बस, बरामदे में बैठकर कुछ देर गंगा जी को निहारते रहे।

१४ जुलाई को कर्नल पुरी श्री गुरुदेव का परीक्षण करने आये और बोले—"स्वामी जी, आप बहुत शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे।" गुरुदेव का उत्तर था—"हाँ, मुझे स्वस्थ होना ही होगा। अभी मुझे बहुत से काम करने हैं।" इसक बाद स्वामी जी ने डा. साहब को उपमा, कॉफी तथा पुस्तकें दने के लिए कहा और अन्त में ॐ नमो नारायणाय कह कर उनहें विदा किया।

डा. साहब के जाने के बाद गुरुदेव ने जल पीने की इच्छा व्यक्त की। शिष्य उन्हें नित्य की भाँति जौ का पानी अथवा जीरा पानी देना चाहते थे पर उन्हें तो गंगा जल चाहिए था। अन्त मे गंगा जल लाया गया। गुरुदेव ने आधा गिलास गंगा जल पिया और इसके साथ ही उन्होंने इस नश्वर देह को त्याग दिया। इस समय रात्रि के ११ बजकर १५ मिनट हो रहे थे।

जिस समय का स्वामी जी ने ईश्वर के साथ मिलन हेतु चुनाव किया, वह अत्यन्त शुभ था। यह एक श्रेष्ठ ग्रह योग था। यह उत्तरायण का अन्तिम तथा

दक्षिणायन प्रारम्भ होने के ठीक पहले का समय था। एक कुशल ज्योतिषि ने बताया कि गत मध्य रात्रि के समीप ही वह अपूर्व, मंगलमय मुहूर्त था, जिसे कोई भी योगी जो इस संसार में महाप्रयाण करने वाला हो कभी चूकना नहीं चाहता। लोगों का पूर्वानुमान सही निकला। स्वामी शिवानन्द जी ने इसी क्षण का अपनी महासमाधि हेतु चुनाव किया था।

यह अन्त अनापेक्षित था, इससे उनके शिष्य स्तब्ध रह गये। वे जानते थे उनके गुरुदेव जा चुके हैं। लेकिन हृदय ने इस पर विश्वास करने से इनकार कर दिया और मन तो इसे जानना ही नहीं चाहता था।

इसी बीच गुरुदेव को पद्मासन में बैठा दिया गया था। दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में फंसा कर गोद में रख दिया गया था। भक्तगण बरामदे मे बैठे हुए धीरे-धीरे महामन्त्र पढ़ रहे थे। इस दुःखद सन्नाटे में आश्रमवासी एक-एक करके गुरुदेव के मूर्तिवत् स्वरूप को प्रणाम करने भीतर जा रहे थे।

अगले दिन प्रातः समाचार पत्रों तथा रेडियो द्वारा यह समाचार सम्पूर्ण विश्व को ज्ञात हो गया। सभी जगहों से आ रहे श्रद्धांजलि तथा सहानुभूति के सन्देशों से डाकघर के कर्मचारी दिन-रात व्यस्त थे।

गुरुदेव के शरीर को प्रथम बार विधिपूर्वक स्नान कराया गया और उन्हें नवीन वस्त्र ओढ़ाया गया। माथे पर तिलक लगाया गया और गले में फूल मालायें पहनायी गयीं। इस समय दर्शनार्थियों की कतार सड़क तक पहुँच गयी थी। सारे दिन तथा देर रात तक दूर-दूर से लोग अन्तिम दर्शनों के लिए आते रहे।

१६ जुलाई मंगलवार को गंगा तट पर आश्रम के चारों ओर अपार जनसमूह एकत्रित था। १० बजकर ३० मिनट पर गुरुदेव के निजी सहायक उन्हें बाहर लाये। शंखनाद किया गया और घण्टे बजने लगे। जैसे ही उन्हें प्रवेश द्वार पर लाया गया, समीप स्थित संस्कृत विद्यालय ''दर्शन महाविद्यालय'' के विद्यार्थियों ने वेद मन्त्रों का पाठ किया। बड़ी ही सावधानी से धीरे-धीरे गुरुदेव के पवित्र रूप को आश्रम के अतिथि कक्ष के सामने गंगा तट पर राजवंशी घाट पर ले जाकर एक मंच पर रखा गया। यहाँ वेद मन्त्रोच्चार के साथ पहले विभिन्न पदार्थों फिर गंगाजल से विधिपूर्वक उन्हें स्नान कराया गया। इस अभिषेक के पश्चात उन्हें फूलों से सजी पालकी में

बैठाया गया। इसे गुरुदेव के शिष्यों ने अपने कंधों पर उठाया। इसके बाद यह शोभायात्रा विश्वनाथ मन्दिर पहाड़ी की ओर चल दी। महामन्त्र कीर्तन तथा वेद पाठ की पावल ध्वनि तथा स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय, सद्गुरुदेव ही जय—इन जय-जयकारों से चारो ओर का वातावरण गुंजायमान हो गया था।

समाधि के लिए नियत स्थान पर पहुँचने के बाद पालकी का मुख जनसमूह की ओर कर दिया गया और अब पालकी को नीचे उतारा गया। सभी की संतुष्टि के लिए यहाँ गुरुदेव के पावन रूप की सामूहिक आरती की गयी। समाधि स्थल में उतारने के लिए इसे लकड़ी के पटिये पर बैठाया गया। पवित्र मन्त्रोच्चार के साथ-साथ गुरुदेव के शरीर को बड़ी सावधानी से उनके अन्तिम विश्राम स्थल में उतारा गया। ध्यानावस्था में बैठे हुए एक महान् संत के भौतिक शरीर की पृथ्वी की गोद में अन्तिम पूजा की गयी। गुलाब जल मिश्रित सुगन्धित चंदन का सारे शरीर पर लेप किया गया। चंदन का चूर्ण, कर्पूर, नमक तथा भस्म से इसे पूर्णरूपेण भर दिया गया और समाधि स्थल को बंद कर दिया गया। गंगा जल से भरा एक पात्र समाधि स्थल पर रख दिया गया और एक दीप प्रज्वलित कर दिया गया। बाद में इसके ऊपर एक शिवलिंग स्थापित किया गया और एक मन्दिर का निर्माण किया गया।

कई दिनों तक आश्रम में स्वामी जी स्मृति में श्रद्धांजलि के पत्र आते रहे।

नीचे कुछ मर्मस्पर्शी पत्र उद्धृत किये जा रहे हैं—

निम्न पत्र मारीशस से स्वामी वेंकटेशानन्द जी ने लिखा था—

''वह घंटियों सी मधुर आवाज मौन हो गयी। वह महान् विभूति दिव्य ज्योति में विलीन हो गयी। अब हम उस विशाल तथा तेजोमय रूप को अब कभी न देख सकेंगे जो गेरुआ वस्त्र पहले, कैनवास के जूते पहने, नपे-तुले कदमों से चलते हुए, हाथ में थैले लिए फल तथा ज्ञान के वितरण के लिए सदा तैयार रहते थे। वे अपने बच्चों की सहायता करने को सदा उनका बच्चों की तरह खिलखिलाना, हंसते हंसते पेट पर बल पड़ जाना, इतना हंसना कि आँखों में आँसू आ जायें। अब हम कभी न देख पायेंगे। उनकी वह हंसी जो सभी को आनन्दित कर देती थी अब हम कभी नहीं सुन सकेंगे।

यह अन्त शायद स्तब्ध कर देने वाला लगे लेकिन यह अन्त नहीं है, यह तो प्रारम्भ है। भवन निर्माता जब भवन का निर्माण करता है तो बाहर दिखायी देता है लेकिन वह भवन का निर्माण करके उसमें प्रविष्ट हो जाता है। इसी प्रकार गुरुदेव ने हम अनगढ़ पत्थरों को गढ़ा और एक के ऊपर एक पत्थर रखकर एक मन्दिर का निर्माण किया। अब वे इसमें प्रविष्ट हो गये हैं और दृढ़ संकल्प के साथ इसके भीतर कार्य करने में व्यस्त हैं।''

कुछ अन्य पत्र देखिये—

''यदि आज हमारे महाविद्यालयों में लड़के और लड़कियाँ गीता पढ़ते हैं तो वह स्वामी शिवानन्द जी के कारण ही। यदि आज दिव्य जीवन के उपदेशों का समस्त जगत् में प्रचार हुआ है तो वह स्वामी जी जैसे असाधारण दैवी गुण सम्पन्न व्यक्तित्व के कारण ही।

''स्वामी शिवानन्द जी वर्तमान समय में सर्वाधिक कार्यशील आध्यात्मिक गुरु थे। उनके जाने से भारतवर्ष में आध्यात्मिक तथा नैतिक शिक्षा प्रदान करने वाले गुरु का स्थान रिक्त हो गया है और इसका भर पाना कठिन है। वे महान् ज्ञानी थे तथा उनका हमारे धार्मिक दर्शनों पर पूर्ण एकाधिकार था। उन्होंने हिन्दू धर्म के रीति रिवाजों के पीछे छिपे तथा पवित्र जीवन को सही रूप से प्रस्तुत किया। इन सबसे परे उनके भीतर एक शक्ति और असीम स्नेह था जो उनके प्रति समर्पित अनुयायियों के लिए एक वरदान था। उनके जाने से भारत ने वर्तमान समय के सर्वाधिक प्रभावशाली, उदार विचारों वाले हिन्दू धर्म के नायक को खो दिया है। सारे देश में करोड़ों लोग शोक में निमग्न हैं।

''हमारे परम श्रद्धेय गुरुदेव के चले जाने से इस संसार के ऊपर से दार्शनिक तथा आध्यात्मिक पिता का साया उठ गया है। उनके प्रत्येक सच्चे और लगनशील भक्त का यह कर्तव्य है कि वह उनके साहित्य में बताये गये आदर्शों का अनुकरण करते हुए जीवन जिये।''

''हमारे गुरुदेव जो इस संसार की ज्योति थे अब नहीं रहे, लेकिन जब तक इस पृथ्वी पर मानव जाति का अस्तित्व है उनकी पावनता इस संसार में सूक्ष्म सार के रूप में सदा विद्यमान रहेगी। वे अपने संकल्प में, अपने नैतिक तथा आध्यात्मिक

सिद्धान्तों पर सदा दृढ़ रहे। उन्होंने सदाचार के नियमों के स्तर को कभी गिरने नही दिया किन्तु जो आध्यात्मिक पथ पर चलना चाहते थे उन्हें उन्होंने क्षमा कर दिया। हमारा यह परम सौभाग्य है कि उन्होंने स्वयं को शब्दों में उतारा और यह अनुपम साहित्य हमें प्रदान किया। यह साहित्य हमारे साथ सदा इस प्रकार रहेगा जैसे वे स्वयं हमारे साथ हों। अब लुहार की निहाई से चिंगारियाँ नहीं निकलेंगी लेकिन उस समय जब फिल्मी सितारे, लुटेरे, व्यवसायी तथा ऐसे ही अन्य लोग शीर्ष पर थे तथा सांसारिक उपाधि पत्र तथा आत्म विध्वंसक अस्त्र हमारी प्राथमिकता थे, उस समय स्वामी शिवानन्द जी इस शोकाकुल पृथ्वी पर दिव्य जीवन का प्रभात लेकर आये तथा सर्वत्र सद्‌गुणों का प्रचार किया।''

ये भाव कितने उत्तम हैं और कितनी अच्छी तरह व्यक्त किये गये हैं तथा ये कितने अधिक सत्य हैं।

गुरुदेव आज भी जीवित हैं। वे उनकी पुस्तकों में जीवित हैं। वे उनके शिष्यों में जीवित हैं। वे आज भी ऋषिकेश स्थित उनके आश्रम में निवास करते हैं।

गुरुदेव उनके लेखन में जीवित हैं। उनका लेखन उनकी आत्मा का प्रवाह है। वे उनकी पूर्णता के शिखर तथा उनके अनुभवों को व्यक्त करती हैं। वे लेखक की अपने अनुकरण करने वालों को अपने अनुभवों के साथ भागीदार बनाने तथा जिस परमानन्द को उन्होंने प्राप्त किया अन्यों को भी उस ऊँचाइयों पर पहुँचाने में सहायता करने की इच्छा को व्यक्त करती हैं। आज शिवानन्द साहित्य ने इस विश्व को बाँध लिया है। गुरुदेव की पुस्तकें जो समाज के लिए महान् उपयोगी हैं आज विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में उपलब्ध हैं और ये मनुष्य के विकास के पथ में नवीन प्रकाश डाल रही हैं।

गुरुदेव उनके शिष्यों में जीवित हैं। चाहे वे साधारण अथवा वेदान्ती हों, उनकी संख्या अगणित है। वे प्रत्येक देश और प्रत्येक भू-भाग में हैं और उनमें से कई दिव्य जीवन क्रान्ति का व्यापक स्तर रूप से विकास में सहायता कर रहे हैं।

गुरुदेव उनके आश्रम में रहते हैं। आज भी उनकी उपस्थिति विशेष रूप से समाधि मन्दिर में प्रबलता से अनुभव की जाती है। समाधि मन्दिर आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए तीर्थ स्थल है। इस स्थान की पवित्रता अतुल्य है। यहाँ की

पारलौकिक तरंगें अत्यन्त शक्तिशाली हैं। समाधि मन्दिर में प्रवेश करने के बाद दर्शनार्थी वहाँ से जाना ही नहीं चाहते। गुरुदेव यहाँ सदा रहते हैं।

दिव्य जीवन संघ का प्रतीक चिह्न

यह प्रतीक राजयोग, कर्म योग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग का एकीकरण है। इसके मध्य में सूर्य इस बात का व्यक्त करता है कि आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति ज्ञान से होती है। इसके भीतर जो लहरें हैं वे भक्ति की लहरें हैं। ये ईश्वर को प्रेम करने वाले भक्त के हृदय में उठती हैं। ये दोनों योग (जो यहाँ प्रतीक स्वरूप हैं) एक कमल में (जो राजयोग का प्रतीक है) बन्द हैं। इसमें दो हाथ भगवान् के चरणों में कमल पुष्प अर्पित कर रहे हैं तथा ये इन योगों के अवलम्बन हेतु कर्म योग का प्रतीक हैं। ये दोनो हाथ दर्शा रहे हैं कि जो निष्काम्य कर्म योग की साधना करता है उसे इन तीनों योगों का सम्मिश्रण प्राप्त होता है और इसका नित्य जीवन में व्यवहार ही दिव्य जीवन कहलाता है।

परम पूज्य गुरुदेव के महत्वपूर्ण आध्यात्मिक उपदेश

गुरुदेव के इन बीस उपदेशों में सारी योग साधना का सारांश है। जो इन उपदेशों का मन लगाकर पालन करेगा वह कर्म, भक्ति, ज्ञान तथा योग को सहज ही प्राप्त कर लेगा। शीघ्र विकास के लिए तथा शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए ये कुंजी हैं।

१. हरि ॐ! नित्य प्रति चार बजे प्रातः उठिये। यह ब्रह्ममुहूर्त है। यह साधना हेतु बहुत अनूकूल है। चार बजे से साढ़े छह बजे अथवा सात बजे तक

प्रातः की सारी साधना कर लीजिये। इस साधना से शीघ्र आध्यात्मिक लाभ होता है।

२. **आसन** : पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन में पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठें और एक घण्टे जप तथा ध्यान करें। इस समय को धीरे-धीरे तीन घण्टे तक बढ़ायें

३. **जप** : किसी भी मन्त्र का जप कीजिए। जैसे ॐ, ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ श्री शरवणभवाय नमः, सीताराम, श्रीराम, हरिॐ गायत्री मन्त्र आदि। अपनी रुचि अथवा प्रकृति के अनुसार मन्त्र का चुनाव कर लें तथा नित्य १०८ से २१६०० मन्त्र (१०८ मनकों की १ से लेकर २०० माला तक) का नित्य जप करें। ईसाई लोग जीसस, मेरी आदि का जप कर सकते हैं। पारसी, सिख, मुस्लिम लोगों को जेन्दअवस्था, गुरु ग्रन्थ साहब अथवा कुरान में से मन्त्र चुन लेना चाहिए।

४. **आहार संयम** : सात्विक आहार लीजिये। मिर्च, इमली, प्याज, लहसुन, खट्टे पदार्थ, तेल, सरसों, हींग का त्याग कीजिये। मिताहार कीजिये। पेट पर अधिक बोझ न डालिये। वर्ष में एक या दो बार १५ दिनों के लिए उस वस्तु का त्याग कीजिए जिसे मन सबसे अधिक पसन्द करता है। सादा भोजन कीजिए। दूध और फल धारणा में सहायता करते हैं। भोजन को जीवन निर्वाह के लिए औषधि के समान लीजिये। भोग के लिए भोजन करना पाप है। एक सप्ताह के लिए अथवा एक पक्ष के लिए चीनी तथा नमक का परित्याग कीजिये। बिना चटनी या आचार के चावल, रोटी तथा दाल पर ही निर्वाह करने की क्षमता होनी चाहिए। दाल के लिए नमक और चाय, कॉफी तथा दूध के लिए और अधिक चीनी न माँगिये। अमिषाहारी लोगों को माँसाहार धीरे-धीरे पूर्णतः त्याग देना चाहिए। इससे उन्हें परम लाभ होगा।

५. **ध्यान-गृह** : एक अलग ध्यान-गृह रखिये तथा उसमें ताला लगा कर रखें। यदि ऐसा करना सम्भव न हो तो कमरे के एक कोने को ही परदे से अलग रखकर ध्यान स्थल बना लीजिये।

६. **दान** : प्रतिमास नियमित दान कीजिए अथवा प्रतिदिन आय के प्रति रुपये में से ६ पैसे दान कीजिये। इसमें कदापि चूक न कीजिये। यदि आवश्यकता पड़े तो अपनी कुछ व्यक्तिगत आवश्यकताओं का त्याग कर दें परन्तु दानशीलता बनाये रखें

७. **ब्रह्मचर्य** : बहुत सावधानी के साथ प्राणशक्ति वीर्य की रक्षा कीजिये। वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है। वीर्य ही सम्पूर्ण स्मृति है। वीर्य जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है। यह उपदेश मात्र अविवाहितों के लिए नहीं है, गृहस्थों को भी यथासम्भव इनका पालन करना चाहिए। इस विषय में उन्हें अत्यन्त संयमी होना चाहिए।

८. **स्वाध्याय** : गीता, रामायण, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, ललितासहस्रनाम, आदित्यहृदय, योगवशिष्ठ, बाइबल, इमीटेशन ऑफ क्राइस्ट, कुरान, जेन्दअवस्था, गाथा, त्रिपटिक तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों का आधे से एक घण्टे तक नित्य अध्ययन कीजिए और शुद्ध विचार रखिए।

९. प्रार्थना के लिए कुछ श्लोकों को याद कर लीजिए। जप अथवा ध्यान प्रारम्भ करने से पूर्व उनका पाठ कीजिए। इससे मन शीघ्र समुन्नत हो जायेगा।

१०. कुसंगति, धूम्रपान, मांस, शराब आदि का पूर्णतः त्याग कीजिए। (निरन्तर सत्संग कीजिए)। किसी भी बुरी आदत में न फंसिये। सद्गुणों के विकास के लिए प्रयत्नशील रहिए।

११. एकादशी का उपवास कीजिए अथवा केवल दूध और फल पर निर्वाह कीजिए। ईसाई लोग हर दूसरे रविवार को उपवास कर सकते हैं। मुस्लिम

हर दूसरे शुक्रवार को तथा पारसी १५ दिनों में किसी अनुकूल दिवस को उपवास कर सकते हैं।

१२. अपने गले में, जेब में अथवा सोते समय तकिये के नीचे जप माला रखिये।

१३. नित्य प्रति कुछ घण्टे के लिए मौन रखिए। मौन व्रत के समय मुँह से संकेत न करिये न ही अस्फुट शब्द निकालिये।

१४. **वाणी का संयम** : प्रत्येक स्थिति में सत्य बोलिये। कम बोलिये। मधुर सम्भाषण कीजिए। सदा उत्साह पूर्ण शब्द बोलिए। कभी हतोत्साहित न होइए। बच्चों तथा अपने अधीनस्थों पर जोर से न चिल्लायें।

१५. अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। यदि आपके पास चार कमीजें हैं तो इनकी संख्या दो अथवा तीन कर दीजिए। सुखी और संतुष्ट जीवन बिताइये। अनावश्यक चिन्ता न कीजिए। मन से अनासक्त रहिए। सादा जीवन, उच्च विचार रखिए। उन लोगों के बारे में सोचिए जिनके पास आपकी सम्पत्ति का दशांश भी नहीं है। जो कुछ आपके पास है उसमें अन्यों को भागीदार बनाइये।

१६. कभी किसी को आघात न पहुँचाइये (अहिंसा परमो धर्मः) क्रोध को प्रेम, क्षमा तथा दया से दमन कीजिए।

१७. सेवकों पर निर्भर न रहिए। आत्म-निर्भरता सर्वोत्तम गुण है।

१८. सोने के पहले दिन भर की गलतियों पर विचार कीजिए। आत्म-विश्लेषण कीजिए। बेंजामिन फ्रेंकलिन के समान आध्यात्मिक डायरी तथा आत्म सुधार रजिस्टर रखिए। नित्य आध्यात्मिक डायरी भरिए। दैनिक कार्यक्रम तथ संकल्प-पत्र का पालन कीजिए। (दिव्य जीवन संघ से आप दैनन्दिनी (डायरी)) और संकल्प-पत्र प्राप्त कर सकते हैं।

१९. याद रखिए कि मृत्यु प्रतिक्षण आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्तव्यों को पालन करने में विफल न हों। सदाचार का पालन करें।

२०. प्रातः उठते ही तथा सोने से पहले ईश्वर-चिन्तन कीजिए। ईश्वर के समक्ष पूर्ण आत्मसमर्पण कीजिए।

यही सारी आध्यात्मिक साधनाओं का सार है। इससे आप मोक्ष प्राप्त करेंगे। इन नियमों का अक्षरशः पालन करना चाहिए। अपने मनको बिल्कुल ढीला न छोड़िये।

शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति के लिए संकल्प

१. दैनिक आध्यात्मिक डायरी रखिए तथा महीने के अंत में उसकी एक प्रति अपने गुरु के पास भेज दीजिए। वे आपको आगे के लिए उपदेश देंगे।

२. दैनिक लिखित जप के लिए एक पुस्तिका रखिए तथा उसमें नित्य प्रति स्याही से इष्टमन्त्र अथवा गुरु मन्त्र के एक या दो पृष्ठ लिखिए।

३. दैनिक अभ्यास के लिए कार्यक्रम बना लीजिए तथा हर हाल में उनका पालन कीजिए। बहुत से विक्षेप तथा बाधायें आयेंगी। सदा सावधान तथा सतर्क रहिए।

४. नये वर्ष के लिए कुछ संकल्प कीजिए। संकल्प-पत्र नीचे दिया जा रहा है। किसी भी संकल्प को आप हटा सकते हैं अथवा अपनी प्रवृत्ति, सुविधा तथा उन्नति के अनुसार कुछ नये संकल्प जोड़ सकते हैं।

५. अपने जीवनक्रम में अचानक परिवर्तन न लायें। अपनी संकल्पशक्ति का विकास कर मन तथा इन्द्रियों को वशीभूत कर संकल्प पालन द्वारा उन्नति कीजिए।

६. आत्म संयम की कमी होने के कारण अनजाने ही अथवा परिस्थितियों के कारण यदि किसी संकल्प में आपको विफलता प्राप्त हो तो आप कुछ माला का अधिक जप करें अथवा संध्या के भोजन का त्याग कर दें जिससे आपके मन में संकल्प के महत्व की बात बैठ जाये।

७. आप अपने सभी मित्रों से अनुरोध कीजिए कि वे भी संकल्प-पत्र, आध्यात्मिक डायरी तथा मन्त्र लेखन पुस्तिका का पालन करें। इस प्रकार आप बहुत से लोगों को इस संसार के दलदल से बाहर निकाल सकते हैं।

प्रतिज्ञा-पत्र अथवा संकल्प-पत्र

१. मैं नित्य......... मिनट आसन और प्राणायाम करूँगा।

२. मैं सप्ताह/पक्ष/माह में एक बार रात्रि को भोजन न कर मात्र दूध अथवा फल ग्रहण करूँगा।

३. मैं महीनें में एक/दो एकादशी व्रत रखूँगा।

४. मैं अपने सुखोपभोग की एक वस्तु को एक बार........... प्रतिदिन/महीने अथवा उसे....... दिनों/महीनों के लिए त्याग दूँगा।

५. मैं प्रतिदिन अथवा सप्ताह अथवा मास में एक बार से अधिक निम्नांकित दुर्व्यसनों में नहीं लगाऊँगा।

६. मैं........ मिनट/घण्टे नित्य तथा......... मिनट/घण्टे के लिए रविवार अथवा अन्य छुट्टी के दिनों/महीनों में मौन व्रत रखूँगा और इस समय को धारणा, ध्यान, जप तथा अन्तःनिरीक्षण में लगाऊँगा।

७. मैं...... सप्ताह/माह...... ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा अथवा मैं प्रति सप्ताह/माह में......... ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।

८. मैं इस वर्ष सर्वथा सत्य भाषण करूँगा।

९. मैं इस वर्ष सर्वथा प्रिय भाषण करूँगा।

१०. मैं किसी के प्रति बुरे विचार अथवा द्वेष भाव न रखूँगा।

११. मैं अपनी आय में से.......... नये पैसे प्रति रुपये के हिसाब से दान करूँगा।

१२. मैं नित्य अथवा सप्ताह में......... घण्टे निष्काम्य कर्म योग का अभ्यास करूँगा।

१३. मैं....... माला जप नित्य करूँगा।

१४. मैं अपनी मन्त्र लेखन पुस्तिका में नित्यप्रति....... मिनट अथवा....... पृष्ठों में इष्ट मन्त्र/गुरु मन्त्र लिखूँगा।

१५. मैं गीता के.......... श्लोकों का अध्ययन अर्थ सहित नित्य प्रति करूँगा।

१६.मैं दैनिक आध्यात्मिक दैनन्दिनी (डायरी) का पालन करूँगा तथा उसकी एक प्रति अपने गुरु को भेजूँगा जिससे वे मुझे आगे के लिए निर्देश दे सकें।

१७. मैं........ प्रातः नित्य उठूँगा तथा....... घण्टा समय जप, धारणा, ध्यान, प्रार्थना आदि में लगाऊँगा।

१८. मैं पारिवारिक लोगों के साथ तथा इष्ट मित्रों के साथ नित्यप्रति....... घण्टा/मिनट रात्रि में संकीर्तन करूँगा।

दिनांक

हस्ताक्षर

नाम तथा पता

आध्यात्मिक दैनन्दिनी

दैनिक आध्यात्मिक दैनन्दिनी का पालन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह मन को ईश्वर की ओर प्रवृत्त करने में कोड़े का काम करती है। यह आपकी गुरु तथा पथ-प्रदर्शक है। यह आपकी आँखों को खोलती, दुर्गुणों का दमन करती तथा आध्यात्मिक साधना में आपकी सहायता करती है। यह मुक्ति तथा नित्य तथा आनन्द के मार्ग को दिखालाती है। जो त्वरित गति से उन्नति करना चाहते हों उन्हें अपने दिनभर के कार्यों का नित्य उल्लेख करना चाहिए। यदि आप नियमित रूप से दैनन्दिनी का पालन करेंगे तो आपको सान्त्वना, मन की शान्ति प्राप्त होगी। इसका पालन कर इसके आश्चर्यजनक परिणामों को साक्षात् देखिए। छह महीनों के लिए दैनन्दिनी रखिए इसमें दिये गये सभी प्रश्नों के सत्य-सत्य उत्तर दीजिए। यदि आप शीघ्र उन्नति चाहते हों तो कभी किसी बात को न छिपाइये। यह तो आपकी भलाई के

लिए है जिससे आप स्वयं को सुधार सकें, दिव्य जीवन का विकास कर आत्म-सक्षात्कार कर सकें। यदि साधक सच्चा है तो यह दैनन्दिनी उसे ईश्वर-साक्षात्कार का मार्ग दिखायेगी। सभी लोग कई प्रकार की डायरी जैसे धोबी की, दूध की डायरी आदि रखते हैं परन्तु इस डायरी की ओर कोई ध्यान नहीं देता जिसकी सहायता से आप अपनी भूलों को सुधार कर आत्म-साक्षात्कार जो हमारा परम लक्ष्य है, उसे प्राप्त कर सकते हैं।

आपके मन में एक महान् चोर घुसा हुआ है जिसने आपकी आत्मिक मुक्ता चुरा ली है। यही आपकी चिन्ताओं और विपत्तियों का कारण है। वह आपको मोहित करता है। वह चोर आपका मन ही है। आप उसे निर्ममतापूर्वक मार डालें। इस दैनन्दिनी के सिवा इस चोर को मारने का कोई अन्य अस्त्र नहीं हे। यदि आप नित्य आध्यात्मिक दैनन्दिनी का पालन करेंगे तो आपके सारे दोष दूर हो जायेंगे और अन्त में वह शुभ समय आयेगा जब आप क्रोध, असत्य, काम आदि से पूर्णतया विमुक्त हो जायेंगे और एक पूर्ण व्यक्ति बन जायेंगे।

आपके माता-पिता ने आपको यह शरीर दिया, आपको भोजन तथा वस्त्र दिये परन्तु यह दैनन्दिनी उनसे भी बढ़कर है। यह आपकी गुरु है। सप्ताह में एक बार इसके पृष्ठ उलटिये। यदि आप इसमें प्रति घण्टा अपने कार्यों को लिखें तो आपकी बहुत शीघ्र उन्नति होगी। इस डायरी का पालन करने वाला मनुष्य बहुत सुखी रहता है, क्योंकि वह ईश्वर के बहुत निकट है। उसकी संकल्प शक्ति बहुत प्रबल होती है तथा वह सभी दोषों और भूलों से मुक्त रहता है।

दैनिक डायरी भरने से आप तत्काल अपनी भूल को सुधार सकते हैं। आप अधिक साधना कर शीघ्र उन्नति करेंगे। इससे बड़ा आपका कोई भी अच्छा मित्र अथवा गुरु नहीं है। यह आपको समय के मूल्य का ज्ञान करायेगी। महीने के अन्त में जप, स्वाध्याय, प्राणायाम, आसन, निद्रा आदि के कुल घण्टों का योग कीजिए। इससे आपको मालूम होगा कि आप धार्मिक साधना में कितना समय दे रहे हैं तथा आप शनैः शनैः जप तथा ध्यान में वृद्धि कर सकेंगे। यदि आप इसके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लिखेंगे तो आप एक मिनट का भी समय व्यर्थ नहीं गंवा सकते और आप समय के मूल्य को समझेंगे।

आध्यात्मिक दैनन्दिनी (साप्ताहिकी)

क्र. सं.	प्रश्नावली	१	२	३	४	५	६	७	
१.	कितने घण्टे सोये?								
२.	सो कर कब उठे?								
३.	कितनी माला जप किया?								
४.	नाम-स्मरण कितनी देर किया?								
५.	कितने प्राणायाम किये?								
६.	आसन कितनी देर किये?								
७.	एक आसन में कितनी देर तक ध्यान किया?								
८.	क्या ध्यान में नियमित रहे?								
९.	कितले श्लोक गीता के पढ़े या याद किये?								
१०.	सत्संङ्ग कितनी देर तक किया?								
११.	कितनी देर तक मौन रहे?								
१२.	कितनी देर तक निष्काम सेवा की?								
१३.	कितना दान किया?								
१४.	कितनी बार मन्त्र लिखा?								
१५.	कितनी देर व्यायाम किया?								
१६.	कितनी बार असत्य बोला और क्या आत्म-दण्ड दिया?								

क्र. सं.	प्रश्नावली	१	२	३	४	५	६	७
१७.	कितनी बार क्रोध आया और क्या आत्म-दण्ड दिया?							
१८.	कितनी देर तक व्यर्थ सङ्ग किया?							
१९.	कितनी बार ब्रह्मचर्य खण्डित हुआ?							
२०.	कितनी देर धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय किया?							
२१.	कितनी बार बुरी आदतों को दबाने में असफल रहे और क्या आत्म-दण्ड दिया?							
२२.	कितनी देर इष्ट-देवता पर ध्यान किया?							
२३.	कौन-से गुण का विकास कर रहे हैं?							
२४.	कौन-सी बुरी आदत को हटाने का प्रयत्न कर रहे हैं?							
२५.	कौन-सी इन्द्रिय सता रही है?							
२६.	कितने दिन व्रत और जागरण रखे?							
२७.	कब सोये?							

आध्यात्मिक दैनन्दिनी सम्बन्धी उपदेश

सांसारिक व्यक्तियों का साथ व्यर्थ है। बुरी आदतों को ढूँढ निकालिये और उन्हें दूर कीजिये। इस विषय के आप सर्वोत्तम जानकार हैं।

बेकार की गपशप में समय न गँवाइये। संसार में रहते हुए इससे बच पाना असम्भव है लेकिन आप ऐसा कर सकते हैं कि बातचीत को शीघ्र समाप्त कर दें। सावधान रहें। कम बोलें। लोगों से मिलने के लिए ४ बजे से ५ बजे का समय रखें

सब कुछ ईश्वरार्पण भाव से कीजिए। कर्तव्य, कर्तव्य के लिए; काम, काम के लिए—यही आपका आदर्श होना चाहिए। ज्यों-ज्यों आपमें शुद्धता बढ़ती जायेगी आप निष्काम्य कर्म की भावना को समझ सकेंगे। जब तक मन स्वार्थपूर्ण कामनाओं से भरा हुआ है निष्काम्य कर्म क्या है, यह समझना कठिन है।

शिवरात्रि तथा जन्माष्टमी के दिन सम्पूर्ण रात्रि जागरण महत्वपूर्ण है। इससे आप निद्रा पर विजय पा सकेंगे। निद्रा में कमी आयेगी। धूम्रपान, चाय, कॉफी, तम्बाकू, दिवास्वप्न, उपन्यास पठन, सिनेमा, अश्लील शब्द बोलना, अत्यधिक बातें करना, जुआ, ताश खेलना, मद्यपान, समाचार पत्र पढ़ना, निंदा करना, पिशुनता, कोकीन, अफीम आदि का सेवन—ये सभी बुरी आदतें हैं।

चिड़चिड़ापन क्रोध का ही मन्द रूप है। आत्म-प्रशंसा तथा अत्युक्ति असत्य के ही रूप हैं।

बुरे स्वप्न, कुदृष्टि, अपवित्र-कामुक उत्तेजन, विपरीत लिंगी के प्रति आकर्षण अथवा मोह—ये सब ब्रह्मचर्य पालन में विघ्न हैं। साधक को सावधानीपूर्वक इन सबका निषेध करना चाहिए।

आत्म-भाव अथवा नारायण-भाव से रोगियों की सेवा, समाज तथा देश की सेवा निष्काम्य कर्म कहलाती है।

अपनी दैनन्दिनी में अपने बुरे कामों, विफलताओं तथा गलतियों का उल्लेख करने मे लज्जा का अनुभव न करें। आपको कभी असत्य वादन नहीं करना चाहिए। आप अपने लाभ के लिए ही दैनन्दिनी रख रहे हैं।

यह आपकी उन्नति के लिए है। यह उस साधक की डायरी है जो सत्य के साक्षात्कार के लिए सत्य-मार्ग का अनुसरण कर रहा है। अपने दोषों को खुलकर स्वीकार कीजिए और भविष्य में उन्हें दूर कीजिए। आप इसमें किसी बात को न छोड़ें। अधिक अच्छा होगा यदि आप इस सप्ताह की साधना का अगले सप्ताह की साधना से मिलान करें। यदि प्रति सप्ताह ऐसा करना सम्भव न हो तो कम से कम महीने में एक बार तो कीजिए। तब आप विभिन्न साधनाओं में अपने अनुकूल व्यवस्था कर सकते हैं। जप तथा ध्यान में वृद्धि कर निद्रा के समय को घटा सकते हैं।

वह धन्य है जो यह डायरी रखता है और इस सप्ताह के काम की तुलना पिछले सप्ताह से करता है क्योंकि वह शीघ्र ही ईश्वर-साक्षात्कार करेगा।

बहुमूल्य समय को यों ही नष्ट न कीजिए। इतना ही पर्याप्त है कि आपने इतने वर्ष बेकार की गपशप में व्यर्थ गंवा दिये। अब बस कीजिए। ऐसा न कहिए 'कल से मैं नियमित साधना करूँगा'। वह 'कल' भी नहीं आयेगा। सच्चे बनिए और इसी क्षण से साधना प्रारम्भ कीजिए। यदि आप वास्तव में सच्चे हैं तो ईश्वर आपकी सहायता के लिए सदा तैयार हैं। इस डायरी की नकल कर लीजिए और इसे भरकर अपने गुरु के पास भेज दीजिए। आपके गुरु आपका पथ-प्रदर्शन करेंगे तथा आपकी बाधाओं को दूर कर आगे के लिए निर्देश देंगे।

परम पूज्य गुरुदेव के अनुसार आध्यात्मिक साधकों के लिए अपनी साधना में विकास के लिए ये तीनों—**बीस महत्वपूर्ण आध्यात्मिक उपदेश, संकल्प पत्र** तथा **आध्यात्मिक दैनन्दिनी अत्यधिक** महत्वपूर्ण थे।

परम श्रद्धेय गुरुदेव ने लगभग ३०० से भी अधिक पुस्तकें लिखीं। वे अंग्रेजी में हैं परन्तु बहुत से भक्त और शिष्य ऐसे हैं उन्होंने हिन्दी भाषी जनों के लिए इन्हें हिन्दी में अनुवाद करने का प्रयत्न किया है। नीचे हिन्दी में उपलब्ध पुस्तकों की सूची दी जा रही है।

परम पूज्य गुरुदेव की हिंदी में उपलब्ध पुस्तकें

१. अच्छी नींद कैसे सोयें
२. कर्म योग साधना
३. कर्म और रोग
४. घर की सरल औषधियाँ
५. जपयोग
६. गुरु तत्त्व
७. ज्योति, शक्ति ओर प्रज्ञा
८. दिव्योपदेश

९. ध्यानयोग
१०. प्राणायाम साधना
११. बालकों के लिए दिव्य जीवन सन्देश
१२. ब्रह्मचर्य साधना
१३. भगवान् श्रीकृष्ण
१४. मन, रहस्य और निग्रह
१५. मनोजय
१६. मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म
१७. मानसिक शक्ति
१८. योगसार
१९. योगाभ्यास का मूलाधार
२०. योगासन
२१. राधाप्रेम
२२. विद्यार्थी जीवन में सफलजा
२३. शिवानन्द आत्मकथा
२४. संत चरित्र
२५. सत्संग और स्वाध्याय
२६. साधना
२७. शिवानन्द गीता
२८. शिवानन्द ज्ञानकोष

गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी का सम्पूर्ण साहित्य

अध्यात्म गीता, एडवाइस टू वूमन, ऑल एबाउट हिन्दुइज्म, एम्ब्रोसिया, अमृत गीता, एनेलेक्ट्स ऑफ शिवानन्द, आनन्द गीता, आनन्द लहरी,

अफोरिज्म, आश्रम्स एण्ड सेन्ट्स, अस्थमा, ऑटोबायोग्राफी ऑफ स्वामी शिवानन्द, बाजार ड्रग्स, ब्यूटीज ऑफ रामायण, ब्लिस डिवाइन, ब्लड प्रेशर, बून टू डायबेटिक्स, ब्रह्मसूत्र, ब्रह्म विद्या विलास, ब्रह्मचर्य ड्रामा, बृहदारण्यक उपनिषद्, केयर ऑफ आइज, छांदोग्य उपनिषद्, चिल्ड्रन डिवाइन ट्रेज़र, कान्सटीपेशन—इट्स कॉजेज एण्ड क्योर, कंसन्ट्रेशन एण्ड मेडिटेशन, कांकेस्ट ऑफ ऐंगर, कांकेस्ट ऑफ माईंड, कांकेस्ट ऑफ फीयर, कन्वर्सेशन ऑन योगा, कारेसपान्डेन्स कोर्सेस इन योग, डेली मेडीटेशन, डेली रीडिंग्स, देवी माहात्म्य, ध्यानयोग, डायलॉगस् फ्राम उपनिषद्स, डिवाइन लाइफ ड्रामा, डिवाइन लाइफ फॉर चिल्ड्रन, डिवाइन नेक्टर, डिवाइन स्टोरीज, डिवाइन ट्रेज़र, दूर लेक्चर्य, इजी पाथ टू गॉड रिएलाइजेशन, इजी स्टेप्स टू योगा, एजुकेशन फॉर परफेक्शन, इलक्सिर डिवाइन, एपिस्ट्लस ऑफ शिवानन्दा, ऐसे ऑन फिलासोफी, एसेंस ऑफ भक्तियोग, ऐसेंस ऑफ प्रिंसीपल उपनिषद्स, ऐसेंस ऑफ रामायण, ऐसेंस ऑफ योगा, इथिकल टीचिंग्स, इथिक्स ऑफ भगवद्गीता, फैमिली डाक्टर, फर्स्ट एड, फर्स्ट लेसन इन वेदान्त, जेम्स ऑफ प्रेयरर्स, जेम्स ऑफ विस्डम्, गीता फॉर द ब्लाइन्ड, गीता मेडिटेशन्स, गॉड एग्जिस्ट्स, गॉ रिएलाइजेशन, गाइडिंग लाइट्स (१ एवं २), गुरु एण्ड हाइजीन, हैल्थ एण्ड लाँग लाइफ, हार्ट ऑफ शिवानन्द, हिमालय ज्योति, हैल्थ एण्ड हैप्पीनेस, हिन्दू फास्ट्स एण्ड फेस्टिवल्स, हिन्दू गॉड एण्ड गॉडेस, होम नर्सिंग, होम फिजीनिशयन, होम रेमिडीज, हाउ टू बिकम ए योगी, हाउ टू बिकम रिच, हाउ टू कल्टीवेट वर्चुज एण्ड इरेडिकेट वाइसेज, हाउ टू गेट साउँड स्लीप, हाउ टू गेट वैराग्य, हाउ टू लिव हंड्रड इयर्स, आइडोल वर्शिप, इलुमिनेटिंग मैसेजेस (१ और २), इलुमिनेटिंग स्टोरीज, इलुमिनेटिंग टीचिंग्स, इम्मोर्टेल टीचिंग्स, इन द आवर ऑफ कम्युनिकेशन, इन्स्पायरिंग लेटर्स (१ से १३ तक), इन्सपायरिंग मैसेजेस, इन्सपायरिंग टाक्स ऑफ गुरुदेव शिवानन्द, जपयोग, जीवन्मुक्त गीता, ज्ञानयोग, ज्ञान ज्योति, ज्ञान गंगा, जॉय, ब्लिस इम्मोर्टेलिटी, नो दाइ सेल्फ, कुण्डलिनी योग, लेक्चर्स ऑन योग एण्ड वेदान्त, लेटर्स दैट ट्रांसफार्म, लाइफ एण्ड टीचिंग्स ऑफ लार्ड जीसस, लाइट डिवाइन, लाइट ऑन योग साधना, लाइट पावर एण्ड विस्डम, लाइव्य ऑफ सेंट्स (भाग एक और दो), भगवान् श्रीकृष्ण—हिज लीलाज एण्ड टीचिंग्स, लार्ड शणमुख एण्ड हिज वर्शिप, लार्ड

शिवा एण्ड हिज वर्शिप, महायोग, मैसेज, मैसेज टू मैनकाइंड, माइंड—इट्स मिस्ट्रीज एण्ड कंट्रोल, मोक्षगीता, मॉरेल एण्ड स्प्रिचुअल रिजनरेशन, मदर गंगा, म्यूजिक एज़ योगा, नारद भक्तिसूत्र, नेसेसिटी फॉर संन्यास, नेक्टर ड्रॉप्स, पैरेबल्स ऑफ शिवानन्द, पीस एण्ड परफेक्शन, पर्ल्स ऑफ विस्डम, पर्ल्स ऑन द शोर ऑफ विस्डम, पैरेनिअल टीचिंग्स, फिलोसोफिक्ल स्टोरीज, फिलोसोफी एण्ड मेडिटेशन ऑन ओम, फिलोसोफी एण्ड योगा, फिलोसोफी ऑफ ड्रीम्स, फिलोसोफी ऑफ लाइफ, पिलग्रिमेज टू बद्री एण्ड कैलाश, प्रैक्टिस ऑफ भक्तियोग, पॉकेट प्रेयर बुक, प्रेक्टिल गाइड फॉर स्टुडेन्ट्स ऑफ योगा, प्रेक्टिल हाउस होल्ड रेमेडीज, प्रेक्टिकल लेसन्स इन योगा, प्रेक्टिस ऑफ आयुर्वेद, प्रेक्टिस ऑफ ब्रह्मचर्य, प्रेक्टिस ऑफ कर्म योग, प्रेक्टिस ऑफ नेचर क्योर, प्रेक्टिस ऑफ वेदान्त, प्रेक्टिस ऑफ योग, पर्सेप्ट फॉर प्रेक्टिस, प्रिंसिपल उपनिषद्स (भाग एक और दो), पुष्पांजलि, राधा प्रेम, रेडिऐंट हेल्थ थ्रू योग, रेडियो टाक्स, राजयोग, रामायण ड्रामा, रिलीजियस एजुकेशन, रिवीलेशन, साधना, साधन चतुष्टय, सेंट एलेवेंदर, सेंट एण्ड सेजेज, समाधि योग, संगीत भागवत, संगीत लीला योग, संकीर्तन योग, सर्वगीता सार, सत्संग एण्ड स्वाध्याय, सत्संग भवन लेक्चर्स, सेईंग्स ऑफ शिवानन्द, साईंस ऑफ प्राणायाम, सांईस ऑफ रिएलिटी, सीक्रेट्स ऑफ सेल्फ रिएलाइजेशन, सेलेक्ट टीचिंग्स, सेल्फ नॉलेज, सेल्फ रिएलाइजेशन, सेर्मोनिटीज ऑफ शिवानन्द, श्रद्धांजलि, शिव गीता, शिवा लीलाज़, शिवाज़ लेटर्स टू परमानन्द, शिवाज़ टीचिंग्स ए टू जेड, शिवाज़ ट्रेज़र, शिवानन्द स्मृति, शिवानन्द उपनिषद्, शिवानन्द वाणी, शिवानन्दाज एलिक्सिर, शिवानन्दाज लेक्चर्स—ऑल इण्डिया टूर, शिवानन्दाज लेटर्स टू गजानन, शिवानन्दिजम, सिक्सटी थ्री नयनार सेंट्स, सो सेज़ शिवानन्दा, स्प्रिचुअल अवेकनर, स्प्रिचुअल एक्सपीरिएन्सेज, स्प्रिचुल लेसन्स (भाग एक और दो), स्प्रिचुअल स्टोरीज, स्प्रिचुअल ट्रेजर, श्रीमद्भगवद्गीता, स्टेप्स टू सेल्फ रिएलाइजेशन, स्त्री धर्म, स्टोरीज फ्रॉम महाभारत, स्टोरीज फ्रॉम योग वाशिष्ठ, स्टोरी ऑफ माय टूर, स्तोत्र चिन्तामणि, स्तोत्र पंचरत्न, स्तोत्र रत्नमाला, स्टुडेंट्स सक्सेस इन लाइफ, स्टडीज इन वेस्टर्न फिलोसफी, श्योर वेज फॉर सक्सेस इन लाइफ एण्ड गॉड रिएलाइजेशन, स्वर योग, तन्त्र नाद एण्ड क्रिया योग, टेलीग्राफिक मैसेजेस, टेम्पल्स इन इण्डिया, टेन

उपनिषद्स, द गेट वे ऑफ ब्लिस, थॉट पावर, त्रिपल योग, टू एजुकेशन, टयूबरकुलोसिस, यूनिटी ऑफ रिलीजन्स, यूनिवर्सल मोरल लेसन्स, उपनिषद ड्रामा, उपनिषद्स फॉर बिजी पीपल्, उपनिषद् फॉर लेमैन, वैराग्य माला, वेदान्त इन डेली लाइफ, वेदान्त ज्योति, वोइस ऑफ शिवानन्द, वोइस ऑफ द हिमालयाज, वेव्स ऑफ ब्लिस, वेव्स ऑफ गंगा, व्हाट् बिकम्स ऑफ द सोल आफ्टर डेथ, विस्डम इन ह्यूमर, विस्डम नेक्टर, विस्डम स्पार्क्स, वर्ल्ड पार्लियामेंट ऑफ रिलीजन्स, वर्ल्ड पीस, वर्ल्ड रिलीजन्स, योग एण्ड रिएलाइजेशन, योगासन्स, योग फॉर द मॉर्डन मैन, योग फॉर द वेस्ट, योगा इन डेली लाइफ, योग कुण्डलिनी, उपनिषद्, योग महारनव, योग ऑफ सिंथेसिस, योगसंहिता, योगशास्त्र ऑफ शिवा, योग टीचिंग्स, योग—वे टू पीस, योग—कोश्चन्स एण्ड आन्सर्स, योग वेदान्त डिक्शनरी, योग वेदान्त सूत्राज़ (भाग १ और २), यौगिक एण्ड वेदान्तिक साधना, यौगिक होम एक्सरसाइजेज।

हरि ॐ तत् सत्।

ॐ नमो भगवते शिवानन्दाय।

परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी द्वारा रचि

विश्व-प्रार्थना

हे स्नहे और करुणा के आराध्य देव!

तुम्हें नमस्कार, नमस्

तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।

तुम सच्चिदानन्दघन हो।

तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।

श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।

हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,

जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्र

हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से र

हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।

तुम्हारी अर्चना के की रूप में इन नाम-रूपों की सेवा क

सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।

सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।

तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो

सदा हम तुममें ही निवास करें।

—स्वामी

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

श्री स्वामी शिवानन्द जी के
जीवन तथा लक्ष्य के कुछ स्मरणीय दिवस

धरा पर अवतरण	8.9.1887
संन्यास	1.6.1924
भगवद्साक्षात्कार	1930
वर्तमान आश्रम में आगमन	17.1.1934
पारमार्थिक औषधालय की स्थापना	17.1.1934
दिव्य जीवन न्यास संस्था की स्थापना	17.1.1934
प्रथम दिव्य जीवन पत्रिका का प्रकाशन	1.9.1938
शिवानन्द प्रकाशन संस्थान की स्थापना	29.1.1939
दिव्य जीवन संघ का पंजीयन	16.4.1939
भजन-कक्ष का शुभारम्भ	2.4.1942
महामन्त्र अखण्ड कीर्तन का भजन-कक्ष में शुभारम्भ	3.12.1943
विश्वनाथ मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा	31.12.1943
श्री शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी की स्थापना	6.5.1945
ऑल वर्ल्ड रिलीजियस फेडरेशन की स्थापना	28.12.1945
विश्व साधु संघ की स्थापना	19.2.1947
जन्म दिवस हीरक जयन्ती	8.9.1947
संन्यास रजत जयन्ती	1.6.1948
योग वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी की स्थापना	3.7.1948
श्री शिवानन्द आर्ट स्टूडियो का शुभारम्भ	25.2.1949
सम्पूर्ण भारत और श्रीलंका भ्रमण यात्रा का आरम्भ	9.9.1950
औषधालय अस्पताल में विकसित हुआ	28.12.1950
योग वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस की स्थापना	20.9.1951
विश्व धर्म संसद का आयोजन	3.5.1953
श्री शिवानन्द संग्रहालय का शुभारम्भ	9.1.1956
श्री शिवानन्द नेत्र चिकित्सालय का शुभारम्भ	1.6.1956
श्री शिवानन्द मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा	8.9.1956
श्री शिवानन्द स्तम्भ की प्रतिष्ठा	23.5.1958
श्री शिवानन्द साहित्य शोध संस्थान का गठन	20.7.1959
महासमाधि	14.7.1963

परम पूज्य गुरुदेव ने तीन सौ से अधिक पुस्तकों का प्रणयन किया।

दिव्य जीवन संघ प्रकाशन

HO 44 Rs. 150/-